www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गृहस्थ एक तपोवन ३.६२

अस्थिर होता है। दाम्पत्य जीवन में काम के प्रति सही दृष्टिकोण अपनाया जाय तो आज हमारे घर में जो नर्क दिखायी दे रहे हैं, उनका सारा स्वरूप ही बदल सकता है और ऐसे परिवार तैयार हो सकते हैं जहाँ के वातावरण में स्वर्गिक रस घुले हुए हों।

सफल दाम्पत्य के व्यावहारिक सत्य (१)

प्राय: हर पति-पत्नी दाम्पत्य सूत्र में बँधने के पूर्व और आरम्भिक काल में अपने दाम्पत्य जीवन की सुखद कल्पनाएँ और उसे सफल-सार्थक करने का उल्लास, उमंग लेकर चलते हैं किन्तु देखने में आता है कि उनमें कुछ प्रतिशत लोगों को छोड़कर शेष के वे स्वप्न साकार नहीं हो पाते और उनकी वे उमंगें कुण्ठित हो जाती हैं। इसका कारण उन भावनाओं और सपनों को सत्य करने की व्यावहारिकता से वे अनभिज्ञ थे, अत: चाहते हुए भी अपनी दाम्पत्य बगिया के पुष्पों को महका न सके और वे असमय ही मुरझा गये। व्यक्ति की यह असफलता उसके जीवन को, उसके हर क्रियाकलाप को प्रभावित किये बिना नहीं रहती। तद्विषयक कुछ व्यावहारिक सूत्र नीचे दिये जा रहे हैं।

जीवन पथ के दो सहयात्री—पति-पत्नी अपने दाम्पत्य जीवन में प्रविष्ट होने के पूर्व या प्रारम्भिक दौर में जो संकल्प लेकर चले थे—परस्पर जो अनुराग लेकर चले थे। उन्हें आगे के जीवन के कड़वे-मीठे अनुभवों के मध्य उन पर गर्द जमती जाती है। अत: उन्हें समय-समय पर दोहराने, नवीनीकृत करने के प्रयास, पारस्परिक प्रेम प्रदर्शन जिसमें दैहिक-कामनाएँ जुड़ी न हों प्रदर्शित करना बहुत आवश्यक और उपयोगी रहता है। विवाह के समय लिये गये संकल्पों को विवाहदिवोत्सव (शादी की वर्ष गाँठ) के रूप में विवाह की विधि से ही मनाकर जिस प्रकार रेडियो लाइसेंस नवीनीकृत करते हैं, प्रति वर्ष विवाह के संकल्पों का भी नवीनीकरण करना अच्छा और उपयोगी रहता है।

बीच-बीच में और सम्भव हो सके तो प्रतिदिन प्रेम प्रदर्शन के लिए पारस्परिक सेवा का क्रम चलाया जाना भी बहुत उपयोगी है। पत्नियाँ तो प्राय: और प्रतिदिन भोजन बनाने, कपड़े धोने व अन्य सेवा कार्यों द्वारा पति के प्रति अपने सहज अनुराग को प्रदर्शित करती रहती हैं किन्तु पति प्राय: बाहरी काम को महत्व देने और पत्नी के इन कार्यों को केवल उसका दायित्व समझकर उसके साथ-जुड़ी भावनाओं तक पहुँच नहीं पाते हैं। जबकि पत्नी चाहती है कि उसके इस अनुराग को समझा जाय, उसकी कुछ प्रतिक्रिया जाहिर की जाय। जब तक वह प्रतिक्रिया उसकी प्रशंसा अथवा छोटी-मोटी सेवा कोई आर्थिक सामर्थ्य के दायरे में रहकर दिया गया प्रेमोपहार के रूप में प्रकट होती रहनी चाहिए। यदि ऐसा नहीं हुआ तो जिस प्रकर पीतल के सुन्दर लोटे को प्रतिदिन नहीं माँजने पर वह काला पड़ कर मैलग्रस्त और भद्दा हो जाता है ऐसे ही पति-पत्नी के प्रेम में भी ऐसी ही शुष्कता आती जाती है जो यों तो अभिव्यक्त नहीं होती पर कभी अवसर पाकर कलह, मनमुटाव व विरक्ति के रूप में फूट पड़ती है। जिस प्रकार आत्मा पर चढ़ने वाले कषाय-कल्मषों को धोने के लिए प्रतिदिन उपासना की जाती है वैसे ही पति-पत्नी को भी अपनी दाम्पत्य सरसता मन्दाकिनी को सतत् प्रवाहमान रखने के लिए किसी न किसी प्रकार अनुराग प्रदर्शन का और उसके प्रति उत्तर देने का क्रम चलता रहना चाहिए।

प्राय: देखा यह जाता है कि सन्तान के आने के पूर्व तक पति-पत्नी में काफी सरसता बनी रहती है। दोनों एक दूसरे का बहुत ध्यान रखते हैं। सन्तान हो जाने पर दोनों का स्नेह थोड़ा-थोड़ा उनकी ओर बँट जाता है। उनकी ओर स्नेह बँट जाना अस्वाभाविक भी नहीं है। किन्तु ऐसा भी होता है कि उनके आने से पहले उन्हें जो एक दूसरे के साथ एकान्तिक संगति भोगी थी, उसकी आदत उसके उतने न सही थोड़े अंश में ही सही परितृप्ति चाहती है। जबकि पति-पत्नी उपार्जन गृहस्थी में फँस कर उस तरफ ध्यान नहीं दे पाते। किन्तु वह पहले वाली मानसिक भूख तो परितृप्ति चाहती ही है, भले ही पेट की भूख की तरह उस भूख की प्रतीति न हो। अत: यह भूख मारी नहीं जानी चाहिए। दिन भर में थोड़ा सा ही समय सही पर वह पति-पत्नी का अपना हो, जिसमें किसी दूसरे का हिस्सा न हो। यहाँ यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि यह प्रेम प्रदर्शन दैहिक कम मानसिक अधिक हो।

यह सिद्ध सत्य है कि दाम्पत्य माधुर्य में दैहिक संसर्ग प्राय: विरक्ति पैदा करता है और मानसिक संसर्ग अनुरक्ति। दो मित्रों के बीच बिना किसी दैहिक आकर्षण के उत्कट प्रेम रह सकता है, जबकि यहाँ माता-पिता, भाई-बहिन जैसा कोई प्राकृत रिश्ता नहीं होता। फिर भी यदा-कदा एक मित्र दूसरे के लिए जान तक न्यौछावर करने को तत्पर हो जाता है। यह मानसिक अनुरक्ति का ही परिणाम होता है। पति-पत्नी के बीच भी यह मानसिक परिचय, मानसिक अनुरक्ति जो दिव्यता और स्थायित्व उत्पन्न करती है, वैसा शारीरिक संसर्ग कदापि नहीं। वस्तुत: शारीरिक सम्मिलन के पीछे प्राय: मूल भाव अपने अनुराग का प्रदर्शन ही होता है। यदि इस ओर पति-पत्नी प्रवृत्त हुए तो उनमें शक्तियों के क्षरण के साथ-साथ और भी कई समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं।

मनोरंजन का भी दाम्पत्य सम्बन्धों को सफल बनाने में व्यावहारिक महत्व है। पत्नी प्राय: घर में ही रहती है। इससे उसके जीवन में एकरसता आ जाती है। यह एकरसता स्वास्थ्य व व्यवहार पर प्रभाव डालती है। वह कुछ उदासीन सी रहने लगती है और पति उसके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यवहार में अन्तर पाता है तो उसे अपनी उपेक्षा समझ बैठता है। अत: दूसरे-तीसरे दिन या सप्ताह में ऐसा कोई छोटा सा, कम खर्च का मनोरंजन कार्यक्रम बनाकर उसे क्रियान्वित करते रहना चाहिए। जिनके पास समय और सुविधा है वे रोज थोड़ी देर के लिए बच्चों सहित टहलने जाया करें तो यह व्यायाम और मनोरंजन दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति कर देता है। घर में रेडियो आदि मनोरंजन के साधन हों तो अच्छा रहता है। किन्तु दिन भर फिल्मी गाने सुनने या आये दिन सिनेमा देखने के मनोरंजन से प्राय: बचना ही ठीक रहता है।

काम वासना पति-पत्नी के पारस्परिक प्रेम का आधार कदापि नहीं हो सकती। किन्तु यह बिल्कुल अनावश्यक भी नहीं है। सन्तानोत्पादन के लिये और जहाँ शरीर, मन और आत्मा के संयोग के सुख का रसास्वादन मिले, वहाँ उसका औचित्य भी है। किन्तु इसे पेट की भूख की तरह मान लेने की बात जो तथाकथित आधुनिक लोग कहते हैं, मानते हैं, नितान्त भ्रामक व अव्यवहारिक है। विवाह मनुष्य की काम वृत्ति की परितृप्ति के लिए नहीं उसके संयम, उसे ऊर्ध्वमुखी बनाने के लिए होता है। जो दम्पत्ति इस सत्य को समझने में भूल करते हैं, उनका प्रेम शारीरिक आवेगों के बरसाती नाले की तरह थोड़े ही दिनों तक किनारा तोड़कर बहने के बाद सूख जाता है। अत: इससे बचना ही श्रेयस्कर है। एक दूसरे की सेवा पिता, भाई, पुत्र व मित्र की तरह दिया गया स्नेह, श्रद्धा व प्रेम पति देता रहे यह कामना का शोधन बहुत व्यावहारिक है। पत्नी भी पति के लिए हर घड़ी केवल स्त्री नहीं रहती। वह प्राय माँ, बहिन, पुत्री, मित्र व सखा की भूमिका ही निभाती है। यही स्नेह को कामना के विष से मुक्त करने का राजमार्ग है।

जीवन पथ के दो सहयात्री—पति-पत्नी के मन में यह उत्कट कामना होती है कि उसके सहयोग से उसका साथी प्रगति करता हुआ आसमान को छूले। इसके लिए वे अभीष्ट त्याग, बलिदान, सहयोग, मार्गदर्शन देने के लिए भी पूरी तरह तैयार रहते हैं। किन्तु यहाँ एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि इस जोश के साथ होश भी रखना बहुत जरूरी है। क्योंकि व्यक्ति की अपनी-अपनी सामर्थ्य, अपना-अपना स्तर होता है, यदि उस सामर्थ्य और उस स्तर को ध्यान में रखते हुए विकास के चरण स्थिर नहीं किये गये और उस पर बढ़ते हुए साथी की मन्द गति के साथ अपना धैर्य न जोड़ा गया तो प्राय: परिणाम उसे निरा अयोग्य मान लेने के रूप में सामने आता है। यह बड़ी भयंकर स्थिति होती है। अत: एक दूसरे को आगे बढ़ाने की भावना के साथ इस व्यावहारिक पहलू को भूल नहीं जाना चाहिए।

कृपणता किसी भी क्षेत्र में हो बुरी ही सिद्ध होती है। धन की कृपणता की तरह पति-पत्नी की एक दूसरे को अपने तक ही सीमित रखने की कृपणता भी कम हानिकारक नहीं होती। पत्नी मात्र पत्नी नहीं होती और पति मात्र पति नहीं होता। वे किसी के भाई, बहिन मित्र, सम्बन्धी, पुत्र, पुत्री, सखा, परिजन आदि भी तो होते हैं। जहाँ एक व्यक्ति अपने साथ जुड़े इन लोगों के साथ प्रेम पूर्ण व्यवहार करता है, वहाँ दूसरे के मन में ईर्ष्या या उन सम्बन्धियों के प्रति द्वेष उत्पन्न होता है वहाँ उसकी यह संकीर्ण हृदयता उनको एक दूसरे की नजरों में गिराती भी है। इसलिए यह भी आवश्यक है कि पति-पत्नी एक दूसरे के माता-पिता, भाई, बहन, सखा, मित्र आदि का यथोचित आदर सम्मान भी करें। इससे दूसरे पक्ष की निगाह में उनका सम्मान बढ़ता है।

पति-पत्नी के सम्बन्धों का मुख्य आधार प्रेम होता है। वे एक दूसरे के पति-पत्नी ही नहीं प्रेमी-प्रेमिका भी होते हैं। आजकल कुछ लोग पश्चिमी सभ्यता की देखा-देखी पत्नी और प्रेमिका दो पृथक्-पृथक् नारियों को मानने लगे हैं, यह दाम्पत्य सम्बन्धों के लिए बहुत घातक है। वस्तुत: ऐसा नहीं होता। पत्नी-पति के सुख में प्रसन्न और उसके दु:ख में दुखी होती है, उसे अपने पति के प्रेम और व्यक्तित्व पर गर्व होता है। यदि यह प्रेमिका-सा भाव पत्नी के अन्दर से मर जाय और वहाँ केवल परिवार और सन्तान के कारण दोनों को एक छत के नीचे रहने की विवशता भर रह जाय तो वहाँ पत्नीत्व भी कहाँ जी पाता है। पति-पत्नी के बीच जो प्रेम होता है वह उसके लिए आसमान के तारे तोड़कर प्रेमिका के कदमों पर निछावर कर देने जैसी काल्पनिक उड़ान नहीं होता, उसमें सागर सी गहराई होती है। यह गहराई और प्रौढ़ता आवश्यक भी है।

दिन भर का थका-हारा जीवन संग्राम का सिपाही पति घर लौट कर पत्नी के मन प्राणों की शीतल छाँह में विश्राम पाकर नूतन बल पाता है। पत्नी उसे नया उत्साह देकर स्वयं को धन्य मानती है। यही प्रेम का वह रूप है जो दाम्पत्य के सम्बन्धों में निखरता है, प्रौढ़ होता है। इसे पनपाने-बढ़ाने के लिए किसी से कुछ अपेक्षा करने की बजाय देने की ही भावना रखी जाय तो यह दान-प्रतिदान का क्रम चलता ही रहता है और वृद्धावस्था तक बना रहता है। यही वह समय है जब साथी की सबसे अधिक आवश्यकता होती है। किन्तु प्राय: इस अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते पति-पत्नी एक-दूसरे से बहुत कट जाते हैं। इसका कारण उस प्रेम वल्लरी को यत्नपर्वूक नहीं सींच पाना ही होता है।

प्राय: होता यह है कि युवावस्था को प्राप्त होने तक युवक-युवतियों ने जीवन साथी के भाव से किसी को पाया नहीं होता है। अत: विवाह के प्रारम्भिक दिनों में उनका पारस्परिक प्रेम, आकर्षण, आसक्ति लम्बे उपवास के बाद मिलने वाले भोजन की तरह होता है और वे दाम्पत्य सम्बन्धों के आरम्भ में ही एक दूसरे को पूरी तरह पा लेना चाहते हैं, असंयमी की तरह। इस काल में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न तन का संयम रखना उन्हें आवश्यक लगता है, न मन का। किन्तु संयम बहुत आवश्यक होता है नहीं तो लम्बे उपवास के बाद एकदम भरपेट भोजन कर लेने की तरह ही यह असंयम हानिकारक बन जाता है। एक तरह से यदि अपने परिवार और सम्बन्धियों की ओर से कटकर एक दूसरे में ही डूब जाने की भूल यदि अनजाने में होती है, तो वह उन दोनों को स्वार्थी व बेशर्म सिद्ध करती है जो उचित नहीं। दाम्पत्य सूत्र में बँधने का अर्थ परिवार से कटकर नहीं रह जाना है। वरन् उन दायित्वों को और गहराई से लेना है। रहस्य पर आवरण पड़ा रहे। प्राप्य प्राप्य ही बना रहे तभी तक मिलन का रस, आनन्द, मधुरता बनी रहती है। इस प्रेम रस को घूँट-घूँट करके पीया जाय तो वह अधिक तृप्ति व पुष्टि देगा। पूरा घूँट एक दम उड़ेल देने पर छोटा मुँह सारा रस ग्रहण भी नहीं कर पाता वह व्यर्थ ही बह जाता है, तृप्ति भी नहीं होती और घट भी रीत जाता है।

सफल दाम्पत्य के व्यावहारिक सत्य (२)

दाम्पत्य जीवन में प्रवेश करते समय पति-पत्नी के मन में अपने इस जीवन की सफलता-सार्थकता के कई मीठे सपने होते हैं, वे उस समय किये गये संकल्पों को समय-समय पर दोहराते रहने, प्रेम, प्रदर्शन के दातव्य, दैहिक संसर्ग की अपेक्षा मानसिक परिचय को महत्व देने, मनोरंजन, काम संयम, धैर्य, अकार्पण्य, प्रेम प्रवाह की अविकलता, प्रारम्भिक दिनों का संयम बर्तते रहने आदि की व्यावहारिक सचाइयों को पालते रहने से साक्षर हो पाते हैं, यह पिछले लेख में बताया गया था अब उसके आगे चलते हैं।

वैवाहिक जीवन में प्राय: पति-पत्नी एक-दूसरे से जो स्नेह, संरक्षण, सहयोग, मार्ग दर्शन, प्रेम, प्रतिदान मिल रहा है, उसे तो देखने का प्रयास नहीं करते और अपने साथी से और कई अपेक्षाएँ करने लगते हैं। इस कारण धीरे-धीरे उनके जीवन में असन्तोष व विरक्ति का मन्द विष घुलने लगता है। उनका जीवन रोते-कलपते व लड़ते-झगड़ते बीतता है। आरम्भ से ही यह दृष्टिकोण लेकर चला जाय कि हमारे साथी जो कुछ मिल रहा है, वह भी नहीं मिलता तो हमारी क्या दशा होती। तो उनके एक दूसरे से असन्तुष्ट होने की स्थिति ही उत्पन्न नहीं हो। साथ रहकर एक दूसरे को अपने अनुकूल ढालने का प्रयास तो किया जाता रहे पर धैर्य का साथ भी न छोड़ा जाय।

मनुष्य का स्वभाव भूल और गल्तियाँ करने का होता है। बड़ों-बड़ों से गल्तियाँ और भूलें हुई हैं बड़ी-बड़ी। यह दाम्पत्य जीवन के दौरान भी होती हैं। उसे लेकर बात का बतंगड़ बनाने की अपेक्षा उन भूलों को, गल्तियों को सहज मानवीय कमजोरी के रूप में माना जाता रहे तो एक दूसरे से छोटा समझने और उसके प्रति प्रेम में कमी आने की बात ही उत्पन्न नहीं होती। अपने जीवनसाथी के समग्र व्यक्तित्व से प्यार करने वाले दम्पत्ति सदा एक दूसरे से सन्तुष्ट रहते हैं। साथी के गुण व दोषों को स्वाभाविक मानकर चला जाय और साथ ही दोषों के परिमार्जन, गुणों के अभिवर्धन और व्यक्तित्व के विकास की ओर ध्यान दिया जाता रहे तो उनमें गहरी समझ और प्रगाढ़ एक्य उत्पन्न होकर बढ़ने लगता है, जो दाम्पत्य जीवन की सफलता के लिये एक आवश्यक तथ्य है।

'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना' की सच्चाई से पति-पत्नी भी पृथक् नहीं रह सकते। दोनों में वैचारिक दृष्टिकोण, मान्यता और सोचने का ढंग एक सा ही हो ऐसा संयोग बहुत कम देखने में आता है। यह भिन्नता समय-समय पर एक ही तथ्य पर दोनों को दो भिन्न पक्षों पर ला खड़ा करती है। ऐसी स्थिति में यदि एक ने ही या दोनों ने अपनी बात पर अड़ने की हठधर्मी दिखाने की भूल की, तो बात बिगड़ती चली जायगी। अपना पक्ष भी रखा जाय पर वह माना जाय और वही सत्य है, यह आग्रह उसके साथ न जोड़ा जाय। साथ ही जब कोई अपने विचारों, मान्यताओं व दृष्टिकोणों में वास्तव में कोई न्यूनता लगे तो वह साथी के सामने स्वीकार ले। दूसरा पक्ष उसे अपना बड़प्पन या अपनी समझदारी न समझ अपने साथी के सुलझेपन को महत्ता दे। यह रीति-नीति पारस्परिक समझ को विकसित करने के लिये बड़ी उपयोगी है।

यह वैभिन्य अपनी-अपनी पसन्द में भी होता है। यहाँ एक दूसरे की पसन्द की इज्जत करना, स्वीकारना और पूरी करना आवश्यक है न कि उस पर मुँह बिचकाना व अपनी पसन्द ही थोपना। पति को करेले की सब्जी बढ़ी अच्छी लगती है, चटक तोतई रंग पसन्द है या बात में हँसी-मजाक करना अच्छा लगता है। पर पत्नी की पसन्द उससे भिन्न है फिर भी पति की उन पसन्दों का ध्यान तो वह रख ही सकती है। यही बात पति पर भी लागू होती है। ऐसा करने से एक दूसरे के प्रति 'देखो यह मेरा कितना ध्यान रखते हैं' का भाव उत्पन्न होता है जो साथी की उपयोगिता को सिद्ध करता है जो पारस्परिक प्रेम बढ़ाने का एक आधार है।

गुण, कर्म, स्वभाव में भी प्रत्येक व्यक्ति एक सा नहीं होता। पति-पत्नी में भी यह अन्तर रहता ही है और यदि उस भिन्नता को ही महत्व देकर बात-बात पर अड़ा, खीझा और खिन्न हुआ जाता रहे तो परस्पर प्रीति कभी ठहर नहीं सकती। यह भिन्नता ही प्राय: दोनों को एक दूसरे से विरक्त व असन्तुष्ट होने का कारण बनती है। इस सम्बन्ध में दोनों को बहुत सावधान रहना चाहिए। गुण, कर्म, स्वभाव उनके अब तक के जिये हुए जीवन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर ही नहीं पूर्व जन्म के संस्कारों द्वारा भी सिरजे होते हैं। अत: उन्हें एकदम बदला नहीं जा सकता। परिष्कार का प्रयास तो किया जाता रहे पर उन्हें लेकर दाम्पत्य सौमनस्य को, माधुर्य को नष्ट नहीं करना चाहिए। प्राय: पति-पत्नी यही भूल करते हैं एक-दूसरे को एकदम अपने अनुरूप बना लेने की, अपने करने की। किन्तु यह इतना शीघ्र सम्भव नहीं होता।

भावनाएँ होना तो बहुत उत्तम है। भावनाएँ मनुष्य को सामान्य मानव से महामानव बनने की प्रेरणा प्रदान करती रहती हैं। ये दाम्पत्य जीवन में भी एक दूसरे के प्रति देखी जाती हैं और उनका होना बहुत जरूरी भी है। किन्तु अति भावुकता से बचा ही जाना चाहिए। अति भावुकता मनुष्य के क्रिया-कलापों व अनुरक्ति को हवा में उड़ने वाले बादल की तरह अस्थिर और क्षण स्थायी बना देती है। अत: इस अति से सावधान, सचेत रहना आवश्यक होता है। पति-पत्नी को आसमान में उड़ना नहीं धरती पर रहना चाहिए। आसमान की बातें तो सोची जा सकती हैं, सोची जानी भी चाहिए पर पाँव धरती पर ही टिके होने चाहिए, जिससे कि उनके स्वप्न, दिवा स्वप्न न बनकर रह जायँ। भावनाओं का जो प्रबल प्रवाह दोनों के हृदय में बहता है उसे दिशा देने, उस प्रवाहमान जल राशि को सहारा देने के लिये धैर्य व निष्ठा के दो कूलों की भी आवश्यकता है। अति भावुकता उन्हें तोड़ देती है फिर वहाँ उस नदी का प्रवाह कोई नामोनिशां नहीं रहता।

ऐसा ही नियमन पारस्परिक आसक्ति का भी होना आवश्यक है। आरम्भ में पति-पत्नी के बीच काम करने वाला सूत्र प्राय: 'आसक्ति' होता है, जो समय के साथ प्रौढ़, पुष्ट व कल्याणकारक बनता जाता है और प्रेम में परिवर्तित होता है। इस आसक्ति का नियमन यदि न हो सका और वह मात्र दैहिक बनकर रह गई तो बड़ा संकट उपस्थित हो जाता है। इसके नियमन के लिये उसे सेवापरक बनाना उपयुक्त रहता है। यही कारण है कि नारी में सेवा के प्राकृत होने के कारण वह प्राय: दैहिक कामना में पुरुष की अपेक्षा बहुत पीछे रहती है।

पति-पत्नी मात्र स्त्री-पुरुष तो जीवन के हजारवें-लाखवें भाग में भी नहीं रहते। शेष जीवन में पति पत्नी के लिये संचालक की तरह उपार्जन करता है, उसकी रक्षा करता है। वह उसके लिये मेहनत करता है, कमाई करता है श्रमिक की तरह। मित्र की तरह स्नेह-सहयोग देता है। इसी प्रकार वह कितनी ही भूमिकाएँ निभाता है। पत्नी भी माँ की तरह उसकी सेवा करती है। भोजन कराती है, खिलाती है और पुत्री की तरह उसके सबल पौरुष की छाँह में सुरक्षा पाती है। वह मित्र की तरह कठिन समय में उसे धैर्य बँधाती है, सहयोग देती है! यह पवित्र सेवापरक, स्नेहपरक, मैत्रिपरक सुख देना व पाना ही दाम्पत्य आसक्ति को शारीरिक परिचय की सीमा से आगे बढ़ाना बहुत आवश्यक है।

पारस्परिक कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति आवश्यक होते हुए भी निम्नगामी नहीं होनी चाहिए। दैहिक विकारों व उसकी गरिमा घटती है। इन्हें कला और सेवा के साथ जोड़ा जा सकता है। पति-पत्नी के एकान्त क्षणों में भी इसका ध्यान रखना बहुत अच्छा होता है।

प्राय: ऐसा होता है कि पत्नी अपनी शारीरिक अस्वस्थता, मानसिक उलझन और अन्य किन्हीं कारणों से पति द्वारा चाहे गये व्यवहार या सदा की तरह किये जाने वाले व्यवहार से कुछ भिन्न रुख अपनाती है। उसे इस व्यवहार को अपनी उपेक्षा मानने की भूल करने वाले पति का यह अनुमान प्राय: गलत होता है। उन्हें उस व्यवहार के कारणों को खोजना चाहिए। नहीं तो थोड़े दिन तो वह ऐसे व्यवहार को सहता रहेगा पर मन ही मन यह धारणा पक्की होती जायेगी कि उसकी उपेक्षा हो रही है। यही भूल पत्नियाँ भी कर जाती हैं। बाहर की, व्यवसाय, नौकरी आदि की समस्याओं में उलझा पति यदि उसके बताये हुए बाजार के काम नहीं कर सका या उसके लिये समय नहीं मिला, पत्नी ने कुछ पूछा और वह कहीं और उलझा हुआ उसका उत्तर नहीं दे पाया या उसके व्यवहार में कोई रुक्षता आयी तो उसे अपनी उपेक्षा न मान उसके पीछे छिपे कारणों को खोजने का प्रयास करना आवश्यक होता है। इसके बिना सत्य क्या है पता नहीं चलता और असत्य ही सत्य बनता चला जाता है और जब यह अनुभव होने लगता है कि मेरी उपेक्षा हो रही है तो पारस्परिक वितृष्णा उत्पन्न होने लगती है। यह वितृष्णा उनके भावी जीवन के लिये अच्छी नहीं होती।

सम्पूर्ण समर्पण की जो बात दाम्पत्य जीवन के लिये आवश्यक मानी जाती है, वह वास्तव में अपने अहं का नियमन करने के अर्थ में ही सही ठहरती है। एक दूसरे की बात व व्यवहार को सहज रूप में लेने की बजाय उसे अपने अहं पर पड़ने वाली चोट समझा जाय तो पति-पत्नी में कलह का विष वृक्ष पनपने लगता है। इसलिये समझदार दम्पत्ति किसी ने कुछ कहा और वह दूसरे को प्रिय नहीं लगा, तो उसमें कहीं न कहीं दोनों का हित खोजने का प्रयास करते हैं। यह सही भी है पति-पत्नी के बीच कभी ऐसे प्रसंग आते भी हैं तो उसके पीछे उनके सम्बन्धों को मधुर बनाने का ही प्रयोजन रहता है।

किसी को अपने से बड़ा, योग्य व अनुभवी तो माना जा सकता है। किन्तु वह भी अन्तत: मनुष्य ही होता है—देवत्व और दानवत्व का मिला-जुला रूप, गुण और दोषों का एक समन्वित स्वरूप। यदि पति-पत्नी के मन में जो एक दूसरे के योग्य, बड़ा, प्रेममय आदि कोई स्वरूप बन गया है तो उसके साथ दुराग्रह नहीं जुड़ना चाहिए। मनुष्य ही मानकर चला जाना ठीक रहता है। उस मन में बनी तस्वीर के विपरीत किसी का आचरण या व्यवहार दीखे तो सहज मानव प्रकृति मानकर उसे दूर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने का प्रयास करना तो ठीक रहता है पर उस बात को लेकर अपने श्रद्धा, निष्ठा, विश्वास और ममत्व में कमी करना ठीक नहीं रहता। इससे सम्बन्धों में शैथिल्य आने लगता है और यह क्रमशः चलता ही रहा तो परिणाम बहुत बुरे होते हैं।

प्रशंसा की चमत्कारी शक्ति सर्वविदित ही है। उससे भी दम्पत्ति को लाभान्वित होने का लाभ विवेकशील दम्पत्ति उठाते हैं। प्रशंसा करना और प्रशंसा सुनना यह दोनों ही गुण पति-पत्नी अपने में विकसित करें तो वे एक दूसरे की प्रगति में ही सहायक हो सकते हैं और दाम्पत्य रस अभिवर्धन में भी।

प्रशंसा करना भी एक कला है और सुनना भी एक कला है। प्रशंसा में कार्यों को प्रमुखता दी जाय न कि व्यक्ति को और सुनने में भी अपने सत्कार्यों, व्यक्तित्व व व्यवहार के विकसित करने की कामना उत्पन्न हो न कि अहंकार। पत्नी ने सूझबूझ से कोई नुकसान होने से बचा लिया हो या कोई कार्य सुरुचिपूर्ण ढंग से ही कर दिया हो तो उसकी प्रशंसा करनी ही चाहिए। यहाँ यह सोचना कि यह तो उसका दायित्व है, प्रशंसा करने की क्या आवश्यकता यह सोचना ठीक नहीं। जो पत्नियाँ पति की प्रशंसा में कृपणता नहीं बरततीं वे उनके मन में अपना स्थायी निवास बना लेती हैं।

सफल दाम्पत्य के व्यावहारिक सत्य (३)

किसी के पास विश्वविद्यालय की बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ हों, प्रतिभा हो, योग्यता हो तो वह ज्ञान दाम्पत्य की सफलता में कोई विशेष योगदान देगा, यह आशा करना व्यर्थ है। कई ऐसे व्यक्ति भी अपने दाम्पत्य जीवन में असफल होते देखे जाते हैं। अतः सबको दाम्पत्य के उन व्यावहारिक सूत्रों की जानकारी होना बहुत आवश्यक है।

पति-पत्नी के बीच जो अपनेपन का भाव होता है वह प्रायः पारस्परिक शिष्टाचार व औपचारिकता को विस्मृत कर देता है। यह कुछ दम्पत्तियों के लिये जिनके बीच गहरी समझ और रुचि, स्वभाव का साम्य उत्पन्न हो गया हो, के लिये तो ठीक हो भी सकता है। किन्तु इससे पूर्व की स्थिति में शिष्टाचार व औपचारिकता का यथासाध्य निर्वाह अच्छा रहता है। इसके निर्वाह से दूसरों के लिये और बच्चों के लिये भी अच्छा रहता है। सभी इसका पालन करें तो लाभ ही होगा, हानि होने की संभावना नहीं है। कभी-कभी यह शिष्टाचार व औपचारिकता का अभाव दूसरे लोगों के सामने पति-पत्नी के अपमानित सा होने की अशोभन स्थिति उत्पन्न कर देता है। एक पक्ष अपने को आहत-अपमानित समझने लगता है जबकि दूसरे ने यह सब बिना ही सोचे कहा हो। जैसे मित्रों के सामने पत्नी के मायके वालों के सम्बन्ध में कोई ऐसी बात कह देने पर उसे वैसा ही अनुभव होता है। इसलिये अपनत्व का भाव तो रहे पर उसके साथ जो अधिकतर व अद्वैत का भाव आ जाता है उसकी अति न हो जाय। इसके लिये शिष्टाचार व औपरचारिकता का पालन ठीक ही रहता है।

कई व्यक्ति अपने मित्रों के साथ वार्तालाप करते समय भी कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग करते देखे जाते हैं, जो शिष्टता की सीमा में नहीं आते। वैसा ही कुछ पत्नी के साथ भी कुछ व्यक्ति व्यवहार करते हैं। वे समझते हैं कि यह उनकी अभिन्नता की अभिव्यक्ति है। हमारे बीच कोई परायापन नहीं, यह सोचकर उस औचित्य को स्वीकारते हैं पर कभी-कभी यह अनुचित भी हो जाता है। घर में, अकेले में पत्नी को प्यार से कुछ ऐसे सम्बोधन से पुकारा जाना या बातों में वैसा कह देना तो उसे अखरेगा नहीं पर स्वाभाववश बाजार में या कई अपरिचितों के सामने वैसी बात मुँह से निकल जाने पर स्वयं पति को भी लज्जित होना पड़ता है और पत्नी को भी। पत्नी की ओर से भी ऐसी ही भूलें हो सकती हैं। समय व स्थिति को देखे बिना पति पर हुक्म चलाना प्रायः बुरा लग जाता है। यदि ऐसी आदत ही न डाली जाय तो ऐसी स्थिति से बचा जा सकता है, जो पति-पत्नी के सम्बन्धों के बीच लकीरें खीचती हैं और यह क्रम चलता रहे तो दरारें भी उत्पन्न हो जाती हैं।

कटु भाषण और गाली-गलौज, कलह आदि से दम्पत्तियों को बचना आवश्यक होता है। यह बात सही है कि जहाँ दो बर्तन होंगे तो वे भी एक दूसरे टकराकर आवाज पैदा करेंगे तो पति-पत्नी के बीच भी वैसे प्रसंग आ सकते हैं। जहाँ एक दूसरे की भूलों को, अनुचित व्यवहार को उसे बताना जरूरी हो जाता है किन्तु उनका ढंग सदा शिष्ट और सौजन्यपूर्ण हो। घर की यह बात बाहर नहीं जाये, इसका ध्यान रखना ही चाहिए। मारपीट जैसी महामूर्खतापूर्ण बात तो होनी ही नहीं चाहिए। किसी पक्ष को दूसरे से नाराजगी है, तो उसे बोल-चाल बन्द करके, खाना छोड़कर या अन्य तरीकों से भी अभिव्यक्त किया जा सकता है।

कोई ऐसा जोड़ा हो जिसमें पति किसी बात पर आवेशग्रस्त होकर पत्नी पर हाथ उठा बैठे तो उसमें पति तो महादोषी है ही। किन्तु विवाह के बन्धन कुछ ऐसे अटूट होते हैं कि उनसे मुक्ति सम्भव नहीं हो सकती, फिर ऊपर से बच्चे-बच्ची भी आ जाते हैं। ऐसी स्थिति में पत्नी को मन मार कर साथ रहना और अपमान के कड़वे घूँट पीना पड़ता है। किन्तु पत्नी यह सोचने का प्रयास करे कि पति ऐसा क्रूर क्यों हो जाता है ? क्या उन कारणों को वह दूर कर सकती है ? यदि इन प्रश्नों का उत्तर 'हाँ' में मिलता है तो उसे उदास या जिन्दगी से बेजार होने की अपेक्षा उन कारणों को दूर करना ही चाहिए। कोई भी व्यक्ति भीतर से वैसा क्रूर नहीं होता अतः पत्नी के ये प्रयास धैर्यपूर्वक चलते रहें तो उसकी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खोयी खुशियाँ पुनः देर-सबेर मिल ही जायेंगी। यह मार्ग अपनाने की बजाय यदि उसका ढिंढोरा पीटना आरम्भ कर दें तो परिणाम प्रायः अच्छा नहीं निकलता।

यदा-कदा एक दूसरे से सन्तुष्ट दम्पत्तियों के बीच भी किसी न किसी बात को लेकर अप्रिय प्रसंग आ जाते हैं। उन्हें टालना तो ठीक रहता है पर वे क्यों उत्पन्न हुए और भविष्य में ऐसे प्रसंग न आयें, उसका कोई स्थायी हल अपने विचार, स्वभाव, व्यवहार में सुधार करके लाया जाना अच्छा रहता है। उसे यों ही टाल दिया जाय तो फिर वैसा ही प्रसंग आ सकता है। बार-बार वैसे प्रसंग आने पर सम्बन्धों में दरार भी उत्पन्न हो सकती है।

'स्त्रियाँ ममता, सेवा, त्याग, सहनशीलता और समर्पण की देवियाँ होती हैं और पुरुष कर्म, पौरुष, दृढ़ता, रूक्षता व बुद्धि प्रधान होता है। यह सामान्य वर्गीकरण स्त्री वर्ग और पुरुष वर्ग पर तो लागू होता है किन्तु यदि कोई पति अपनी पत्नी से स्त्री वर्ग में पाये जाने वाले इन सामान्य तत्वों की अपेक्षा करे या पत्नी अपने पति का वैसा ही स्वरूप समझे जो सामान्य पुरुष वर्ग का होता है, तो उनके जीवन में असन्तोष का उत्पन्न हो जाना अधिक सम्भव होता है क्योंकि सभी पुरुष एक से नहीं होते सभी स्त्रियाँ एक-सी नहीं होतीं। इसकी अपेक्षा उनका सहधर्मी जैसा भी है, उसे समझ कर उसी रूप में स्वीकार करना सन्तोष का हेतु बनता है।

पति-पत्नी के प्रेम रूपी वृक्ष की जड़ें विश्वास की उर्वर और गहरी भूमि में जिस प्रकार बढ़ती, उसी प्रकार उसका कलेवर भी बढ़ता जाता है। पति पत्नी को परस्पर विश्वासी होना चाहिये। किसी भी शंका पर, दूसरों की कही-सुनी बातों पर विश्वास करने की अपेक्षा सीधे-सीधे एक दूसरे से पूछ लेना चाहिए। पति-पत्नी दोनों ही एक दूसरे के उस विश्वास की रक्षा अवश्य करें। वकील की तरह किसी बात पर एक दूसरे से जिरह करने की अपेक्षा संयत रहना कहीं ज्यादा अच्छा होता है। ईर्ष्या दाम्पत्य रूपी वृक्ष की जड़ों के नीचे आ जाने वाली चट्टान का काम करती है। उससे बचने का सबसे बड़ा साधन विश्वास ही है। ईर्ष्या मनोमालिन्य उपजाती है और विश्वास उसे दूर करता है।

रुपये-पैसे के मामले में पति-पत्नी के बीच कोई दुराव-छिपाव रहना ठीक नहीं होता। पति किस धन्धे से किस प्रकार कितना कमाता है, यह पत्नी को ज्ञात होना चाहिए। जो पति अपनी आय और उसके स्रोत से पत्नियों को अनभिज्ञ रखते हैं वे भूल करते हैं। जो यह मानते हैं कि यह उनका मामला है। हाँ यह ठीक है कि घर की भीतरी व्यवस्था का दायित्व सामान्य रूप से पत्नी के हाथ होता है और उपार्जन आदि बाहरी कामों का सूत्र संचालन पति करता है। दोनों अपने क्षेत्र में पूरी तरह स्वतन्त्र तो रहें पर एक दूसरे को इस बात का ज्ञान होना ही चाहिए कि परिवार की आय का स्रोत क्या है और कितना है ? वह किस प्रकार खर्च होता है।

पति द्वारा अपनी आय का पूरा ब्यौरा दे देने से पत्नी के लिये तदनुरूप ही गृह संचालन करने की सुविधा उत्पन्न हो जाती है। यह बात दूसरी है कि पत्नी अपनी दूरदर्शिता से आड़े वक्त के लिये कुछ पैसे बचाकर जोड़ती रहती है। अच्छा यह रहता है कि पति-पत्नी ही नहीं, परिवार के सब सदस्य मिलकर परिवार का बजट बनाएँ, उससे एक तो यह लाभ होगा कि सभी को पता लगेगा कि हमें अपनी सोर जितने ही पाँव पसारने हैं। दूसरे उन्हें अपने महत्व का भी भान होगा और पारिवारिक साम्राज्य में भी अपनी भूमिका पूरी तरह समझ लेंगे।

जहाँ पति-पत्नी दोनों कमाते हों वहाँ ही यह बात लागू होती रहे तो अच्छा है। अनुभवियों का कहना है कि जहाँ पति भी कमाता है और पत्नी भी कमाती है वहाँ व्यय को लेकर अधिक मतभेद खड़े होते हैं। अतः सावधानी वर्तना ही ठीक रहता है। आय-व्यय का बजट सावधानी व सूझबूझ से बनाना चाहिए।

अमेरिकन मदर्स कमेटी की अध्यक्षा श्रीमती लिलियन डी. पोलिंग का अपना मत है "मैं मानती हूँ हर परिवार को अपनी आय का दसवाँ हिस्सा परोपकार व समाजसेवी कार्यों में व्यय करना चाहिये। अधिकांश दम्पत्ति यह कहेंगे कि वे इतने सम्पन्न नहीं हैं। लेकिन जब आप अपनी आय का कुछ हिस्सा इस तरह परोपकार के लिये अलग रखने लगेंगे तो आप देखेंगे कि वास्तव में आपके हाथ उतने तंग नहीं हैं जितना कि आप अब तक समझते थे।"

श्रीमती पोलिंग का यह कथन भले ही कुछ अजीब सा लगे किन्तु इसकी सच्चाई को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। मन की गरीबी/आदमी को गरीब ही बनाये रखती है। जब अपनी आय का एक निश्चित अंश ऐसे कामों के लिये निकाला जायगा तो पति-पत्नी एक अनूठे आनन्द, अनुपम आत्म-सन्तोष से आप्लावित हो उठेंगे।

ऐसी ही एक व्यावहारिक अनुभव सिद्ध राय उन्होंने महिलाओं को दी है—"वास्तव में विवाह साझेदारी है। उसमें लेना भी होता है और देना भी। सच मानिये तीन चौथाई देना पत्नी के ही हिस्से में पड़ता है। मै यह नहीं कहती कि पत्नी को पति के सही-गलत सब निर्णय चुपचाप स्वीकार कर लेने चाहिए। लेकिन झुकने में कोई नुकसान नहीं होता बल्कि झुकना एक बहुत अच्छी कसरत है। इससे शरीर लचीला बना रहता है और नैतिक और आत्मिक शक्ति बढ़ती है।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अमेरिका जैसे देश जहाँ 'विमेन लिब' जैसे आन्दोलन भी हुए हैं, की एक मातृ संस्था की अध्यक्षा और अनुभवी महिला का यह सुझाव कहाँ तक युक्ति-संगत है ! यह सब दम्पत्तियों के लिये व्यावहारिक हो यह तो कहा नहीं जा सकता फिर भी पत्नी को ही तीन चौथाई देना पड़ता है, इस सच्चाई को स्वीकारना ही पड़ता है। उनका सुझाव भी उपयोगी है यह तो मानना ही पड़ेगा।

अपने वैवाहिक जीवन पर असन्तोष और अपने जीवन सहचर की अन्यों से तुलना करना, तत्सम्बन्धी अपनी निराशा एक दूसरे के सम्मुख प्रदर्शित करना उस असन्तोष को और भी गहरा और निराशा को तीव्र बना देता है। यह अच्छा दृष्टिकोण नहीं कहा जा सकता। दुनिया में एक से एक अच्छे, सुन्दर, योग्य, सम्पन्न तथा व्यवहारकुशल स्त्री, पुरुष हैं यदि उनमें से किसी एक के साथ मेरा सम्बन्ध जुड़ा होता तो मेरा जीवन कितना सुन्दर, सुखद और सफल होता यह सोचना मनुष्य को तोड़कर रख देता है। 'मैं किसके पल्ले पड़ गयी' या मेरे गले कैसे स्त्री पड़ गयी, यह रोना दुःख अर्थ नहीं रखता। उस स्थिति उबरने का एक ही मार्ग है और वह है स्वयं सतत् प्रयत्नशीलता और आशावादी बने रहने का।

पति-पत्नी के बीच शारीरिक, मानसिक आकर्षण का बना रहना दाम्पत्य की सफलता का एक आवश्यक आधार है। आकर्षण बनाए रखने के लिये सादगी, सरलता व मितव्ययता को त्याग देना आवश्यक नहीं है। आकर्षण का मूल सौन्दर्य है। 'सौन्दर्य सभी स्त्री-पुरुषों को मिला होता है।' यह कहना जितना गलत है उतना ही सही भी है। सच बात तो यह है कि प्रत्येक व्यक्ति की शारीरिक बनावट में कहीं न कहीं, कुछ न कुछ सौन्दर्य होता ही है। सुन्दर कहे जाने वालों में कहीं न कहीं असुन्दरता दिखाई पड़ जाती है और असुन्दर माने जाने वालों में भी कहीं न कहीं सौन्दर्य होता है। पारस्परिक आकर्षण बन्धन के लिये शारीरिक सौन्दर्य का वह उजला पक्ष ही सही ढंग से दिखाया जाय तो वहीं आकर्षण जन्म ले लेता है। महत्वपूर्ण होता है प्रस्तुतिकरण का ढंग और देखने वाले का पारखीपन। पति-पत्नी यदि उस दृष्टि को उपजा सके तो वे दुनिया की निगाह में भले ही अनाकर्षक हों उनकी अपनी और एक दूसरे की निगाहों में तो आकर्षक बन ही जाते हैं और आकर्षण की उपयोगिता यहीं तक है।

शरीर की तरह मन का भी वैसा ही आकर्षण उत्पन्न किया जा सकता है। यह मानसिक आकर्षण शारीरिक आकर्षण से कई गुना महत्वपूर्ण और प्रभावी होता है। शृंगार, आभूषण, मेकअप, भड़कीले वस्त्र आदि बनावटी चमक तो उत्पन्न कर सकते हैं। किन्तु स्थायी आकर्षण, सादगी, सुरुचि, सम्पन्नता, उत्तम स्वास्थ्य व स्वच्छता में ही निवास करता है। प्रसन्नता, मधुर व्यवहार, उल्लास, विनोदप्रियता, कलाप्रियता आदि ऐसे गुण हैं जो मानसिक आकर्षण को उपजाते और स्थायी बनाते हैं।

प्रयास यह किया जाय कि पति-पत्नी जब शरीर व मन से अनाकर्षक होने की स्थिति में हों एक दूसरे के सामने पड़ने से बचें।

सफल दाम्पत्य के व्यावहारिक सत्य (४)

भावनाओं की क्रियात्मक अभिव्यक्ति और मधुर स्वप्नों को साकार करने के लिए दाम्पत्य व्यवहार की प्रमुख बातों पर पिछले लेखों में बहुत कुछ प्रकाश डाला जा चुका है। उसी क्रम में उन व्यावहारिक तथ्यों को बताया जा रहा है।

पति-पत्नी में किसी को अपनी कौटुम्बिक श्री सम्पन्नता, व्यक्तिगत सुन्दरता, योग्यता, प्रतिभा और किसी पक्ष को लेकर अभिमान नहीं करना चाहिए। पत्नी के माता-पिता अच्छे सम्पन्न हैं, बचपन में उसने उस सम्पन्नता को जी भर कर भोगा है। किन्तु उसके पति की कौटुम्बिक सम्पन्नता वैसी नहीं थी तो पत्नी को यह ध्यान रखना चाहिए कि वह अपनी बातों और व्यवहार में उसको प्रकट न करे। इससे पति का स्वाभिमान आहत होता है। जो पत्नियाँ अपने मैके की सम्पन्नता और सुसराल की विपन्नता को लेकर आलोचना, प्रशंसा करती हैं, वे इस प्रकार की भूल करके अपने सुखी गृहस्थ जीवन में आग लगाती हैं। यही बात पति द्वारा भी हो सकती है। उसी प्रकार अपनी सुन्दरता, योग्यता, शिक्षा, प्रतिभा आदि का गर्व भी किसी पक्ष को नहीं करना चाहिए। यदि ऐसा करना ही हो तो उसमें दूसरे पक्ष को भी मिलाकर व्यक्ति की नहीं दम्पत्ति की प्रशंसा करने से मनोमालिन्य उत्पन्न नहीं होता।

उसी प्रकार बाहर के व्यक्तियों के सामने पति का पत्नी से अनावश्यक सेवा लेना या उससे पत्नी की तरह नहीं नौकरानी की तरह व्यवहार करना उसे भीतर ही भीतर कचोट जाता है। पति रहे हों स्वभाव के सरल व पत्नी के हर कार्य में सहयोग देने व अनुरोध को मानने वाले पर अपनी सहेलियों और उनके मित्रों के सामने पत्नी यदि उन्हें ऐसे आदेश देती हो जैसे वे उन्हीं के वशवर्ती हैं तो पत्नी के इस व्यवहार से वे स्वयं को अपमानित ही अनुभव करेंगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह ठीक है कि पति के हर अनुरोध को पत्नी अपना दायित्व समझकर पाल लेती है या पति अपनी पत्नी के हर अनुरोध को उसी प्रकार स्वीकारते हैं। इससे एक दूसरे को यह प्रतीति होती है 'देखो वे हमें कितना मानते हैं' और अपनी इस पारस्परिक सहकारिता को वे अपने मित्रों-परिचितों पर प्रकट करके अपने मधुर दाम्पत्य की एक झलक उन्हें दिखाना चाहते हैं। यह चाहना स्वाभाविक है और बुरा भी नहीं है पर उसके लिए जो ढंग अपनाया जाता है, वह गलत होता है। इसको वार्तालाप द्वारा भी प्रकट किया जा सकता है। आदेश अनुरोध का स्वर दूसरी तरह का हो सकता है, जिसमें अपनी गुरुता और दूसरे की लघुता की ध्वनि न निकले। पत्नी को "मधु, सुरेश के लिये चाय बनाओ।" कहने की अपेक्षा यह कहा जाय—"भाई चाय बनाना तो कोई मधु से सीखे। चीनी के साथ वह और भी कुछ मिलाती है जिसका स्वाद किसी दूसरे के हाथ की बनी चाय में नहीं मिलता। सुरेश के आने की खुशी में वैसी ही और बना दो, इसके साथ-साथ हम भी एक बार और तृप्त हो लेंगे।" तो बात कुछ और ही हो जायगी।

दाम्पत्य जीवन में स्वावलम्बन और सहयोग का समन्वय आवश्यक होता है। एक दूसरे को सहयोग देना ही चाहिए पर वह अति की सीमा न लाँघ जाय और न बिल्कुल ही असहयोग किया जाय कि दूसरा पक्ष स्वयं गृहस्थी की चक्की में अकेला पिसता हुआ अनुभव करे। सन्तुलित सहयोग से पारस्परिक प्रीति बढ़ती है पर यदि घर के हर काम को अपना काम समझकर साथी के सहयोग की अपेक्षा किये बिना किया जाता रहे तो वह दूसरे की 'उपयोगिता,' आवश्यकता पर चोट करेगा। पति यदि घर से सारे काम अपने हाथ से करने लगे तो पत्नी मन में यह सोचे बिना नहीं रह सकेगी कि इन्हें मेरी जरूरत ही क्या थी। अपने-अपने क्षेत्र का काम पति-पत्नी मुख्य रूप से संभाले पर दूसरे के कामों में भी थोड़ा सहयोग देते रहें तो इससे एक दूसरे का ध्यान रखने की बात स्पष्ट होती है जो प्रीति को प्रगाढ़ बनाती है।

पति पत्नी के काम में थोड़ा हाथ बँटा दे और पत्नी पति के कामों में सहयोग दे, यह सहयोग आवश्यक ही नहीं आकर्षक भी है। चाहे यह सहयोग किसी छोटे से काम में ही मिला हो, एक-दूसरे के मन को मुदित करता है।

पति-पत्नी के क्षेत्राधिकार सामान्य रूप से एक अलिखित विधान की तरह घर और बाहर में बँट जाता है। भारतीय ही नहीं विश्व के सभी परिवारों में सामान्यतया घर की मालिक पत्नी और बाहर का कर्ता पति होता है। अत: दोनों के बीच अपने आप हो जाने वाले इस समझौते का सीमातिक्रमण किसी को नहीं करना चाहिए। पत्नी के अधिकार क्षेत्र में पति सम्मति, सुझाव और सहयोग का अधिकारी है। यह उसका अधिकार ही नहीं दायित्व भी है। इसी प्रकार बाहर के मामलों में पत्नी के भी वैसे ही अधिकार और दायित्व होते हैं। इनका सामान्य रूप से निर्वाह होता रहे तो कोई गतिरोध उत्पन्न नहीं होता पर एक दूसरे के क्षेत्र में अनावश्यक दखलन्दाजी करने पर उत्पन्न हो सकता है। इसका ध्यान रखा जाना आवश्यक है। सम्पति के मामले में योग्यता, विवेक व बुद्धि के आधार पर किसी एक को प्रमुख बनाया जा सकता है। पर वह उसे लेकर अभिमान या दूसरे पक्ष पर दबाव डाले तो सम्बन्धों में रूढ़ता आने लगती है।

जीवन के प्रति सही दृष्टि लेकर चलने का दाम्पत्य सम्बन्धों और उनकी मधुरता पर बहुत प्रभाव पड़ता है। जो व्यक्ति जीवन को मात्र फूलों की सेज मानकर चलते हैं या वैसा ही पाने की आकांक्षा सँजोये रहते हैं, वे भूलते हैं। जीवन में सुख और दुख दोनों ही आते हैं। दोनों को भोगने के लिये समान रूप से उत्साह सँजोए रखने वाले व्यक्ति ही उसका सच्चा आनन्द उठा सकते हैं। जो दम्पत्ति विवाह के पूर्व अपने भावी दाम्पत्य जीवन को मात्र सुखों की सेज मानकर उसमें प्रवृत्त हुए थे, उनकी यह मान्यता जब यथार्थ के थपेड़ों से टूटने लगती है तब प्राय: ऐसा होता है कि वे आगत दु:ख का कारण अपने जीवन साथी को मानने लगते हैं। यह एक प्रकार का दुराग्रह ही होता है।

जब कोई एक पक्ष जीवन को बोझिल, कँटीला और असह्य मानकर उसका कारण अपने साथी को समझने लगता है, तो बात-बात पर झल्लाने, डाँटने, फटकारने, और कलह करने लगता है। ऐसी स्थिति में दुख और भी असह्य हो जाता है। जिस दुख को एक दूसरे के स्नेह, सेवा, सहानुभूति और जीवनोत्साह के सहारे सह्य बनाया जा सकता था, वही अब भयंकर हो उठता है। इसलिये आरम्भ से ही जीवन का यथार्थ स्वरूप लेकर चलना ठीक रहता है। सम्भावित दु:खों के लिये की गयी यह पूर्व मानसिक तैयारी उन्हें सहने, परित्राण पाने में बहुत सहायक होती है।

अपने दु:ख में भी यथासम्भव बहादुरी से काम लेने वाले और अपने साथी पर उसका बोझ नहीं डालने वाले पति-पत्नी एक-दूसरे पर अपने दु:ख का भार डालकर उसे किनाराकसी करने की ओर उन्मुख नहीं करते। यह विवेकपूर्ण बात है। प्रकट करना भी पड़े तो वह इस रूप में हो कि उससे दूसरे पक्ष को चोट न पहुँचे। पति का अफसर उससे नाराज है। आफिस में वह उससे अच्छा व्यवहार नहीं करता। इससे पति दुखी है। किन्तु वह अफसर का कुछ कर नही सकता ऐसी स्थिति में आफिस में उत्पन्न हो चुके रोष को पत्नी से लड़-झगड़ कर उतारा जाय यह निरी मूर्खता ही है। पति बाहर से थका हारा लौटा है और श्रीमतीजी दिन भर के अपने कष्टों का कच्चा चिट्ठा उनके मत्थे मारकर उस खीझ से मुक्ति पा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेती हैं जो बच्चों के ऊधम, पड़ौसियों के व्यवहार या अन्य कारणों से उपजी है। ऐसा रोज ही होने लगे तो पति-पत्नी का पारस्परिक प्रेम रंग चाहे वह कितना ही गहरा क्यों न हो, धीरे-धीरे उतरता जायगा और एक दिन जब वह बिल्कुल ही धुल-पुँछ जायेगा तो पति पत्नी एक दूसरे की सूरत से ही चिढ़ने लगेंगे।

परस्पर मिलते समय यथासम्भव प्रसन्न और उल्लसित रहना वह टॉनिक है जो दाम्पत्य जीवन के यौवन को स्थायित्व प्रदान करता है। घटनाओं पर पति पत्नी का वश न हो पर अपने आवेगों पर अंकुश लगाने की क्षमता हो तो विकट से विकट परिस्थितियों में भी एक दूसरे के सहारे हँस सकते हैं, मुस्करा सकते हैं।

पति कितना ही समझदार और पत्नी कितनी ही सहनशील हो फिर भी यह बात वे कभी पसन्द नहीं करते कि उनका साथी किसी दूसरे स्त्री-पुरुष से उनकी तुलना करें व दूसरों की सराहना करें। पत्नी को पति का यह कहना 'देखो श्रीमती माथुर किस सुघड़ता से घर सम्हालती हैं।' और पत्नी द्वारा किसी अन्य मित्र या पुरुष की प्रशंसा करना कभी एक दूसरे को अच्छा नहीं लगेगा। यह भूल अच्छे-अच्छे दम्पत्तियों में मनोमालिन्य व शंकाएँ उपजा देती हैं।

पारस्परिक एकनिष्ठा पति-पत्नी के लिये बहुत आवश्यक है। विवाह के पहले का जीवन कैसा ही क्यों न रहा हो, बाद का जीवन एकनिष्ठ होकर जीना बहुत आवश्यक है। पति भूलकर भी विवाह के पूर्व किसी अन्य स्त्री से रहे रागात्मक सम्बन्धों का जिक्र पत्नी से न करे और न ही पत्नी को इसलिये विवश करे। अति भावुकता के शिकार होकर जो पति-पत्नी अपने विश्वास या निष्ठा को प्रदर्शित करने के उद्देश्य से अपने विवाह के पूर्व की ऐसी बातें एक दूसरे से कह देते हैं। यह भावुकता पिच्चाणवे प्रतिशत दम्पत्तियों के बीच सन्देह का अंकुर उपजा देती है, जो जरा सी हवा पाकर भभक उठने वाली राख में दबी चिन्गारी की तरह थोड़ा सा सहारा पाते ही पनपकर उनके विश्वास को तोड़ देते हैं।

पुत्री के लिए 'दुहिता' शब्द का प्रयोग करने के पीछे यही अर्थ है कि उसके दूर रहने में हित है। पति-पत्नी बचपन से ही एक दूसरे से परिचित होते हैं, उनके जीवन के भले-बुरे प्रसंगों से विज्ञ होते हैं तो उनके भावी जीवन में झंझावात आने की स्थितियाँ अधिक आती हैं। जीवन के बुरे प्रसंग समय पाकर वर्तमान में प्रेत की तरह आ धमकते हैं और उन्हें एक दूसरे से विरक्त बना देते हैं और किसी दृष्टि से विवाह पूर्व गुजरी सच्चाइयों को साथी पर प्रकट करना ठीक हो सकता है या नहीं यह हमारा विषय नहीं। व्यावहारिकता के क्षेत्र में तो वर्जित ही है। जो दम्पत्ति यह नहीं चाहते कि उनके दाम्पत्य जीवन में कोई झंझावात आये और विश्वास के वृक्ष पर जमे उनके नीड़ को ही बिखेर कर रख दे। उन्हें अपने अतीत के सम्बन्धों की गठरी को बँधी ही रहने देना चाहिए, साथी से कुछ भी छिपा नहीं रखने का यह भावुकता भरा जुआ उन्हें नहीं खेलना चाहिए।

विवाह के पूर्व देखे गये स्वप्न यदि मात्र कल्पना की उड़ान नहीं हैं, तो उन्हें साकार होना ही चाहिए। उन सपनों को कैसे सत्य का जामा पहनाया जा सकता है उसके लिये भावनाओं और व्यावहारिकता के दोनों पाँव को स्वस्थ व सबल बनाकर अभीष्ट लक्ष्य की ओर एक-एक डग भरते हुए बढ़ना पड़ता है। कभी गिरते भी हैं तो फिर उठ खड़े होने वाली बात को भुला नहीं देना चाहिए। यों प्रत्येक व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक रचना में भेद होता ही है फिर भी सामान्य अवयव, कलेवर, व मानस का एक सामान्य स्वरूप अवश्य होता है। ऊपर वर्णित व्यावहारिक सत्य भी सामान्य रूप से सभी दम्पत्तियों के साथ लागू होते हुए भी किन्हीं को ये निरर्थक भी लग सकते हैं। इससे इनकी उपयोगिता कम नहीं हो जाती।

दाम्पत्य जीवन की बगिया जब महकती है, तो उसके सौरभ से परिवार, समाज, राष्ट्र व विश्व भी पुलकित, प्रफुल्लित होता है। अत: दाम्पत्य की मधुरता बनी रहे, वह सफल व सार्थक हो इसमें पति-पत्नी का अपना ही सुख-दु:ख नहीं है, सारे समाज का जुड़ा है। अत: यह पति-पत्नी की कामना ही नहीं दायित्व भी है। आज के युग में स्थिति यहाँ तक आ पहुँची है कि कुछ लोग विवाह संस्था को ही अनावश्यक मानने लगे हैं। ऐसी स्थिति में, इस बुद्धिवाद के युग में दाम्पत्य व्यवहार का जानना और भी आवश्यक हो गया है। उपरोक्त तथ्य उस प्रयोजन को बहुत कुछ पूरा कर सकते हैं।

सुखी दाम्पत्य जीवन का आधार

जरा-जरा-सी बात में पति-पत्नी झगड़ पड़ते थे। दोनों में किसी को कोई बात सहन न होती थी। पत्नी यह अनुभव कर रही थी कि दिन-प्रतिदिन उसके पति के प्यार में न्यूनता आती जा रही है। उसने पड़ौस की औरतों से भी इस बात की चर्चा चलाई। जितने मुँह उतनी बातें, सबने अपने-अपने ढंग से सुझाव प्रस्तुत किये।

रोज-रोज के झगड़े से तंग आकर पत्नी ओझा के पास पहुँची। उसने कहा 'महाराज ! मैं बहुत उम्मीद लेकर आपके पास आई हूँ, यदि आप मेरे कष्टों को दूर करने के लिए कुछ भी प्रयत्न न करेंगे तो मैं आत्महत्या कर लूँगी। मैं अपने पति से बहुत तंग आ गई हूँ। एक दिन वह था जब उन्हें मेरी समीपता में ही सदैव सुख और आनन्द का अनुभव होता था। पर आज स्थिति बिल्कुल विपरीत है। मेरी कोई बात नहीं सुनता जब-तब हाथ भी छोड़ बैठता है।'

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ओझा ने धूनी सुलगाई। आग जल उठी। वह धुएँ की ओर फूँक मारता गया और कुछ मंत्र पढ़ता गया। फिर बोला 'तेरे पति को बस में करना कोई आसान कार्य नहीं है। उस पर जो भूत सवार है, उसके लिए साधारण गण्डे, ताबीज से तो कोई कार्य चल न सकेगा। यदि तू सचमुच कुछ लाभ चाहती है तो मुझे सिंह के तीन बाल लाकर देने होंगे। उन पर मंत्र पढ़ा जायेगा और फिर यही ताबीज में भरकर तुझे दिये जायेंगे।'

'ठीक है महराज ! एक दो शिकारियों से सम्पर्क करूँगी। उनके पास तो बाल क्या सिंह का पूरा चमड़ा ही मिल जायेगा।'

'नहीं ! नहीं !! किसी मरे सिंह के बाल नहीं चाहिये वरन् जीवित सिंह की गर्दन के बालों की आवश्यकता पड़ेगी। वह सिंह जितना जोशीला होगा उतनी ही जल्दी तेरे पति की आदतों पर काबू पाया जा सकेगा।'

वह महिला निराश होकर अपने घर चली गई। सोचती रही कि सिंह के बाल कहाँ मिल सकते हैं ? उसे तीन-चार दिन पुरानी एक बात याद आ गई कि गाँव के कुछ लोग सिंह के आने और भेड़-बकरी ले जाने की शिकायत कर रहे थे।

उसने पता लगाया, कितनी ही घटनाएँ वह सिंह कर चुका था। लोगों को अपना जीवन बचाना बड़ा कठिन हो रहा था। कितने ही व्यक्ति अपने छोटे बच्चों को दूसरी जगह रिश्तेदारियों में भेजने की बात सोच रहे थे। महिला ने गाँव के जबान व्यक्तियों को उकसाया। दिलेरों के हौंसले बढ़ाये, कुछ व्यक्ति लाठियाँ ले-लेकर जंगल के उस रास्ते पर पहुँचे जिधर से प्राय: सिंह आया करता था। पर सिंह की दहाड़ सुनकर मुठभेड़ करने की हिम्मत किसी की न पड़ी, लोग उल्टे पाँव जान बचाकर घर की ओर भागे।

महिला ने बहुत तरकीबें सोचीं आखिर एक दिन वह अपना बकरा लेकर गाँव से बाहर गई और जिधर से सिंह आता था उधर छोड़ दिया। वह थोड़ी दूर पर खड़ी हो गई। सिंह आया और जबरन उसको घसीटता हुआ ले गया। इस प्रकार सिंह को उस रास्ते पर कई दिन तक बकरे का शिकार मिलता रहा। वह बड़ा खुश था। अब तो वह उस महिला को भी पहचानने लगा था। वह बकरे के पास खड़ी रहती फिर भी सिंह उस महिला से कुछ भी न कहता।

धीरे-धीरे महिला ने उस सिंह को अपने वश में करना शुरू कर दिया। वह बड़े प्यार से उसे पुचकारने लगी। कभी-कभी उस पर हाथ भी फिरा देती थी। वह सिंह उस महिला में अपनत्व देख रहा था। जब गाँव के अन्य लोग उस सिंह को मारकर भागना चाहते थे, तब वह महिला उसके लिए नित्य एक बकरा भेंट कर रही थी। महिला की इस उदारता से सिंह मन ही मन प्रसन्न था। कभी-कभी उसके चरणों को अपनी जीभ से चाटकर अपनी कृतज्ञता प्रकट कर देता था।

एक दिन सिंह बकरा खाने में तल्लीन था। उस महिला ने सिंह को पुचकारा, प्यार से हाथ फिराया और एक-एक करके गर्दन के तीन बाल उखाड़ लिये। सिंह टस से मस न हुआ, वह अपना काम करके घर चली आई।

दूसरे दिन उसने ओझा के पास पहुँचकर वह तीनों बाल देते हुये ताबीज बनाने के लिए निवेदन किया।

ओझा आश्चर्य से चकित रह गया कि यह महिला जोशीले सिंह के बाल उखाड़ कर कैसे ले आई। जब उसने सारी बात कह-सुनाई, तब तो वह महिला की सूझ-बूझ तथा बहादुरी की प्रशंसा किये बिना न रह सका। उसने कहा 'देवी ! तुमने खिला-पिलाकर उस खूँखार सिंह को भी अपने कब्जे में कर लिया, क्या इतने ही प्यार से नित्य अपना स्नेह अपने पति के साथ यह व्यवहार करके और मिलन से उसे अपना नहीं बनाया जा सकता ? पति तुमसे मधुर व्यवहार की ही तो आशा करता है ? इसमें क्या बुराई है, दिन भर जो आदमी काम करके आता है। वह कितना थका होता है ? उस समय उसकी इच्छा होती है कि पत्नी मीठी-मीठी बातों से उसकी थकान को दूर कर नई स्फूर्ति उत्पन्न कर दे और तुम अपने पूर्ण व्यवहार से उसे अपना बना सकती हो।

तुम उनकी बात को न सुनकर उपेक्षा करके झगड़ा पैदा करती हो। यदि तू ही उसे प्रेम प्रदान करे तो क्या वह तेरा ध्यान न रखे। तू घर जा। प्रेम से जब हिंसक सिंह को अपना बना सकती है, तो क्या तेरा पति उस सिंह से भी अधिक क्रूर है, जो गाँव वालों के कितने ही जानवर साफ कर गया है।

और वह महिला बिना ताबीज के ही घर लौट गई।

दाम्पत्य जीवन में आनन्द की सृष्टि

परिस्थितियाँ और जीवनसंघर्ष वैसे ही सामान्य आदमी का चैन छीन लेती हैं। बाहर के अनुभव, कष्ट, कठिनाइयाँ और अवसादपूर्ण प्रतिक्रियायें लेकर आदमी घर लौटता है तो यह आशा हर किसी को होती है कि उन यातनाओं से कम से कम यहाँ तो छुटकारा मिल जाय। परन्तु स्थिति इसके विपरीत ही दिखायी देती है। घर का वातावरण बाहर ही अपेक्षा और भी अधिक बोझिल तथा अवसाद पूर्ण दिखायी देता है।

हमें उन कारणों को तलाशना चाहिए, जिनकी वजह से हमारा गृहस्थ जीवन नर्क की यातनाओं से भरा होता है। अधिकांश लोगों को यह शिकायत रहती है कि उनका दाम्पत्य जीवन सुखमय और मधुर होने की अपेक्षा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कष्टपूर्ण और कटु ही है। चाहे कोई कहे या न कहे घर से निकलते समय और घर में भी पति-पत्नी के चेहरे पर छाया रहने वाला नैराश्य और उद्वेग इस तथ्य को उजागर कर ही देता है।

व्यक्ति की आधी से अधिक परेशानियाँ असन्तुष्ट दाम्पत्य और गृहस्थ जीवन में परस्पर सम्बन्धों के कारण ही जन्म लेती हैं। विचारपूर्वक उन कारणों को ढूँढ़ा और निकाला जाय तो हर कोई सुखी और सन्तुष्ट रह सकता है। बाहर की लाख प्रतिकूल परिस्थितियाँ और विपत्तियाँ भी उसके आनन्द-उल्लास को छीन नहीं सकतीं। क्योंकि उसका अपना जीवन और अपने अति आत्मीय सम्बन्ध अमृत आनन्द की वर्षा कर रहे होते हैं। इसके विपरीत किसी को बाहर कितना ही सुख-सन्तोष क्यों न मिल रहा हो, निरानन्द दाम्पत्य गार्हस्थ्य जीवन उसे नीरस ही बना देगा। जैसे दाँतों में लगा हुआ नमक का कण मिष्ठान्न को भी वे स्वाद बना देता है।

दाम्पत्य-जीवन को इसीलिए योग साधना के रूप में निरूपित किया गया है। हम अपने जीवन में इस सर्वाधिक सहज साधना को पूरा कर लें तो आधी से अधिक चिन्तायें और परेशानियों को समाधान करने में सफल हो सकते हैं। शेष समस्यायें भी आसानी से सुलझायी जा सकेंगी।

महात्मा गाँधी ने अपनी सत्य के प्रयोग-आत्मकथा पुस्तक में उन सभी विशेषताओं को सन्निहित किया है। जिनका उन्होंने अनुभव किया। दाम्पत्य जीवन में उनके अनुभवों का निचोड़ है—पति-पत्नी का एक-दूसरे के प्रति स्वस्थ और सही दृष्टिकोण, इस सूत्र को भली भाँति समझ लिया जाय और व्यवहृत किया जाय तो—गृहस्थ योग को पूर्णतया चरितार्थ और फलित किया जा सकता है।

अपने प्रारम्भिक जीवन का उल्लेख करते हुए महात्मा गाँधी ने लिखा है—"मैं जितना प्रेमी पति था उतना ही क्रूर भी था। मैंने अपनी पत्नी को कई कष्ट दिये। उस हिंसा के लिए मैं अपने आपको कभी क्षमा नहीं कर सकता। भारत की स्त्री ही ऐसे दुःखों को सहन कर सकती है। इसीलिए मैं स्त्री को सहनशीलता की मूर्ति मानता हूँ।"

किसी न किसी रूप में पत्नी के प्रति इस प्रकार का व्यवहार या ऐसी संभावनाओं वाला दृष्टिकोण वे पति अक्सर अपनाते हैं, जिनके कलहपूर्ण दात्पत्य जीवन में पत्नी का कोई दोष नहीं होता। इस दृष्टिकोण के जन्म का कारण पति के मन में पलने वाला वह अहंकार है जिसके अनुसार वह अपनी पत्नी को स्वभावतः दूसरों के आश्रित समझता है। यह अहंकार एकदम झूठे आधार पर जन्म लेता है। अब तो स्त्रियाँ भी जीविका के क्षेत्र में पुरुषों के समान भाग लेकर यह सिद्ध कर रही हैं कि कमाने, उपार्जन करने की शक्ति उनमें भी है।

जो घर का कामकाज ही करने में लगी रहती हैं उनके बारे में भी यह नहीं कहा जा सकता कि वे उपार्जन में अक्षम हैं। वस्तुतः घर की अन्दरूनी जिम्मेदारियाँ सम्हालने में उनका समय और श्रम लग रहा है, जिनके लिये एक दो नौकर भी अपर्याप्त है। यदि पत्नी का श्रम इस कार्य में लग रहा है तो उसे पराश्रित कैसे कहना कहाँ तक उचित है।

पैसे कमाने और गृह-व्यवस्था में अन्तिम निर्णय देने वाला होने के कारण पुरुष का स्वयं का वैशिष्ट्य बोध भी पत्नी के प्रति गिरे हुए स्तर का दृष्टिकोण अपनाने के लिए बाध्य करता है। स्वभाव से ही विनीता-वत्सला नारी को अपने इस वैशिष्ट्य बोध के कारण वह दासी समझने लगता है। यह भी सर्वथा अवांछनीय है। सन्देह और अविश्वास के राक्षसों को आमन्त्रित करने वाला यह एक बहुत बड़ा कारण है।

बहुत बार अहंकार सात्विकता और आदर्शवाद का रूप धारण कर भी दाम्पत्य जीवन में घुस आता है। इस अवस्था में आदर्शवादी पति स्वयं को पत्नी का शिक्षक समझने लगते हैं। महात्मा गाँधी ने एक ऐसी ही घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है—'डरबन और जोहान्स-वर्ग में मेरे साथ कई मित्र और बहुत बार मेरे कारकुन भी रहते थे। मुझे याद नहीं आता कि कभी उनके विषय में मेरे मन में कोई भेदभाव पैदा हुआ हो। मैं उन्हें बिल्कुल घर के जैसा समझता था।'

'मेरा एक क्लर्क ईसाई था। उसके माँ-बाप पंचम जाति के थे। कमरों में पेशाब के लिए अलग बर्तन रखे जाते। उन्हें साफ करने का काम हम दोनों ही करते और बर्तन तो कस्तूरबा ही उठाकर साफ कर देती, लेकिन इन भाई का बर्तन उठाना उसे असह्य मालूम हुआ। इसलिए हम दोनों में खूब विवाद हुआ। यदि मैं उठाता हूँ तो उसे अच्छा नहीं लगता और खुद उठाना उसके लिए कठिन था। फिर भी आँखों से मोती की बूँदें टपकाती हुई, मुझे उलाहना देती सीढ़ियों से बर्तन लेकर उतर रही थीं।'

'मुझे यह सहन नहीं हुआ। मैं स्वयं को उसका शिक्षक मानता था। इसलिए महज बर्तन उठाकर ले जाना मुझे अच्छा नहीं लगा। मैं चाहता था कि वह जो भी काम करे, प्रसन्नतापूर्वक करे। इसके लिए मैंने उसे डाँटा-डपटा, वह भी कुछ बोली और मैं ईश्वर को भूल गया। मैंने कहा—'देखो यह बखेड़ा मेरे यहाँ नहीं चलेगा।'

उसे यह बात तीर की तरह लगी। मरे हुए दिल से तो संभालो अपना घर। यह मैं चली।

उस समय मैं ईश्वर को भूल गया। मैंने उसका हाथ पकड़ा और सीढ़ी के सामने उस दीन अबला को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खींचकर ले आया। दरवाजा आधा खोला था कि, आँखों में गंगा-यमुना की धार बहाती कस्तूरबा बोली—"तुम्हें तो शर्म है नहीं पर मुझे है। जरा तो लजाओ मैं बाहर निकल कर जाऊँ कहाँ।"

"यह सुनकर मैं मन ही मन शरमा गया और आज भी जब इस प्रकार की घटनायें याद आती हैं, तो मुझे बड़ा पश्चात्ताप होता है। हर बार उसकी सहनशीलता ने ही विजय प्राप्त की।"

मैं पति हूँ इस कारण पत्नी को मेरी बात माननी ही चाहिए—यह रोग सभी स्तर के लोगों में फैला हुआ है। विचारशील भी और सामान्य व्यक्ति भी अपना अधिकार जताकर, पत्नी का धर्म बताकर मनमानी इच्छा आदेश देते रहते हैं। पत्नी भले ही उस बात को अपनी सहजशीलता के कारण स्वीकार कर ले परन्तु वह व्यथा कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में फूटेगी तो सही। कोई भी बोझ अधिक समय तक ढो या सहा नहीं जा सकता। गृहस्थ में मतभेद, क्लेश, घुटन और अलगाव का वातावरण पैदा करने में यह धारणा कारण बनती है।

जब यह समझा और विश्वास कर लिया जाता है कि पत्नी पति की दासी नहीं, सहधर्मिणी है तो दाम्पत्य जीवन में एक नया आयाम आ प्रस्तुत होता है। दृष्टिकोण परिवर्तन से रवैया और व्यवहार भी बदलना चाहिए—उस आयाम को अनुकूल स्वरूप तभी तो मिलेगा। कोई किसी से छोटा नहीं, विवशता से आश्रित भी नहीं और अधिकारिक रूप से आज्ञानुवर्ती भी नहीं।

पत्नी को सहधर्मिणी, सहयोगी, साथी, सहचर मानना दाम्पत्य सुख का प्रथम और प्रमुख सूत्र है। दोनों एक दूसरे के सुख-दुख में समान भागीदार हैं। प्रेम-कर्तव्य के नाते एक दूसरे का मार्गदर्शन, हित चिन्तन तो किया ही जाय परन्तु अधिकार जताकर किसी को अपना इच्छानुवर्ती न बनाया जाय।

ऐसा दृष्टिकोण अपना लेने के बाद तो दूसरा पक्ष भी अपने सहचर का दृष्टिकोण और विचार समझने, प्रेरणा ग्रहण करने का प्रयास करेगा। इस प्रयोग में यह भय नहीं करना चाहिए कि प्रतिपक्ष स्वच्छन्द या निरंकुश बन जायगा। बल्कि स्वच्छन्द और निरंकुश होने का भय तो उस स्थिति में अधिक रहता है, जबकि किसी पर अपना अधिकार सिद्ध किया जाता है।

पश्चिम का नारी स्वातन्त्र्य आन्दोलन इसी प्रतिक्रिया का परिणाम है। यह बात और है कि वहाँ के पुरुष वर्ग ने नारी को अन्य प्रकार से भी उत्पीड़ित किया हो। परन्तु स्त्री ज्यों-ज्यों जागरूक होती जाती है, त्यों-त्यों पुरुष के अधिकार, अहंकार की प्रतिक्रिया उसे विद्रोहिणी बनाती चलती है और विद्रोह इस सीमा तक बढ़ जाता है कि वह पति की उचित बात को भी स्वीकार करना तो दूर, सुनना भी पसन्द नहीं करती।

सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करने के बाद गाँधीजी इस विचार परिपक्वता को अनुभव सिद्ध कर चुके थे। तब उन्होंने अपनी पत्नी से सहयोग देने के लिए इसलिए नहीं कहा कि वह कहीं पुरानी आदत की ही अधिकार बोध—की ही पुनरावृत्ति न समझे। १९१३-१४ में जब वे दक्षिण अफ्रीका में थे, तब वहाँ के एक न्यायालय ने निर्णय दिया कि इस देश के कानून की दृष्टि में वही विवाह वैध है जो ईसाई धर्म के अनुसार किया गया हो एवं अन्य विधि-विधान से किये गये विवाह विवाह न समझे जायँ। इसके अनुसार दक्षिण अफ्रीका में रह रहीं कई भारतीय स्त्रियों का धर्मपत्नी का दर्जा न रहा।

महात्मा गाँधी से प्रभावित भारतीय स्त्रियों ने सत्याग्रह का निश्चय किया और उन्होंने टॉल्सटॉय आश्रम की अपनी मानस बहनों को सत्याग्रह का निमन्त्रण दिया। फिनिक्स में भी उन्होंने इस बात की चर्चा की परन्तु कस्तूरबा से इस विषय में कुछ नहीं कहा। कारण बताते हुए उन्होंने लिखा है—"ऐसे समय में हर काम अपने आप किये जायें तो ही उनका महत्व है। मैं नहीं चाहता था कि वह मेरे कहने मात्र से इस सिद्धान्त और काम को करे।"

इस अवसर पर कस्तूरबा ने यह प्रश्न भी उठाया था कि गाँधीजी अन्य बहनों की तरह उनसे सत्याग्रह में भाग लेने के लिए क्यों नहीं कहते। गाँधीजी ने तब यही कहा—"यह काम तुम अपनी मर्जी से करो तो बड़ी खुशी की बात है। जहाँ तक मेरे कहने का सवाल है मैंने इसलिए नहीं कहा कि अगर तुम उसे मेरी आज्ञा समझ कर जेल चली भी जाओ, तो उससे फायदे की अपेक्षा नुक्सान होने की गुंजायश ही ज्यादा है। सोचो अगर अदालत में खड़े होते समय तुम्हारे हाथ-पाँव काँपने लगें तो मेरी क्या दशा होगी।"

इस पर कस्तूरबा ने स्वेच्छा से कहा—"यदि मैं हिम्मत हारकर घर जाऊँ, तो मुझे स्वीकार मत करना।"

अधिकार-भावना को पूरी तरह मन से निकाल देने पर जीवन साथी के चरित्र में इस प्रकार की दृढ़ता और स्थायित्व आता है। यदि हमारे विचार सत्य, न्याय और सेवा भाव से ओत-प्रोत, प्रखर हों तो निरंकुश उच्छृंखलता की राई-रत्ती भी गुंजायश नहीं रहती है।

कितना अच्छा हो प्रत्येक व्यक्ति अपने दाम्पत्य जीवन में इतना स्वस्थ दृष्टिकोण समाहित कर सके। विचारशील और गृहस्थ में आनन्द-उल्लास का वातावरण बनाने के लिये आकुल लोगों को तो सर्वप्रथम यही मन्त्र साधना चाहिए।

कण कण जोरे मन जुरै

उपयोगी वस्तुओं का एक-एक टुकड़ा जोड़कर रखने से कुछ दिन में उसकी इतनी बड़ी मात्रा इकट्ठी हो जाती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है, जिससे कोई बड़ी आय पैदा की जा सकती है या किसी कार-रोजगार के लिये सामग्री बनाई जा सकती है। छोटी-छोटी वस्तुयें बेकार समझ कर फेंक दी जाती हैं, पर यदि उन्हें हिफाजत से रखा जाय तो उन्हीं वस्तुओं से बड़ा लाभ निकल सकता है।

गृहस्थ जीवन में यह प्रयोग बड़े लाभ की वस्तु है। इससे बड़े आयोजनों में काम आने योग्य पूँजी इकट्ठी की जा सकती है या ऐसी वस्तुयें इकट्ठी की जा सकती हैं जिनसे 'फुरसत की आजीविका' चलाई जा सकती है। कण-कण का जोड़ कर एक मन हो जाता है। एक-एक सींक जोड़कर बुहारी बन जाती है। जिन्हें यह विद्या आ जाय वे धन के लिये परेशान नहीं हो सकते और उनकी हर टूटी-फूटी वस्तु का भी उपयोग हो जाता है।

घर में एक ऐसी सन्दूक रखिये, जिसके ऊपर दस नये पैसे का सिक्का डालने भर की जगह हो। उसमें मजबूत ताला लगा कर, चाहें तो उसे सील भी करके रख दें और प्रतिदिन अपनी आय से १० नये पैसे का एक सिक्का निकाल कर उसमें डाल दिया करें। १० नये पैसे का कोई बड़ा महत्व नहीं है, इससे आपके दैनिक खर्चे में कोई परेशानी नहीं आ सकती।

एक महीने में इस सन्दूक में ३० × १० = ३०० पैसे अर्थात् ३ रु. हो जाते हैं, एक वर्ष में यह रकम ३× १२ = ३६ हो जाती है। मान लीजिये आपकी आयु अभी १५ वर्ष है। तीस वर्ष की आयु में आपके परिवार का भार आप पर आ जाता है, उस समय आपको किसी रोजगार के लिये पूँजी की जरूरत पड़ती है तो आपको औरों के आगे हाथ पसारने की जरूरत न पड़ेगी। १५ वर्ष की जमा बचत ३६ × १५ = ५४० रु. होगी जो एक साधारण व्यवसाय के लिये पर्याप्त रकम होगी। यदि इस बचत को हर महीने सरकारी बचत योजना के अनुसार जमा कराया जाता रहता तो यही रकम डयौढ़ी-दूनी हो जाती।

बेटी की शादी या बच्चे की पढ़ाई, किसी बीमारी या कोई आवश्यक वस्तु खरीदने में भी इस रकम का सदुपयोग हो सकता है। अचानक इतनी रकम की आवश्यकता पड़ जाती है और आपके पास बचत न होती तो आप औरों के कर्जदार हो गये होते। पर आपकी कण-कण जोड़ने की आदत ने आपका कितना हित साधा, कितना बड़ा काम निकाला।

धन जोड़ने के सम्बन्ध में ही यह बात लागू नहीं होती, आप हर क्षेत्र में इससे लाभ उठा सकते हैं।

साबरमती आश्रम में बापूजी के निर्देशानुसार दातौन का ऊपर का कुचला हुआ भाग तो काट कर फेंक दिया जाता था और नीचे के भाग को धोकर रख लिया जाता था। एक महीने में यह लकड़ियाँ इतनी हो जाती थीं जितने से एक दिन का आग जलाने का काम लिया जाता था। आप चाहें तो एक-एक लकड़ी का टुकड़ा इकट्ठा कर अपनी धर्मपत्नी को चूल्हा जलाने की सुविधा बढ़ा सकते हैं।

आपके घर कोई पत्रिका आती है या कोई अखबार आता है। उसे पढ़कर यों ही न फेंक दिया करें। कृपया उसे किसी अलमारी में सुरक्षित रख दिया करें। एक महीने में जितने कागज इकट्ठे हो जायँ, उन्हें एक दिन बैठकर छोटे-बड़े लिफाफे बनाकर अपने पंसारी को बेंच दिया करें, इससे उन अखबारों की कीमत भी वूसल हो जाती है और इतने दिन के संचय का कुछ न कुछ लाभ भी मिल जाता है।

एक दरी खरीदने में दस रुपये लगते हैं। घर की आय इतनी नहीं होती कि सबके लिये दरी की व्यवस्था हो सके। आपकी धोतियाँ पुरानी होकर फट जाती हैं, इन्हें फेंकें नहीं, धोबी के धुलाकर रखते चलें। दो-चार धोतियाँ इकट्ठी हो जायँ तो उन सबको मिलाकर बच्चों के बिछाने लायक 'दसौने' तैयार किये जा सकते हैं और एक दरी की कीमत १० रु. बचाई जा सकती है।

घर में शीशे की बोतलें, बल्ब आदि टूटते रहते हैं। बहुत-सा लोहे का समान रद्दी हो जाता है। उसे फेंककर दूसरों की मुसीबत बढ़ाने के बजाय आप किसी सुरक्षित स्थान पर रखते रहिये और जब उसकी मात्रा ४-५ सेर हो जाय तो किसी रद्दी सामान खरीदने वाले को बेचकर पैसे वसूल कर सकते हैं। गाँवों के किसान रस्सियों के टुकड़े इकट्ठे करते रहते हैं। कुछ दिन में फेरी वाले आकर उसे खरीद ले जाते हैं। यह बेकार रस्सियाँ कागज बनाने के काम आ जाती हैं। बाजार में इनकी कीमत २० रु. से लेकर ३० रु. मन तक की होती है। गाँव के चतुर व्यक्ति फुरसत के समय औरों की रस्सियाँ खरीद कर अच्छी कमाई कर लेते हैं।

दरवाजे के सामने लोग नीम के पेड़ रखते हैं। उनकी निबौलियाँ गिरकर यों ही बर्बाद हो जाती हैं। इन्हें इकट्ठा कर घूरे में डालकर खाद बनाई जा सकती है या उन निबौलियों को इकट्ठा कर उनसे तेल निकाला जा सकता है। मच्छरों से बचने और त्वचा की बीमारियों में यह तेल बड़ा लाभदायक सिद्ध होता है। इससे दवा के पैसे बचते हैं।

आपके घर में आटे को छानकर रोटियाँ बनती हैं। चोकर निकाल कर बाहर फेंक दिया जाता है। अब इसे सुरक्षित रखा करिये और हर पन्द्रहवें दिन उसे पानी में घोलकर छान लिया कीजिये। चोकर में जो आटा होगा, वह पानी में घुल जायगा। इसमें गुड़ या चीनी मिलाकर आग पर चढ़ा दीजिये। आपके परिवार के लिये एक समय का स्वादिष्ट आहार निकल आयेगा। महीने में दो दिन भी इस तरह करें तो प्रति माह ५ या १० रुपये के अन्न की बचत कर सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घर में पत्तेदार सब्जियाँ आती हैं, तो उनके पत्ते तोड़ कर फेंक दिये जाते हैं। मूली, शलजम, फूलगोभी आदि के पत्तों में विटामिन की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। सब्जी के साथ इन पत्तों को भी काटकर पका लिया करें, जिससे कम पैसे की सब्जी से काम चल जाता है और उससे शरीर को भी लाभ मिलता है।

घर के आस-पास कुछ न कुछ बेकार जगह प्राय: सब घरों में होती है। उसे गोड़कर छोटी-छोटी क्यारियाँ बना लेनी चाहिये। बरसात के दिनों में उन स्थानों में फूलों तथा सब्जियों के बीज डाल देने चाहिये। यह कार्य घर के बच्चे बड़ी रुचिपूर्वक करते हैं। पौधों की देख-रेख, नराई, गोड़ाई तथा पानी देने का काम उन्हें ही सौंप देना चाहिये। अच्छी तरह देखभाल की जाय तो इस तरह ४ महीने तक सब्जी प्राप्त की जा सकती है। फूल बारहमासी भी हो सकते हैं। उनसे पूजन का भी काम हो सकता है और घर के आस-पास का वातावरण भी सुन्दर और खुशबूदार होता है।

'तुलसी के अमृतोपम गुण' पुस्तक उठाइये। आप देखेंगे कि उसमें बहुत ही कम खर्च में बन जाने वाली उपयोगी औषधियाँ दी हुई हैं। इन औषधियों को बनाकर छोटी-छोटी शीशियों में रखकर उनमें नाम लिखकर रख लीजिये और कम पैसे में लोगों को दिया कीजिये। इससे लोगों की भलाई भी होगी और आपके समय का आर्थिक उपयोग भी हो जायेगा।

जगह हो तो तुलसी के पौधे अपने घर के आस-पास ही बड़ी मात्रा में उगाये जा सकते हैं। जगह न हो तो उन्हें गमलों में भी लगाया जा सकता है। तुलसी के पौधों की तरह नीबू, पपीते, आम, जामुन आदि के बाग भी लगाये जा सकते हैं।

बबूल की छाल या बादाम के छिलके जलाकर उससे अच्छा दन्त-मंजन बनाकर रखा जा सकता है।

कुछ पढ़े-लिखे लोग स्कूल या नौकरियों से लौटकर घर में साबुन बनाने, रेडियो असेम्बुल करने, घड़ी सुधारने आदि की कला भी सीख कर उसका लाभ उठा सकते हैं।

आपके यह छोटे-छोटे साधन परिवार के प्रत्येक व्यक्तियों की रुचि में सम्मिलित हो जायँ, तो उससे आर्थिक जीवन की अनेक कठिनाइयाँ हल हो सकती हैं। ऐसा करना कुछ बुरा नहीं होता। उससे समय की बचत का उपयोग भी हो जाता है, तो बेकारी की समस्या का हल भी निकल आता है।

छोटी-छोटी वस्तुओं का संग्रह और उनसे लाभ उठाना एक अच्छी आदत है। इससे मनुष्य की रचनात्मक बुद्धि का विकास होता है और धन की परेशानी दूर होती है। छोटी-छोटी बातें एक बड़ी व्यवस्था का निर्माण करती हैं, छोटी-छोटी आय से एक बड़ी आय बन जाती है और उससे बड़े-बड़े काम तक सध जाते हैं।

गृहस्थ योगी

गृहस्थ जिसने धर्मपरायण होकर काम, क्रोध, लोभ और मोह को वश कर लिया है, सच्चा योगी है। गेरुआ वस्त्र धारण करने वाला लोक में मान, बड़ाई तथा मोह रखने वाला पुरुष सच्चा योगी नहीं कहा जाता। क्योंकि गृहस्थ अपने समस्त व्यवहारों को निरन्तर करता रहता है, यदि उसका चित्त क्षीण वासना वाला है, तो वह योगी ही है। संन्यासी का चित्त यदि समाधिस्थान में चंचल है, तो वह चंचलता ब्रह्म में सावधान उन्मन्त के नृत्य के तुल्य है। यदि कोई संन्यासी अपने शिष्यों तथा शिष्याओं से सेवा कराते हैं, तो धर्मिष्ठ गृहस्थ को अपने पुत्रों तथा पुत्र वधुओं से सेवा कराने में क्या हर्ज है ? गृहस्थाश्रमी कर्मों की फलासक्ति का त्याग कर समय विभाग द्वारा अर्थ, धर्म, काम का अनुष्ठान करते हुए ब्रह्मपरायण होकर मोक्ष की प्राप्ति कर सकते हैं, तभी तो गृहस्थों के लिये पंच महायज्ञ का विधान बतलाया गया है। इन सबका त्याग करके मोक्ष के लिये साधना करना कष्टसाध्य है। किन्तु फल की कामना छोड़ के इन कर्मों को करते हुए अन्त:करण की शुद्धि द्वारा निश्श्रेयस प्राप्त करना चाहिये। देवऋण, पितृऋण और ऋषिऋण को चुकाकर ही मनुष्य बन्धन-मुक्त हो सकता है। जो बिना ऋण चुकाये भाग निकलता है, वह अवश्य पकड़ा जाता है, उसे येन-केन-प्रकारेण ऋण को चुकाना ही पड़ता है। एक जन्म में न सही, तो अनेक जन्मों में। तीनों ऋण से मुक्त होने के पश्चात् जिस दिन वैराग्य हो उसी दिन संन्यास ले सकता है। बिना ज्ञान और वैराग्य के संन्यास लेना निषेध है। आजकल प्राय: ऐसे संन्यासी देखने में आते हैं, जो कि दमड़ी चमड़ी से लगे हुए हैं। भविष्य पुराण का वचन है—

मिष्ठान्न कामैरल्पज्ञैर्लोलुपैर्वञ्चकै: कलौ।

ज्ञान वैराग्य हीनैस्तु, संन्यासोऽस्तं गमिष्यति।।

अर्थ—कलियुग में जिह्वा लोलुप, अल्पज्ञानी, लोभी, वंचक तथा ज्ञान, वैराग्यहीन पुरुषों के कारण संन्यास नष्ट हो जायगा। इसी कारण योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान् कलियुग के आने से प्रथम ही अर्जुन को उपदेश कर गए हैं—

संन्यास कर्म योगश्च, निश्श्रेयस् करावुभौ।

तयोस्तु कर्म संन्यासात्कर्म योगी विशिष्यते।।

अर्थ—यद्यपि संन्यास और कर्म योग समान निश्श्रेयस्कर हैं, तथापि मेरे विचार में संन्यास की अपेक्षा कर्म योग ही अधिक उत्तम है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यज्ञ, दान, तप तथा कर्मों के अनुष्ठान से ही विद्वान पवित्र होते है, अतः इनको हेय न समझना चाहिये। फलेच्छा तथा आसक्ति को त्यागकर ही मनुष्य कर्मों को करे, इसी में उसका कल्याण है। अतएव कल्याणाभिलासी पुरुषों को चाहिये कि जैसे हो वैसे अपने हृदय से वासनाओं को दूर करें और कामासक्त पुरुषों की संगति से बचते रहें। कामी (आसुरी सम्पति) पुरुष वही कहा जाता है, जो यह चाहता है कि पृथ्वी में जितना धन है वह किसी प्रकार से मेरे ही पास आ जावे, मैं सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का भोगने वाला हो जाऊँ, मैं ही सब पर आज्ञा करने वाला होऊँ। मेरे पर आज्ञा करने वाला कोई न हो इत्यादि ऐसे विचार के पुरुषों से बचना चाहिए। दैवी सम्पत्ति के पुरुषों से प्रेम रख के इसी सम्पति को सदैव धारण करे, वही गृहस्थ सच्चा योगी है।

दाम्पत्य जीवन एक आध्यात्मिक योग साधना

दो भिन्न स्थानों, भिन्न परिवारों, भिन्न वातावरणों में पैदा हुए और पले नर-नारी भिन्न प्रकृति और भिन्न आकृति के होते हुए भी समग्र एकता के सूत्र में बँधकर विवाह का प्रयोजन पूरा करते हैं। विवाह का वास्तविक उद्देश्य दो आत्माओं की प्रथकता समाप्त करके एक दूसरे के लिये समर्पण। इस समन्वय और समर्पण से एक ऐसी सम्मिलित सत्ता का प्रकाश जो प्रथकत्व के बाह्य लक्षण बनाये रहते हुए भी आन्तरिक एकता के रूप में परिणत हो सके।

आध्यात्मिक प्रगति का आधार है प्रेम। जिसके अन्तःकरण में जितना अधिक, जितना निर्मल प्रेम उफनता है वह उतना ही बड़ा सन्त है। भक्ति का अर्थ है—प्रेम भावना। भक्त का अर्थ है प्रेमी। भगवान से प्रेम करने की साधना हमारे जीवन को प्रेम भावना से ओत-प्रोत करने के लिए है। प्रेम को परमेश्वर कहा जाता है। मनुष्य के अन्तःकरण में भगवान की अनुभूति उफनती हुई प्रेम भावनाओं के रूप में ही होती है। इस आध्यात्मिक महत्ता का अभ्यास दाम्पत्य-जीवन की प्रयोगशाला में किया जाता है। एक दूसरे के प्रति अनन्य आत्मीयता, श्रद्धा, सौजन्य, ममता और वफादारी का आरोपण कर इतना अनुराग उत्पन्न करते हैं कि साथी यदि दोष-दुर्गुणों से भरा हुआ अयोग्य या अकिंचन हो तो भी वह संसार का सबसे सुन्दर, रूपवान, गुणवान, योग्य एवं सज्जन प्रतीत होने लगता है। आत्मीयता ऐसी ही वस्तु है वह जिस पर भी आरोपित की जाती है, उसे परम प्रिय बना देती है। पति-पत्नी में भी मनुष्योचित दुर्बलताएँ एवं त्रुटियाँ रहती है पर यदि विवाह के उद्देश्य को समझकर परस्पर आत्मीयता, समर्पण, एकता और ममता का आरोपण कर लिया गया है तो उन त्रुटियों के रहते हुए भी—न सुधरते हुए भी गृहस्थ जीवन की नाव आनन्दपूर्वक आगे बढ़ती चलती है।

योग का अर्थ है जोड़। दो आत्माओं को जोड़ देना भी एक योग साधना है। राजयोग, हठयोग, जपयोग, लययोग, प्राणयोग आदि की तरह गृहस्थयोग भी एक उच्चकोटि की साधना है। जिसका प्रतिफल पहले ही दिन से मिलना आरम्भ हो जाता है। अन्य साधनाएँ कालान्तर में फल देती हैं। पर इस गृहस्थयोग की साधना से आरम्भ के दिन से ही प्रतिफल मिलना आरम्भ हो जाता है। एकाकीपन में जो सूनापन, नीरसता और अनिश्चितता है वह बात की बात में दूर हो जाती है। मिला तो एक ही साथी है पर लगता है उस साथी के गुण, कर्म और परिजन सभी अपनी सहायता करने वाली सेना के रूप में अपने साथी बन चले। इस अनुभूति में दाम्पत्य-जीवन के दोनों पक्ष अपने को बहुत समर्थ मानते हैं और साथी के स्नेह, सौजन्य की अमृतमयी अनुभूति से हर घड़ी सरसता अनुभव करते रहते हैं। गंगा और यमुना के मिलने का संगम तीर्थराज बन जाता है। दो आत्माओं का आन्तरिक मिलन—विवाह एक वैयक्तिक तीर्थराज है, जिसमें स्नान करते हुए पुण्य प्रक्रिया का अनुभव पति-पत्नी दोनों को ही निरन्तर होता रहता है।

विवाह के उपरोक्त परम प्रयोजन को समझने और चरितार्थ करने वाले जोड़े अपने छोटे-छोटे घरोंदों में गरीबी का जीवन जीते हुए भी स्वर्ग जैसी शान्ति, प्रसन्नता, प्रफुल्लता, सन्तुष्टि, सरसता और सुविधा का आनन्द लेते हैं। उन्हें साथी के रूप, शिक्षा, गुण अथवा योग्यता की चर्चा अनावश्यक लगती है। क्योंकि सच्चा प्रेम इन सबके अभाव में भी साथी देवता जैसा लगता है। प्रेम भरे अनुरोध से या तो सहचर की त्रुटियों को सुधार लेता है अथवा अपनी सहिष्णुता से उन्हें दर गुजर करके भी काम चला लेता है। जहाँ स्नेह और सद्भावना की समुचित मात्रा विद्यमान हो, वहाँ क्लेश-कलह का कोई कारण शेष नहीं रह जाता है। मिलन का प्रतिफल आनन्द ही होना चाहिए। गृहस्थयोग की साधना से जो अनेक ऋद्धि-सिद्धि मिलती हैं उनमें सद्गुणी-सुयोग्य सन्तान और सुव्यवस्थित परिवार के प्रतिफल भी हैं। जिन पति-पत्नी में हार्दिक प्रेम और अटूट विश्वास होगा, उनकी सन्तानें कभी कुपात्र नहीं निकलेगी। प्रेम का पोषण जिन्होंने अपनी माता की प्रगाढ़ आत्मीयता में से उपलब्ध किया है, उन बालकों में अनायास ही असंख्य सद्गुण विकसित रहते हैं। ऐसे जोड़े अपने छोटे या बड़े परिवार की स्नेह, सौजन्य की शृंखला में बँधे रहकर कुटुम्ब के हर सदस्य को सुखी एवम् विकासोन्मुख होने का अवसर देते हैं।

आज लोगों ने विवाह के उच्च उद्देश्य एवं आदर्श को ही भुला दिया। अब काम-क्रीड़ा की पशुता का एक उद्घोषित प्रमाण-पत्र विवाह रह गया है। वासना और विलासिता की दृष्टि से जोड़े मिलाये जाते हैं। लड़के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रूपवती और उत्तेजक लड़कियाँ ढूँढ़ते हैं, ताकि वासना का अधिक आकर्षण एवं उपयोग प्राप्त हो सके। लड़कियाँ उपरोक्त तथ्य के अतिरिक्त अर्थ उपार्जन के अधिक चौड़े स्रोत भी ढूँढ़ती हैं, ताकि उन्हें विलासिता और आरामतलवी की अधिक सुविधाएँ मिल सकें। लड़के की कमाई और लड़की का रूप-लावण्य आज प्रधानतापूर्वक देखे जाते हैं। सोचा जाता है कि यह उपलब्धियाँ मिल जायँ तो विवाह सार्थक माना जायेगा। पर यह भुला दिया जाता है कि विवाह की सफलता का आधार साथी की मनोभूमि, संस्कृति एवम् आदर्शवादिता ही है। काम-कौतुक के लिए, उपयोग के लिए—विवाह नहीं किये जाते उनका प्रयोजन आध्यात्मिक है। जहाँ इस दृष्टिकोण से विवाह सम्पन्न होगा वहाँ गृहस्थ जीवन का आनन्द मिलेगा अन्यथा काम-कौतुक के क्षणों को छोड़कर शेष समय उनमें अविश्वास और असन्तोष ही बना रहेगा।

आवश्यकता इस बात की है कि जो विवाह कर चुके हैं या जिन्हें विवाह करना है, वे उसके उद्देश्य और आदर्श को भी समझें। अपनी मनोभूमि में उतनी कोमलता एवम् उदारता हो कि साथी को स्नेहसिक्त करके इसके विरानेपन को अपनेपन में बदल सकें तो ही विवाह करना चाहिए। अन्यथा काम-कौतुक के लिए विवाह करना बहुत महँगा और झंझट भरा सौदा है। उसमें दोनों पक्षों के हाथ केवल बर्बादी ही लगती है। पुरुष कोल्हू के बैल की तरह पिसता और स्त्री प्रजनन के कुचक्र में अपनी तन्दुरुस्ती, मनस्विता, प्रतिभा ही नहीं कई बार तो जिन्दगी ही असमय में खो बैठती है। विवाह एक आध्यात्मिक साधना है। विवाह एक प्रेम बल्लरी का आत्मोत्सर्ग की उच्च भावनाओं द्वारा किया जाने वाला अभिसिंचन है। यह सज्जनों और शूरवीरों का काम है। कामी, दुष्ट, छली और विश्वासघाती लोग विवाह की पवित्र संस्था को बदनाम करने से दूर रहें और एकाकी जीवन जियें यही अच्छा है। जिनका विवाह हो चुका या जिन्हें करना है उन्हें हजार बार सोच लेना चाहिये कि साथी के ऊपर समस्त सद्भावना एवं आत्मीयता हमें उड़ेलनी है। उसकी प्रवृत्ति मित्रता को निबाहना है। अभीष्ट अनुकूलता उत्पन्न न भी हो सके तो सहिष्णुता अपनाकर दर गुजर करनी है। दूसरी ओर से समुचित प्रत्युत्तर न मिले तो भी अपनी ओर से आजीवन ऐसा व्यवहार करते रहना है, जिससे विवाह साधना के पुनीत आदर्श को कलंकित होने का अवसर न मिले।

इस दिशा में पति का कर्तव्य चौगुना-सौगुना है। क्योंकि परिस्थितियों ने आज उसे अधिक समर्थता एवं सुविधा प्रदान की है। रंग-रूप की बात मस्तिष्क से निकाल ही देनी चाहिए। चमड़ी के आकर्षण का खिंचाव विशुद्ध रूप से व्यभिचार है, भले ही वह अविवाहित या विवाहित जीवन में कभी भी अपनाया जाय। गुणों के आकर्षण पर रीझना चाहिए। विवाह करने से पूर्व साथी के बारे में हजार बार विचार करें, पर यदि उसे अपना लिया तो हजार दोष-दुर्गुण रहते हुए भी उसे छाती से बाँधकर ही रखना चाहिए और अपनी ओर से कर्त्तव्य-पालन के अन्तिम छोर तक जाना चाहिए। विवाह से पूर्व के चारित्रिक दोषों के बारे में कुछ सोच-विचार करना निरर्थक है। जिस दिन से अपना विवाह हुआ उसी दिन से पति-व्रत और पत्नीव्रत आरम्भ होता है। उदारता और क्षमा का जितना अधिक प्रयोग परस्पर किया जा सके, उतना ही गृहस्थ जीवन की सफलता सम्भव हो सकेगी।

ईश्वर करे अपने समाज के हर गृहस्थ में दाम्पत्य-जीवन की एक पवित्र आध्यात्मिक साधना मानने और उसे निबाहने के लिये त्याग और उदारता का बढ़ा-चढ़ा परिचय देने की प्रवृत्ति पैदा हो, तभी हमारे पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन में स्वर्गीय परिस्थितियों एवं अनुभूतियों का अवतरण होगा।

यागपरः पुरुषधर्मः तपः प्रधानो नार्याः

कर्म मीसांसाकार ने दाम्पत्य जीवन और उसकी सफलता के आधार की मीमांसा इस एक सूत्र में ही कर दी है। **''यागपरः पुरुषधर्मः तपः प्रधानो नार्याः।''**

''पुरुष धर्म यज्ञ प्रधान है और नारी धर्म तप प्रधान।'' यज्ञ और तप योग साधन के, आत्म विकास के दो प्रमुख आधार स्तम्भ हैं और इस साधना में दोनों का ही युग्म बनता है। भारतीय मनीषियों ने जहाँ जीवन के हर अंग को धर्म और अध्यात्म से संयुक्त करने की दृष्टि रखी, तो दाम्पत्य जीवन उससे अछूता कैसे रह सकता था। दाम्पत्य सम्बन्ध व्यक्तिगत जीवन को रस-सिक्त और मधुर बनाते हैं, वही समीपवर्ती क्षेत्र और सामाजिक जीवन को भी प्रभावित करते हैं। इसी से कहा गया है—

''जहाँ पति-पत्नी एक मन और एक प्राण एवं सहयोगपूर्वक रहते हैं, वहाँ सब प्रकार कल्याण ही होता है। ऐसे साधन-सहयोग की आवश्यकता और महत्ता इस प्रकार बताई गई है—

एकचक्रो रथो यद्वदेकपक्षो यथा खगः।

अभार्योऽपिनरस्तद्वदयोग्यः सर्वकर्मसु।।

जैसे एक पहिए का रथ नहीं चल सकता और एक पंख की चिड़िया नहीं उड़ सकती, वैसे ही भार्या से रहित अकेला पुरुष कोई भी कार्य नहीं कर सकता।

एकदृष्टिरेकमना भर्तुर्वचनाकारिणी।

तस्या विभीमहे सर्वे ये तथाऽन्ये तपोधनः।।

देवानामपि सा साध्वी पूज्या परम शोभना।

(यम स्मृति)

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक दृष्टि और एक चित्त रहने वाली पति परायण स्त्री से यम एवं वरिष्ठ लोग भी डरते रहते हैं, वह देवताओं की भी पूजनीया होती है और संसार की शक्ति बढ़ाती है।

धर्मार्थ काम संसिद्धयै भार्याभर्तुः सहायिनी।
यात्र भार्या च भर्ता च परस्परमनुव्रतौ।।
तदा धर्मार्थ कामानां त्रयाणमपि संगतम्।
कथं भार्यामृते धर्ममर्थ वा पुरुषः प्रभो।।
प्राप्नोति काममर्थवातस्यां त्रितपमाहितम्।
तथैव भर्त्तारमृते भार्याधर्माधि साधने।।
न समर्था त्रिवर्गोय दाम्पत्यं समुपाश्रिताः।।

(मार्कण्डेय पुराण)

''पत्नी पति की सहायिका होने पर उसके लिए धर्म, अर्थ, काम की सिद्धि का निमित्त होती है। पति और पत्नी जब दोनों ही परस्पर अनुकूल होते हैं तभी धर्म का साधन हो सकता है। धर्मादि त्रिवर्ग में समाहित होने के कारण जिस प्रकार पुरुष पत्नी के बिना धर्म, अर्थ, काम का लाभ करने में समर्थ नहीं होता, उसी प्रकार नारी भी पति के बिना धर्म-साधन में समर्थ नहीं हो सकती। इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम अर्थात् सांसारिक सफलता का आधार दम्पत्ति का मिलकर कार्य करना ही है।''

अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः।
एव धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्री पुंसयोः परः।।

—मनु

जीवनपर्यन्त स्त्री-पुरुष धर्म, अर्थ, काम आदि में पृथक् न हों। आपस में यही उनका धर्म बतलाया गया है।

भार्या पत्युर्व्रतं कुर्याद् भार्यायाश्च पत्नीव्रतम्।

पत्नी पतिव्रत पालन करे और पति को पत्नीव्रत निबाहना चाहिए।

देववत् सततं साध्वी भर्तारमनुपश्यति।
दम्पत्योरेष वै धर्मः सहधर्मकृतः शुभः।।

पत्नी-पति को देवता समझे और पति पत्नी को देवी जैसा मान दे। इस दाम्पत्य धर्म का दोनों मिल-जुलकर समान रूप से पालन करें।

गृहस्थ में संन्यास

औदार्य त्याग सेवानां प्राप्नुते व्यवहारतः।
ग्रहस्थे प्याश्रमे नूनं संन्यासस्य फलं नरः।।

—पंचाध्यायी

(नरः) मनुष्य (नूनं) निश्चय से (औदार्य त्याग सेवानां) उदारता, त्याग और सेवा के (व्यवहारतः) व्यवहार से (ग्रहस्थे आश्रमे अपि) ग्रहस्थ आश्रम में भी (संन्यासस्य) संन्यास के (फलं) फल को (प्राप्नुते) प्राप्त होता है।

''त्याग, सेवा और उदारता व्यवहार करने से ग्रहस्थ में संन्यास का फल प्राप्त होता है।'' इन शब्दों के अन्तर्गत पूर्ण सत्य का ऐसा अमृत तत्व छिपा हुआ है कि यदि हम लोग उसे समझ लें तो अपनी वर्तमान परिस्थितियों को ही स्वर्ग समान आनन्ददायक बना सकते हैं। देखा जाता है कि हमारे घर क्लेश, कलह, कपट, छिद्रान्वेषण, अविश्वास और असन्तोष से भरे रहते हैं। बहू की सास, ननद, देवरानी, जिठानी से नहीं पटती। भाई-भाई में अनबन रहती है। सास को देखिये तो वह बहू-बेटों का रोना रोती मिलेगी। पिताजी अपने बेटों को कुपुत्र घोषित करते फिरते हैं। लड़के समझते हैं पिताजी की बुद्धि सठिया गई है। घर में बुजुर्गों का आदर-सत्कार तो दूर रहा जहाँ अपमान न होता हो वहीं सौभाग्य समझना चाहिए। पैसे के सम्बन्ध में आपापूती का बोलबाला रहता है, जिसके हाथ जो पड़ता है, उसे हथियाने की कोशिश करता है, कुटुम्ब के सम्मिलित धन में से चुराकर अपना निजी संग्रह करना, अपनी कमाई का एक अंश अपने लिए बचा लेना, हिसाब को उलटा-सुलटा बताना इस प्रकार के आचरण अक्सर हमारे कुटुम्बियों में देखे जाते हैं। कहने को तो सम्मिलित खान-पान रहता है पर घर के चतुर व्यक्ति बाजार में जाकर चुपचाप अपनी इच्छाओं को तृप्त करते हैं। कुटुम्बियों की दृष्टि बचा कर जो पैसा कमाया है, वह सुसराल से स्त्री को मिला, मैंने अमुक प्रकार अतिरिक्त परिश्रम से कमाया, कह कर निजी अधिकार में कर लिया जाता है। एक ओर तो कमाने वालों की यह मनोवृत्ति होती है, दूसरी ओर न कमाने वाले या कम कमाने वाले वैसी सुविधा प्राप्त नहीं कर पाते, इनमें से कोई-कोई तो अपने भोले होने के कारण साधारण व्यवहार से भी वंचित रह जाते हैं। नतीजा यह होता है कि वे मन ही मन कुढ़ने, जलने, भुनने लगते हैं। भले ही वे कारणवश मुँह से विरोध प्रकट न करें पर अन्तर में इतना घोर असन्तोष धारण किये रहते हैं जिसकी ज्वाला में प्रेम का रस सहज ही सूख जाता है। ऐसे कितने घर हैं, जिसमें सम्मिलित कुटुम्ब के सब सदस्य आपस में सच्चा प्रेम करते हों, एक दूसरे पर जाने देते हों और कोई किसी से असन्तुष्ट न हों।

सौ में से नब्बे-पिचानवें घर ऐसे मिलेंगे जो कहने को तो सम्मिलित कुटुम्ब गिने जाते हैं पर उनकी आन्तरिक व्यवस्था में घोर अराजकता फैली हुई होती है। गृह-युद्ध का ज्वालामुखी भीतर ही भीतर सुलगता रहता है और इस बात की सदैव आशंका बनी रहती है कि कहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भयंकर विस्फोट न हो जाय, नाशकारी गदर न मच जाय। आये दिन ऐसे समाचार कानों से टकराया करते हैं कि अमुक भाई-भाइयों में मारपीट हो गई, अमुक व्यक्ति अपनी स्त्री को लेकर अलग हो गया, अमुक लड़का अपने पिता को बुरी-बुरी गालियाँ दे रहा है, अमुक सास-बहुओं में खूब बजी, अमुक बिधवा भाग गई, अमुक पति पत्नी में देवासुर संग्राम मचा हुआ है, आत्म हत्याओं में तीन चौथाई से अधिक भाग गृह जीवन से दुखी व्यक्ति होते हैं, साधु-संन्यासियों में मुश्किल से पाँच फीसदी ऐसे मिलेंगे जो सच्चे त्यागी हैं, अन्यथा तो पारिवारिक जीवन की कटुता ही प्राय: उन्हें एकाकी जीवन बिताने के लिये प्रोत्साहित करती है। अखबार के पन्ने खोलते ही 'गुमशुदा की तलाश' का एक दो विज्ञापन दिखाई पड़ जाता है, उसमें लिखा होता है कि ''अमुक लड़का घर से भाग गया है, जो उसे तलाश करके घर पहुँचावेगा, उसे मार्ग व्यय के अतिरिक्त इतनी रकम इनाम दी जायगी।'' यह गुमशुदा, भगोड़े अक्सर पारिवारिक जीवन से असन्तुष्ट होकर भागते हैं। व्यभिचार की जो लहर बड़ी तेजी से बढ़ती चली आ रही है, उसकी तह में भी ऐसे ही कारण होते हैं, जिनके कारण असन्तुष्ट व्यक्ति व्यभिचार करने पर उतारू हो जाता है।

'सम्मिलित कुटुम्ब' वास्तव में एक बड़ा ही उच्च आदर्शमय जीवन है। विश्वबन्धुत्व की, लोकसेवा की, वैरागी जीवन की, संन्यास की, मुक्ति साधना की आरम्भिक तपोभूमि इस प्रथा को निस्संकोच कहा जा सकता है। दूसरे देशों में लड़का सयाना होते ही बहू को साथ लेकर पक्षी की तरह अलग घोंसला बना लेता है और माता-पिता से अपना सम्बन्ध त्याग देता है। कहते हैं कि—न्यारा पूत पड़ौसी जैसा। माँ-बाप से अलहदा होकर लड़के ने अपनी गृहस्थी अलग बसाली, फिर उनके बीच एक बहुत ही पतला लोक दिखावे का सम्बन्ध सूत्र रह जाता है। आज पाश्चात्य देश पृथक् कुटुम्ब प्रथा के सुखों और सुविधाओं की भली प्रकार प्रकट करते हैं, वे साबित कर देते हैं कि जितना ही छोटा कुटुम्ब होगा, उतना ही वह सुखी, स्वतन्त्र एवं उन्नतिशील होगा। भौतिक दृष्टि से उनकी बात मानने में हमें कोई आपत्ति नहीं है, एक दूसरे पर गुर्राने वाले कबूतरों से भरा दरबा सदा दुख-दारिद्र का ही घर बना रहेगा, जबकि एक जोड़ा तीतर आनन्द की किलकारियाँ मारता फिरता है और अपना गौरव प्रकट करने का अवसर पाता है। हमारे बुद्धिमान पूर्वज इन लाभों से अपरिचित नहीं थे, जिस सुख और सुविधाओं को आज नवीन सभ्यताभिमानी महानुभाव पृथक् कुटुम्ब के पक्ष में रख रहे हैं, उन्हें भारतीय तत्वदर्शी भलीभाँति समझते थे। परन्तु उन्होंने 'बड़ी के लिए छोटी का त्याग' की महत्वपूर्ण नीति को अपनाकर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया। आपके पास चाँदी की एक भारी सिल हो, परन्तु रास्ते में उससे भी भारी सोने की सिल पड़ी मिल जाय, उस सुनसान मार्ग में साथी कोई हो नहीं, तो निश्चय ही आप चाँदी को फेंक कर सोना ले चलना पसन्द करेंगे। कम लाभ का व्यापार होते हुए भी यदि अधिक लाभ का व्यापार प्राप्त हो तो निश्चय ही चतुर व्यापारी पहले व्यवसाय को छोड़ कर अधिक लाभ का रोजगार ग्रहण करता है। पृथक् कुटुम्ब बसने में सुविधाएँ हैं, पर वे इतनी नहीं हैं, जितनी कि सम्मिलित कुटुम्ब में।

संघ शक्ति की प्रबलता को वे लोग जानते हैं, जो १ और १ मिल जाने पर ११ बन जाने का अनुभव कर चुके हैं। प्राणी की शारीरिक और मानसिक रचना ऐसी अद्भुत है कि जितने अधिक लोग एक समूह में बढ़ते जाते हैं, उसके अनुपात से दस गुनी शक्ति बढ़ जाती है। एक आदमी यात्रा करने में थकान का अनुभव करता है, पर दो व्यक्ति साथ-साथ चलें, तो थकान नहीं व्यापती उत्साह बना रहता है और दूना काम हो जाता है। चले दोनों अपने-अपने पाँवों से, पैसा दोनों ने अपना-अपना खर्च किया। दोनों के स्वार्थ अलग-अलग हैं, परन्तु केवल कार्यक्रम में एकता हो जाने के कारण यात्रा की सुविधाएँ कई गुनी बढ़ गईं। सिनेमा, सरकस एक दिन आप अकेले अकेले चुपचाप चले जाइये और देख आइये, दूसरे दिन दो मित्रों के साथ जाइये, फिर पहले दिन के मनोरंजन का दूसरे दिन के मनोरंजन का मुकाबिला कीजिए, दोनों में कई गुना अन्तर मिलेगा। पैसा सब ने अपने-अपने पास से खर्च किया, देखा भी अपनी-अपनी अलग आँखों से, परन्तु एक की खुशी दूसरे की खुशी में मिल कर कई गुनी हो गई। इस प्रकार खुशी का फब्बारा फूट निकला। बड़ी सेना में सम्मिलित सैनिक की, सहभोज में भोजन करने वाले की, सामूहिक प्रार्थना करने वाले की, प्रसन्नता, आशा और स्फूर्ति कितनी होती है, इसका अनुमान वे लोग नहीं कर सकते जो अकेले या थोड़े लोगों के बीच रह कर गुजारा करते हैं। सामूहिक आश्रम में एक ऐसी विद्युत शक्ति का आविर्भाव होता है, जो उस समूह के प्रत्येक व्यक्ति के आन्तरिक आनन्द को, मानसिक विकास को कई गुना बढ़ा देता है। यह ठीक है कि मियाँ-बीबी की जोड़ी मौज से रह सकती है, परन्तु जो स्वर्गीय आनन्द भाई, बहिन, भावज, भतीजे, चाचा, चाची, माता, पिता, दादी तथा छोटे-छोटे बाल-बच्चों के भरे-पूरे घर में आता है, भला 'अकेले शूकरे' लोगों को कहीं स्वप्न मे भी प्राप्त हो सकता है ?

लेकिन वह स्वर्गीय आनन्द तभी प्राप्त हो सकता है, जब त्याग, सेवा और उदारता का उसमे भरपूर समावेश हो, अन्यथा दुख-दारिद्रय से भरा अँधेरा कबूतर खाना ही वह कुटुम्ब रहेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गृहस्थ में रहकर भी मुक्ति लाभ संभव है

शास्त्रों में बतलाया गया है कि धर्म ही मनुष्य का सब से बड़ा आश्रय और सद्‌गुण है। इसका आशय यह है कि धर्म के द्वारा ही मनुष्य को अपने कर्तव्य का बोध होता है और उसी का पालन करके वह ऊर्द्धगति को प्राप्त हो सकता है। धर्म के द्वारा ही मनुष्य को परमात्मा तथा उसकी लीला का कुछ अनुमान हो सकता है और आध्यात्मिक पथ में प्रगति करके वह जीवन्मुक्त पद प्राप्त कर सकता है।

पर धर्म के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान मनुष्य के लिये सहज नहीं है। क्योंकि संसार में इतने अधिक विभिन्न धर्म और धर्म-गुरु पाये जाते हैं कि मनुष्य का एक निश्चय पर पहुँचना कठिन होता है और वह प्रायः भ्रम में पड़ जाता है। अगर ऐसा नहीं होता है तो मनुष्य कुछ निस्सार कर्म-काण्डों को धर्म का सार समझ बैठता है और सब तरफ से आँखें बन्द करके एक लकीर पर चलते चला जाता है। इस प्रकार के धर्म-पालन को अंध श्रद्धा का नाम दिया जाता है और उससे चाहे मनुष्य को थोड़ा-सा सन्तोष भले ही हो जाय, आध्यात्मिक जीवन से उसे अनजान और वंचित ही रहना पड़ता है।

यों तो धर्म का आविर्भाव मानव-सभ्यता के आदि काल से ही हो चुका है। पर उस समय मनुष्य जो कुछ अद्‌भुत घटना देखता था, उसी में ईश्वर की कल्पना कर लेता था। यदि वह देखता कि कहीं आकस्मिक रूप से पृथ्वी में से या जल में से अग्नि प्रकट हो गई, तो वहीं पूजा-प्रार्थना शुरू कर देता था। इसी प्रकार उल्कापात, तीव्र तूफान, भूकम्प आदि नाशकारी घटनाओं को भी वह ईश्वर का कोप समझ कर उसे भेंट-पूजा द्वारा सन्तुष्ट करने की चेष्टा करता था, इसी प्रकार उसने ईश्वर की सत्ता के विषय में एक मनमानी कल्पना करके उसे धर्म का रूप दे दिया।

पर जैसे-जैसे मनुष्य एक ही प्रकार की घटनाओं को लगातार सर्वत्र देखता गया और उन पर मनन करके उसने प्रकृति के नियमों की एकरूपता को समझ लिया तो वह ब्रह्म और प्रकृति की अखण्डता को अनुभव करने लगा। वह समझने लगा कि संसार में भिन्न-भिन्न रूप और नाम दृष्टि-गोचर होते हैं, वास्तव में उनका उद्‌गम स्थान एक ही है और व्यवहार में पृथक्-पृथक् जान पड़ने पर भी उनके भीतर एक ही सत्ता, एक ही शक्ति कार्य कर रही है। इससे उसके हृदय में ज्ञान, प्रेम, भक्ति के उच्च भावों का उदय होने लगा और उसकी शूद्रवृत्तियाँ दूर होने लगीं।

यह मनुष्य के उत्थान का, ऊर्द्ध गति को प्राप्त होने का वास्तविक मार्ग है। यह मनुष्य के लिये एक स्वाभाविक रास्ता है, जिसमें अस्वाभाविकता की कोई बात नहीं जान पड़ती। पर संसार में ऐसे लोगों का अभाव नहीं जो इस सरल-स्वाभाविक मार्ग को महत्वहीन बतला कर अपना एक निराला पंच-जीवन दर्शन स्थापित करने में ही अपना बड़प्पन समझते हैं। वे कहते हैं कि वही दर्शन और साधन प्रणाली श्रेष्ठ है, जिसमें अपनी कोई विशिष्टता हो। इस विषय की आलोचना करते हुये विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक लेख में कहा है—

"अनेक व्यक्ति स्पर्धापूर्वक यह कहते हैं कि इस प्रकार का एक विशेषभाव रहने वाला दर्शन-शास्त्र प्रकृष्ठ (अति उत्तम) है। सब रूप त्याग कर किसी एक विशेष मनुष्य में, ईश्वर का दर्शन करना ही चरम पूजा है। मुझे मालूम है कि मनुष्य इस प्रकार के कृत्रिम उपाय द्वारा हृदय की किसी एक वृत्ति विक्षुब्ध करके बहुत बड़े परिमाण में लाभ उठा सकता है। किसी एक रस को अत्यन्त तीव्र बनाकर खड़ा कर सकता है, किन्तु, क्या इतना करना ही हमारी साधना का लक्ष्य होना चाहिये। अनेक बार देखा जाता है कि अन्धे होने पर स्पर्श शक्ति आश्चर्यजनक रूप से बढ़ जाती है। परन्तु क्या इस प्रकार से शक्ति एक स्थान से चुरा कर दूसरे स्थान पर उपचय (अति संग्रह) करने से उसे शक्ति की सार्थकता कहा जा सकता है ? जहाँ उसका नाश हुआ है क्या वहाँ का विचार नहीं करना चाहिये ? जहाँ से शक्ति को नष्ट किया गया क्या उस त्रुटि का दुष्परिणाम हमको भोगना नहीं पड़ेगा ?"

हमारे देश में सैकड़ों प्रकार के पंथों और सम्प्रदायों ने ईश्वर और धर्म के जो एक दूसरे से सर्वथा भिन्न प्रकार के चित्र खींचे हैं और लोगों को नई-नई तरह की साधन-प्रणालियों में लगाया है, उसके फल से उनका कोई विशेष कल्याण हुआ हो ऐसी बात नहीं। जो लोग इस प्रकार के कृत्रिम उपायों से एक विशेष प्रकार की उन्नति करने में लग जाते हैं, उनका जीवन प्रायः असन्तुलित हो जाता है। वे दर्शनीय अथवा चमत्कारी भले ही बन जायँ पर संसार के काम के नहीं रहते और इस कारण उनके जीवन का सर्वांगपूर्ण विकास भी नहीं हो पाता। बिना इस प्रकार के सर्वांगीण विकास के हम मुक्तिमार्ग में अग्रसर नहीं हो सकते। विश्वकवि की यह सम्मति विचारणीय है—

"वस्तुतः स्वभाव का परिपूर्ण लाभ ही धर्म है और धर्म-नीति का श्रेष्ठ लाभ भी यही है। भगवान् की धारणा को संकीर्णता में बाँध कर भक्ति की उत्तेजना को उग्र नशे की तरह बनाने में मनुष्यत्व की सार्थकता नहीं मानी जा सकती है। भगवान को भी उनके स्वभाव (स्वाभाविक रूप) में ही प्राप्त करने की साधना करनी होगी, तभी हमारा कल्याण होगा। भगवान को केवल अपनी किसी विकृति (त्रुटि) को उपयोगी बनाकर, उनको लेकर बहुत-बहुत जोश दिखाने को हम मंगलमय नहीं मान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सकते। हो सकता है कि उसमें कहीं सत्य छिपा हो। पर जो शक्तिमान है वह तो उसके द्वारा किसी प्रकार अपना काम चला सकता है, किन्तु उनके दल में जो अन्य साधारण शक्ति के व्यक्ति आकर जमा होते हैं, उनका कुछ ठौर-ठिकाना नहीं। उनका आलाप क्रमशः प्रलाप हो उठता है एवं वे उत्तेजना और उन्माद के पथ पर अपघात (अकाल मृत्यु) को प्राप्त होते हैं।''

सत्य बात यह है कि शुद्ध धर्म कोई गूढ़ रहस्य या कठिन समस्या नहीं है। सीधे से सीधा और अल्प ज्ञान रखने वाला व्यक्ति भी उस पर चलता हुआ अपना और संसार का कल्याण कर सकता है और इस प्रकार आत्मोन्नति के उच्च स्थान पर पहुँच सकता है। पर जो धर्म को अस्वाभाविक बातों में फँसा कर उसे किसी प्रकार सिद्धि, चमत्कार अथवा गुरुडम का साधन बना लेते हैं, वे कभी उसके मर्म को प्राप्त नहीं कर पाते और धर्म के रहस्य की बड़ी-बड़ी बातें करने पर भी वे मुक्ति-मार्ग से दूर बने रहते हैं। सांसारिक राग-दोषों से बचकर मुक्ति पथ का अनुगामी स्वाभाविक धर्म का अनुयायी ही हो सकता है।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

संतान की संख्या नहीं, स्तर बढ़ायें

सन्तान न होना-कोई दुर्भाग्य तो है नहीं

सुख की अनेक मृग-तृष्णाओं में से पुत्र प्राप्ति की लालसा भी बड़ी जबरदस्त है। पुत्र न होना इस अभागे समाज में दुर्भाग्य समझा जाता है। अत: विवाह होने के दो-चार वर्ष बाद ही यदि किसी के बच्चा पैदा नहीं हुआ तो लोग विक्षुब्ध होने लगते हैं। तरह-तरह की मनौतियाँ मनाते हैं। डाक्टरों और देवी-देवताओं की शरण में धन फूँकते रहते हैं। किन्तु परमात्मा के अधिकार की बात यदि पूरी न हुई, पुत्र का जन्म नहीं हुआ तो बेतरह बेचैन होते हैं। कई पुत्र गोद लेने की बात करते हैं, कई दूसरी शादी करते हैं।

प्रजनन प्रकृति को अपनी सृष्टि सञ्चालन व्यवस्था को चलाते रहने के रूप में आवश्यक है। इसलिए उसने प्राणियों को ऐसे जाल-जञ्जाल में जकड़ दिया है कि आमतौर से उन्हें इसी गोरखधन्धे को सुलझाने में अपना जीवनक्रम पूरा करना पड़ता है। पुरुषों में प्रबल कामेच्छा और स्त्रियों में तीव्र मातृत्व की भावना नहीं होती तो सम्भवत: इस सृष्टि का क्रम पहले ही रुक गया होता। विषय-भोग की इच्छायें ही सन्तान के प्रति ममता, नाना प्रकार की तृष्णाओं तथा माया मोह के जाल में मनुष्यों को फँसाये रखती हैं और इस संसार के सारे काम विधिवत् चलते रहते हैं। संसार के बहुत थोड़े से व्यक्ति कोई महान् उद्देश्य लेकर जीवन जीते हैं, अधिकांश लोग तो इसी भूल-भुलैया में पड़े हुए जीवनयापन करते रहते हैं। विषय-भोग, नारी का आकर्षण और संतान-सुख की झूँठी कल्पनाओं में ही मनुष्य जीवन का सारा ताना-बाना चलता रहता है।

जहाँ तक प्राकृतिक जीवन की बात है विषय-वासना और सन्तानोत्पत्ति कोई अपराध नहीं है। बल्कि यह एक प्रकार से कालक्षेप करने का अच्छा मनोविनोद ही है। किन्तु सन्तान के लिए अनुचित मोह मनुष्य के लिए उचित नहीं है। जिसके यहाँ कोई सन्तान नहीं है, उन्हें समझना चाहि कि परमात्मा ने उनके लिए धर्म-कर्म और जीवन लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अधिक सुअवसर प्रदान किया है।

पिण्डदान और सन्तान के द्वारा तर्पण आदि से जो स्वर्ग और मोक्ष की अभिलाषा करते हैं, उन्हें यह समझाना चाहिए कि परमात्मा कर्मकाण्ड के बाह्य स्वरूप को देखकर ही किसी के लिए पुण्य-फल और स्वर्ग-मुक्ति की व्यवस्था नहीं कर देता। अपने ही अच्छे-बुरे कर्मों का फल मनुष्य भोगता है। फिर प्रत्येक सन्तान सद्गुणी ही होगी इसका भी तो ठीक-ठीक पता नहीं। सन्तान के द्वारा स्वर्ग-मुक्ति की कल्पना इस दृष्टि से प्रवंचना मात्र है, इसके लिए दु:खी होना मनुष्य के लिए उचित नहीं।

जिस तरह अनियन्त्रित काम-वासना अधर्म है, उसी तरह सन्तान के लिए मोह-भाव बन्धन का कारण है। मनुष्य जीवन का यह तुच्छ-सा उपयोग है। हमारा जीवन इससे ऊँचे उठकर जब विशुद्ध पारमार्थिक कर्मों में प्रवृत्त होता है, तभी स्वर्ग की कल्पना की जा सकती है। इसके लिए सन्तान हो ही यह कोई जरूरी नहीं है। सन्तान-पालन के लिए जो जीवन विविध कर्मों में फँसा देना पड़ता है, वह यदि सन्तान न हो, तो बचाकर श्रेय की साधना पूरी कर सकता है। अत: इन से वैराग्य उत्पन्न करने और इनकी ओर चित्त-वृत्तियों को न भटकने देने में ही कल्याण है। जिनके सन्तान है उन्हें तो अपने कर्त्तव्य का पालन करना ही चाहिए पर जिन्हें सन्तान उपलब्ध नहीं हुई उन्हें अकारण परेशान नहीं रहना चाहिए। 'पुत्र होता तो सुख मिलता' यह कल्पना सर्वथा निराधार है। अनेक व्यक्तियों को सन्तान के द्वारा कष्ट पाते देखा गया है। इसके विपरीत कितने ही ऐसे हुए हैं जिन्होंने सन्तान न होने पर भी अपेक्षाकृत अधिक आनन्द अनुभव करते हुए सुविकसित जीवन बिताया है।

राजा महेन्द्र प्रताप ऐसे ही व्यक्तियों में से एक थे। कहते हैं उनके कोई सन्तान नहीं थी फिर भी एक दिन उन्होंने सभी नाते-रिश्तेदारों को पुत्र के नामकरण संस्कार में सम्मिलित होने का निमंत्रण भेज दिया। आचार्य के रूप में महामना मदनमोहन मालवीयजी आमन्त्रित थे। उत्सव के सारे-उपक्रम जुटाये जा चुके थे पर सभी को एक ही हैरानी हो रही थी कि राजा साहब के तो कोई सन्तान है ही नहीं फिर नामकरण संस्कार किसका किया जायगा ? सभी कौतूहल में थे तभी मालवीयजी ने घोषणा की कि

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राजा साहब ने सन्तान के रूप में एक विद्यालय को जन्म दिया है, उसी का नामकरण किया जाना है।

पुत्र रहा होता तो सम्भवत: राजा साहब को कोई जानता भी नहीं किन्तु जिस 'प्रेम-महाविद्यालय' को उन्होंने जन्म दिया, उसके कारण देशविदेश में सर्वत्र उनको लोग श्रद्धा से शिर झुकाते हैं।

बालक आगे चलकर पिता का नाम रोशन करता है, यह सोचना नितान्त भ्रमपूर्ण है। विचार करके देख सकते हैं कि अब तक संसार में कितने लोग मर कर चले गये, इनमें से कितने सौभाग्यवान् ऐसे हैं, जिन्हें पुत्रों के द्वारा यश मिला है ? ऐसे व्यक्ति बहुत ही थोड़े होंगे। यश मनुष्य को तप, त्याग और श्रेष्ठ कर्मों के सम्पादन से मिलता है। इनके लिए नि:सन्तान होना कोई बाधा नहीं है।

बालक के पालन-पोषण, सेवा-शुश्रूषा में जो झंझट उठाने पड़ते हैं उनमें दाम्पत्य जीवन का सारा आनन्द ही चला जाता है। लोग चाहें तो इस अवसर का लाभ ज्ञान-वृद्धि के रूप में प्राप्त कर सकते हैं। समय का सदुपयोग व्यक्तिगत योग्यता बढ़ाने से लेकर जीवन लक्ष्य की प्राप्ति तक किसी में भी किया जा सकता है। पति-पत्नी आपस में अधिक स्नेह, आत्मीयता और सहानुभूति अनुभव कर सकते हैं।

कई बार मनुष्य अपनी अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति पुत्र या पुत्री के माध्यम से पूर्ण हुआ देखना चाहते हैं। जिन्हें परिस्थितिवश अधिक शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला वे सोचा करते हैं कि अपो बच्चे को खूब पढ़ा-लिखाकर विद्वान बना देंगे, ताकि सर्वत्र उसका सम्मान किया जाय। इसमें लोग अपना गौरव भी समझते हैं। पुत्री की अपेक्षा पुत्र से यह सौभाग्य प्राप्त करने की अधिक आशा की जाती है। यह दृष्टिकोण सन्तान के प्रति और भी मोह उत्पन्न करने वाला है। परन्तु यह मनुष्य का बिल्कुल ओछा दृष्टिकोण है। अपने ही बालक हों तो उनकी शिक्षा तथा विकास में सुख देखने की धारणा मनुष्य के स्वार्थीपन का लक्षण है। समाज में कितने ही बालक ऐसे होंगे जो साधनों के अभाव में अविकसित रह रहे होंगे। विकास के लक्षण होते हुए भी उसकी परिस्थितियाँ अनुकूल न बन पाती होंगी। इन बालकों के उत्थान के लिए यदि नि:सन्तान व्यक्ति कुछ योग दे सके, तो यह उनके लिए अधिक सुख तथा सन्तोष की बात होगी। हमें अपने आप तक सीमित नहीं रहना चाहिए। यह सोचना चाहिये कि यह सारा संसार अपना ही घर है। यहाँ सभी अपने भाई, मित्र, पड़ौसी और बालक हैं, यह सोचकर सभी के हित और कल्याण की दृष्टि से जब कर्त्तव्य-पालन किया जाता है तो अपेक्षाकृत अधिक सुख का अनुभव होता है।

वृद्धावस्था में पुत्र सुख देगा ही अब इसकी भी कोई गारण्टी नहीं रह गई। बालक कुसंस्कारी हो तो मनुष्य तरह-तरह के झंझटों, कलह और मुसीबतों में ही पड़े रहते हैं। यौवन के उन्माद में आजकल युवक प्राय: अशिष्टता का ही बर्ताव करते हैं। अधिकांश बालक तो यही सोचते हैं कब बाप मरे और उसकी सम्पत्ति का उत्तराधिकार प्राप्त हो। शौक और मौज के लिये कई स्वेच्छाचारी तो अपने अभिभावकों के प्राण तक लेने से नहीं चूकते।

संसार में बालकों की भी कोई कमी है। इस सभी को अपना ही अनुभव किया कीजिये और उन्हें वात्सल्य दान कीजिये। इससे आप कहीं अधिक सुख का अनुभव कर सकेंगे। संसार में आत्मा की दृष्टि से सब एक ही हैं। अपने पराये का कहीं कोई भेद-भाव नहीं है। अपने हृदय की विशालता अनुभव कीजिये और पुत्र-प्राप्ति का अनावश्यक मोह छोड़ कर अपना आध्यात्मिक लक्ष्य पूरा कीजिये। सन्तान न होना कोई दुर्भाग्य नहीं है। आप सभी के बालकों को अपना ही समझा करें। इनसे आपको सुख मिलेगा, सन्तोष बढ़ेगा और शांति उपलब्ध हो सकेगी।

क्या सन्तान न होना दुर्भाग्य है ?

विवाह होने के पश्चात् यह इच्छा और आशा की जाती है कि जल्दी से जल्दी सन्तान उत्पन्न हो। मानो विवाह की सफलता सन्तानोत्पादन पर ही निर्भर है। यदि विवाह होने के बाद सन्तान होने में कुछ देर हो जाती है तो पति-पत्नी भी उदास रहने लगते हैं, अपने को भाग्यहीन मानते हैं और पड़ौसी-रिश्तेदार भी दु:ख प्रकट करने लगते हैं। मानो भाग्यवान होने का सन्तान होना ही प्रमाण-पत्र हो। स्त्रियाँ तो अपने को निपुत्री होना एक अभिशाप समझती हैं और बिना बच्चे वाली के बारे में ऐसा सोचती हैं मानो वह बेचारी बहुत ही दु:ख-दरिद्र में डूबी हुई, ईश्वरीय कोप की भाजन, विपत्ति की मारी हुई है। जिन्हें सन्तान नहीं होती वे इसके लिए इतने चिन्तित रहते हैं कि वैद्य-डाक्टरों से लेकर पीर, मुरीद, पंडित ओझा के फेर में उन्हें अपनी गाढ़ी कमाई का एक बहुत बड़ा भाग बर्बाद करते रहना पड़ता है। सफलता न मिलने पर उन्हें अपने दुर्भाग्य का रोना ही हर वक्त याद आता रहता है। कई बार तो निपुत्री नर-नारियों को अपनी जिन्दगी भी भार मालूम पड़ने लगती है।

सन्तान न होने को दुर्भाग्य मानना भी एक नितान्त भ्रमपूर्ण, अज्ञानमूलक मान्यता है। इस मान्यता के पीछे न कोई तर्क है और न वास्तविकता। केवल बात इतनी भर है कि लोगों ने यह मान्यता बना रखी है कि सन्तान ही विवाह की सफलता का प्रमाण-पत्र है।

प्राचीनकाल में जब इस देश में जनसंख्या थोड़ी थी, उर्वरा भूमि, वन और पठारों के रूप में योजनों तक बेकार पड़ी थी, उसका उपयोग करने वाला कोई न था, तब लोगो की यह इच्छा रही होगी कि अपने पुत्र, पौत्र अधिक हों जिनके सहारे अपना बड़ा कुटुम्ब बने और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधिक भूमि पर अधिकार करके अपनी समृद्धि बढ़ाने का अवसर मिले। जातीय संघर्ष भी यहाँ कम न था। असुरों-संस्कृतों और सुरों-संस्कृतों के बीच वैसे ही संघर्ष निरन्तर चलते थे जैसे अभी भी कहीं-कहीं जातीय संघर्ष फूट पड़ते हैं। ऐसे संघर्षों में विजय जनसंख्या पर निर्भर रहती थी। हर कुटुम्ब यह प्रयत्न करता था कि उसका जन-बल बढ़ा-चढ़ा रहे। असुरों से आत्मरक्षा के लिए परिवार वृद्धि एक सैन्य-संगठन की तरह आवश्यक समझी जाती थी। इसी से संतानोत्पादन को अधिक प्रोत्साहन दिया जाता था। आशीर्वाद में धन, सन्तान की प्राप्ति के मंगल वचन बोले जाते थे। सन्तान के गर्भ में आने या जन्म लेने पर भी हर्षोल्लास के उत्सव मनाये जाते थे। कृषि, पशु-पालन और संघर्ष में अधिक उपयुक्त होने के कारण ही शायद पुत्र को कन्या से अधिक महत्व मिला हो। पुरुषों के बहुविवाह की प्रथा भी शायद इसीलिए चली है कि एक कुटुम्ब जल्दी ही बहुत बड़े विस्तार के साथ बढ़ सके। युद्ध में पराजितों की स्त्रियों को भी विजेता लोग शायद इसीलिए अपहरण कर ले जाते हों कि उनके द्वारा वे अपना परिवार जल्दी बढ़ा सकेंगे। ऐसे समय में संतानोत्पादन को कोई बहुत बड़ी सफलता या आवश्यकता माना जाता रहा हो तो यह बात एक हद तक समझ में भी आती है।

किन्तु आज तो स्थिति उस समय की अपेक्षा बिल्कुल ही भिन्न है। अन्न के एक-एक दाने के लिए हम विदेशों के मुहताज हैं। यदि विदेशी लोग कृपापूर्वक हमें अन्न न दें तो लाखों, करोड़ों को भूखा मरना पड़े। सरकार जी तोड़ कर अन्न स्वावलम्बन के लिए हाय-तोवा कर रही है पर लक्ष्य की पूर्ति अभी भी कठिन हो रही है। कृषि के लिए जमीन कम पड़ गई। पशुओं के लिए चरागाह नही रहे। उनको मारकाटकर जल्दी खा जाने की बात सोची जा रही है, ताकि पशुओं के हिस्से की जमीन का भी मनुष्य ही उपभोग कर सके। मकानों की समस्या दुर्लभ हो रही है। सड़कों पर चलने के लिए जगह नहीं, रेल और मोटरों में भीड़ समाती नहीं। दूध भी दुर्लभ हो रहा है। गंदगी साफ नहीं हो पाती। अखाद्य और स्वच्छता की समस्या ऐसी विषय हो गई है कि हैजा, तपेदिक आदि रोगों से लाखों मनुष्यों के मक्खी-मच्छरों की तरह मरने की रिपोर्ट आये दिन अखबारों में छपती रहती है। इन विषम परिस्थितियों में राष्ट्रीय दृष्टि से यह विचारणीय है कि जनसंख्या का बढ़ते जाना—विशेषतया भारत जैसे साधनहीन देश के लिए कहाँ तक उचित होगा ?

हर दम्पत्ति को सन्तान होनी ही चाहिए और विवाह के बाद जल्दी से जल्दी होनी चाहिए, इस आकांक्षा को आज की परिस्थितियों को देखते हुए, एक विशुद्ध अन्धपरम्परा का अनुसरण करना ही कहा जा सकता है।

बहुत सन्तान, जल्दी सन्तान, जरूर सन्तान की रट लगाया जाना अब बन्द करना चाहिए। जो लोग इस सड़ी-गली माँग को महत्त्व दे रहे हैं, उन्हें जनसंख्या वृद्धि की विभीषिका को समझना और समझाया जाना चाहिए। स्वास्थ्य विज्ञान के विश्व विख्यात विशेषज्ञ प्रो० हर्मन की बेटी ने स्वास्थ्य-काँग्रेस में अपना खोजपूर्ण निबंध पढ़ते हुए विश्व को जो चेतावनी दी थी उसे हम लोग ध्यानपूर्वक पढ़ें और सुनें तो ही अच्छा है। उनने कहा—''जिस गति से सन्तानोत्पादन अभी हो रहा है, यदि वह क्रम न रुका तो सन् २०५० में दुनिया की आबादी २० अरब हो जायगी और तब इस धरती पर इतने लोगों के लिए न खाना मिल सकेगा, न शुद्ध वायु, न पानी, न बिजली। प्रति व्यक्ति पीछे केवल १ वर्ग मीटर जगह आवेगी जिसमें केवल खड़े होने भर को जगह मिल सकेगी। जानवरों का नामनिशान तक इस दुनिया में मिट जायगा, क्योंकि जब मनुष्यों के रहने और खाने के लिए ही धरती की शक्ति पर्याप्त न रहेगी तो पशुओं को उसमें से हिस्सा कौन बँटाने देगा ? लोग उन्हें मार-काट कर बहुत पहले ही चट कर जावेंगे।'' इन विषम परिस्थितियों में संतानोत्पादन को जितना निरुत्साहित किया जाय उतना ही उत्तम है।

जिनके कन्धों पर बच्चों का उत्तरदायित्व आ गया है, उन्हें तो वह निवाहना ही चाहिए और अपने पीछे समाज को श्रेष्ठ नागरिक छोड़ जाने का कर्त्तव्य पालन करना ही चाहिए। कहते हैं कि सन्तान से अपना नाम और वंश चलता है। यह 'चलना' यश की शृंखला अविच्छिन्न रूप से चलते रहने के रूप में ही हो, तो उसमें कुछ तथ्य माना जाएगा अन्यथा दो-चार पीढ़ी बाद के लड़के बच्चे भी अपने पूर्व पुरुषों का नाम भूल जाते हैं। जिनका नाम तक अपने नाती, पोतों-परपोतों तक को याद नहीं उनका नाम दुनिया में चल रहा है, यह मान्यता केवल भ्रम मात्र है।

नाम उसी का चलेगा जो अपने पूर्व पुरुषों की भाँति स्वयं भी श्रेष्ठ कार्य करते हुए अपने पूर्वजों का यश बढ़ा रहा है और अपने पीछे ऐसे सभ्य नागरिक छोड़े जा रहा है जो प्राचीन गौरव को कितना भी कष्ट आने पर गिरने न दें। वंश गौरव की यशस्वी परम्परा चलाने वाली सन्तान का निर्माण कर सकना जिनके बल-बूते की बात नहीं है, उन्हें केवल प्रजनन करते रहने मात्र से यह आशा न करनी चाहिए कि हमारा नाम और वंश चलता रहेगा। कुतिया, बकरी और शूकरी हर साल दर्जनों बच्चे पैदा करती है, उनका वंश कहाँ चलता है ? नाम निशान कहाँ रहता है ? जो लोग कीड़े-मकोड़े की तरह कैसे भी शुभ-अशुभ कर्म करके कीट पतंगों की तरह अपनी जिन्दगी के दिन पूरे कर रहे हैं, वे अपना भी नाम अपने हाथ डुबाये जा रहे हैं, फिर उनसे बेचारे पूर्व पुरुषों को ही क्या आशा होनी चाहिए कि उनसे उनका नाम चलेगा ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिन्हें सन्तान प्राप्त है, उन्हें अपने उत्तर-दायित्वों के प्रति सजग होना चाहिए और बच्चों में सद्गुण उत्पन्न करने के लिए वही सद्गुण पहले अपने में उत्पन्न करने चाहिए जिन्हें हम बच्चों में देखना चाहते हैं। यह तथ्य भली प्रकार ध्यान में रखा जाना चाहिए कि "पर उपदेश कुशल" रहने मात्र से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। शिक्षा वही सार्थक होती है जो अपने आचरण के द्वारा दूसरों के अन्त:करण को प्रभावित करके दी जाती है। बच्चे डाँटने, लताड़ने से नहीं वरन् इस बात से प्रभाव ग्रहण करते हैं कि हमारे अभिभावक क्या करते हैं और किस प्रकार अपना जीवन बिताते हैं। परीक्षा के समय निरीक्षक जैसे छात्रों की गतिविधियों पर ध्यान रखते हैं, उसी प्रकार बच्चे अपने घर वालों की क्रियाओं, भावनाओं, दोषों और गुणों को अत्यन्त बारीकी में देखते-समझते रहते हैं और उनका अनुकरण करके प्राय: वैसे ही बन जाते हैं। इसलिये संतानोत्पादन द्वारा नाम और वंश चलाने की इच्छा करने वालों को यह पूरी तरह ध्यान रखना चाहिए कि कुसंस्कारी सन्तान से उनका वंश डूबेगा ही। इसलिए सन्तति को सुसंस्कृत बना सकने वाले सद्गुण सब से पहले अपने में उत्पन्न करें, तब वंश वृद्धि की बात सोचें।

जिन्हें सन्तान प्राप्त नहीं है, वे इस दृष्टि से अधिक भाग्यवान हैं। वे सहज ही ऐसे उत्तरदायित्व से बचे रहते हैं। यदि अपने को बालकों के सुशिक्षण के उपयुक्त नहीं भी बनाया है, अपने दोष नहीं भी सुधर सके हैं, तो उनका प्रतिफल उन्हें ही भोगना पड़ेगा। सन्तान को विरासत में वह दुर्गुण मिलने से बच्चों को तथा समाज को आपत्तियों का सामना तो न करना पड़ेगा। एक आदमी स्वयं भी अपराध करे और दूसरों से भी कराये, तो इन दोनों में वह अधिक अपराधी माना जायगा जो अपने साथ-साथ दूसरों को भी अपराधों की प्रेरणा देता है, नये अपराधी बढ़ाता है। गुरु को शिष्य के और माता-पिता को अपनी सन्तान के पापों का दशांश दण्ड भुगतना पड़ता है। सत्कर्मों का दशांश पुण्य भी उन्हें इसी आधार पर मिलता है कि अपने-अपने उत्तरदायित्व को कितना किस प्रकार निवाहा। पितरों को पिण्डदान देकर सद्गति कराने का रहस्य यही है कि सन्तान के शुभ कर्म रूपी पिण्डों का पुण्यफल पूर्वजों को मिले।

शास्त्रकारों ने पिण्डदान का एक अलंकारिक-भावनात्मक विचार इसलिए दिया है कि लोग परलोक में अपना सद्गति के स्वार्थ से भी सन्तान को पिण्डदान देने का अधिकारी-सत्कर्मकर्त्ता और सुसंस्कृत बनाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहें और सन्तान के प्रति अपने कर्तव्य-पालन में भूल न करें। हमें जानना चाहिए कि हर कोई अपने-अपने पाप-पुण्य का फल प्राप्त करता है। स्वयं कर्तव्य-घात कर रहे हैं तो नरक की ही तैयारी कर रहे हैं। संतान को सद्गुणी न बना सकना भी एक कर्तव्यघात है, जिसका प्रतिफल नरक मिलना होना चाहिए। जिनमें यह क्षमता नहीं है, उन्हें सन्तानोत्पादन की जिम्मेदारी से बचे रहने पर एक पाप से तो बचाव हो ही जाता है कि वे सन्तान को सुयोग्य न बना सके। तब उन्हें उतने अंश में नारकीय त्रास कुछ तो कम ही भुगतना पड़ेगा। इस दृष्टि से वे लोग नफे में ही रहेंगे जिनको किसी कारणवश सन्तानोत्पादन का उत्तरदायित्व नहीं उठाना पड़ा है।

जिन्हें ईश्वर के अनुग्रह से सन्तान का उत्तरदायित्व वहन नहीं करना पड़ रहा है, जिन्हें सन्तान प्राप्त नहीं है, उन्हें अपने को दूसरों की अपेक्षा अधिक सुखी एवं अधिक सौभाग्यशाली मानना चाहिए। उन्हें अपने आपको अभागा तो कभी भी नहीं मानना चाहिए।

सच तो यह है कि यह एक सुअवसर और सौभाग्य है कि जो शक्तियाँ बच्चों के लालन-पालन में लगतीं वे बच जाने से मनुष्य अधिक आत्मोन्नति कर सकता है। अधिक समाज सेवा में लग सकता है, आर्थिक दबाव और चिन्ताओं से बचा रह सकता है और बन्धन-मुक्त शान्तिमय जीवन व्यतीत कर सकता है। श्रेष्ठ नागरिकों का निर्माण करने की अपनी योग्यता न होने से कुसंस्कारी बालकों के उत्पादन का पाप भी अपने को नहीं लगता और सन्तान के अपयश में अपने को भी भागीदार बनाने का अवसर नहीं आता। बढ़ती हुई जनसंख्या आज सारे संसार के लिए एक भारी विपत्ति बनी हुई है। सबसे बड़ी सार्वभौम समस्या बढ़ती हुई जनसंख्या की ही है। इस विभीषिका का जैसे-जैसे विकराल रूप बढ़ता जायगा, उतनी ही उतनी मानव सभ्यता खतरे में पड़ती जायगी। इसलिए विचारशील लोग संतति नियमन के विभिन्न पहलुओं पर बहुत ध्यान रहे हैं और जो कुछ बन पड़ रहा है कर भी रहे हैं।

जिन्हें संयोगवश ही सही-सन्तानोत्पादन का उत्तर-दायित्व नहीं उठाना पड़ रहा है, वह अनजाने ही विश्व-मानव की एक भारी सेवा कर रहे हैं। उनके द्वारा खतरे का उतना समाधान तो होता ही है, जितने के लिए कि वे स्वयं उत्तरदायी होते। सन्तानहीनों में से किसी को भी अभागा नहीं मानना चाहिए। वस्तुत: वे दूसरों की अपेक्षा अधिक सौभाग्यशाली हैं उन्हें ऐसा ही मानना चाहिए। इससे दुखी होने का तो रत्तीभर भी कोई कारण नहीं है।

सन्तानहीन होना एक सौभाग्य भी

जिन्हें सन्तान नहीं उन दम्पत्ति को अपने मन में खिन्न तनिक भी नहीं होना चाहिए। वरन् अपने मन में अपेक्षाकृत प्रसन्न होना चाहिए कि ईश्वर ने उन्हे अनेक उत्तरदायित्वों से बचा दिया। बच्चों के लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा, स्वास्थ-सुरक्षा, विवाह-शादी, धधा-रोजगार आदि की अगणित चिन्ताएँ माता-पिता के सिर पर आती हैं। वे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि ठीक तरह निभाई न जा सकें तो चित्त को भारी ग्लानि और व्यथा होती हैं।

इस युग में ऐसी आशा करना व्यर्थ है कि सन्तान बड़ी होकर हमारी सेवा करेगी, सहारा बनेगी और सुख देगी। इन दिनों जो हवा चल रही है, उसमें पशु प्रकृति का ही बोलवाला है। पशुओं के बच्चे तभी तक अपने माता-पिता का सहारा लेते हैं जब तक कि वे अपने पैरों पर खड़े नहीं हो जाते। जब वे चलने-फिरने लगते हैं तो फिर माँ-बाप से अपना रिश्ता तोड़ लेते हैं और इस बात की परवाह नहीं करते कि उन्हें जन्म देने वाले जनक-जननी का क्या हाल है ? मनुष्य के बच्चे भी अब उसी रास्ते पर चल रहे हैं। जब तक वे अपने पैरों पर खड़े नहीं होते तभी तक उन्हें माता-पिता की जरूरत अनुभव होती है। विवाह हो जाने पर तो उनकी आँखें ही बदल जाती हैं।

कई व्यक्ति ऐसा सोचते हैं कि हमारे बाद हमारी सम्पत्ति, खेती, घर, जायदाद आदि का उपयोग कौन करेगा ? हमारा उत्तराधिकारी कौन बनेगा ? ऐसे विचार अत्यन्त संकीर्ण, अनुदार और स्वार्थी लोगों के लिए ही उपयुक्त हो सकते हैं। भारत जैसे गरीब देश में जहाँ एक-एक दाने के लिए तरसने वाले गरीबों की कमी नहीं, जहाँ बच्चे इसलिए अशिक्षित रह जाते हैं कि उनके माँ-बाप फीस और पुस्तकों के पैसे जमा नहीं कर पाते, जहाँ अगणित मनुष्य उचित चिकित्सा के अभाव में काल कवलित होते रहते हैं, जहाँ सद्भाव के प्रकाश के अभाव में मनुष्य घोर अन्धकार की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं, जहाँ हर क्षेत्र में सहायता की पुकार आ रही है, वहाँ यह सोचना कि हमारे पैसे का क्या होगा ? हमारी कमाई कौन खायगा ? यह प्रश्न ही कहाँ उठता है ? बेटा, साला, जीजा, मौसा, भतीजा ही अपनी कमाई को पाये और दूसरे अत्यन्त जरूरतमंद उसका कोई लाभ न लेने पायें, यह कैसी विलक्षण कठोरता है। पत्थर जैसे निर्दय मनुष्य ही ऐसी बात सोच सकते हैं।

हमारे चारों ओर ऐसी निम्न परिस्थितियाँ, आवश्यकतायें बिखरी पड़ी हैं, जिनके लिए यदि कोई व्यक्ति अपनी कमाई खर्च कर डाले तो उससे अनेकों पीड़ितों के आँसू पुछ सकते हैं, जनहित की दृष्टि से बड़ा उपयोगी कार्य हो सकता है। सत्कार्यों के लिए अपनी सम्पत्ति दे जाने वाले लोगों के नाम भी तो अमर होते हैं। उनका यश भी तो फैलता है, उन्हें स्वर्ग और पुण्य फल भी तो प्राप्त होता है, उनके त्याग का अनुकरण करने की दूसरों में इच्छा जाग्रत होने से सत्कार्यों की परम्परा भी तो प्राप्त होती है। इतनी बातों को तुच्छ मानने वाला और केवल अपने बेटे-पोते को ही अपनी कमाई का लाभ लेने की बात सोचने वाला कंजूस वस्तुतः भारी संकीर्णता के गर्त में पड़ा हुआ है। अच्छा हो, ईश्वर ऐसे संकीर्ण लोगों को सात जन्म में भी संतान न दें अन्यथा उनकी यह क्षुद्रता वंश परम्परा के हिसाब से अगली पीढ़ियों में बढ़ेगी तो संसार का सब प्रकार अहित ही होगा।

जर्मनी का अधिनायक सर हिटलर अविवाहित और संतान रहित मरा। सारा जर्मन राष्ट्र उसे फ्यूहरर अर्थात् 'पिता' कहता था। जर्मनी के हर नागरिक को उसने अपना बेटा माना। उदार दृष्टिकोण के सभी सत्पुरुष सारे मानव समाज को अपना परिवार मानते हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की उनकी दृष्टि होती है। अपने और पराये की आपापूती क्यों करनी, सभी तो अपने हैं। इतने असहाय मनुष्य इस संसार में मौजूद हैं कि अपनी सारी सम्पत्ति भी उनकी एक बहुत छोटी आवश्यकता को पूरी कर पावेगी। ऐसी दशा में यह सोचना कि हमारी सम्पत्ति को कौन खावेगा ? कौन लेगा ? उसका उत्तराधिकारी कौन बनेगा? कैसा उपहासास्पद विचार है।

सन्तान न होने पर किसी को गोद रख लेने का विचार राजगद्दी कायम रखने जैसी मनोवृत्ति कही जायगी। किसी एक ही लड़के को अपना सारा धन दे जाने से क्या तो अपना, क्या उस लड़के का और क्या समाज का लाभ होगा ? वरन् तीनों की ही इसमें हानि है। अपनी हानि इसलिए कि वह धन अपने हाथ से तो चला गया पर न पुण्य मिला, न यश। जिन्दगी भर की सारी कमाई यों ही गुड-गोबर हो गई। उस गोद में आए हुए लड़के की हानि यह कि-मुफ्त में मिला हुआ धन उसे कुमार्ग पर चलने की प्रेरणा देगा। ऐसे लड़के जिन्हें मुफ्त की दौलत मिली है आमतौर से व्यसनी, आलसी, उड़ाऊ और दुर्व्यसनी हो जाते हैं और अन्त में वह धन समाप्त हो जाने पर गरीबों की अपेक्षा भी अधिक दुख पाते हैं। समाज का अहित इसलिए कि वह सम्पत्ति यदि किसी सार्वजनिक सत्कार्य में लगती तो उससे कितनों को कितना लाभ मिलता। जरूरतमन्द उससे कितना लाभ उठाते पर संकीर्णता ने वह कुछ भी न होने दिया। जब अपने खून में पैदा हुए लड़के माँ-बाप की कोई परवाह नहीं करते तो यह आशा करना कि गोद लिए हुए लड़के सेवा करेंगे और नाम चलावेंगे, मूर्खों की दुनिया में सैर करने जैसी बात ही होगी।

कई बार इस संदर्भ में पैशाचिक कृत्य होते देखे गये हैं। कुचाली लोग उन सन्तानहीनों की भावनाएँ भड़का कर घोर जघन्य कर्म कराते हैं। देवी-देवताओं के नाम पर निरपराध मूक पशु-पक्षियों का बलिदान किये जाने की प्रथा जहाँ कहीं प्रचलित है, वहाँ आधे से अधिक जीव सन्तान होने की कामना या हो जाने पर उसकी मनौती चुकाने के लिए मारे जाते हैं। कई बार तो दूसरों के बच्चे चुराकर उनकी बलि भी अपने यहाँ सन्तान होने की कामना से करदी जाती है। ऐसे कितने ही मुकद्दमे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अदालतों में चल चुके हैं और इन अपराधियों को समुचित दण्ड मिला है। घरों में, खलिहानों में आग लगाने से भी कई लोग सन्तान होने की आशा करते हैं। अघोरी तांत्रिक और ऐसे ही पिशाचकर्मी लोग इन भोले किन्तु कामना के पीछे अन्धे लोगों से कुछ भी करा लेते हैं और लोक-परलोक का हर प्रकार नाश करते हैं।

सन्तान की कामना व्यभिचार की प्रवृत्ति को जन्म देती है। कई बार स्त्रियाँ अपने पति में कोई कमी होने की बात सोचकर गुप्त व्यभिचार की ओर उन्मुख होती हैं। पड़ौस के गुण्डे-बदमाश इस प्रकार के जाल उन भोली स्त्रियों पर फेंकते हैं, जो सन्तान के लिए अत्यधिक लालायित हैं। इसी कुचक्र में बहुधा उन्हें अपने सतीत्व से हाथ धोने का पश्चात्ताप भरा अनर्थ करना पड़ता है।

सन्तान न होने पर कई व्यक्ति दूसरा विवाह करने की बात सोचते हैं। उनके मन में यह बात समाई हुई होती है कि स्त्री में कोई दोष होने के कारण ही सन्तान नहीं हो रही है इसलिए दूसरा विवाह कर लेने पर यह उद्देश्य अवश्य पूरा हो जायगा। पर डाक्टरी परीक्षणों की रिपोर्ट इससे भिन्न है। उनके मतानुसार सन्तानहीन लोगों में से तीन-चौथाई पुरुषों का ही वीर्य दोषपूर्ण होता है। ऐसी दशा में बेचारी स्त्री को दोष दिया जाना और उसका तिरस्कार करके दूसरा विवाह करना सरासर अन्याय ही कहा जायगा। जिस घर में दो पत्नी रहती हैं, वह साक्षात नरक ही बना रहता है। जब दशरथ जैसे महापुरुष के घर में दो नारियाँ न निभ सकीं तो साधारण घरों में क्या निभेंगी ? पतिव्रत और पत्नीव्रत को धर्म शास्त्रों में समान महत्त्व दिया गया है। एक पति के रहते कोई स्त्री दूसरा पति रखने लगे तो वह पाप माना जायगा। इसी प्रकार एक पत्नी के रहते दूसरी और ले आना धर्म और न्याय की दृष्टि से घोर पाप ही माना जाता है। मध्यकाल के सामन्तवादी युग की अनेक नृशंसताओं में एक भारी पाप यह भी था कि पुरुष कई-कई स्त्रियाँ एक साथ रखने लगे थे। अब विचारशीलता का उदय होता जा रहा है और इस जघन्य प्रथा को सर्वत्र हेय माना जा रहा है। भारत सरकार ने अपने कर्मचारियों के लिए नियम बना दिया है कि एक पत्नी के रहते दूसरी लाने का अपराध करने वालों को नौकरी से निकाल दिया जायगा। सर्व साधारण के लिए भी ऐसा ही कानून अपेक्षित है। आशा है वह बनकर भी रहेगा।

दूसरा विवाह कर लेने पर यदि पुरुष सन्तानोत्पादन के अयोग्य हुआ तो दूसरी पत्नी को भय होता है कि कहीं तीसरा विवाह न कर ले इसलिए वह पर पुरुषों की ओर आकृष्ट होती है। पहली पत्नी का भी धैर्य टूटता है और वह भी सौत की देखा-देखी अनीति की ओर कदम बढ़ाती है। देखा यह गया है कि जहाँ सन्तान न होने पर आकाश शिर पर उठाया गया है वहाँ व्यभिचार जन्मा है और उस पाप से वह घर बर्बाद होकर रहे हैं सन्तान का सुख मिल भी जाय तो भी दूसरे विवाह के दुष्कर्म से उतनी अशान्ति एवं विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं, जो सन्तानहीन रहने की अपेक्षा हजारों गुनी अधिक होती हैं। कई माता-पिता अपने बच्चों को संतान न होने पर दूसरे विवाह पर जोर देते हैं और नाती को गोदी में खिलाने के लोभ से पुत्र-वधू के गले पर छुरी चलाते हैं। इन हृदयहीन अविवेकी माता-पिता को नरक और पाप का भय बुढ़ापे में भी पैदा नहीं होता, यह देख कर आश्चर्य होता है।

हर अभाव के लिए ईश्वर को कोसना और हर वस्तु प्राप्त हो ही जाय यह आकांक्षा करना, मानव प्राणी की सीमित मर्यादा का उल्लंघन करना ही है। असन्तोष में, जलन में नहीं, सन्तोष की शान्ति में ही चैन मिलता है। सन्तानहीन होने पर ही इसे एक ईश्वरीय कृपा मानकर सन्तोष की विचारधारा ही उपयुक्त और शान्तिदायक हो सकती है। असन्तोष में नष्ट होने वाली मानसिक शक्तियों को यदि रचनात्मक दिशा में मोड़ा जा सके तो सन्तानहीनों को बच्चों के लिए खर्च होने वाली शक्तियों का किसी अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य में खर्च कर अधिक उत्कृष्ट जीवन लाभ प्राप्त कर लेने का अवसर मिल सकता है।

सन्तान के लिए अधीरता क्यों ?

बहुत बार बहुत लोगों को विवाह के बहुत समय बाद तक सन्तान नहीं होती। यह कोई आश्चर्य का विषय नहीं है और न खेद अथवा दुःख का। किन्तु लोग विवाह के दो, ज्यादा से ज्यादा तीन साल तक तो प्रतीक्षा करते हैं, फिर बाद में बुरी तरह बेचैन होने लगते हैं। तरह-तरह की शंकायें तथा डर उनके मन में उठने लगते हैं। पत्नी तो बुरी तरह डरी-डरी, लज्जित सी, दबी-दबी रहती है। वह बच्चों वाली नारियों के बीच उठने-बैठने में संकोच अनुभव करने लगती है। उसे ऐसा लगता है मानो सभी उसे प्रश्नसूचक दृष्टि से देखती हैं और मन में उसके प्रति तिरस्कार का भाव रखती हैं। वह अपनी भावनाओं के आधार पर स्वयं अपने आप दूसरों की दृष्टि में गिरा हुआ अनुभव करने लगती है। ऐसी दशा में उसके वे चार-छह साल, जो दाम्पत्य जीवन का स्वर्ण समय हुआ करते हैं, बहुत पहले से ही कुढ़न में बीतने लगते हैं। दो साल के बाद ही दाम्पत्य जीवन का सारा रस, सारा उल्लास और सारा हास-विलास सूखने लगता है। जीवन नीरस, निस्सार मालूम होने लगता है।

ऐसे ही पुत्रेच्छुक जल्दबाजों का घर ठग, मक्कार तथा जालसाज, आडम्बरी ताक लेते हैं और तरह-तरह के लाभ उठाया करते हैं। ऐसे ही मूर्खों के ऊपर ओझा सयाने गुरु बन कर बैठ जाते हैं। ऐसे ही घरों में गृह कलह उत्पन्न करने में प्रवीण औरतों का मंत्रित्व चलने लगता है, ऐसे ही घरों में तरह-तरह के अन्धविश्वास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपना स्थान बना लेते हैं। ऐसे ही परिवारों की स्त्रियाँ ढीठ, दुःसाहिसिनी, वाचाल हो जाती हैं। इस परेशानी से ऊब कर नई बहुयें तक बड़ी-बूढ़ी बनकर अपनी समस्या हल करने की स्वयं कोशिश करने लगती हैं और सांसारिक अनुभवहीनता के मोटे मूल्य चुकाया करती हैं। पति परिवार की यह संतान विषयक जल्दी उन्हें कभी-कभी कर्त्तव्यान्ध तक बना देती है। पर सन्तानोत्सुक मूर्ख इस सब बातों पर दीर्घ दृष्टि से विचार नहीं कर पाते।

संतान के लिये यह जल्दी और यह बेचैनी उचित नहीं। यदि वह स्वाभाविक रूप से जल्दी हो जाती है, ठीक है, उसका समुचित रूप से पालन होना चाहिए। यदि जल्दी नहीं होती तो इतना विह्वल हो उठने की कोई जरूरत दिखलाई नहीं देती। अन्य देशों में बुद्धिमान लोग सन्तान के लिये जल्दी तो दूर जल्दी विवाह तक नहीं करते। वे पच्चीस के बाद तीस और पैंतीस तक विवाह करते हैं। फिर उसके बाद कोशिश करते हैं कि जल्दी संतान न हो।

इसका कारण यह है कि वे संतान होने की जिम्मेदारी समझते हैं। संतान की आवश्यकता उनके लिये केवल मिथ्या दम्भ अथवा वात्सल्य तुष्टि के लिए नहीं होती। वे संतान को राष्ट्र की अमानत मानते और जानते हैं कि यदि उसके होने पर वे उसे हर प्रकार से योग्य नागरिक न बना सके तो यह एक राष्ट्रीय अपराध होगा। वे इसलिए, इस उत्तरदायित्व से जहाँ तक सम्भव होता है बचने का प्रयत्न किया करते हैं। वे अपने अथवा अपने कुल के लिए संतान का मात्र होना भर ही आवश्यक नहीं समझते। किन्तु अपने समाज में, अपने देश में जहाँ वर्तमान जन-संख्या के लिए ही भोजन, वस्त्र तथा निवास की साधारण समस्या ही हल नहीं होती है, लोग संतान के लिए इतने व्यग्र होते रहते हैं और जल्दी से जल्दी उसे पाने के लिए आकाश-पाताल के कुलावे मिलाते रहते हैं। यह इसलिए कि संतान के महत् उत्तरदायित्व को नहीं समझते और न समुचित रूप से उनके पालन-पोषण की व्यवस्था को अपना कर्तव्य समझते हैं। वे तो सन्तान को उसके अपने भाग्य के आधार पर चाहते हैं। जो पैदा होता है अपना भाग्य, भाग तथा अंश लेकर पैदा होता है—परमात्मा जिसे पैदा करता है, उसका प्रबंध खुद करता है। पैदा हो जायेगा तो किसी तरह उल्टा-सीधा पल और जी जायेगा। इस प्रकार के उनके सिद्धान्त रहा करते हैं। ऐसे मूढ़ देश में यदि संतान पैदा होकर निकलती रहें तो इसमें क्या आश्चर्य ?

जो व्यक्ति दम्भ एवं व्यक्तिगत आत्म तोष को त्याग कर पिता होने के उत्तरदायित्व को ठीक-ठीक अनुभव करे और सोचे कि संतान होने पर उसके जीवन में एक बड़ा मोड़ आ जायेगा, तब वे उस स्वतन्त्रता से दाम्पत्य जीवन का निर्वाह नहीं कर पायेंगे, जिस स्वतन्त्रता से उसके न होने तक रह लेते हैं। सन्तान पर कोई अवांछनीय प्रभाव न पड़े, वह कोई अनुचित संस्कार ग्रहण न करले इसलिए हर कदम खूब सोच-समझ करके तथा फूँक-फूँक कर रखना होगा। अभी जो उनके कदम हिरन की तरह मुक्त तथा चपल हैं, फिर हाथी की तरह भारी तथा विचाराधीन हो जायेंगे। बच्चा होने की भूमिका से लेकर उसके योग्य होने तक न जाने कितनी जिम्मेदारियाँ व परेशानियाँ उठानी होंगी। आरम्भ से ही उसके पालन तथा विकास के लिये साधन जुटाने पड़ेंगे। शिक्षा-दीक्षा, व्याह-शादी और कार-रोजगार की न जाने कितनी समस्यायें सिर पर आ जायेंगी। जिनका निर्वाह हो सका तब तो अच्छा, नहीं तो सिर पर एक मुसीबत आ पड़ेगी।

आज यदि उनको देश के अभावों की भयंकरता और संतानों की असफलता ठीक से दिखाई पड़े और वे उन पर विचार करने की बुद्धिमानी करें, तो संतान के लिए इतने व्यग्र कदापि नहीं हों। किसी भी संतान वाले से जाकर पूछ सकते हैं कि उन्हें उनके होने से क्या सुख मिला ? निश्चय ही अधिकांश लोग रोते और भाग्य कोसते ही मिलेंगे। आज घर-घर जिस प्रकार निकम्मी तथा कार-रोजगार से रहित संतानें देखने में आती हैं, उन्हें देखकर कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति उसके लिए इतना व्यग्र न होगा कि सारा काम-धाम को छोड़कर सारा ध्यान उस ओर लगाये रहे और अपने को अभागा अथवा कुल का भविष्य अन्धकार में मानता रहे। आज की अयोग्य सन्तानें जितनी कुलतारिणी हो रही हैं यह सत्य किसी से छिपा हुआ नहीं है।

यह कितना जुल्म और कितनी ज्यादती है कि बहू के घर में आते ही उससे सन्तान की आशा की जाने लगती है। लोग उसे दो-चार साल भी सुख की श्वाँस लेकर जीने नहीं देना चाहते। उसके शरीर तथा यौवन को सुरक्षित नहीं रहने देना चाहते। क्या नारी का केवल यही उपयोग है कि वह होश सम्भालते ही सन्तानवाहिनी बनने लगे। यदि प्रकृति अथवा परमात्मा उसे कुछ दिन चैन की साँस लेने के लिए स्वतंत्र रखना चाहता है तो परिवार में बड़ी हाय-तोबा मच जाती है। उसकी वह सुविधा, वह सुख छीन लेने के लिए दुश्मन की तरह पीछे पड़ जाते हैं। दवा, टोटका, झाड़-फूँक ही नहीं अनेक आपरेशनों तक से उसका यौवन तथा स्वास्थ्य चौपट कर देते हैं। नारी भी एक सजीव प्राणी होती है कोई मशीन तो होती नहीं, जिससे उत्पादन पाने के लिए उसे काट-छाँट और ठोक-पीटकर ठीक कराया जाये। प्रकृति जब उसे इस योग्य समझती है भार सौंपती रहती है, मनुष्य को अधिकार नहीं उसको इस योजना में दखल देकर नारी का जीवन बर्बाद नहीं कर देना चाहिए । यदि नारी में इस प्रकार का कोई प्रकट रोग हो तो उसका उपचार ठीक है किन्तु सन्तान की जल्दी में उसकी काँट-छाँट करना ठीक नहीं। प्रगतिशील देशों में जो लोग अपने साधनों में जरा भी कमी समझते हैं, संतान उत्पन्न ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं करते और अनेक बार तो बहुत से दम्पत्ति उपायों द्वारा सन्तान निरोध कर अपना पूरा जीवन समाज तथा राष्ट्र की सेवा में समर्पित कर देते हैं। वहाँ ऐसे लोगों का बड़ा सम्मान व आदर होता है और उन को ऊँची दृष्टि से देखा जाता है। भारत जैसे देश जहाँ एक तो यों ही जनसंख्या बुरी तरह बढ़ती जा रही है, साधनों की कमी भयानक रूप से सामने खड़ी है और समाज-सुधार तथा राष्ट्र की सेवा के लिए अधिकाधिक कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है, वहाँ विवाह के दो चार साल तक सन्तान न हो तो न जाने कितनी व्यग्रता और व्याकुलता होने लगती है। यदि भारत के लोग आज सन्तान सेवा की अपेक्षा समाज सेवा की बढ़ी हुई आवश्यकता समझें और सन्तान का निरर्थक मोह छोड़कर अपना बचा हुआ समय समाज सेवा में लगाने लगें, तो उन्हें आदर-सम्मान के साथ-साथ एक ऐसा आत्मिक सुख मिले जो सन्तान होने से सैकड़ों गुना बढ़-चढ़कर हो। तब उन्हें सन्तान के लिये इस प्रकार की व्याकुलता अथवा व्यग्रता न रहेगी।

अनेक बार तो लोग दो-चार या अधिक से अधिक चार-छह साल तक सन्तान की प्रतीक्षा करने के बाद पत्नी को उसके अयोग्य मान लेते हैं और उसके रहते हुए भी दूसरा विवाह कर लिया करते हैं। नारी पर यह कितना बड़ा अपमान है।

एक सार्थक उदाहरण

आज की सामाजिक परिस्थितियों में सम्पन्न तथा स्वस्थ दंपत्ति सन्तान के उत्तरदायित्वों से मुक्त रहकर कार्य करें, तो वह समाज के लिए वरदान बन सकते हैं। युग निर्माण योजना की विचारधारा से प्रभावित बड़ी संख्या में सद्गृहस्थ इस सार्थकता की ओर चरण बढ़ा रहे हैं। प्रस्तुत उदाहरण से यह तथ्य स्पष्ट हो सकेगा।

भांगौल निवासी श्री गोरखप्रसाद के पिताजी मकान बनाने की ठेकेदारी करते थे। मकान बनाने की कला में वे निपुण थे। उस जमाने में इंजीनियर, ओवरसीयर तो सरकारी काम-काज ही करते थे। जनता के मकानों के नक्शे, उनकी रुचि तथा आवश्यकता के अनुरूप बनाना, मिस्त्री लोगों का ही काम था। वे ही विभिन्न शर्त और रेटों पर बनाने या बनवाने का ठेका लेते थे। मिस्त्रीगीरी आजकल की ठेकेदारी से मिलती-जुलती सर्वसाधारण के लिए सरल एवं उपयोगी क्रिया पद्धति थी। वे मिस्त्रीजी के नाम से प्रसिद्ध थे। इस कार्य से उनने अच्छा यश, विश्वास और पैसा कमाया था।

गोरखप्रसाद उनके इकलौते बेटे थे। दसवीं कक्षा तक पढ़ाकर उन्हें अपने ही साथ काम में लगा लिया। दस-पाँच साल के अनुभव से वे भी पक्के मिस्त्री हो गये। काम अच्छे रेटों पर और पर्याप्त मात्रा में मिल जाता था। इसलिए आर्थिक लाभ पिताजी के सामने से भी अच्छा होने लगा। विवाह अच्छे खानदान की रूपवती लड़की से हो गया। पिता, पत्नी और स्वयं तीन ही प्राणी घर में थे। सम्पन्नता दिन-दिन बढ़ती ही गई। ७० वर्ष की उम्र पर पहुँचते-पहुँचते पिताजी का स्वर्गवास हो गया।

विवाह हुए १५ वर्ष बीत गये। उम्र ३५ के करीब पहुँच गई पर सन्तान कोई नहीं हुई। हमारे देश में गृहस्थ की सबसे बड़ी सफलता सन्तान होना मानने की रूढ़ि चली आती है। सन्तान न होना दुर्भाग्य अथवा पाप दोष माना जाता है, इतनी आयु तक सन्तान न होने की बात गोरखप्रसादजी के मित्रों और सम्बन्धियों में चर्चा का विषय बन गई। दवा-दारू, झाड़-फूँक बहुत हुई पर कोई परिणाम न निकला तो दूसरा विवाह कर लेने अथवा किसी सम्बन्धी का लड़का गोद रख लेने के प्रस्ताव सामने आने लगे। सम्पन्नता को देखकर कितने ही व्यक्ति अपनी लड़कियाँ उनके लिए ब्याहने को और कई अपने बच्चे गोद देने को तैयार फिर रहे थे। पति का मन टूटे नहीं यह सोचकर पत्नी ने भी इन दोनों बातों के लिए भारी मन तथा दु:खी अन्त:करण होते हुए भी शब्दों में ऐसा कर लेने की स्वीकृति दे दी। लोग तरह-तरह का चबैया करें और इस पाप का सारा दोष उसी के मत्थे पर मढ़ें, यह उस बेचारी को भी बहुत खलता था। स्वीकृति देकर वह अपने ऊपर थोपा जाने वाला कलंक धोना चाहती थी।

गोरखप्रसाद चरित्रवान् व्यक्ति हैं। गम्भीर, दूरदर्शी, विचारशील और साहसी। लोग क्या कहते हैं, क्यों कहते हैं, इन सारी बातों का उन पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। वे केवल उचित को ही महत्त्व देते हैं, दुनिया की बकवास में से वे उतना ही ग्रहण करते हैं जो उचित एवं तथ्य-पूर्ण है। दूसरे विवाह और किसी का बच्चा गोद रखने के दोनों ही प्रस्ताव उन्हें मूर्खतापूर्ण लगे। जबकि देश में न रहने को जगह है और न खाने को अन्न तब यदि किसी को सन्तान नहीं होती तो इसे दुर्भाग्य की नहीं सौभाग्य की बात मानना चाहिए। इस प्रकार जबकि लाखों-करोड़ों अनाथ और अनाथालय के बच्चे अनावश्यक स्नेह और सहायता के बिना शिक्षा तथा प्रगति से वंचित पड़े हैं, तो किसी एक ही लड़के को अपनी सारी सम्पत्ति और भावना देने से क्या लाभ ? अपना बच्चा होता तो उसके कर्तव्य सिर पर आते ही पर जब ईश्वर ने वह झंझट सिर पर नहीं डाला तो अधिक आवश्यकताग्रस्त बालकों की सहायता करके अपना वात्सल्य विकसित क्यों न किया जाय ?

इस प्रकार की विचारधारा उनके मस्तिष्क में घूमने लगी। लोगों के कथन की निस्सारता और अपनी मान्यता की उपयोगिता पर उनका विश्वास जम गया। फलत: उन्होंने सन्तान वाले प्रश्न पर चर्चा चलाने वाले हर व्यक्ति से स्पष्ट और खरे शब्दों में यह कह दिया कि वे न तो दूसरा विवाह करेंगे और न किसी का बच्चा गोद रखेंगे। उन्हें अपनी वर्तमान स्थिति पर पूरी तरह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सन्तोष है। बच्चों के लालन-पालन और झंझट से बचे हुए समय, धन और मस्तिष्क को हम पति-पत्नी अपने मनोविनोद के कार्यों में तथा अध्ययन और सेवा क्रम में व्यवस्थित रूप-रेखा बनाकर उपयोग करेंगे।

जो लोग अपने को हितैषी सिद्ध करने के लिए ऐसे-ऐसे प्रस्ताव करते थे वे गोरखप्रसाद की उच्च भावना को देखकर अवाक् रह गये। पत्नी पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। वैसे तो वह सदा से ही पति की प्रसन्नता में अपनी प्रसन्नता सँजोये रहती थी, पर इस बार उनके निश्चय को सुनकर उसने पति को साक्षात् देवता के रूप में देखा और उसमें परमेश्वर के दर्शन करने लगी। चरित्रवान् और उदार व्यक्ति ही तो इस संसार में नर-नारायण कहे जाते हैं।

पति-पत्नी ने मिलकर भावी-जीवन की एक दीर्घकालीन रूपरेखा बनाई। वे दोनों साथ-साथ मिलकर गृहकार्य निपटाया करेंगे। पति ठेकेदारी पर जाया करेगा। पत्नी स्कूल में भर्ती होकर अपनी आगे की शिक्षा चलावेगी। रात को दोनों मिलकर समाज सेवा के विविध विधि कार्यों में संलग्न संस्थाओं के प्रोग्रामों में भाग लेने जाया करेंगे। रचनात्मक सेवा कार्य करने वाली संस्थाओं को रात के दो घण्टे देने की सूचना उनने दी थी, तो पति को पुस्तकालय में और पत्नी को सिलाई सिखाने वाले स्कूल में समय देने का अनुरोध आ गया, वे दोनों उसमें लग भी गये। पत्नी की शिक्षा तीन वर्ष तक ठीक क्रम से चली, उसने मैट्रिक द्वितीय श्रेणी में पास कर लिया। यह तीन वर्ष दोनों ने इतनी प्रफुल्लता और सात्विक उत्साह के साथ बिताये जितने कि जीवन भर में कभी भी नहीं बीते थे। दोनों का पारस्परिक प्रेम, सहयोग, सन्तोष और उल्लास देखते ही बनता था।

विचारों के परिवर्तन से जीवन का आन्तरिक और बाह्य सारा ही क्रम कैसे बदल जाता है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण गोरखनाथ दम्पत्ति के क्रिया-कलाप में देखा जा सकता था। पत्नी के मैट्रिक पास करने की खुशी में उनने सत्यनारायण की कथा, गायत्री यज्ञ और मित्रों के प्रीतिभोज का आयोजन किया। इसी अवसर पर उन्हें वह घोषणा भी करनी थी, जो दोनों ने मिलकर काफी विचार-विमर्श के बाद एक वर्ष पूर्व ही निश्चित कर रखी थी।

कुल मिलाकर नकदी तथा जेवर के रुपये साठ हजार की सम्पत्ति उन लोगों के पास थी। मासिक आमदनी करीब ४००/-। रहने के लिये दो बड़े मकान कथा के उपरान्त उपस्थित लोगों के सामने गोरखप्रसादजी ने घोषणा की कि हमारी यह सारी सम्पत्ति परित्यक्ताओं, विधवाओं तथा असहाय महिलाओं को स्वावलम्बी बनाने की शिक्षा देने वाले विद्यालय के लिए समर्पित है। छोटा मकान अपने रहने के लिए तब तक रखेंगे जब तक जीवित हैं, हम लोगों के न रहने पर वह भी विद्यालय की सम्पत्ति होगी। लगभग ४००/- मासिक की आमदनी में से १००/- अपने खर्च के लिए रखेंगे और जो कुछ बचेगा सो विद्यालय को दिया करेंगे। इस घोषणा को सुनकर उपस्थित सभी मित्र-सम्बन्धियों का मस्तक इनके लिए श्रद्धा से झुक गया।

प्रौढ़ महिलाओं को स्वावलम्बी बनाने के लिए सिलाई आदि उद्योग तथा प्राइवेट मैट्रिक कथा शिक्षा देने वाला यह विद्यालय गत ४ वर्ष से चल रहा है। गोरख प्रसाद की पत्नी इण्टर पास कर चुकी हैं वे स्वयं पढ़ाती तथा सिखाती हैं। उच्च घरों की कई सुशिक्षित ४ महिलाएँ इस विद्यालय के लिए सेवा भाव से समयदान करने आती हैं। इस प्रकार चार अधूरे और एक पूरा समय देने वाली पाँचों महिलाएँ मिलकर बड़ी अच्छी तरह विद्यालय चला लेती हैं। स्थानीय महिलायें पढ़कर घर चली जाती हैं और बाहर से आई हुई उस मकान में रहती हैं। जो अपने घर से भोजन खर्च नहीं मँगा सकतीं, वे विद्यालय की ओर से जो आटा, दाल का भंडार रहता है, उसी में से मिल-जुल कर भोजन बनाकर अपना काम चलाती हैं।

इन दिनों ४२ महिलाएँ विद्यालय में पढ़ रही हैं। गत ४ वर्षों में ३० स्वावलम्बी बनकर अपनी आजीविका कमाने योग्य बन चुकी हैं। गोरखप्रसादजी ने इसे सार्वजनिक संस्था के रूप में रजिस्टर्ड करा दिया है और सरकारी तथा गैरसरकारी सहायता प्राप्त कर इसे एक ऐसे विशाल विद्यालय के रूप में परणित करने जा रहे हैं, जिसमें कम से कम १०० महिलाओं की शिक्षा व्यवस्था सम्भव हो।

सन्तान का न होना अभिशाप न रहकर इस प्रकार का वरदान बनाया जाना हर एक के लिए सम्भव है। आवश्यकता है थोड़े से विचारपूर्ण साहस की।

कन्या की उपेक्षा न हो

किन्हीं माता-पिता को इसलिए खिन्न नहीं होना चाहिए कि उन्हें केवल कन्यायें ही हैं पुत्र नहीं। पुत्र की उपयोगिता एवम् आवश्यकता के पीछे व्यक्तिगत स्वार्थपरता एवम् एक अन्धकारमय भावना की ही प्रधानता है।

सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा के जमाने में परिवार को जब एक स्वतंत्र संगठन के रूप में विकसित होने की गुञ्जाइश थी, तब पुत्रों की अधिकता परिवार की आर्थिक, सुरक्षात्मक एवम् सामाजिक स्थिति मजबूत करने की दृष्टि से उपयोगी होती थी। लोगों में एक दूसरे के प्रति प्रेम, सद्भाव, उदारता एवं सहनशीलता का दृष्टिकोण रहता था। इसलिए पुत्र-पौत्रों से उनकी पत्नियों और पुत्रों से भरा हुआ परिवार सुख-शान्ति के सुगन्धित पुष्पों से भरे उद्यान जैसा दीखता था, उस जमाने में पुत्रों की उत्पत्ति पर हर्ष मनाया जाना उचित भी था। कृषि और पशुपालन को बड़े

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिवार अच्छी तरह कर सकते थे, जिनमें पुरुषों की अधिकता रहती थी। माता-पिता को अपने पुत्र-पौत्रों से वृद्धावस्था में जब सेवा, सम्मान प्राप्त होता था, तब आड़े समय के लिए सहारा समझ कर भी उनका महत्त्व माना जाता था।

आज सोचने का ढंग दूसरा हो गया है। जिनके पास बड़ी-बड़ी जोतें हैं, उन कृषकों के अतिरिक्त और कोई वर्ग सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथा को अपनाने के लिए तैयार नहीं। भाई-भाई से तो अलग होते ही हैं-विवाह होते ही पत्नी को लेकर माता-पिता से भी अलग हो जाने वाले युवकों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। शिक्षितों को आमतौर से नौकरी करनी पड़ती है, उनकी बदली भी होती रहती है। इसलिए स्वभावतः उन्हें पत्नी को लेकर अलग रहना है। जहाँ इकट्ठे रहते हैं वहाँ भी मत-भिन्नता, असहिष्णुता एवं स्वार्थों की आपाधापी के कारण खींचतान बनी रहती है। बाहर से इकट्ठे रहने का क्रम बनाये रहने पर भी बड़े परिवारों में भीतर ही भीतर अलगाव की भावना भरी रहती है और वे यही सोचते रहते हैं कि वह सुदिन कब आवेगा जब अलग घर बसाकर रहेंगे और स्वच्छन्द जीवन बिताने का अवसर मिलेगा।

ऐसे स्वच्छन्दतावाद के युग में वे कारण, तथ्य और तर्क निरर्थक हो जाते हैं, जो सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथा के युग में आदर्श प्रतीत होते थे। पुत्रों की अधिकता किसी जमाने में उपयोगी थी, पर आज वैसा कहाँ है ? भरण-पोषण, शिक्षा, विवाह और फिर आजीविका में लगाने तक का क्रम इतना महँगा और सिर दर्द से भरा हुआ है कि कई पुत्रों की उपस्थिति कन्या से कहीं अधिक महँगी पड़ती है। समर्थ हो जाने पर उनका तथा उनकी बहुओं का जो रवैया रहता है, उससे भी किसी माता-पिता को प्रसन्नता नहीं होती। सच तो यही है कि असन्तोष ही बढ़ता है। जिनको सन्तान नहीं है उनकी और जिनको बहुत बेटे-पोते हैं उनकी तुलना की जाय तो वे लोग हजार गुने अधिक सुखी मिलेंगे, जिन्हें सन्तान नहीं है। तृष्णा का कोई अन्त नहीं, आकाश कुसुम पाने के लिए कोई रोया करे तो इसका कोई उपाय नहीं। पर आज की स्थिति में तथ्य यही है कि जिसे जितने अधिक पुत्र हैं, वह उतना ही अधिक बन्धनों में ग्रसित व्यक्ति की तरह अगणित चिन्ताओं का उत्पीड़न सह रहा होगा। किन्हीं बिरले सौभाग्य-शालियों की बात अलग है, उन्हें अपवाद ही माना जा सकता है।

परिवार की सुसम्पन्नता और सुव्यवस्था से जहाँ तक इस युग की परिस्थितियों का सम्बन्ध है, वहाँ तक सबसे अच्छा वह है जिसे कोई सन्तान नहीं। देश की आर्थिक परिस्थितियों की माँग भी यही है कि अब संतानोपार्जन को सीमाबद्ध किया जाय। व्यक्ति को अपने विकास का अवसर भी छोटे परिवार में ही मिल सकता है। इसलिए उन्हें ईश्वरीय कृपा का विशेष भाजन मानना चाहिए, जिन्हें संतान नहीं है। व्यक्तित्व एवं प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए ऐसे व्यक्ति किन्हीं अनाथ-असहाय बालक को अपने घर में रखकर उसका पालन-पोषण कर सकते हैं। इस प्रकार उन्हें सन्तान पालन का सुख मिल सकता है और परमार्थ का श्रेय भी उपलब्ध हो सकता है। निःसन्तानों से कुछ कम भाग्यवान् वे हैं जिन्हें केवल कन्यायें ही कन्यायें हैं। कुछ समय सन्तान पालन का हर्षोल्लास अनुभव करने के बाद उसे ससुराल में भेज देने से जल्दी से अभिभावकों का उत्तरदायित्व हल्का हो जाता है और वे निश्चिन्तता का अनुभव करते हुए वृद्धावस्था को शान्ति प्राप्ति एवं सत्प्रयत्न में लगा सकते हैं।

जिन्हें भगवान् ने पुत्र दिये हैं उनके लिये यही उचित है कि भावनापूर्वक उनका लालन-पालन करें और तत्परतापूर्वक उनकी शिक्षा-दीक्षा के साधन जुटायें। राष्ट्र माता के सुसंस्कृत नागरिक होने का पुण्य-परमार्थ उन्हें मिल सके। अपनी सुन्दर प्रतिकृति के रूप में लोक-सेवी सुसंस्कृत नागरिक पीछे छोड़ जाना किसी सद्गृहस्थ का सच्चा स्मारक हो सकता है। यह सोचकर पुत्रवानों को पूरा-पूरा ध्यान उनके आत्मिक विकास पर देना चाहिये। बच्चों के लिये बहुत धन छोड़ जाना या ऊँची पढ़ाई पढ़ाकर ज्यादा पैसे की नौकरी से लगा देने से कोई पिता-पुत्र ऋण से उऋण नहीं हो सकता। सुसंस्कृत, सज्जन एवं सद्गुणी सन्तान बन सकी तो ही पिता-माता का प्रजनन श्रम सार्थक माना जा सकता है।

जिन्हें पुत्र नहीं केवल कन्यायें हैं उन्हें ईश्वर की इस महान अनुकम्पा को सौभाग्य ही मानना चाहिये। दुःखी या निराश होने का तो इसमें कोई कारण है ही नहीं। जो लोग इसलिए दुःखी हैं कि उन्हें कन्यायें ही क्यों प्राप्त हुईं, उन्हें अविवेकी के अतिरिक्त और क्या कहा जाय ? चूँकि लोग यह समझते हैं कि पुत्र महत्त्वपूर्ण और कन्या निरर्थक है—इसलिये हम भी वैसा ही समझें यह बिल्कुल भी आवश्यक नहीं।

राष्ट्र निर्माण में नारी का योग अधिक है। पुरुष में कठोरता और दुष्टता अधिक रहती है। आज की परिस्थितियों में यह दोष अपनी चरमसीमा तक पहुँच चुका है। इस समय करुणा और सहृदयता की आत्मदृष्टि ही विश्व शान्ति का उद्देश्य पूरा कर सकती है। इस प्रयोजन की सिद्धि के लिये युग की पुकार यह है कि पुरुष का वर्चस्व घटना चाहिए और नारी का वर्चस्व बढ़ाना चाहिए। भावनात्मक सन्तुलन का, सच्ची उन्नति का यही मार्ग है। राजनीति, शिक्षा, सेवा, अर्थ का सञ्चालन क्रम यदि पुरुष के हाथ से छीनकर स्त्री के हाथ में दे दिया जाय तो आज की विभीषिकाएँ जो मानव सभ्यता को निगल जाने के लिये मुँह बाये बैठी हैं, देखते-देखते सरल हो सकती हैं। मितव्ययितापूर्वक घर खर्च चलाने वाली नारी जब राष्ट्र कोष की मन्त्राणी होगी तो एक पैसा भी शासन कार्यों में अपव्यय न हो सकेगा। जब ये विदेश मन्त्री होंगी तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूसरे देशों के नागरिक भी उन्हें वैसे ही प्रिय लगेंगे जैसे ससुराल में रहते हुए पितृग्रह के भाई-भतीजों का उन्हें ध्यान रहता है। ऐसी मनोभावना से शोषण और आक्रमण की नीति कैसे अपनाई जा सकेगी ? अपने सुहाग और बच्चों का निरन्तर मंगल चाहने वाली नारी जब युद्ध मन्त्री होगी तो वह पड़ौसी देश को अपनी बहिनों का सुहाग और बच्चों की रक्त स्नान करने की क्रूरता पर कैसे कटिबद्ध हो सकेगी ? जो कार्य तोपें नहीं कर सकतीं यह उनकी करुणा के द्वारा हल हो सकेगा। सीमा-संघर्ष जैसी समस्यायें तब कहाँ रहेंगी ? महिला शिक्षा मन्त्री बने तो वह सबसे पहले वही वातावरण उत्पन्न करेगी जिसमें पढ़कर बच्चे अपने परिवार के लिये, माता, पत्नी, बहिन और पुत्री के लिये सहृदय एवं उदार बन सकें। राजनीति को धर्म नीति में परिणत करने का प्रयोग पुरुषों द्वारा सफल न हो सका तो अब उसका परीक्षण नारी के हाथों सत्ता सौंप कर किया जाना चाहिये।

साहित्य सृजन का कार्य नारी के हाथों सौंप कर हम अश्लील, निर्लज्ज, वासनात्मक, कुत्सित रचनाओं की समाप्ति के सम्बन्ध में निश्चिन्त हो सकते हैं। चिकित्सक बनकर वे अपनी स्वाभाविक करुणा से रोगियों के प्रति अधिक सहृदयतापूर्ण व्यवहार कर सकेंगी। शिक्षा का कार्य उनके हाथ में रहे तो बालकों में सहृदयता और सज्जनता के संस्कार ही उत्पन्न होंगे। हमें विश्वासपूर्वक आशा करनी चाहिये कि नारी के हाथों ही मानव-जाति का भविष्य उज्ज्वल बनेगा। उनकी सुसंस्कृति बढ़ने से ही उनके शरीर और मन का रस पीकर उन्नत होने वाले बच्चे सुसंस्कृत बनेंगे। नारी का जितना उत्कर्ष होगा, नर का भविष्य भी उतना उज्ज्वल बनता जायगा। इस उभय पक्षीय प्रगति से ही संसार में सुख-शांति का वातावरण उत्पन्न हो सकेगा।

युग निर्माण परिवार में ईश्वर की उपासना नारी रूप में की जाती है। गायत्री को माता की आकृति में पूजा-अर्चना करने का उद्देश्य नारी मात्र के प्रति अधिक श्रद्धा एवं अधिक समान उत्पन्न करना भी है। अनुष्ठानों के अन्त में तथा नवरात्रियों में कन्या-पूजन, कन्या-भोजन की प्रथा के मूल में भी यही उद्देश्य छिपा हुआ है। वैदिक सभ्यता में नारी को हर दृष्टि से अधिक पूज्य, अधिक पवित्र, अधिक श्रेष्ठ एवं अधिक महान माना गया है।

नव युग की इस निर्माण बेला में नारी के प्रति अपना दृष्टिकोण ऊँचा उठाना ही होगा ताकि वह अपना समुचित विकास कर सके और उस विकास का महत्त्वपूर्ण लाभ समस्त संसार को मिल सके। यह कार्य हमें पुत्र और कन्या के बीच माने जाने वाले अन्तर को समाप्त करते हुए आरम्भ करना चाहिये।

पुत्र और कन्या की तुलना

यह सृष्टि नर और नारी दोनों के संयोग से चल रहीं है। दोनों की ही समान आवश्यकता, उपयोगिता एवं महत्ता है। इसलिए श्रेय और सम्मान भी दोनों को समान ही मिलना चाहिये। हमारा निज का अस्तित्व माता के बिना सम्भव न हुआ होता। पत्नी के बिना हमारा जीवन क्रम ही अस्त-व्यस्त रहता है। उनकी उपयोगिता हमारी दृष्टि में स्पष्ट है। बाहरी क्षेत्र में कोई मित्र कितने ही उपयोगी क्यों न हों, व्यक्तिगत जीवन में अत्यन्त निकटवर्ती-आत्मीय जैसे समझे जाने वाले सम्बन्धियों में माता और पत्नी ही प्रमुख होती हैं। नारी के बिना नर का तो अस्तित्व ही न सम्भव है और न विकास ही हो सकता है। ऐसी दशा में पुत्री के जन्म पर शोक मनाया जाना, उसे दुर्भाग्य समझा जाना एक मतिभ्रम ही माना जा सकता है।

पुरुष का तीन चौथाई सौभाग्य-दुर्भाग्य नारी से, उसकी माता से या पत्नी से—नापा जा सकता है। मनुष्य जाति का भविष्य नारी की उत्कृष्टता एवं निकृष्टता से सम्बन्धित है। नारी की स्थिति जितनी ही विकसित होगी उतना ही मानव-समाज सुविकसित हो सकेगा। प्रजनन का कठिन उत्तरदायित्व नारी के स्वास्थ्य पर भारी आघात पहुँचाता है, इसलिये उनकी मृत्यु संख्या भी पुरुषों की अपेक्षा अधिक रहती है। जिस तरह का प्रतिबन्धित जीवन उन्हें बिताना पड़ता है, उसमें अकाल मृत्यु एवं अल्पायु का प्रसार भी अधिकतर उन्हीं पर होता है। ऐसी दशा में नर-नारी की संख्या—सृष्टि-संतुलन ठीक रखने की दृष्टि से भी लड़कों की अपेक्षा लड़कियों का जन्म अधिक होने लगे और लड़कियाँ घट जायँ तो एक ऐसी विश्वव्यापी विपत्ति सामने आ खड़ी होगी, जिसका कोई हल ही न निकल सके।

(१) 'पुत्र का दिया हुआ पिण्डदान पितरों को मिलता है, पुत्री का नहीं।'

(२) 'पुत्र से नाम चलता है पुत्री से नहीं।'—यह मान्यतायें नितान्त मूर्खतापूर्ण हैं। तथ्य यह है कि आपका दिया हुआ अन्न-दान, पिण्डदान अपने को मिलता है, दूसरे का दिया हुआ दूसरे को नहीं मिल सकता। यदि पिता दुष्ट-दुरात्मा रहा है तो उसे दुर्गति प्राप्त होगी। बेटे का किया पुण्य उसके किसी काम न आवेगा, इसी प्रकार यदि मनुष्य सज्जन रहा है तो उसको पुत्र न होने पर भी, पिण्ड न देने पर भी सद्गति ही प्राप्त होती है। अनेकों व्यक्ति ब्रह्मचारी, अविवाहित या सन्तानहीन मरते हैं। क्या वे इसीलिए नरक में पड़ेंगे कि बेटा पिण्ड-श्रद्धा या तर्पण करने के लिए नहीं है ? इन शुभ कर्मों का भी महत्त्व है। पर उनके करने पर मुख्य लाभ श्राद्ध करने वाले श्रद्धालु पुत्र को ही मिलता है। श्रद्धा की सुगन्धि से उन पितरों की आत्मा सन्तोष एवं तृप्ति लाभ करती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिया तो जिसने है फल तो उसी को मिलेगा, कोई किसी के पाप-पुण्य में भागीदार नहीं बन सकता। आत्मा अपनी ही सज्जनता-दुर्जनता से सद्गति एवं दुर्गति की भागी बनती है। इस शाश्वत सत्य को समझने वाला इस सभ्यता को कैसे स्वीकार करेगा कि बेटे के पिण्डदान बिना पितरों की सद्गति न होगी।

वंश चलने वाली बात उससे भी परले सिरे की भ्रान्ति है। अपनी दस पीढ़ी के पूर्वजों के नाम तक हमें याद नहीं होते, उनके स्वरूप और कर्मों का तो स्मरण ही किसे होगा ? जब अपने वंशजों को, अपने ही पुरखों को जानकारी इतनी जल्दी विस्मरण हो जाती है तो दूसरों की दृष्टि में किसी वंश का चलना, न चलना महत्त्व ही क्या रखता है ? एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी प्रायः २५ से भी कम वर्षों में उत्पन्न हो जाती है। कई बार तो अठारह वर्ष तक के लड़के पिता बनते देखे गये हैं। औसत २५ मानें तो दस पीढ़ी २५० वर्षों की होती है। नाम और यश तो पाँच पीढ़ी का भी याद नहीं रहता। इस हिसाब से १८ × ५ = ९० वर्षों में ही लोग बाप-दादों को भूल जाते हैं। पर यदि २५ वर्षों में पीढ़ी के होने और १० पीढ़ी में भूलने की बात भी मान ली जाय तो २५ × १० = २५० वर्षों में वंश चलने की बात समाप्त हो जाती है। इतने थोड़े दिन तो कोई कुँआ, बाबड़ी, बरगद या खजूर का पेड भी नाम चला सकता है।

हम स्वयं अपने बाप-दादों का क्या नाम चलाते हैं ? केवल सरकारी कागजों में बल्दियत लिखी जाती है। विवाह के समय शाखोच्चार में तीन पीढ़ी के नामों की चर्चा कर दी जाती है। पितृपक्ष में कोई श्राद्ध-तर्पण करता हो तो भी दो-तीन पीढ़ी के पूर्वजों का स्मरण कर लिया जाता है। इन बातों को इतना महत्त्व नहीं दिया जा सकता है कि इन्हें 'वंश चलाना' कहा जा सके। जहाँ तक पुत्रों द्वारा कुल चलने और परलोक सुधरने की आशा का प्रश्न है, वह भी कोई महत्त्वपूर्ण बात नहीं है। परलोक केवल अपने सत्कर्मों से ही सुधरता और बनता है। कोई किसी के परलोक को बना-बिगाड़ नहीं सकता। लोक में पिता के नाम पर पुत्र द्वारा जो कुछ दान-पुण्य, पिण्ड-पारायण, तर्पण-श्राद्ध किया जाता है, वह सब पिता के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने का एक ढंग है। पुत्र का अपना सत्कर्म है, जिसका फल वह स्वयं पायेगा, इससे पिता के परलोक का कोई सम्बन्ध नहीं है। जिस प्रकार अन्य देवताओं की पूजा-अर्चा की जाती है उसी प्रकार पिण्ड-तर्पण आदि पितरों की पूजा विधि है। क्योंकि हमारे गुरुजन पूजनीय ही होते हैं और शरीरोपरान्त उन्हें देवता की योनि में माना जाता है।

जहाँ तक वंश चलने का प्रश्न है यह तो आये दिन देखा जाता है कि आज के लड़के कितना तो नाम चलाते हैं और कितना वंश ऊँचा करते हैं ? वंश परम्परा का महत्त्व तो तब है कि लड़के सत्कर्म करते हुये आयें और जायें। अयोग्य एवं आचरणहीन पुत्रों की लड़ी से तो कुल के डूबने की ही आशंका रहती है। फिर पुत्रों से नाम एक दो पीढ़ी ही तो चलता है। एक दो पीढ़ी बाद लोग पूर्वजों के नाम तक भूल जाते हैं, तो इस प्रकार दस-बीस या सौ-पचास साल पुत्रों द्वारा बल्दियत या दर बल्दियत विदित कराने के लिए इतना पागल होने में कोई बुद्धिमानी तो नहीं प्रतीत होती और कहीं पुत्र निकम्मे और नालायक हुए, जैसाकि आज की परिस्थितियों में असम्भव नहीं है, तब तो नाम चलवाने की बजाय नाम छिपाते ही बनता है।

कुल को उज्ज्वल करने की इच्छा है, नाम चलाने की भावना है तो पुत्रों की क्यों प्रतीक्षा की जाय और क्यों उस पर निर्भर रहा जाय ? क्यों न स्वयं अपने आप ऐसे सत्कर्म, ऐसे सेवा कार्य, ऐसा लोक मंगल कर जाया जाये, जिससे सदियों तक लोग नाम लेते रहें। क्यों न ऐसे स्मारक, निदर्शन और उदाहरण छोड़े जायें कि लोग सदा सर्वदा याद करते रहें। लड़के होने पर जो पैसा उनके पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा, शादी-व्याह में खर्च करना होता, उसे कोई भी बुद्धिमान सन्तानहीन सावधानी से बचाकर कोई पाठशाला, धर्मशाला, पुस्तकालय, कुँआ, बाग-बगीचा, संस्था-कोष, मन्दिर आदि कोई भी स्थापना करा सकते हैं, जिससे न जाने कब तक उनका अपना नाम जीवित रहे और न जाने कितना पुण्य लाभ हो जिसमें लोक और परलोक दोनों ही बन सकते हैं।

उन पुत्रों पर अनिवार्य रूप में खर्च होने वाले पैसे से अनेक निर्धन विद्यार्थियों को पढ़ाया जा सकता है, अनाथों का पोषण किया जा सकता है, विधवाओं को उद्योग दिया जा सकता है, गरीबों, बीमारों और अपंगों की मदद की जा सकती है, इस प्रकार न जाने कितनों को पुत्रों की तरह पालकर सुखानुभूति की जा सकती है। नाम लेने वाले कृतज्ञों की शृंखला बनाई जा सकती है सही बात यह है कि मनुष्य के शुभ-अशुभ कार्य ही किसी के वंश और यश को कायम रखते हैं। बुद्ध, शंकराचार्य, हरिश्चन्द्र, प्रहलाद, शिवि, दधीचि, शिवाजी, प्रताप, गाँधी आदि का यश उनकी सन्तानों के कारण नहीं, उनके स्वयं के सत्कर्मों के कारण ही चल रहा है। ऐसी दशा में बेटे के द्वारा वंश चलने की बात में कितना सार है—इसे कोई भी विचारशील भली प्रकार समझ सकता है। कुतिया, शूकरी और बकरी हर साल कई बार प्रसव करती और कई-कई बच्चे देती हैं। उनमें कितने ही पुत्र भी होते हैं। उन पुत्रों ने अपने माता-पिता का कितना वंश चलाया होता है?

जानकीजी कन्या थीं उनने अपने पिता जनक का नाम चलाया और वंश भी। द्रुपद राजा का यश द्रौपदी ने अमर बनाया। सावित्री, मदालसा, सुकन्या, अरुन्धती, अनुसूया, कौशल्या, गार्गी, मैत्रेयी, भारती, शकुन्तला,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पद्मिनी, लक्ष्मीबाई, कस्तूरबा आदि को जिन माता-पिता ने जन्म दिया था, उन्हें सौ पुत्र उत्पन्न करने से बढ़कर यश मिला। शास्त्र का वचन है—**'दस पुत्र समा कन्या या स्यात् शीलवती सुता''** यदि कन्या शीलवती हो तो वह दस पुत्रों से बढ़कर है। सच बात तो यह है कि मनस्वी, तेजस्वी और प्रतिभावती कन्या निकम्मे सैकड़ों पुत्रों से बढ़कर मानी जा सकती है।

कन्या में स्वभावत: सौम्यता, मृदुलता और सात्विकता अधिक होती है। उसकी उपस्थिति से घर का वातावरण बड़ा मृदुल और सौम्य बना रहता है। लड़कों मे उद्दण्डता अधिक पाई जाती है इसलिये उनसे माता-पिता बहुधा खीझते रहते हैं। लड़कियों की कोमलता अभिभावकों के हृदय को शीतल और प्रफुल्लित बनाये रहती है। जिस प्रकार कोमल पुष्पों की मृदुलता उद्विग्न मन को भी शीतलता प्रदान करती है, उसी तरह कन्याओं की स्वाभाविक सात्विकता अभिभावकों की, सांसारिक विक्षोभों की परेशानी का अपनी सरल मुस्कान द्वारा सहज ही शमन कर देती हैं। कन्यायें साक्षात् करुणा एवं स्नेह की प्रतिमा होती हैं। उनकी उपस्थिति से धरा में सौम्य वातावरण का सृजन होता रहता है।

त्याग और दान—अध्यात्म के दो प्रधान आधार हैं जो जितना उदार है, जिसमें जितनी त्याग वृत्ति है, जो अपने प्रयत्न और परिश्रम से दूसरों को जितना सुखी बना सकता है, जिसमें जितनी नि:स्वार्थता रहती है वह उतना ही बड़ा अध्यात्मवादी होता है। इन सत्प्रवृत्तियों को जो जितना चरितार्थ कर सके, उसकी आध्यात्मिक साधना उतनी ही बढ़ी-चढ़ी मानी जायगी। यह उद्देश्य कन्याओं की उपस्थिति से सहज ही पूरा होता है। लड़कों के द्वारा कमाई या सेवा प्राप्त होने का लोभ रहता है। वे सदा घर मे रहेंगे इसलिए उनसे मोह भी बढ़ता है। उद्दण्ड और अवज्ञाकारी होने से उन पर क्रोध भी आता है। पुत्र के द्वारा वे कामनायें पूरी होंगी, जो हम पूरी नहीं कर सके। ऐसा सोचने से भी काम बढ़ता है। बेटे के बाद पोती-पोते बढ़ निकलते है इसलिए उनका काम-धन्धा सिमटता ही नहीं। मरते दम तक उन्हीं की उलझनें सुलझाने में मनुष्य लगा रहता है और तीसरी-चौथी अवस्था में भी वैराग्य एवं परमार्थ साधन नहीं बन पड़ता। लड़के कपूत हुए तो उनके असत् आचरण का क्लेश भी जी को अन्तिम समय तक जलाता ही रहता है। इस प्रकार अधिक पुत्र-पौत्रों की उपस्थिति मनुष्य की आध्यात्मिक सम्भावनाओ को अन्धकारमय ही बनाती चलती है।

कन्या इस प्रकार की एक भी अड़चन उत्पन्न नही करती वरन् आत्मिक प्रगति की मूर्तिमती साधना बन कर ही घर मे रहती है। स्वाभाविक सात्विकता एवं कोमलता के कारण वह जहाँ अभिभावकों के चित्त में स्नेह-वात्सल्य को उमगाती रहती है, वहाँ उन्हें त्यागी और परमार्थी बनाने का अवसर भी प्रदान करती है। सभी जानते हैं कि कन्या विवाह होने पर अपने घर चली जाती है। उसका पालन-पोषण अपने स्वार्थ के लिए नहीं वरन् परमार्थ के लिए किया जाता है। उसकी शिक्षा एवं भरण-पोषण पर जो खर्च किया जाता है, उसका कोई भौतिक प्रत्युपकार मिलने की सम्भावना नहीं रहती। इसलिए उससे अनासक्ति एवं नि:स्वार्थता की भावनाओं का ही विकास होता है। विवाह समय में उसे बहुत कुछ देना पड़ता है। इसके उपरान्त भी जब तक वह जीवित रहती है तभी तक नहीं वरन् उसके बच्चे-कच्चों को भी समय-समय पर कुछ न कुछ देते ही रहना पड़ता है। इस दान में प्रतिदान की कोई गुञ्जायश नहीं रहती। इसलिए उसकी श्रेष्ठता भी बढ़ी-चढ़ी रहती है।

कन्या को समर्थ बनाकर उसे दूसरे व्यक्ति को सौंप देने में धन देने से भी अनेक गुना आत्म-त्याग करना पड़ता है। दशरथजी ने कुछ समय के लिए अपने दो बेटे विश्वामित्र की यज्ञ-रक्षा के लिए दिये थे। उस दान की बहुत बड़ी प्रशंसा की जाती है। कन्या के माता-पिता अपनी स्नेह-पोषित बालिका को जन्म भर के लिये जब दूसरे को दान करते हैं, तब उनकी आन्तरिक त्याग भावना भी दशरथ की उदारता से कम नहीं होती। कन्या की सुयोग्यता का लाभ उसकी ससुराल का परिवार उठाता है। यह प्रत्यक्ष ही एक महान परोपकारी परम्परा है। कन्यादान जैसा महान दान पूर्ण नि:स्वार्थ भाव से देने के उपरान्त भी उन लेने वालों से प्रत्युपकार पाने की आशा रखना तो दूर, उल्टा सदा और भी जो सम्भव हो देते रहना, हमारा दान स्वीकार किया इसके लिए उन्हें धन्यवाद देना, उनकी कृपा मानना, कृतज्ञ रहना पिता के लिए निरहंकारिता एक श्रेष्ठ आध्यात्मिक साधन ही बन जाता है।

विवाह के बाद कन्याओं का उत्तरदायित्व माता-पिता पर से प्राय: चला ही जाता है। इस प्रकार घर के गोरख-धन्धे से उन्हें जल्दी ही छुटकारा मिल जाता है। ढलती आयु वानप्रस्थ के लिए और जीवन का अन्तिम अध्याय संन्यास के लिए होना चाहिये। यदि किसी के घर में केवल कन्यायें ही हैं तो उसे यह अवसर बड़ी सुगमता से मिल सकता है। बच्चों के उत्तरदायित्व से निवृत्त हुआ मनुष्य लोकहित एवम् आत्मकल्याण की साधना में अपना अधिकाधिक समय लगाकर इस सुर-दुर्लभ मानव शरीर को सार्थक बनाने वाली गतिविधियाँ निश्चिन्त होकर अपना सकता है।

अभिभावकों का कर्तव्य है कि बालकों के रूप में वे राष्ट्र-माता के लिए सुयोग्य, सुविकसित एवं सुसंस्कृत नागरिक प्रदान करने के लिये श्रम करें। आज के वातावरण से हर नई पीढ़ी, पुरानी पीढ़ी की तुलना में गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से घटिया ही बनती जाती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। शिक्षा व धन का कोई मूल्य नहीं। धनी या शिक्षित व्यक्ति किसी देश की सच्ची समृद्धि नहीं हो सकते। यदि वे आदर्श की दृष्टि से गये बीते हैं तो वह शिक्षा और सम्पत्ति जितनी ही अधिक होगी, संसार में विपत्ति और विकृति उसी हिसाब से बढ़ेगी। बच्चों को सुसंस्कृत, सद्गुणी एवं समाजसेवी बनाना माता-पिता का कर्तव्य है। यदि वे उसे पूरा नहीं करते तो उन प्राप्त सन्तानों द्वारा संसार को हानि पहुँचाने में वे भी पाप के भागी बनते हैं।

सन्तानोत्पादन हेतु इतनी आतुरता क्यों ?

आज विचारशील वर्ग में सन्तानोत्पादन की निरर्थकता एक स्वर से स्वीकारी जा रही है। केवल अदूरदर्शी व्यक्ति ही उसके लिए लालायित रहते हैं। जिन्हें वैयक्तिक और सामाजिक हित-अनहित का कुछ विवेक-विचार नहीं है, उन्हीं की यह इच्छा रहती है कि उनके यहाँ जल्दी या अधिक संख्या में सन्तानें उत्पन्न हों। सम्भव है प्रारम्भिक काल में जनसंख्या की कमी के दिनों में इसकी कुछ उपयोगिता रही हो पर आज जबकि जनसंख्या भार के कारण प्राकृतिक, सामाजिक सन्तुलन चरमराता जा रहा है, वंश वृद्धि की बात सोचना बिगड़ी मानसिकता का द्योतक माना जायेगा। हैरत इसी बात की है कि हजारों-लाखों वर्षों पूर्व का दृष्टिकोण ही जहाँ का तहाँ बना हुआ है और बदली हुई परिस्थितियाँ हमारी मान्यताओं को प्रभावित नहीं कर रही हैं।

विचारशील समुदाय को स्वीकार करना पड़ रहा है कि सन्तानोत्पादन अब किसी तरह लाभदायक नहीं रहा। इसमें हर दृष्टि से घाटा ही घाटा है। पुरुष सोचता है इससे उसके ऊपर आर्थिक भार बढ़ता है। जिस धन से वह वर्तमान परिवार को अधिक सुविकसित बना सकता है। उसमें नए हिस्सेदार जोड़ लेने से घर में पुराने और नए साझीदार की अभावग्रस्तता ही बढ़ेगी। जो समय-साधन सामयिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं उन्हें और भी अधिक विभाजित करने से सिर्फ कठिनाइयाँ ही बढ़ेंगी। जिन मेहमानों के आतिथ्य की समुचित व्यवस्था नहीं उन्हें आमन्त्रित करते रहने में समझदारी की क्या बात है?

स्त्रियाँ सोचतीं हैं प्रजनन एक प्रकार से मौत से जूझना है। महिलाओं की मृत्यु में एक बहुत बड़ा भाग प्रसव कष्ट में मर-खप जाने वालों का होता है। घोर तड़पाने वाली प्रसव पीड़ा सहने और अपने स्वास्थ्य रस को निचोड़ कर खोखली हो जाने में किस महिला को क्या लाभ हो सकता है ? इतने समय में कोई नारी अपनी ज्ञान वृद्धि, स्वास्थ्य रक्षा, आजीविका उपार्जन, गृह-व्यवस्था, समाज-सेवा जैसे महत्त्वपूर्ण कामों में लगाकर लाभान्वित हो सकती है। उसे इसमें क्या मिलता है ? माता बनने के बाद उसकी व्यक्तिगत प्रतिभा एवम् प्रगति का एक प्रकार से अन्त ही हो जाता है। आजीविका के लिए वे नितान्त पराश्रित हो जाती हैं और इसके लिए उन्हें पग-पग पर अपमानित जीवन जीने के लिए विवश होना पड़ता है। बच्चों का बोझ वहन करते हुए वे न तो आर्थिक दृष्टि से अपने पैरों पर खड़ी रह सकती हैं और न पति की सहयोगिनी बन पाती हैं। स्वयं उनकी सुख-सुविधाएँ और इच्छाएँ-आकांक्षाएँ भी स्वप्न होती चली जाती हैं। क्या मनोरंजन, क्या महत्त्वपूर्ण अवसर सभी प्रकरणों में उनके लिए घर से बाहर जा सकना एक प्रकार से अशक्य हो जाता है। वे जब स्वयं की अपनाई गई बाधित स्थिति की दुर्दशा पर विचार करती हैं तो उन्हें खेद होता है और उन तथाकथित अभिभावकों पर क्रोध आता है, जिनने अपनी कन्या को दुर्गति में धकेलने के लिए किस प्रकार सिर पर आसमान उठाया था और किस प्रकार आर्थिक कठिनाइयाँ सहन की थीं।

सुविधाजनक परिस्थितियों में अधिकतम एक सन्तान की प्राप्ति की बात सोची जा सकती है। पर उसके पीछे वे लाभ नहीं सोचे जाने चाहिए, जो आज सोचे जाते हैं। मरने के बाद बेटे के पिण्डदान देने से स्वर्ग मिलेगा, यह मान्यता घोर मूढ़ता की ही झाँकी कराती है। कोई व्यक्ति अपने ही भले-बुरे कर्मों से स्वर्ग या नरक आ जा सकता है। बेटे का पुण्य बाप को, बाप का बेटे को-भला किस प्रकार मिल सकता है। वंश चलेगा, नाम चलेगा जैसी बात भी अविवेकी सोचते हैं। हर वर्ष बीस बच्चे जनने वाली शूकरी का वंश उसकी सन्तान कहाँ बढ़ा पाती हैं ? हममें से किसे अपनी छठी पीढ़ी के पूर्वजों का नाम याद है ? जब नाम तक वंशजों का याद नहीं रहता तो कोई मूर्ख ही सोच सकता है कि उसका वंश चल रहा है।

उत्तराधिकार में सारी कमाई बेटे-बेटियों को देकर मरा जाय यह अत्यन्त घृणित स्तर की स्वार्थ भरी संकीर्णता है। जिस समाज के सहयोग से सम्पदा कमाई और जोड़ी गई उसे पुण्य-परमार्थ के आधार पर वापिस किया जाना चाहिए, यही धन का औचित्यपूर्ण सदुपयोग है। अपनी श्राद्ध परम्परा के पीछे यही आदर्श है कि उत्तराधिकारी अपने पूर्वजों की सम्पदा को हराम की कमाई न समझे, उसे स्वीकार न करें और किसी परमार्थ कार्य में लगा दें।

कई सन्तानरहित व्यक्ति दूसरा विवाह करने की, दूसरे का बच्चा गोद लेने की बात सोचते रहते हैं ऐसे लोगों को शीर्षस्थ स्तर का स्वार्थी, संकीर्ण और निष्ठुर कहना चाहिए। जिस धन से समाज का हित साधन हो सकता था, उनका लोक-परलोक बन सकता था, उसे मात्र सन्तानों को देने भर की बात सोचना यह स्पष्ट करता है कि यह अत्यन्त निकृष्ट मनोभूमि का व्यक्ति है। उदारता और दूरदर्शिता जैसी सत्प्रवृत्तियाँ उसे छूकर भी नहीं निकलीं। ऐसे लोग सन्तान प्राप्ति के लिए न जाने कितने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर्मकाण्ड भी करते रहते हैं। उद्देश्यों और संकल्प की दृष्टि से ऐसे दान-पुण्य को शायद ही कोई देवी-देवता स्वीकार कर सके। ईश्वर तो भावना देखता है, कृत्य नहीं, मोहग्रस्त उद्देश्य लेकर किए गये धर्मकृत्य भी ईश्वर की प्रसन्नता का कारण नहीं बन सकते।

हँसने-खेलने के लिए अपने निज के बच्चे ही हों यह जरूरी नहीं। यदि उदारता के कुछ बीजाणु अन्त:करण में जीवित हैं, तो अपने-पराए का भाव भुलाकर किसी के भी बच्चों से हँसा-खेला जा सकता है। मुफ्त में आनन्द उठाया जा सकता है। अनावश्यक चिन्ताओं और जिम्मेदारियों से बचा जा सकता है। ऐसे अनेकों बच्चे मिल सकते हैं जो घोर अभावग्रस्त जीवन जीते हैं, उनकी सहायता करना अधिक श्रेयस्कर है। खुद की सन्तानों को ही पाला-पोसा जाय यह अनिवार्य क्यों होना चाहिए ? जो नहीं हैं, उन्हें जानने के लिए कोई व्याकुल रहे और जो आस-पास अनेकों बालक बिलख रहे हैं, उनकी ओर से निष्ठुर बने रहा जाय तो इससे वात्सल्य की आकुलता कैसे समझी जा सकती है।

बुढ़ापे में सन्तान सेवा करेगी तब काम चलेगा। ऐसा सोचना आत्महीनता का, आत्मविश्वास के अभाव का ही द्योतक है। परावलम्बी जीवन की आकांक्षा करने वाले एक प्रकार से मृतक ही कहे जायेंगे। आज के माहौल में जबकि पारिवारिक कर्त्तव्यों, स्त्री-बच्चों तक का भार ठीक तरह से नहीं निभ रहा है। तब बूढ़े माँ-बाप पर बेटे चँवर डुलायेंगे, इस मूर्खों के स्वप्न से जितनी जल्दी धरातल पर उतर आया जाय उतना ही अच्छा है। मरते समय तक बुड्ढे को अपनी हड्डियाँ कोल्हू में पेलकर उनके तेल से बेटे-पोतों की मालिश करनी पड़ती है। उसमें कमी पड़ती है तो सारे परिवार की आँखें किस तरह लाल-पीली होती हैं, इसे कोई भी आँखों वाला अपने आस-पास भी नजर पसार कर देख सकता है, समय की माँग है कि कामेच्छा और प्रजनन में अन्तर स्थापित कर इन्हें नियंत्रित किया जाय।

कामेच्छा पर नियंत्रण करके सन्तानोत्पादन घटाया जा सकता है। विवाह न करना, विवाहितों द्वारा यथाशक्ति संयम बरतना, ढलती आयु में प्रजनन को लज्जास्पद माना जाना-बहुसन्तान वालों को अविवेकी एवम् असामाजिक ठहराया जाना जैसी विचारणाओं को अब मान्यता मिलनी चाहिए। इससे सन्तान पैदा करने से पहले हर किसी को उसके दुष्परिणामों पर विचार करने का अवसर मिलेगा और अनियंत्रित वृद्धि रुकेगी।

प्राचीनकाल की ही तरह ब्रह्मचर्य वानप्रस्थ परम्पराएँ अभी भी श्रेष्ठ व वन्दनीय हैं। इन्हें उत्साहपूर्वक अपनाया जाना चाहिए। उचित यही है कि अविवाहित विवाह बन्धन में न बँधकर आत्म-कल्याण व लोक-कल्याण में अपनी क्षमताओं का नियोजन करें। विवाह बन्धन में बँधे हुए व्यक्ति सन्तान पैदा करने की जगह परस्पर सहयोग कर अपनी बढ़ी हुई क्षमताओं को महत्वपूर्ण उद्देश्यों में नियोजित करें। आज इन परम्पराओं को फिर से जीवन्त-जाग्रत करने की जरूरत है। आदर्शवाद के नाम पर न सही आपत्तिकालीन स्थिति का विशेष कर्तव्य समझ कर भी यदि सन्तानोत्पादन के प्रति उपेक्षा या उदासीनता बरती जाय तो उसे प्रशंसनीय ही ठहराया जाना चाहिए।

जन्म-दर आखिर कैसे घटे ?

हमारे देश की जनसंख्या द्रुतगति से बढ़ रही है जिसके कारण देश की प्रगति एवं समृद्धि को एक प्रकार का संकट ही उत्पन्न हो गया है। एक ओर तो प्रति डेढ़ सैकण्ड के बाद एक बालक का जन्म हो रहा है, दूसरी ओर देश में जो स्वास्थ्य योजनायें चली हैं, उनसे मृत्यु दर में काफी कमी आ गयी है। पहले प्रत्येक भारतीय की औसत आयु २३ वर्ष थी किन्तु अब ५५ वर्ष हो गयी है और सम्भावना है कि जैसे-जैसे योजनायें विकसित होती जायेंगी, अगले १० वर्षों में वह ६०-६५ तक बढ़ जायेगी, इसका अभिप्राय यह हुआ कि औसत आयु तो पहले से दुगुनी से भी अधिक बढ़ गयी है परन्तु उसी अनुपात में जन्म दर में कमी नहीं हुई है। अतएव जनसंख्या अविराम गति से बढ़ती जा रही है।

जब तक मृत्यु दर तथा जन्म दर के मध्य सामंजस्य नहीं होगा, जब तक जनसंख्या का नियंत्रण असम्भव है। जन्म दर की बाढ़ को रोकने के लिए अनेक उपाय खोजे गये हैं। कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि यदि लड़कियों के विवाह की न्यूनतम आयु २० कर दी जाय तो जन्मदर में ३० प्रतिशत तक की कमी आयेगी। देर से विवाह करने से कम बच्चे होंगे। अतएव इस कानून को निश्चित रूप से लागू कर दिया जाना चाहिए। जो उल्लंघन करें, उन्हें सरकार दण्डित करे।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या विवाह आयु बढ़ा देने से जन्म दर में कमी आ जायेगी ? क्या देश की ग्रामीण जनता को देखते हुए यह कानून बनाना उचित है ? विवाह की आयु बढ़ाना हितकर ही होगा क्योंकि कानून के डर से लोग बाल-विवाह से विमुख होंगे तथा बड़ी आयु में विवाह होने से बालक कम होंगे। विवाह की आयु में वृद्धि ग्रामीणों के हित में भी होगी। छोटी-छोटी आयु में विवाह करने से स्त्री तथा पुरुष दोनों का शारीरिक एवं मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। ऐसे दम्पत्ति जिन्होंने छोटी आयु से ही शरीरों का निचोड़ना प्रारम्भ कर दिया, कभी नीरोग एवं स्वस्थ संतति उत्पन्न नहीं कर सकते। किशोरियाँ यदि प्रजनन करती हैं तो उनका स्वयं का जीवन भी संकट में रहता है। अस्पतालों की रिपोर्टों से पता लगता है कि बीस वर्ष से कम आयु की जितनी लड़कियाँ प्रसव पीड़ा में मरती हैं, उससे चौथाई भी बड़ी आयु की स्त्रियाँ इस संकट में प्राण नहीं गँवातीं। अतएव लड़कियों की जान को भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जोखिम में डालने वाले अभिभावक बुद्धिमान नहीं कहे जा सकते।

प्राय: देखा जाता है कि शिक्षित परिवारों में विवाह अपेक्षाकृत विलम्ब से होता है। कन्या अध्ययन कर रही होती है और आमतौर से कोई कानून न होने पर भी देर से ही वैवाहिक सूत्रों से आबद्ध होती है। शिक्षित युवक तथा युवतियाँ इस बात से परिचित होते हैं कि शिक्षा पूरी किये बिना, अपने पैरों पर खड़े हुए बिना विवाह करने का अभिप्राय है अपनी मानसिक तथा शारीरिक शक्तियों का विघटन करना तथा अर्थाभाव से दाम्पत्य जीवन की खुशियों को नष्ट करना। साथ ही बड़ी आयु में उनका मानसिक स्तर भी विकसित हो जाता है तथा वे वह भी भलीभाँति समझ जाते हैं कि इस महँगाई के जमाने में बच्चे उत्पन्न करने का अर्थ है—दाम्पत्य तथा पारिवारिक जीवन की प्रसन्नताओं पर कुठाराघात, बच्चों के भविष्य के साथ खिलवाड़ तथा राष्ट्र के प्रति द्रोह।

लोगों को परिवार कल्याण, बहु-प्रजनन में रोकथाम तथा वैवाहिक विषयों से सम्बन्धित उत्तम साहित्य उपलब्ध कराया जाना चाहिये, जिससे कि वे अन्धविश्वासों तथा रूढ़ियों से मुक्त हों-स्वतंत्र कार्य-कलाप कर सकें। शिक्षा तथा आजीविका की सुविधा मिलने पर स्त्रियाँ देर से विवाह करेंगी तथा सोच-विचार कर बालकों की संख्या बढ़ायेंगी। कम बालक होने से माता तथा शिशु दोनों का स्वास्थ्य अच्छा रहेगा तथा समाज को स्वस्थ, सबल नागरिक प्रदान किये जा सकेंगे।

सन्तान की अविवेकपूर्ण आकांक्षा

समय के साथ मान्यतायें बदलती ही रहनी चाहिये। उन्हें जिस देश-काल में प्रवर्तित किया जाता है, तब वे उस समय के अनुकूल तथा आवश्यक होती हैं। पर ज्यों-ज्यों परिस्थिति बदलती जाती हैं, उनकी उपयोगिता घटती जाती है और धीरे-धीरे व्यर्थ बन जाती हैं। ऐसा होने पर भी जब उन्हें समय के अनुसार बदला नहीं जाता है, तब वे सामाजिक रूढ़ि बनकर एक बन्धन के रूप में बदल जाती हैं और समाज की प्रगति में बाधक बनती हैं और अनेक प्रकार से हानिकारक सिद्ध होती हैं।

सम्भव है कभी यह मान्यता रही हो कि विवाह की सफलता तथा सार्थकता सन्तान होने में ही है। यदि शीघ्र ही विवाह होने पर सन्तानों की परम्परा नहीं लग जाती तो वह विवाह, वह दाम्पत्य जीवन असफल समझा जाता था। बहुत सन्तान होना सौभाग्य का लक्षण माना जाता था।

कहना न होगा कि जब यह मान्यता रही होगी तब सामाजिक तथा पारिवारिक दृष्टि से इसकी आवश्यकता एवं उपयोगिता रही होगी। ऐसा न मानने अथवा न करने से समाज को हानि की संभावना रहती होगी। उस समय यह मान्यता समाज में विकास तथा प्रगति में सहायक होती होगी।

उस समय इस मान्यता का कारण क्या रहा होगा इस पर विचार करने से यही समझ में आता है कि उस समय पर जनसंख्या की बहुत कमी थी। भूमि तथा साधन अधिक थे। संसार सूना और बीहड़ दीखता था। साथ ही उस समय एक परिवार के अधिक व्यक्ति मिलकर, दूसरे कम संख्या वाले परिवार को दबा कर उस पर शासन करते थे, उस युग में अधिक सन्तान उपयोगी थी। उस पारिवारिक सेना से आस-पास प्रभाव बढ़ाया जा सकता था, दूसरे का बढ़ता हुआ दबाव रोका जा सकता था। उस समय उर्वरा भूमि वन-पठारों के रूप में योजनों तक बेकार पड़ी थी। उसका उपयोग करने के लिये जनसंख्या की कमी थी। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक ही था कि लोग अपने लिये अधिकाधिक बेटे, पोतों तथा नाती, भाई-भतीजों की कामना करते। परिवार बड़ा हो, खूब बच्चे हों जिससे परिवार का प्रसार हो, अधिक से अधिक भूमि पर अधिकार हो तथा प्रभाव बढ़े, ऐसा सोचा जाना उस समय की परिस्थितियों के अनुकूल ही था और लोग वैसा सोचते भी थे और करते भी थे।

उन दिनों जातीय संघर्ष भी कम न था। एक जाति, वर्ग तथा एक कबीले के लोग दूसरे लोगों पर अक्रमण कर अपनी जाति, धर्म तथा आदर्शों को फैलाना चाहते थे। देव और असुर, आर्य एवम् अनार्यों का संघर्ष इसी प्रकार का जातीय तथा सांस्कृतिक संघर्ष था, जो आये दिन युद्ध का रूप धारण करता रहता था। ऐसी दशा में आत्म-प्रसार तथा आत्म-रक्षा दोनोंके लिये एक मत, एक धर्म तथा एक उद्देश्य की अधिकाधिक संख्या होना आवश्यक ही था। ऐसे विश्वस्त लोग अपने रक्त से उत्पन्न सन्तानों से अधिक कौन हो सकते थे ? इसलिये लोग अपना परिवार, कुटुम्ब तथा कुनवा बढ़ाने का हरसम्भव उपाय किया करते थे। अनेक विवाह करना और दूसरों की स्त्रियों को छीन लेना भी इसी उद्देश्य से चलता था। निश्चिय ही उन दिनों स्त्रियों की संख्या कम थी, जिस कुटुम्ब में उनकी संख्या अधिक होती थी, वहाँ सन्तानें भी अधिक होती थीं। दूसरों की स्त्रियाँ छीन लेने से एक परिवार में उनकी संख्या बढ़कर लाभकारी होती थी और दूसरे मे कमी हो जाने से उनके यहाँ सन्तानोत्पादन की प्रक्रिया कम हो जाती थी। बहु-स्त्रियो की प्रथा तथा उनकी यह लूटपाट केवल परिवार और कुटुम्ब-कबीला बढ़ाने के लिये ही थी। इसका भी और कोई उद्देश्य नहीं था।

उस जीवन संघर्ष मे विजय उसकी ही होती थी, जिसमें आदमियो की संख्या अधिक होती थी। उस समय जनबल ही सबसे प्रबल शक्ति थी। युद्ध के आज जैसे विकसित साधन न थे। इस प्रकार सुरक्षा, धर्म-प्रसार जातीय संघर्षों के विषय, शिक्षा तथा विवेक की कमी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और भोजन की यथेष्ठा आदि ऐसे कारण थे, जिससे बहुसन्तान की मान्यता कोई अर्थ रखती थी और यह मान्यता एक ऐसी धारणा में बदल गई, जिससे कि सन्तानों का होना ही विवाह की सफलता समझा जाने लगा। जिसके जितनी अधिक सन्तानें होती थीं, वह उतना ही अधिक भाग्यवान् माना जाता था और समाज में उसकी प्रतिष्ठा रहती थी। वही पूर्वकालिक मान्यता रूढ़ि बनकर आज तक समाज में चली आ रही है और लोग सन्तान न होना दुर्भाग्य का चिन्ह मानते हैं। किन्तु इसकी आज क्या उपयोगिता हो सकती है ? आज तो कम से कम और सन्तान न होना सौभाग्य का चिन्ह माना जाना चाहिए और विवेकशील व्यक्ति ऐसा मानते भी हैं। संसार की मान्यता बदलती जा रही है। सन्तानोत्पादन का विरोध होने लगा है इसलिये हर सामान्य एवम् असामान्य व्यक्ति को अपने मस्तिष्क से यह भ्रान्त, निरुपयोगी तथा हानि-कारक मान्यता निकाल ही देनी चाहिये।

जहाँ पहले जनसंख्या की कमी और साधनों की प्रचुरता थी, वहाँ आज जनसंख्या की अपार वृद्धि तथा जीवन साधनो की बड़ी कमी होती जा रही है। प्राचीन काल की तरह वर्ग संघर्ष का वैसा भय नहीं रहा है और न जातीय युद्धो की कोई सम्भावना रह गई है। आज तो संसार अनेकता से एकता की ओर बढ़ रहा है, द्वैत से अद्वैत की ओर अग्रसर हो रहा है। विवेकशील व्यक्ति विश्व-समाज, विश्व-दर्शन, विश्व-धर्म, विश्व-राष्ट्र, विश्व-आचार, विश्व-विचार, विश्व-परिवार, विश्व-समृद्धि, विश्व-भ्रातृत्व, विश्व-भाषा और एक विश्व-भाव की दृष्टि से सोचने लगे है। ऐसे प्रगतिशीलयुग में अपनी वैयक्तिकशक्ति अथवा कबायली जनबल बढ़ाने के लिये सन्तान की कामना करना सड़ी-गली पुरानी विचार-धारा तथा मान्यता है जो छोड़ ही दी जानी चाहिए। जनसंख्या की अनियंत्रित वृद्धि के कारण संसार पर भुखमरी का संकट तीव्र गति से बढ़ता जा रहा है।

सन्तान सम्बन्धी प्राचीन मान्यता आज के युग के ठीक प्रतिकूल है। आज उसका न कोई औचित्य ही है और न उपयोग ही। आज इस बात की अनिवार्य आवश्यकता है कि समाज के पुराने सोचने-विचारने के गलत ढंग को रोक दिया जाय और उसे स्वस्थ्य, सृजनात्मक, कल्याणकारी और देश के लिए उपयोगी दिशाओं में सोचने के लिये प्रोत्साहित किया जाये। बहुत सन्तान अच्छी होती है, जल्दी सन्तान होना सौभाग्य का लक्षण है, सन्तान जरूर ही हो—यह सब मूर्खतापूर्ण मान्यतायें हैं, थोथी और गलत विचारधारणायें है आज इनको न बदलने से हानि ही हानि है। जो पुराने अल्पज्ञ मूर्ख लोग आज भी इस सड़ी-गली मान्यता को महत्त्व दे रहे हैं वे युग के प्रतिकूल काम कर रहे हैं। ऐसे लोगों की समाज द्वारा भर्त्सना होनी चाहिए और उनकी बात को जरा भी महत्त्व न देना चाहिए। सन्तानों सम्बन्धी प्राचीन विचार-प्रवाह में बहते चले जाने वाले लोगों क्रो आज की विश्वस्थिति पर नजर डाल लेनी चाहिये। ऐसा करने से निश्चय ही उनके मस्तिष्क से यह भ्रान्त धारणा निकल जायेगी।

विश्व-विख्यात लन्दन के जनसंख्या विशेषज्ञ श्री हर्मन वेरी ने संसार को सावधान करते हुए लिखा है—"आगामी सन् २०५० में संसार की हालत महाप्रलय से भी बुरी हो जायेगी। कारण यह है कि बढ़ते-बढ़ते उस समय तक संसार की आबादी लगभग नौ अरब हो जायेगी। तब धरती पर न तो इतने लोगों के लिये पर्याप्त भोजन मिल सकेगा, न शुद्ध वायु, न पानी, न बिजली। मनुष्यों के निवास के लिए जो मकान होंगे, उनमें केवल खड़े रहने भर को जगह मिल सकेगी। आबादी की वृद्धि के कारण जानवरों का नाम निशान तक इस संसार से मिट जायेगा। क्योंकि जब मनुष्यों के निवास और खाने के लिये धरती की शक्ति काफी न होगी, तब पशुओं को उसमें कौन हिस्सा बँटाने देगा ? लोग उन्हें मार काट कर पहले ही चट कर जायेंगे। आगामी कुछ वर्षों में प्रकृति का सारा ईंधन भण्डार समाप्त हो जायेगा। प्रकृति को जितना ईंधन पैदा करने मे पच्चीस करोड़ साल लगे हैं, बढ़ती हुई आबादी और उसकी वर्तमान आवश्यकतायें उसे दो-सौ पचास वर्षों के भीतर समाप्त कर डालेंगी। अणुशक्ति से उत्पादन की बात सोची जा रही है, पर उसे उत्पन्न करने के भी साधन पृथ्वी पर सीमित ही हैं और वे भी कुछ दिन में खत्म हो जायेंगे। धातुओं का भण्डार तब तक चुक जायेगा। अनेक स्थान तो ऐसे होंगे जहाँ एक-एक बूँद पानी के लिये लोगों को तरसना पड़ेगा। ईसा से दस हजार साल पहले दुनिया की आबादी केवल दस लाख थी। पर वही बढ़कर आज लगभग सात अरब हो चुकी है। इस हिसाब से २०५० में दुनिया की आबादी २० अरब हो जायगी। तब प्रति व्यक्ति को केवल चलने-फिरने और उठने-बैठने के लिये एक वर्गमीटर जमीन हिस्से में मिल सकेगी।

भारत तथा उस जैसे कम विकसित देशों में उस आगामी महाप्रलय के लक्षण अभी से दृष्टिगोचर होने लगे हैं। स्थान-स्थान पर भुखमरी तथा पानी की कमी बढ़ती जा रही है। अन्न के लिये विदेशों की कृपा पर निर्भर होना पड़ रहा है। जब जीवन स्तर निम्न तथा केवल उल्टा-सीधा पेट भर जाने भर की ही समस्या है, तब यह दशा हो रही है कि लोगों को पेट भर मोटा अनाज भी नहीं मिलता। यदि आबादी इसी गति से बढ़ती रही तो देश में २०५० से बहुत पूर्व ही महाप्रलय की लीला होने लगेगी। यह आँकड़े और यह सूचनायें भी यदि सन्तानोत्सुक लोगों की आँखें नहीं खोलतीं तो इसे न केवल देश का ही बल्कि मानवता का दुर्भाग्य माना जायेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विवाह मानव-जीवन का एक सर्वोत्कृष्ट यज्ञ है। दो आत्मायें अपना स्वतन्त्र अस्तित्व खोकर परस्पर एक दूसरे में विलीन होती हैं और उस संगम से एक सम्मिलित शक्ति का अभिनव आविर्भाव होता है। देवताओं की साक्षी में अग्नि भगवान् को मध्यस्थ बनाकर दो आत्मायें अपने व्यक्तित्वों की अभिन्नता-स्वतन्त्रता समाप्त करके एक सम्मिलित सत्ता का सृजन करती हैं। यह दो प्राणियों का भावनापूर्ण आध्यात्मिक विलय है। इस सम्बन्ध का उद्देश्य केवल जनसंख्या की वृद्धि मानकर उसके मूलभूत भाव का हनन करना है। एकाकी मनुष्य अपूर्ण है। पति-पत्नी दोनों के सम्बन्ध से एक पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण होता है। सभी स्त्रियों की अपनी और पुरुषों की अपनी कुछ अलग-अलग विशेषतायें होती हैं: इन दोनों के समन्वय से वे अभाव दूर होते हैं, जिनके कारण मानसिक शान्ति सांसारिक सुख-सुविधाओं का द्वार रुका पड़ा रहता है। वैयक्तिक, आत्मिक तथा आध्यात्मिक विकास के लिये किये गये इस सम्बन्ध को केवल सन्तानोत्पादन का साधन मानना कहाँ तक ठीक हो सकता है ? जिस दिन से सन्तान होना प्रारम्भ हो जाता है, क्या उसी दिन से मनुष्य की समस्याओं तथा कष्टों की वृद्धि प्रारम्भ नहीं हो जाती ? क्या सन्तानों के पालन-पोषण की चिन्ता के कारण मानसिक तथा आत्मिक सुख-शान्ति का प्रयत्न पीछे नहीं पड़ जाता है ? जिनके सन्तानें हैं उनके विषय में तो क्या कहा जा सकता है ? किन्तु जिनके सन्तानें नहीं हैं उन्हें किसी प्रकार भी अपने को अभागा अथवा हेय स्थिति वाला नहीं समझना चाहिये। आज के दिन सन्तान न होना ही सौभाग्य का चिन्ह माना जायेगा। जनसंख्या द्वारा संसार का संकट बढ़ाना विवाह जैसे महान यज्ञ का उद्देश्य किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

सन्तानों के दायित्व से मुक्त दम्पत्ति को आत्मिक विकास, आध्यात्मिक साधना तथा समाज सेवा द्वारा परमार्थ का पुण्य कमा सकने का बहुत अवसर रहता है। ऐसे मुक्त व्यक्ति को सन्तान का तुच्छ तथा निरर्थक खेद छोड़कर समाज-सेवा में लग जाना चाहिये। समाज में ऐसे बच्चों की कमी नहीं है, जिनको प्रेमपूर्ण आश्रय की आवश्यकता है। किसी भी बच्चे को लेकर उसका समुचित पालन-पोषण कर माता-पिता का उदात्त कर्तव्य निभाया जा सकता है। यदि संतान-मुक्त दम्पत्ति, जन-वृद्धि की गलती करने वाले युगल की यह भूल उनकी किन्हीं सन्तानों को अपने आश्रय में लेकर हल्की करने लगे तो नई पीढ़ी का तो नव-निर्माण हो ही साथ ही समाज में बहुत अधिक बन्धुत्व-भाव का विकास होने लगे, जिससे मिलने वाली सुख-शान्ति अनिर्वचनीय ही होगी। संसार-मुक्त दम्पत्ति को भगवान के दिये इस अवसर को परमार्थ कार्यों में उपयोग कर अपने जीवन को सफल तथा विवाह को सार्थक बनाना ही चाहिये।

इस प्रकार एक नहीं, न जाने कितने महापुरुषों ने केवल अपनी क्षमतायें संसार की सेवा में लगाने के मन्तव्य से विवाह और सन्तानों के चक्र से अपने को बचाये रखा, अपनी सुरक्षा-शक्तियों को समाज-सेवा में लगाकर जीवन को सफल बनाया जा सकता है। एकाकी रहकर सेवा करने की अपेक्षा कहीं अच्छा है कि विवाह द्वारा दो स्त्री-पुरुष मिलकर समाज की सेवा करें, इससे जीवन में मधुरता या शक्ति की वृद्धि होगी।

कामुकता की कुदृष्टि

प्रकृति ने प्राणियों में से मात्र मादा को ही यह क्षमता प्रदान की है कि जब उसकी शारीरिक शक्ति नया शिशु उत्पन्न करने की हो, तो ही वह नर को कामुक संदेश दे और वह उस आदेश का पालन करने में रुचि दिखाये। अपनी ओर से प्राणि जगत का कोई भी नर नारी के साथ किसी प्रकार की छेडछाड़ नहीं करता है। दोनों वर्ग इस प्रकार साथ-साथ रहते और संयत जीवन जीते हैं जिसमें नारी और नर बिना किसी प्रकार की उत्तेजना का परिचय दिये स्वाभाविक जीवन जीते हैं। नर को कामुकता प्रदर्शन करने की ऐसी छूट बिल्कुल भी नहीं मिली है कि वह मादा के आदेश या संकेत के बिना किसी प्रकार की अनुपयुक्त छेड़छाड़ करे। अपनी ओर से प्रथम कदम उठाये।

बच्चे को बहुत दिनों तक दूध की आवश्यकता होती है। जब वह साधारण आहार खाने और पचाने योग्य हो जाता है, तब कहीं माता की स्थिति ऐसी बनती है कि वह नया बालक उत्पन्न करने, सँभालने की अपनी क्षमता का परिचय दे और वैसा संकेत करे। मनुष्यों की यह नासमझी ही है कि पशुओं की संतानों को जितने दिनों तक, जितनी मात्रा में दूध मिलने की सहज आवश्यकता रहती है, उससे कहीं पहले वे उस बच्चे को उसके स्वाभाविक आहार से वंचित करके उसकी खुराक को झपटने-हड़पने लगते हैं। यदि ऐसा न किया जाय तो पशुओं के बालक कई वर्ष तक माता के दूध पर निर्भर रहकर अपने शारीरिक विकास को परिपोषित करते रह सकते हैं। पर जब उनकी प्रकृति प्रदत्त खुराक को मनुष्यों द्वारा दुह लिया जाता है तो बच्चों का अविकसित रह जाना तो स्वाभाविक है ही, साथ ही अत्यधिक दबाव से मादा के प्रजनन अंग भी समय से पूर्व विकसित होने लगते हैं। फिर वे जोड़ा मिलाते हैं और जननी पैदा करने की प्रक्रिया से अपनी पीढ़ियाँ दुर्बल बनाती है। दूध सभी का स्वाभाविक भोजन है। जब तक बच्चा माँ के दूध पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निर्भर रहता है, जब तक उसके लिए दूध पीने का औचित्य भी है। यदि इस नियम का सर्वत्र पालन होने लगे तो संतान वृद्धि की वैसी समस्या उत्पन्न न हो, जैसी कि मनुष्य और पशुओं में देखी जा रही है। उनकी बढ़ती हुई वंशवृद्धि के कारण अनेकों समस्याएँ पैदा हो गयी हैं, उनकी जड़ कामुकता ही है।

नारी के साथ यदि अतिरिक्त छेड़खानी न की जाय तो वह पहला बच्चा चार-पाँच वर्ष का होने से पूर्व शारीरिक दृष्टि से इस तरह कमजोर न बने कि वह संतान को ठीक तरह साज-सँभाल करने के अनुपयुक्त ही बन जाए। ऐसा क्रम चल पड़े तो महिलाओं को आये दिन दुर्बलता और रुग्णता से छुटकारा मिल सकेगा।

बच्चा और जननी दोनों को स्वस्थ रखना हो तो यह आवश्यक है कि दो प्रसवों के मध्य लम्बा समय हो। पिता का स्वास्थ्य, दायित्व और व्यवस्था, आर्थिक देखभाल, सुसंस्कृत बनाने का अवसर इसी आधार पर मिलता है। जल्दी बच्चे जनने में दूने स्तर की हानि ही हानि है। जल्दी बच्चे न हों, इसके लिए अनेक समाधानों की जानकारी अब सर्वसुलभ होती जा रही है। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि पुरुष नारी के प्रति कामुकता की दृष्टि न रखे। उसे मात्र अपनी सहचरी समझे। कामुकता के विचार ही मस्तिष्क को खराब करते हैं और यौनाचार के लिए प्रेरित करते हैं। इसलिए नर और नारी के बीच स्नेह-सहयोग तो घनिष्ट रहना चाहिए, पर साथ ही यह ध्यान भी रखना चाहिए कि कामुकता की दृष्टि का सीमा से बाहर हो जाना नर, नारी और बच्चे इन सभी के लिए समान रूप से हानिकारक है। इस व्यवधान को खड़ा कर देने के कारण तीनों ही घाटे में रहते हैं और साथ ही समूचे समाज को हानि पहुँचाते हैं।

शारीरिक और मानसिक स्वस्थता एवं समर्थता के प्रति जिनकी भी रुचि है, उन्हें इस तथ्य को स्मरण रखना चाहिए कि जिस कर्म से हर प्रकार हानि ही हानि हो, सबका अहित ही अहित हो, उससे जितना बचा जा सके उतना ही अच्छा है। कामुकता की कुदृष्टि को यदि मस्तिष्क से हटाया और व्यवहार से मिटाया जा सके तो इसमें हर किसी का हर प्रकार से हित साधन ही है।

पतन के मार्ग पर तो न चलें

परिवार नियोजन के उपायों ने इन दिनों जन्म-दर को थोड़ा घटाया हो, पर यह कहना अत्युक्तिपूर्ण नहीं है कि उसने अमर्यादित यौनाचार को बढ़ावा भी दिया है, जिससे नर-नारी के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ा है। इन उपायों के बावजूद भी पूरी तरह यह नहीं कहा जा सकता कि अवांछित गर्भाधान से बचा जा सकेगा। इसमें २५ प्रतिशत संभावना गर्भाधारण की बनी ही रहती है। ऐसी स्थिति में गर्भपात कराना पड़ता है, जो स्वास्थ्य की दृष्टि से नारी के लिये बहुत महँगा साबित होता है।

आज कृत्रिम उपायों को न केवल वासना पूर्ति की ढाल बना लिया गया है, वरन् निस्तेज एवं खोखला होकर अकाल वृद्धता को भी आमन्त्रित कर लिया जाता है। सर्वेक्षणों के आधार पर विशेषज्ञों ने बताया है कि पिछले दशकों में एक हजार फ्रांसीसी नागरिकों के पीछे मात्र १७० किशोरों एवं बच्चों को छोड़कर शेष ८३० व्यक्तियों ने समय से बहुत पहले ही बुढ़ापे की शरण ले ली। आश्चर्यचकित करने वाले ये आँकड़े बताते हैं कि अनियंत्रित भोग-विलास एवं अमर्यादित यौनाचार और उसे प्रोत्साहित करने वाले सुविधा-साधनों ने नई पीढ़ी को चूस लिया है।

अमेरिका के 'किंसे आयोग' की रिपोर्ट में कहा गया है कि इन दिनों 'पाश्चात्य देशों में माता-पिता अपनी संतानों के लिये जहाँ पुस्तकों की व्यवस्था करते हैं, वहीं वे उन्हें परिवार नियोजन के साधनों से उन्हें लैस किया करते हैं। इस तरह कामुकता के बीज कच्ची उम्र में ही बो दिये जाते हैं। यही कारण है कि अमेरिका में माध्यमिक स्तर की शिक्षा पूरी करने से पूर्व ही लड़की-लड़के यौनाचार में पूरी तरह लिप्त रहने लगते हैं। होटलों में इसके लिये सारी सुविधायें भी उपलब्ध हैं। इस संदर्भ में 'एलेन गुटमाचेर इन्स्टीट्यूट ऑफ अमेरिका' के मूर्धन्य समाजशास्त्री जार्ज गार्डन ने आँकड़े प्रस्तुत करते हुए कहा है कि इन दिनों अमेरिका की कुल जनसंख्या में से एक करोड़ बीस लाख युवतियाँ कामुकता के इस विकृत जंजाल में फँसी हुई हैं। इनमें से १४ से १९ वर्ष की लड़कियों का अनुपात प्रति हजार पीछे ९६ है, जिन्हें गर्भधारण का खतरा उठाना पड़ता है। इंग्लैण्ड और वेल्स में यह अनुपात प्रति हजार पीछे ४५ है, जबकि कनाडा, फ्रांस, स्वीडेन तथा नीदरलैण्ड में क्रमशः ४४, ४३, ३५ और १४ है। कामुकता का यह प्रवाह दावानल की तरह विस्तृत होकर पूरी दुनिया को अपनी चपेट में लेता जा रहा है।

अविवाहित माताओं एवं अवैध संतानों की इस अभिवृद्धि ने आज समूचे योरोप की सामाजिक एवं पारिवारिक व्यवस्था की नींव को छिन्न-भिन्न कर दिया है। सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री लार्ड डेनिंग के शब्दों में आज पारिवारिक जीवन एवं वैवाहिक मर्यादाओं के सभी मानदण्डों-नैतिकताओं को मनुष्य ने तोड़ डाला है। कामुकता की बाढ़ संक्रामक महामारी की तरह सब कुछ स्वाहा कर जाने को समुद्यत है। अविवाहित माताओं एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनकी संतानों की संख्या दिन-दिन बढ़ती जा रही है। सांसद डेल्विन के अनुसार ब्रिटेन में तो एक ऐसी विकृत मानसिकता का ही उदय हो गया है कि लड़कियाँ कुँवारी माँ कहलाने में गौरव की अनुभूति करने लगी हैं। १६ वर्ष से कम आयु की हजारों किशोरियों को प्रतिवर्ष इसका दुष्परिणाम गर्भपात कराने के रूप में भुगतना पड़ता है। नारी में बढ़ रही इस दुष्प्रवृत्ति को भड़काने के उनने परिवार नियोजन उपायों के अतिरिक्त अनेकों कारण गिनाये हैं, जिनमें अश्लील साहित्य, कामोत्तेजक फिल्में, भौंड़े विज्ञापन, हिप्पी संस्कृति आदि का बढ़ता पसारा प्रमुख हैं। अभिभावक भी इसके लिये कम दोषी नहीं हैं।

भारत भी इस महामारी से अब अछूता नहीं रहा। अवैध गर्भपातों एवं अविवाहित माताओं की संख्या असाधारण रूप से बढ़ी है। अपने देश में इसे लज्जा का विषय माने जाने से छिपाने की एक कठिनाई और जुड़ जाती है, फिर भी उपलब्ध आँकड़े बताते हैं कि प्रतिवर्ष इस तरह ४० लाख महिलायें गर्भपात कराती हैं। लोक-लज्जा के भय से कितने ही नवजात शिशुओं को नदी-नालों, झाड़ियों, कूड़ेदानों में फेंक दिया जाता है। उच्छृंखलता एवं स्वच्छंदता के प्रवाह ने अपने देश की किशोर एवं युवा पीढ़ी को भी पतन के मार्ग पर चलने के लिए उद्वेलित किया है। समय रहते इसका उपचार न किया गया तो पाश्चात्य संस्कृति की पुनरावृत्ति हो सकती है।

संख्या नहीं; समर्थता जिन्दा रहेगी

सारे विश्व में सबसे अधिक उत्पादन यदि किसी वस्तु का बढ़ रहा है तो वह है मनुष्य का उत्पादन। घड़ी में लगी सेकेण्ड की सुई इधर टिक करती है, उधर संसार में कहीं-न-कहीं तीन बच्चे जन्म ले लेते हैं। एक सप्ताह गुजरता है तब जनसंख्या के पुराने आँकड़ों में २० लाख शिशुओं की वृद्धि हो जाती है। इसीलिए कोई भी जनसंख्या-विशेषज्ञ पृथ्वी की जनसंख्या की शत-प्रतिशत जानकारी कभी दे ही नहीं सकता। कितनी देर में वह एक वाक्य बोलेगा उतनी देर में ही एक सौ बच्चों की संख्या और बढ़ जायेगी।

सृष्टि के आदिकाल से लेकर सन् १८३० तक सारी धरती की जनसंख्या कुल एक अरब हुई, पर इसके बाद से विज्ञान की प्रगति से होड़ लेती हुई जनसंख्या भी इतनी तेजी से बढ़ी कि अगली एक शताब्दी में ही वह दुगुनी अर्थात् २ अरब हो गई। इसके बाद तो वृद्धि और भी तीव्र हुई—१९३० के बाद कुल ३० वर्ष में ही आबादी ३ अरब हो गई। यदि इस क्रम को रोका न गया तो इस शताब्दी के अन्त तक अर्थात् सन् २००० तक विश्व की जनसंख्या १० अरब होगी और तब सारा संसार एक बार विस्फोट के लिये तैयार होगा। महाप्रलय अगले ३० वर्षों में कब हो जाये, कुछ कहा नहीं जा सकता।

इस बेतहाशा वृद्धि को देखकर ही माल्थस को चिन्ता हुई थी और उन्होंने जनसंख्या पर एक सुविख्यात शोधकार्य किया, जो आज सारे विश्व में 'माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त' (माल्थस थ्योरी) के नाम से प्रसिद्ध है। माल्थस ने जनसंख्या वृद्धि की गम्भीरता का दिग्दर्शन कराते हुए लिखा है—"जनसंख्या गुणोत्तर क्रम (ज्योमेट्रिकल प्रोग्रेशन) की दर से अर्थात् १ से २। २ से ४। ४ से ८। ८ से १६। १६ से ३२। ३२ से ६४। ६४ से १२८ के हिसाब से बढ़ती है, जबकि उत्पादन समान्तर क्रम (अरिथमेटिकल प्रोग्रेशन) अर्थात् १, २, ३, ४, ५, ६, ७, के हिसाब से बढ़ता है। इस हिसाब से पहले वर्ष १ व्यक्ति था, तब उसके लिये १ यूनिट अन्न की आवश्यकता थी जो उसके उदर-पोषण के लिये पर्याप्त था। तीसरे वर्ष व्यक्ति हो गये ८ पर अन्न उत्पादन की यूनिट ३ ही रही। पाँच व्यक्तियों के लिए अन्न का जो दबाव पड़ेगा, उसके लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, वस्त्र, मकान और मनोरञ्जन आदि के साधनों में कटौती करके भरण-पोषण की समस्या पूरी करनी पड़ेगी। प्रत्येक अगले वर्ष यह जटिलता बढ़ती ही जायेगी। ७ वर्ष बाद जहाँ खाने के लिये जनसंख्या १२८ होगी, वहाँ उत्पादन कुल ७ ही यूनिट होगा। तात्पर्य यह कि १२१ व्यक्ति बेरोजगारी, भुखमरी, बीमारी और निरक्षरता की समस्या से जन्मजात पीड़ित होंगे और वह सब मिलकर उनको असुरक्षा की समस्या से पीड़ित कर रहे होंगे। उत्पादन का यह अनुपात अन्न के क्षेत्र में ही नहीं, वस्त्र आदि आत्म-सुरक्षा और आत्म-विकास के क्षेत्र में भी होगा। इस तरह संकट प्रत्येक क्षेत्र में बढ़ेंगे। बेरोजगारी, भुखमरी, अशिक्षा और अनुशासनहीनता का वह स्वरूप आज स्पष्ट देखा जा सकता है।

सम्भवतः इन आँकड़ों के आधार पर ही डॉ० वी० आर० सेन (जो पहले भारत के खाद्य मन्त्रालय के सचिव थे, सन् १९६६ में जो संयुक्त राष्ट्रीय खाद्य एवम् कृषि संगठन के महानिदेशक नियुक्त हुए थे) ने कहा था—'यह माना गया है कि संसार में तब तक स्थायी शान्ति और सुरक्षा कायम नहीं हो सकती, जब तक भुखमरी और अभाव को खत्म न कर दिया जाये। वस्तुतः व्यक्तियों का स्वास्थ्य और सुख ही नहीं, वरन् स्वतन्त्र एवम् लोकतन्त्री समाज का अस्तित्व भी खतरे में है। अगले १४ वर्ष मानवीय इतिहास में अत्यधिक नाजुक होंगे। या तो हम उत्पादकता बढ़ाने और जनसंख्या न बढ़ने देने के लिये सब सम्भव प्रयत्न करलें अन्यथा हमें अभूतपूर्व रूप से विशाल विपत्ति का सामना करना होगा।'

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह कथन शेखचिल्ली के विवाह की कल्पना नहीं वरन् एक सत्य है जो हमें आगामी दिनों किसी भयंकर विस्फोट के लिए तैयार रहने को सावधान करता है। प्रकृति के कोष में सीमित सामग्री है, वह असीमित लोगों के पेट नहीं भर सकती। इसलिए उसने एक सिद्धान्त बना लिया है कि जो भी जातियाँ दीवाली में आतिशबाजी के साँप की तरह बढ़ती हैं, उनको नष्ट किया जाता रहे। मक्खी और मछलियाँ संसार में सबसे अधिक बच्चे पैदा करती हैं। यदि प्रकृति भी उनका संहार तेजी से न करती तो आज इन मक्खियों और मछलियों के रहने के लिये १० करोड़ ऐसी ही धरतियों की आवश्यकता पड़ती जैसी अपनी पृथ्वी है।

एक हाथी मरने से पूर्व केवल ६ हाथी पैदा कर जाता है। यदि प्रकृति उन पर नियन्त्रण न करती तो संसार में हाथी ही हाथी होते। आस्ट्रेलिया में खरगोश बहुतायत से पाये जाते हैं। वहाँ छोटे-छोटे गड्ढों में पानी के लिये ही उनमें भयंकर युद्ध होता है और यादवों की सेना की तरह आपसी रक्तपात में ही उनका विनाश होता रहता है।

मनुष्य भी ऐसे ही विनाश के कगार पर आ पहुँचा है। संसार में जो भी जातियाँ अधिक प्रजनन वाली रहीं वह अविकसित और पददलित ही नहीं हुईं, नेस्तनाबूद भी हो गईं। योरोप मे पाई जाने वाली 'डायनोसरस' और 'ब्रान्टोसरान' जातियाँ जिनके पहले राज्यों-के-राज्य बसे थे, अब उनका एक भी आदमी संसार में देखने को भी नहीं मिलता। उनकी स्त्रियों को दूसरी समर्थ जातियों ने हड़प लिया और वे आपस में ही खाने-पहनने के नाम पर लड़-झगड़ कर नष्ट हो गईं। जबकि थोड़े-से संयमी इजरायल और कजाख संख्या में थोड़े होने पर भी संसार में गौरवपूर्ण स्थान बनाये हैं। 'जनसंख्या नहीं—समर्थता जिन्दा रहती है' के सिद्धांत को इन उदाहरणों द्वारा अनुभव किया जा सकता है। अभी युद्ध हुआ और इजराइल जिनकी संख्या कुछ लाख ही है, ने कई करोड़ अरबों को ७ दिन में परास्त करके रख दिया।

सूअर सबसे अधिक बच्चे देने वाला जानवर है। उसे अपना उदर-पोषण घृणित साधनों से ही करना पड़ता है। स्वयं भी बहुत कमजोर होता है दूसरी ओर 'शेर' बहुत ही कम बच्चे देता है, उसकी शारीरिक क्षमता इतनी प्रचण्ड होती है कि जब दहाड़ता है तो अगले पञ्जों से पृथ्वी को जकड़ लेता है तब दहाड़ता है। किंवदन्ती है कि उसे आशंका रहती है कि मेरी दहाड़ से कहीं पृथ्वी न फट जाये। इस विशेष दहाड़ को 'नाकी' कहते हैं—जब वह दहाड़ भरता है तो उस क्षेत्र के सारे पेड़-पौधे और पृथ्वी तक काँप जाती है। भारतीयो की संख्या तब थोड़ी ही थी पर हमने संयमित और ब्रह्मचर्यपूर्ण जीवन के कारण वह शक्ति पाई थी, जब हिमालय पर खड़े होकर दहाड़ते थे तो सारा एशिया काँप जाता था। हमारी वाहिनियाँ अमेरिका तक चली जाती थीं और उन्हें जीतकर लौटती थी। अधिक सन्तान वाली जातियाँ होती हैं वे तो (१) जल्दी ही समाप्त हो जाती हैं। (२) कमजोर होती हैं। (३) अव्यवस्थित होती हैं, इसलिये ये संघर्ष और प्रतिस्पर्धा में सबसे पिछड़ी रहती हैं।

माल्थस ने जनसंख्या रोकने के दो उपाय बताये हैं—(१) पाजिटव चेक (२) प्रिवेन्टिव चेक। पहले का आशय उपर्युक्त कथन से ही है। माल्थस कहते हैं—जनसंख्या बढ़ती है तो लोग पत्ते खाने को तरसते हैं। फिर प्रकृति अकाल, महामारी, भुखमरी आदि से उनका स्वयं संहार कर देती है।

प्रिवेन्टिव चेक का तात्पर्य यह है कि मनुष्य स्वयं विरोध करले। उससे वह सुरक्षित रह सकता है। इसमें प्रतिबन्धात्मक विरोध, जिसमें परिवार नियोजन के सारे साधन आते हैं, पहला उपाय है। दूसरा और सबसे अच्छा उपाय यह है कि मनुष्य संयमित जीवन बिताये पर इसके लिये उसे रचनात्मक दिशा की आवश्यकता होगी अर्थात् उसे मनोरञ्जन के ऐसे साधन देने होंगे, जो काम-सुख की तुलना में कहीं अधिक आकर्षक हों।

प्रतिबन्धात्मक रोक-थाम को माल्थस ने भी बुरा माना है और बताया है कि कृत्रिम साधनों से परिवार-नियोजन करने वाली जातियाँ मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कमजोर होती हैं। लूप, निरोध, नसबन्दी आदि की चर्चा करने से आत्महीनता के भाव आते हैं, जबकि सरकारी मशीनरी के हाथ में यह साधन हो तब उसके दुरुपयोग की और भी आशंका रहती है, जैसा कि इन दिनों हो रहा है। आज का परिवार नियोजन कार्यक्रम चारित्रिक अवस्थाओं को सबसे अधिक चरमरा देने वाला आयोजन है। बिनोवाजी ने तो उसे 'मातृत्व की बिडम्बना' कहकर पुकारा है। यदि इन कृत्रिम साधनों की चर्चा बन्द न हुई तो हम अपना सम्पूर्ण आध्यात्मिक, धार्मिक एवम् सांस्कृतिक गौरव तक खो सकते हैं।

इन साधनों से स्वास्थ्य बिगड़ता है। कृत्रिम साधन नये-नये रोगों को जन्म देते हैं। अनेक महिलायें रक्तस्राव से पीड़ित हुईं, अनेकों को दूसरी बीमारियाँ ।

कृत्रिम साधन कामुकता और अनैतिक आचरण को प्रोत्साहन देते हैं। यौन-समस्या शारीरिक कम मानसिक अधिक है। कृत्रिम साधन लोगों को मानसिक दृष्टि से विभ्रात और विक्षिप्त बनाते हैं। सामान्य चर्चा से कामस्वेच्छावाद भड़कता है। सामाजिक मर्यादायें टूटती हैं। सांस्कृतिक मूल्य बदल जाते हैं।

माल्थस के इस कथन की सत्यता को आज हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं। सिनेमा के भद्दे अभिनय, गन्दे गीत और अश्लील दृश्य यह बताते हैं कि आज समाज की मनोवृत्ति ऐसी ही है। अधिकांश जनता यही देखना चाहती है। इसमें फिल्म-निर्माताओ का उतना दोष नहीं है—उनकी आदर्शवादी फिल्मे लोग देखना पसन्द ही नहीं करते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जबकि सस्ते ड्रामे रिपीट-रिपीट कर देखने में लोगों को प्रसन्नता होती है। यह सांस्कृतिक मूल्य, सामाजिक मनोवृत्ति के कारण ही बदले हैं।

माल्थस ने सबसे अच्छा उपाय समाज और भावी पीढ़ी को रचनात्मक दिशायें देने को माना है। परिवार नियोजन कार्यक्रमों को हटाकर यह शक्ति समाज-कल्याण को दे देनी चाहिए और उनका कार्यक्षेत्र गाँव-गाँव (१) खेलकूद और व्यायामशालायें (२) पाठशालायें (३) लघु कुटीर उद्योग (४) सांस्कृतिक आयोजन आदि तक बढ़ा देना चाहिए। मालवीयजी के मन में यह योजना थी-वे गाँव-गाँव में पाठशालायें और सांस्कृतिक आयोजनों के मण्डल और पीठ स्थापित करने का एक विधिवत् आन्दोलन चलाना चाहते थे। उससे लोगों को स्वस्थ मनोरञ्जन मिलता और वर्तमान काम-प्रवृत्ति से लोगों का ध्यान टूटता।

महामना मालवीयजी की इस आकांक्षा को अब पूरा किया जाय तो हम जनसंख्या रोकने में सात्विक ढंग की सफलता प्राप्त कर सकते हैं और तो न रोकने का परिणाम वही होगा जो इस लेख की प्रारम्भिक पंक्तियों में दर्शाया गया है।

अमर्यादित प्रजनन की विभीषिका हम सबको ले डूबेगी

विकास वाद के जनक डार्विन के सिद्धान्त 'स्ट्रगल फार एक्जिस्टेन्स' के अनुसार प्राणियों को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष करना पड़ता है। इस संघर्ष में जो विजयी होते हैं वे ही जीवित रहते हैं। जमाने पूर्व डार्विन ने यह बात कही थी, जिसे मनुष्येत्तर जीवों में प्रत्यक्ष रूप से सही उतरते देखा गया है। जिसकी लाठी उसकी भैंस की रीति-नीति आदिम युग के मनुष्य की थी। पर जिस गति से विश्व की जनसंख्या बढ़ रही है, उसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि अगले दिनों मनुष्य-मनुष्य के बीच जीवन रक्षा के लिए संघर्ष का प्रत्यक्ष दृश्य देखना पड़ सकता है तथा आदिम मनुष्य पुनः अपनी हिंसक प्रवृत्तियों के साथ प्रकट हो सकता है।

सभ्यता की गति सुविकसित अवस्था से आदिम युग की ओर क्यों कर वापिस मुड़ेगी ? कारण स्पष्ट है। प्रकृति के संसाधन सीमित हैं पर उपभोगकर्ताओं की संख्या में असामान्य वृद्धि हो रही है। साधन सीमित और प्रयोगकर्ता असीम। ऐसी स्थिति में आवश्यक साधनों की प्राप्ति के लिए संघर्ष पैदा होगा। फलतः मनुष्य का आदिम स्वरूप पुनः प्रकट होगा। विश्व के मूर्धन्य विचारकों ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि जनसंख्या बढ़ोत्तरी का क्रम निर्बाध गति से इसी प्रकार चलता रहा तो निश्चित ही उपरोक्त परिस्थितियों का सामना करना पड़ सकता है।

परमाणु विभीषिका की तरह जनसंख्या वृद्धि की विस्फोटक स्थिति का पता आँकड़ों को देखने से चलता है जैसे ही घड़ी से सेकण्ड की सुई एक सेकण्ड पार करती है, इस न्यूनावधि में ढाई बच्चे संसार में जन्म ले चुके होते हैं। एक मिनट बीतते ही एक सौ पचास शिशुओं का अवतरण हो जाता है। एक घण्टे में नौ हजार तथा २४ घण्टे में दो लाख सोलह हजार की संख्या विश्व आबादी में जुड़ जाती है। एक वर्ष में सात करोड़ ७६ हजार अर्थात् लगभग तीन चौथाई बंगला देश अथवा इंडोनेशिया की आबादी के बराबर का एक नया देश पैदा हो जाता है।

संसार की जनसंख्या चार अरब ५० करोड़ को पार कर चुकी है। विशेषज्ञों का मत है कि सन् १९९७ तक वह सात अरब तक पहुँच जायेगी तथा २००० में साढ़े १० अरब तक। जनसंख्या की वृद्धि सभी देशों में हो रही है पर एशिया में उसकी रफ्तार सर्वाधिक है। वर्तमान गति को देखते हुए यह सम्भावना की जा रही है कि सन् २००० में विश्व का हर दूसरा व्यक्ति एशियन होगा अर्थात् समस्त भूमण्डल पर निवास करने वाले लोगों में से आधे एशिया में होंगे।

चिकित्सा की आधुनिकतम सुविधाएँ उत्पन्न होने के कारण विश्व के हर व्यक्ति की औसत आयु में वृद्धि हुई है। फलस्वरूप मृत्यु दर के अनुपात में भारी गिरावट आयी है, अनुमान है कि अगले बीस वर्षों में संसार में वृद्ध व्यक्तियों की संख्या में ९० प्रतिशत की वृद्धि होगी सन् २००० तक सम्पूर्ण विश्व में ७० वर्ष से ऊपर आयु वाले वृद्धों की संख्या ७० करोड़ के लगभग होगी। वर्तमान में ७० वर्ष से ऊपर आयु वाले वृद्धों में से आधे से अधिक एशिया में रह रहे हैं।

सर्वाधिक आबादी वाले क्षेत्र एशिया में भी भारत की जनसंख्या वृद्धि की रफ्तार अत्यधिक है। जनगणना के अन्तिम आँकड़ों के अनुसार भारत की आबादी ८९ करोड़ को पार कर गयी है। चीन के बाद भारत दूसरा बड़ी आबादी वाला देश है। एक अनुमान है कि संसार की आबादी का १५.५ प्रतिशत भारत में केन्द्रित है। तीस वर्षों में देश की आबादी में ३२ करोड़ २० लाख की वृद्धि हुई है। अनुमान है कि जनसंख्या वृद्धि का समाधान न ढूँढ़ा गया तो सन् २००० तक अकेले भारत की जनसंख्या, एक अरब तक जा पहुँचेगी।

देश की वर्तमान स्थिति यह है कि पचास प्रतिशत से अधिक व्यक्तियों को जीवनयापन के अनिवार्य साधन रोटी, वस्त्र और आवास की सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं। अभी भी ७५ प्रतिशत जनता निरक्षरता के अभिशाप से ग्रस्त है। चिकित्सा एवं शिक्षा की समुचित व्यवस्था न होने से बच्चों का शारीरिक एवं मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। उन परिस्थितियों में देश की आबादी में हर वर्ष एक बड़ी संख्या और भी जुड़ती जाय, निस्संदेह यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चिन्ता की बात होगी। समय रहते जनसंख्या वृद्धि के कारणों की ढूँढ़-खोज करनी तथा रोकथाम के लिए हर सम्भव उपाय निकाला जाना चाहिए। दूसरे देशों ने अपने-अपने ढंग से आबादी बढ़ोत्तरी को रोकने के लिए प्रयास किये हैं और इसमें उनको सफलता भी मिली है। आसन्न संकट और भी भयावह हो जाय, इसके पूर्व ही कारगर प्रयत्न किया जाना आवश्क है।

प्रस्तुत समस्या के समाधान का एक सुझाव यह भी है कि लड़के-लड़कियों के विवाह की आयु सीमा बढ़ा दी जाय। चिकित्सकों का मत है कि लड़कियों की प्रजनन क्षमता सर्वाधिक १५ से २५ वर्ष तक होती है। अधिकांश महिलाएँ इस अवधि में तीन, चार बच्चों की माँ बन जाती हैं। पच्चीस वर्ष के बाद प्रजनन क्षमता घट जाती है। अपने देश में लगभग ५० प्रतिशत से भी अधिक लड़के-लड़कियों की शादी बाईस वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते हो जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह अनुपात अधिक है। बाल विवाह की कुपरम्परा आज भी देश के विभिन्न भागों में विद्यमान है। राजस्थान में आज भी आधे से अधिक लड़के-लड़कियों का विवाह १५ वर्ष की आयु के पूर्व ही कर दिया जाता है। अपरिपक्व वय के किशोरों में जोश का आवेग तो रहता है। पर होश नहीं होता। अपरिपक्व मस्तिष्क उन हानियों पर विचार कर पाने में असमर्थ होता है। जो अल्पायु में विवाह हो जाने से अपार क्षति पहुँचाते हैं। जब तक ऐसे दम्पत्ति अपना भला-बुरा सोचने योग्य होते हैं, तब तक कितने ही बच्चों के असामयिक भार से दब चुके होते हैं। आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उनके साथ जीवन भर के लिए कितनी ही समस्याएँ जुड़ जाती हैं।

नैतिक दृष्टि से निर्धारित विवाह आयु यों लड़कों के लिए २५ वर्ष तथा लड़कियों के लिए २० वर्ष मानी जानी चाहिए पर बहुत कम ही अभिभावक इन मर्यादाओं का पालन करते हैं। दहेज की कुप्रथा के कारण लड़कियों की किशोरावस्था में ही उनके अभिभावकों के मन में यह चिन्ता सवार हो जाती है कि शीघ्रतिशीघ्र किसी योग्य लड़के के साथ लड़की का सम्बन्ध कर दिया जाय। दूसरी ओर लड़के के अभिभावक को मोटी रकम लेने का भूत सवार रहता है। वे लड़के का भविष्य नहीं सोचते। एक की विवशता दूसरे की लोभी प्रकृति दोनों ही मिलकर अल्पायु में ही लड़के-लड़कियों के विवाह को प्रश्रय देते हैं। कानून के, नीति के निर्धारित नियम एक किनारे रखे रह जाते हैं और समाज की मनमर्जी चलती रहती है।

अपरिपक्व स्थिति में शादी कर दिए जाने के पीछे एक भ्रान्त यह भी काम करती है कि भारतीय समाज में यह मान्यता लम्बे समय से चली आ रही है कि १२ या १३ वर्ष से कम आयु में लड़कियों का विवाह कर देने से कन्यादान का पुण्य फल प्राप्त होता है। राजस्थान, पूर्वी उत्तर प्रदेश, म० प्र०, बिहार के कितने ही क्षेत्रों में आज भी यह अन्धविश्वास संव्याप्त है। फलस्वरूप लाखों बच्चों की शादी गुड्डे-गुड़ियों के खेल-खिलवाड़ की भाँति कर दी जाती है। इस निराधार भ्रान्ति का उन्मूलन भी उतना ही आवश्यक है जितना कि बाल विवाह को रोकने के लिए कानून पारित कर देना।

उपरोक्त भ्रांति की तरह ही एक और मान्यता समाज में फैली हुई है कि लड़का होना सौभाग्य का चिन्ह तथा लड़की पैदा होना दुर्भाग्य का द्योतक है। लड़की लड़के के बीच भेदभाव करने, एक को कनिष्ठ तथा दूसरे को वरिष्ठ मानने की परम्परा भी इसी पर आधारित है। कितने ही व्यक्ति ऐसे होते हैं जो लड़कियों के होते हुए भी जनसंख्या इस कारण बढ़ाते जाते हैं कि उनके लड़के नहीं हैं। सफलता न मिलने पर वे दूसरी शादी रचाते और वे मूढ़ तब तक चैन नहीं देते, जब तक कि लड़के का मुँह नहीं देख लेते। देश की आबादी में एक बड़ी संख्या इस भ्रान्ति के कारण भी प्रतिवर्ष जुड़ती जाती है। वैचारिक आन्दोलन द्वारा इन मूढ़ मान्यताओं को समाज से उखाड़ फेंकने के लिए भी प्रयत्न होना चाहिए ।

जनसंख्या नियमन की अभीष्ट स्तर की शिक्षा का अभाव भी प्रस्तुत समस्या का एक कारण है। देश की ७० प्रतिशत जनता अशिक्षित है तथा गाँवों में निवास करती है। शिक्षा के अभाव में मनुष्य चिन्तन की दृष्टि से परावलम्बी होता है। उसे अपना दूरगामी हानि-लाभ भी नहीं दिखायी पड़ता है, आँकड़े बताते हैं कि शिक्षितों की तुलना में अशिक्षितों में जनसंख्या वृद्धि की दर कहीं अधिक है। देहाती क्षेत्रों में आबादी वृद्धि की दर अपेक्षा कृत शहरों से अधिक होने का एक कारण यह है कि नगरों में मनोरंजन के अनेकानेक साधन हैं, जबकि गाँवों की स्थिति आज भी अत्यन्त बदतर है। ऐसी हालत में गाँवों में मनोरंजन का एकमात्र माध्यम स्त्री ही रह जाती है। निरीह पत्नी ही निरन्तर कामुकता का शिकार होती रहती है। देखा जाय तो सुदूर क्षेत्रों में भी सिनेमा, साहित्य, संगीत आदि लोकरंजन के श्रेष्ठ माध्यम हो सकते हैं पर गाँवों में ये सुविधाएँ विकृत रूप में उपलब्ध हैं। फलत: पति-पत्नी की चेष्टाएँ शारीरिक धरातल पर काम तृप्ति द्वारा मनोरंजन की आवश्यकता पूरी करती हैं। यह क्षणिक आवेश अन्तत: प्रजनन की दु:खद प्रतिक्रिया, अनेकों बच्चों का भार तथा सारे परिवार के गिरते स्वास्थ्य के रूप में प्रस्तुत होता है।

तथाकथित शहरी पढ़े-लिखे वर्ग की जनसंख्या वृद्धि में प्रमुख भूमिका आज के उस विकृत वातावरण की है जो अश्लीलता और कामुक चिन्तन को बढ़ावा देता है। लोकरंजन के श्रेष्ठ माध्यम सिनेमा, पत्र, पत्रिकाएँ और संगीत हो सकते हैं पर वे समाज की कुत्सित भावनाओं को भड़काने में एक सोथ लगे हुए हैं। अश्लीलता का नग्ननृत्य कला के नाम पर हो रहा है। समाज में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बहुतायत उनकी है जो इनसे प्रेरणा लेते और तदनुरूप चिन्तन तथा गतिविधि अपनाते हैं। सरकारी तथा गैर सरकारी दोनों ही स्तर पर कला के नाम पर पनपती तथा प्रोत्साहन पाती अश्लीलता की रोकथाम के लिए अविलम्ब प्रयास चलने चाहिए।

समझना बताना ही पर्याप्त नहीं होता। समस्याओं के समाधान के लिए कड़ाई बरतना भी कभी-कभी आवश्यक हो जाता है। स्वेच्छापूर्वक हर व्यक्ति जनसंख्या की विभीषिका की गम्भीरता को समझे इसके लिए कितने ही देशों ने कारगर कदम उठाये हैं। चीन ने कानून पारित करके जनसंख्या को रोकने में असाधारण सफलता पायी है। जो अधिक बच्चे पैदा करते हैं, उन्हें निर्धारित नियमों के अनुसार सरकार को भारी टैक्स अदा करना पड़ता है। उन कर्मचारियों का प्रमोशन, वेतन वृद्धि आदि रोक दी जाती है, जो प्रजनन का नियमन नहीं करते दूसरे के बाद जन्म लेने वाले हर अतिरिक्त बालक की समस्त सुविधाएँ छीन ली जाती हैं। अभिभावकों पर टैक्स बढ़ा दिया जाता है। क्यूबा और ताइवान ने भी इसी तरह के कदम उठाये हैं। कुछ ही वर्षों में इन देशों को आबादी नियमन में भारी सफलता मिली है।

समाज एवं देश की प्रगति के लिए अनेकानेक योजनाएँ बन रहीं तथा कार्यक्रम चल रहे हैं पर उनकी सफलता तब तक संदिग्ध बनी रहेगी जब तक कि जनसंख्या की बाढ़ को रोका नहीं जायेगा। हर समझदार व्यक्ति का यह कर्तव्य होता है कि वह प्रस्तुत संकट की गम्भीरता को समझे और दूर करने के लिए व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनों ही स्तरों पर प्रयास करे।

निरंकुश भोगवाद की परिणति

यह स्वाभाविक ही है किसी भी प्रवृत्ति में, दिशा में बुरी तरह डूबे रहने के बाद उससे विरति होगी। मीठा खाते-खाते उससे भी जी ऊबने लगेगा और इसके उपरान्त भी यदि कोई मीठा खाने के लिए दबाव डाले, बाध्य करे तो विद्रोह करने का जी हो उठता है।

हिप्पीवाद, इसी निरंकुश और आत्यंतिक भौतिकता के प्रति संवेदनशील युवकों में जन्मा विद्रोह है। समाज में यह स्थिति आ पाना सम्भव नहीं है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति तो संवेदनशील होता नहीं और हुआ भी तो उस सीमा तक नहीं कि वह मान्य व्यवस्था से ही विद्रोह कर उठे।

फिर भी उसके दुष्परिणाम विभिन्न रूपों जन्मते और उत्पन्न होते हैं। कामुकता, अश्लीलता, मुक्त यौनाचार और इसी तरह की उन्मुक्त दुष्प्रवृत्तियाँ निरंकुश भोगवाद के ही परिणाम हैं। इन दुष्प्रवृत्तियों के कारण कई समस्यायें भी उत्पन्न होना स्वाभाविक है। जनसंख्या की असामान्य वृद्धि उन्हीं समस्याओं में से एक है। लोग बिना सोचे-समझे, आँखें मूँदकर बच्चे पैदा करते चले जा रहे हैं। बच्चे पहले भी पैदा होते थे पर १० में से ९ बच्चे बीमारी, चिकित्सा संसाधनों के अभाव और अन्य कारणों से मर जाते थे। विज्ञान ने उन कारणों पर नियन्त्रण पा लिया है इसलिए अब १० में से ९ बच्चे जीवित रहते हैं और मुश्किल से १ बच्चा मरता है। इस प्रकार जनसंख्या वृद्धि के बढ़ते हुए दबाव से जीवनोपयोगी वस्तुओं का अभाव होने लगा है। निवास, अन्न, वस्त्र, शिक्षा, चिकित्सा, आजीविका, यातायात के साधनों के लिए किस बुरी तरह खींच-तान हो रही है, यह किसी से छिपा नहीं है। जिस चक्रवृद्धि क्रम से जनसंख्या बढ़ रही है, उसके जो दुष्परिणाम निकट भविष्य में सामने आने वाले हैं, उनकी कल्पना करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। विशेषज्ञों का अनुमान है कि अब से सौ वर्ष बाद, मनुष्यों की स्थिति मक्खी, मच्छरों जैसी हो जायेगी और वे बेमौत काल के गाल में घुसते चले जायेंगे। जीवन निर्वाह के साधन समाप्त होने के कारण मनुष्यों को भी निर्वाह के हर क्षेत्र में गतिरोध दिखाई देगा और वे बरसाती कीड़ों की तरह चारों ओर रेंगते, गन्दगी फैलाते, मरते-खपते दिखाई पड़ेंगे।

जनसंख्या नियमन आज की खाद्य, शिक्षा, चिकित्सा, आजीविका एवं युद्ध वर्जन से भी बड़ी समस्या है। उस एक समस्या को मूल और अन्यों को पत्ते कहा जा सकता है। जड़ को सींचने, सम्भालने से काम चलेगा पत्ते पोतने से नहीं। जनसंख्या सीमित हो तो धरती के अनुदानों से प्रकृति सम्पदा से लाभान्वित रहा जा सकता है और विभिन्न प्रकार के टकरावों से बचा जा सकता है अस्तु, यदि संसार के विचारशील लोग इस समस्या के—समाधान के विभिन्न उपाय सोच रहे हैं और विवेकवान वर्ग विभिन्न प्रयोग कर रहे हैं तो यह सराहनीय चेष्टा ही कही जायगी।

नैतिक, चारित्रिक और सांस्कृतिक संकटों ने इन दिनों समस्त मानव जाति को उद्विग्न एवं संत्रस्त कर रखा है। इसका कारण है—मानवी दुर्बुद्धि-अदूरदर्शिता। दाम्पत्य-जीवन का उच्चस्तरीय आनन्द लेते हुए ही जनसंख्या वृद्धि को रोका जा सकता है और वैज्ञानिक प्रगति से—संसार से दरिद्रता, रुग्णता, अशिक्षा एवं पिछड़ेपन को दूर किया जा सकता है। यदि मानवी दुर्बुद्धि को रोका जा सके और उसका स्थान सद्भावना को—विवेकशीलता को—मिल सके तो उलझी हुई गुत्थियाँ सुलझ सकती हैं।

माल्थस ने कहा कि मनुष्य को पहले ही सद्बुद्धि से काम लेना चाहिये और जनसंख्या को इतना सीमित रखना चाहिये कि ऐसी परिस्थिति ही उत्पन्न न होने पाये कि प्राकृतिक अवरोधों के कारण कष्ट उठाने पड़ें। उन्होंने जनसंख्या रोकने के दोनों ही उपाय बताये—(१) बुरे अवरोध—इसमें गर्भ क्षीण करना, आपरेशन कराना एक ही स्त्री से बहुत व्यक्तियों द्वारा काम तुष्टि, छल्ले, लूप, गर्भ निरोधक औषधियाँ आदि। इन उपायों से देखने में भले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गृहस्थ एक तपोवन ४.२५

ही लगता हो कि जनसंख्या वृद्धि का अनुपात कम हुआ पर उससे होने वाली हानियाँ समाज के लिए घातक होंगी जितनी जनसंख्या वृद्धि से भी तत्काल नहीं होगी।

ऐसी स्थिति में केवल—(२) नैतिक संयम ही उचित प्रतिबन्धक अवरोध हो सकता है। माल्थस ने इस पर बहुत जोर दिया है। इसमें ब्रह्मचारी रहना, देर से विवाह करना, सन्तानोत्पत्ति की भावना न रखकर नियन्त्रित जीवन बिताना आदि सम्मिलित हैं। आहार का संयम, अश्लील चित्रों और प्रसंगों से बचना आदि इसी के अन्तर्गत आते हैं। हमारे लिये उचित यही है कि हम आत्म-संयम का पालन करें और सन्तान की संख्या बढ़ने न दें।

यह किया जाय—इन दिनों प्रबुद्ध वर्ग में यह विचार दिन-दिन जोर पकड़ रहा है कि लोग अविवाहित जीवन व्यतीत करें—यदि विवाह भी करें तो सन्तानोत्पादन न करने का आरम्भ से ही निश्चय कर लें—जिनकी आर्थिक, बौद्धिक एवं शारीरिक क्षमता सन्तान को समुन्नत बनाने की है, वे न्यूनतम संख्या में बच्चे पैदा करें। एक या दो पर्याप्त माने जाने चाहिए। यह विचार न केवल चिन्तन क्षेत्र में ही वरन् कार्यान्वित भी किये जा रहे हैं। इस दिशा में कई देश बहुत आगे हैं।

जापान क्षेत्रफल की दृष्टि से बहुत छोटा देश है। वहाँ के प्राकृतिक साधन भी स्वल्प हैं। इस वस्तुस्थिति से हर नागरिक परिचित है। वे जानते हैं कि यदि अनियन्त्रित सीमा में बच्चे पैदा किये जाने लगें तो वह छोटा-सा टापू पचास-चालीस वर्ष के भीतर ही टिड्डी दल की तरह मनुष्यों से भर जायगा और वे बरसाती मक्खी, मच्छरों की तरह अभावग्रस्त होकर बेमौत मरेंगे। इस दयनीय दुर्दशा के खतरे को समझकर वहाँ का हर नागरिक इस बात के लिए सचेष्ट रहता है कि जनसंख्या बढ़ने न पाये। यही कारण है कि हजारों वर्षों से समुन्नत स्थिति का वह देश उपभोग कर रहा है और उन खतरों से बचा हुआ है जो भारत जैसे देश के सिर पर नंगी तलवार की तरह नाच रहा है।

जापान के नर-नारी विवाह से बचते हैं। उनमें से प्राय: एक तिहाई लोग आजीवन अविवाहित रहते हैं। जो विवाह करते हैं वे बच्चे न होने की आवश्यक व्यवस्था अपनाये रहते हैं। जो बच्चे पैदा करते हैं, उनकी संख्या कम ही होती है। वे सभी एक दो सन्तान के बाद उस झंझट को समाप्त कर देते हैं। यह किसी से छिपा नहीं है कि पिता की आर्थिक स्थिति पर, माता के स्वास्थ्य पर, देश के विकास पर बढ़ती हुई सन्तान कितना अधिक भार डालती है। जितना बोझ उठाने की कन्धों में सामर्थ्य हो उतना ही उठाना समझदारी है। उस देश में विवाह कमजोरी या मजबूरी का कारण माना जाता है और उसे उपेक्षणीय माना जाता है। वहाँ विवाहों की बधाई नहीं बँटती क्योंकि वह एक प्रतिगामी कदम माना जाता है।

अब विवाहों की आयु बढ़ रही है। भारत जैसे देश के पागल लोग तो दूधमुँह बच्चों के विवाह भी कर सकते हैं और उस सन्तान हत्या की खुशी मना सकते हैं, पर प्रगतिशील देशों के लोग यह सोचते हैं तब तक व्यर्थ का अडंगा उत्पन्न करके अपने विकास प्रयत्नों में अवरोध क्यों खड़ा किया जाय। निश्चित रूप से विवाह के साथ इतने अधिक उत्तरदायित्व सिर पर आते हैं कि आदमी उसके बोझ से दबता, पिसता ही चला जाता है, उस गाड़ी को खींचने में उसका सारा कचूमर निकल जाता है, कोई बड़ी बात सोचना, कोई बड़े कदम उठाना, कोई प्रगति करना उसके लिए समय, शक्ति, चिन्तन और धन के अभाव में सम्भव ही नहीं हो पाता। जो कुछ है वह इसी गृहस्थ की भट्टी में जलता चला जाता है।

विवाह की आयु प्रगतिशील देशों में वह समझी जाती है जिसमें मनुष्य थकान अनुभव करने लगे और महत्त्वाकांक्षाओं की इतिश्री कर दे। जिन्हें विवाह करना होता है वे चालीस वर्ष के पश्चात् करते हैं ताकि अपने परिपक्व अनुभव से एक दूसरे के साथ अधिक अच्छी तरह निर्वाह कर सकें। नई उम्र के जोशीले बच्चे तो भावुकता के घोड़े पर चढ़े होते हैं। अभी प्राणाधिक प्यार, अभी उपेक्षा, अभी आवेश, अभी तलाक, अभी आत्म-हत्या यह उपद्रव नई उम्र वाले ही करते हैं। प्रकृति के अनुसार बच्चे पैदा करने का उभार भी नई उम्र में ही होता है। ढलती आयु में उस उफान से शरीर स्वयं बचता है। स्थिर बुद्धि के अनुभवी लोग अपना सहयोग भी दूरदर्शी सहिष्णु सिद्धान्तों के आधार पर शान्त चित्त से निभा लेते हैं और दूसरे के लिए अधिक उपयोगी—सहायक सिद्ध होते हैं।

राष्ट्रसंघ द्वारा संग्रहीत आँकड़ों की पुस्तक 'डोमोग्राफिक ईयर बुक' के अनुसार संसार भर की औसत गणना के आधार पर महिलाएँ २४ वर्ष की आयु में और पुरुष २७ वर्ष की आयु में विवाह करते हैं। आयरलैण्ड का अनुपात इस दृष्टि से सबसे ऊँचा है। वहाँ विवाह आयु ३१ वर्ष है। उस देश में आमतौर से महिलाएँ ४५ वर्ष बाद और पुरुष ५४ वर्ष बाद विवाह बन्धन में बँधना पसन्द करते हैं। आधे लोग तो आजीवन अविवावहित ही रहते हैं।

यह आँकड़े बताते हैं कि कुछ अनुभवहीन नर-नारी बीस-पच्चीस वर्ष की आयु में विवाह करते होंगे और कुछ दूरदर्शी लोग ४० के आस-पास उस बन्धन में बँधते होंगे तभी तो अनुपात औसत इतना आता होगा। संसार भर की नारियों की औसत आयु जब २४ वर्ष और पुरुषों की २७ वर्ष मानी गई है तो उसमें भारत जैसे बारह-चौदह वर्ष की आयु में ब्याह करने वाले लोगों की गणना भी सम्मिलित होगी। बुद्धिमानी का औसत फैलाया जाय तो वह ३० और ४० वर्ष के बीच ही पहुँचेगा। यह हवा यदि ठीक तरह चलने लगी और लोगों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ने जनसंख्या वृद्धि के खतरे को ध्यान में रखते हुए—व्यक्तित्वों को अधिक विकसित करने की आवश्यकता समझते हुए यदि विवाह की आयु बढ़ाने का ध्यान रखा तो सामने खड़ी सर्वनाशी विपत्ति से जरूर राहत मिलेगी।

अक्सर यह दलील दी जाती है कि अविवाहित असंयमी हो जाते हैं। जहाँ तक शरीर निचोड़ने का सम्बन्ध है विवाहित लोग ही उस प्रकार की क्षति अधिक उठाते हैं। व्यभिचार एक मन:स्थिति है। वह विवाहितों में कम नहीं अधिक ही पनपा हुआ देखा जा सकता है। नैतिक प्रश्न मनुष्य के चिन्तन, दृष्टिकोण एवं चरित्र से जुड़ा हुआ है। यह तथ्य विवाहित और अविवाहित दोनों ही पक्षों को समान रूप से प्रभावित कर सकते हैं। संयमी, सदाचारी रहने और उच्छृंखल, अनाचारी बनने में विवाह न कुछ सहायक होता है न बाधक। एक क्षण के लिए यह मान भी लिया जाय कि विवाह से यौन सदाचार होता होगा तो उससे जितना लाभ है उससे अधिक वैयक्तिक और सामाजिक हानि वे हैं जो शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और राष्ट्रीय समस्याओं को वे-तरह प्रभावित करती हैं। तुलनात्मक विवेचन करने पर—यौन सदाचार को अत्यधिक महत्त्व देने पर भी यह सिद्ध नहीं होता कि उतने भर से व्यक्ति अपने को, अपनी पत्नी को, अपने बच्चों को और अपने समाज को अच्छी स्थिति दे सके।

जहाँ तक साथी, सहचर, मित्र, घनिष्ट या आत्मीय का सम्बन्ध है और मिल-जुलकर जीवन जीने की व्यवस्था का प्रश्न है वहाँ नर-नारी का कोई खास महत्त्व नहीं, क्या दो भाई या दो बहिनें मिलकर साझीदारी की जिन्दगी नहीं काट सकते ? जहाँ तक जीवन व्यवस्था में दो साथी-सहचरों का सम्बन्ध है—दो पुरुष या दो नारियाँ भी इस तरह की साझीदारी बना सकती हैं। यौन आचरण की बात को यदि अलग रख दिया जाय तो विवाह का ८० प्रतिशत प्रयोजन दो घनिष्ट मित्र मिलकर भली प्रकार पूरा कर सकते हैं। मात्र यौन आचरण के लिए विवाह करना वस्तुत: विवाह संस्था को अत्यन्त निकृष्ट स्तर पर पटक देना है, यदि ऐसा ही है तो उसे कानूनी वेश्यावृत्ति से अधिक और क्या कहा जायगा।

आवश्यकतानुसार नर-नारी भी मिल-जुलकर रह सकते हैं और विवाह बन्धन में बँधे रह सकते हैं। यदि उनके सामने पारस्परिक उत्कृष्ट सहयोग का अथवा मिल-जुलकर समाज के लिए उपयोगी काम करने का लक्ष्य हो तो वे बिना सन्तानोत्पादन का उत्तरदायित्व कन्धे पर उठाये अपने आनन्द लक्ष्य यौनाचार से—सन्तानोत्पादन से सहज ही ऊँचा रख सकते हैं।

अब इस तरह के प्रयोग भी कम नहीं चल रहे हैं। उनकी संख्या बढ़ रही है। समान प्रकृति के पुरुष-पुरुष अथवा नर-नारी साझेदारी की जिन्दगी शान्ति और स्नेह पूर्वक जी सकते हैं और एक दूसरे के सुख-दुख में सहयोगी एवं बफादार रह सकते हैं। इससे यौनाचार के अतिरिक्त विवाह की अन्य सभी महत्त्वपूर्ण आवश्यकताएँ पूरी हो सकती हैं। नर-नारी के बीच भी यदि विवाह होता हो तो क्या आवश्यकता है कि सन्तानोत्पादन को अनिवार्य आवश्यक ही समझें। क्या व्यक्ति और समाज का भार बढ़ाने की अपेक्षा नर-नारी का मिलन किन्हीं अन्य उपयोगी कार्यों में प्रयुक्त नहीं हो सकता ?

क्या पच्चीस साल से भी कम आयु के शारीरिक और मानसिक दृष्टि से अपरिपक्व और अविकसित बच्चों का विवाह बन्धन में बँधकर अपनी प्रगति के द्वार बन्द कर देना और अनावश्यक दवाब में दबकर अपना भविष्य अन्धकारमय बना लेना उचित है ? इस प्रश्न पर इस तथ्य को भी ध्यान में रखकर विचार करना होगा कि बढ़ती हुई जनसंख्या की दर मानवी अस्तित्व को धरती पर से मिटा देने के लिए एक भंयकर विभीषिका के रूप में सामने खड़ी है।

यौन स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगाना ही होगा

प्रगतिशीलता के उजले पहलू जितने आकर्षक हैं, उतने ही कुछ ऐसे पक्ष भी हैं जो लाभ के स्थान पर हानि अधिक पहुँचाते हैं। इन कदमों में लगता तो ऐसा है कि पिछले दिनों किसी प्रतियोगिता के युग में हम सब रह रहे थे और अब ऐसा अवसर मिला है कि स्वतन्त्र चिन्तन को फलित किया जा सकेगा और अधिक सुखी रहा जा सकेगा। किन्तु जब कसौटी पर उन परिकल्पनाओं को कसा जाता है तो प्रतीत होता है कि आकर्षण को उत्तेजना ने भटकाव में उलझा दिया।

ऐसे प्रसंगों में यौन स्वेच्छाचार को अग्रिणी समझा जा सकता है। अब नर और नारी का साहचर्य उतना प्रतिबन्धित नहीं रहा जितना कि कुछ समय पूर्व था। वयस्क छात्रों की सहशिक्षा का अब आम प्रचलन है। लड़के-लड़कियाँ एक ही कालेज में पढ़ते हैं। खेल प्रतियोगिता से लेकर दफ्तरों-कारखानो में भी अब स्त्री-पुरुषों की विभाजन रेखा घटती जा रही है। पर्दा-घूँघट तो मात्र सामन्त वर्ग तक सीमित रह गया । गरीब श्रमिकों में पहले भी नहीं था और न अब है। इसी प्रकार सामन्तों के हरमों को छोड़कर पुरातन काल में पर्दा कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता था और न अब दीखता है। यह सब प्रगतिशीलता के चिन्ह हैं। नर और नारी की समता का नारा क्रमश: अपनी परिणति इसी रूप में प्रस्तुत करता चला गया है।

सैद्धान्तिक दृष्टि से यह अच्छी बात है। व्यवहार में भी यह अच्छा लगता है कि नर और नारी वर्ग के दोनों समुदाय कंधे से कंधा और कदम से कदम मिला कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चलें। इतने पर उस खतरे से बेखबर नहीं रहा जा सकता, जो वर्जनाओं के टूटने के उपरान्त नया अनुशासन उत्पन्न होने की रिक्तता ने उत्पन्न कर दिया है।

कामुकता का माहौल भी अब प्रगतिशीलता का ही एक पक्ष बन गया है। साहित्य, संगीत, सिनेमा, चित्र और दृश्य प्रचलनों में कामुकता की प्रवृत्ति को इन दिनों बढ़ा-चढ़ा प्रोत्साहन मिला है। कला के नाम पर उलट-पुलट कर कामुकता ही नंगी नाचती है। नर-नारी की साहचर्य सुविधा और तथाकथित कला की अभिव्यक्ति की प्रतिक्रिया ने उस पशु प्रवृत्ति को गगनचुम्बी बना दिया है, जो पहले से ही मनुष्य में विद्यमान है। संक्षेप में यही है यौन स्वेच्छाचार की पृष्ठभूमि जो समाज के हर वर्ग में क्रमशः अधिक पनपती बढ़ती जा रही है। अब पतिव्रत धर्म, पत्नीव्रत का ढाँचा-ढकोसला ही खड़ा रह गया है। उनकी जड़ें बेतरह खोखली हो गई हैं। अविवाहितों और विधुरों को ब्रह्मचारी कहने में हर्ज नहीं पर वास्तविक ब्रह्मचर्य व्रत कितनों द्वारा पाला जाता है, यह कहना कठिन है। मानसिक व्यभिचार तो एक फैशन एवं प्रचलन जैसा बन गया है। हर क्षेत्र में हर किसी का मार्गदर्शन करने वाला पाश्चात्य संस्कृति में यौन स्वेच्छाचार भी सिगरेट, चाय की तरह ऐसा व्यसन बन गया है, जिसका मौखिक विरोध भर जब तब सुना जाता है। अप्रकट रूप में उसे लोकमान्यता मिलने लगी है और उसे अपनाने में कोई बहुत बड़ी बुराई या आपत्ति रह नहीं गई है।

इस तथाकथित प्रगतिशीलता के अनेकानेक दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं। दाम्पत्य जीवन ही नहीं गृहस्थ जीवन भी इस कारण अनिश्चित बनता जा रहा है। शिशुओं का भविष्य अन्धकारमय बन रहा है। इसके अतिरिक्त सबसे बड़ी और तात्कालिक हानि है, बढ़ते हुए यौन रोगों की। प्रकृति ने प्राणियों की जननेन्द्रियाँ इस प्रकार सृजी हैं कि उनकों प्रजनन की नितान्त आवश्यकता अनुभव होने पर ही यदा-कदा प्रयुक्त किया जाय। यदि उन्हें मनोरंजन का विषय मान कर झुनझुने की तरह उथले मनोरंजन के लिए प्रयुक्त किया जायगा तो निश्चय ही यह अति कोमल अंग क्षतिग्रस्त होंगे और बीमारियों के शिकार बनेंगे। सभी जानते है कि यौन सम्पर्क से छूत की बीमारियाँ एक से दूसरे को और दूसरे से अनेकानेक को लगती है। यह बीमारियाँ ऐसी हैं जो एक बार लग जाने पर जीवन भर कष्ट देती हैं। दवाओं से दब भर जाती हैं और अवसर मिलते ही फिर प्रकट होती हैं। उनका प्रभाव पीढ़ी दर पीढ़ी तक चल जाता है।

पर्दे के पीछे रहने के कारण यह प्रसंग सार्वजनिक चर्चा एवं जानकारी का विषय नहीं बन पाते तो भी जब-तब जो कुछ जानकारियां सामने आती हैं वे भी कम चौकाने वाली और कम दुःखदायी नहीं हैं। ऐसे प्रकटीकरण प्रायः शिक्षित और चौकन्ने अमेरिका जैसे देशों में ही हो पाते हैं। पिछड़े देश तो भीतर ही भीतर सड़ते और घुल-घुल कर नष्ट होते रहते हैं। हमारे अपने ही राष्ट्र में छत्तीसगढ़ का नाम विश्व भर में स्वास्थ्य जगत में एक ऐसे उपखण्ड के रूप में लिया जाता है, जहाँ एक सघन क्षेत्र में गनोरिया, सिफिलिस जैसे रोगों का जितना बाहुल्य है, उतना विश्व के किसी भी हिस्से में नहीं। यही स्थिति बैंकाक, वियतनाम, फिलीपीन्स एवं मध्य अमेरीकन राष्ट्रों की भी है।

फेडेरल सेन्टर फौर डिजीज कन्ट्रोल द्वारा किये गये एक पर्यवेक्षण के अनुसार यूनाइटेड स्टेट्स में लगभग ५० लाख लोग यौन-रोगों से ग्रस्त पाये हैं। सेन्टर के निर्देशक श्री विलियम एच० फोयेज का कहना है कि प्रतिवर्ष २ से ५ लाख यौन-रोगियों की संख्या नवोदित होती हैं। १९६६ से १९७९ की अवधि में ऐसे रोगियों की संख्या ८५० प्रतिशत से बढ़ी हुई पायी गई है। इसका प्रमुख कारण यौन स्वेच्छाचार में दिन प्रतिदिन वृद्धि ही डॉ. फोयेग ने बताया। डॉ० फोयेग ने पुनः यह तथ्य प्रतिपादित किया कि प्रतिवर्ष यौन संक्रमित माताओं के गर्भ से लगभग एक हजार बालकों का जन्म होता है। जिनमें से आधे तो तत्काल मर जाते और शेष मानसिक विक्षिप्तता कैंसरजन्य रोगों का शिकार हो जाते हैं।

वहाँ इन दिनों ऐसे रोगों से ग्रसित छात्र-छात्राओं की संख्या उस देश में दो करोड़ तीस लाख है। ग्रहस्थ इसके अतिरिक्त हैं। फिर यह आँकड़े अस्पतालों की रिपोर्टों के आधार पर संग्रह किये गये हैं। ऐसे भी असंख्य हैं, जो इलाज कराते ही नहीं या गुपचुप प्राइवेट चिकित्सकों से दवादारू लेते रहते हैं।

आँकड़ों के अनुसार अमेरिका में प्रति हजार स्कूलों में पढ़ने वाली अविवाहित छात्राओं में से २० माता बन चुकी होती हैं। जबकि १५ लाख गर्भपात भी उस क्षेत्र में होते हैं। इन छात्राओं में से एक तिहाई तो १८ वर्ष से भी कम थीं।

उन्मुक्त यौनाचार ने पाश्चात्य देशों में रतिक्रिया के प्रति ऊब सी पैदा कर दी है। वहाँ समलिंगी यौन-सम्पर्क के कारण गत ४-५ वर्षों में एक ऐसी बीमारी फैली है जिसका चिकित्सक इतिहास में कहीं अस्तित्व नहीं पाते। एक्यूट इम्यूनॉलाजीकल डेफीसिएन्शी सिन्ड्रोम (ए० आई० डी० एस०) नामक इस रोग से धीरे-धीरे रोगी की जीवनी शक्ति खोखली होते होते ६ से ८ माह के भीतर दर्द-नाक मृत्यु हो जाती है। छूत से फैलने वाले इस रोग ने पुरुषों व स्त्रियों को यूरोप, अमेरिका व आस्ट्रेलिया में बहुसंख्य समुदाय को अपने ग्रास में ले लिया है। यह विभीषिका भरी परिणति मानवी गरिमा के ऊपर एक बहुत बड़ा कलंक है।

प्रजनन युक्त यौनाचार के प्रति बढ़ते हुए उत्साह ने नसबन्दी, लूप, रबड़ थैलियाँ आदि के कई उपाय निकाले हैं और गर्भपात पर लगे प्रतिबन्धों को उठाया है। इतने पर भी गर्भ निरोधक गोलियों का प्रचलन अभी भी कम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं हुआ है क्योंकि अन्य उपायों में रतिक्रिया उतनी उत्साहवर्धक नहीं रहती। इस प्रयोजन के लिए प्रयुक्त की जाने वाली गोलियाँ क्या दुष्परिणाम उत्पन्न करती हैं, उस सन्दर्भ में उपलब्ध जानकारियाँ कम भयावह नहीं।

गर्भ निरोधक गोलियाँ स्टीलबेस्ट्राल (डी० ई० एस०) न सिर्फ माताओं के लिए प्राणघातक होती हैं, वरन् यह उनकी भावी संतति की प्रजनन क्षमता को भी प्रभावित करती हैं। सन् १९७६ में इस सम्बन्ध में वैसी लड़कियों से इन्टरव्यू लिया गया, जिनकी माताओं ने स्टील बेस्ट्राल (डी० ई० एस०) का कभी सेवन किया था। इन्टरव्यू से ज्ञात हुआ कि इनमें से अधिकांश लड़कियों का मासिक धर्म अनियमित था। इसी प्रकार का इन्टरव्यू सामान्य प्रकार से उत्पन्न जिनकी माताओं ने स्टील बेस्ट्राल नहीं लिया, लड़कियों से लिया गया। इनमें भी कुछ का मासिक स्राव अनियमित पाया गया। किन्तु यह संख्या उन अनियमित मासिक वाली कन्याओं की तुलना में अत्यल्प थी, जिनकी माताओं ने डी० ई० एस० का सेवन किया था। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि अनियमित मासिकस्राव वाली डी० ई० एस० युक्त कन्याओं की संख्या, उन अनियमित मासिक धर्म वाली लड़कियों से दूनी है, जिनकी माताओं ने स्टीलबेस्ट्राल का सेवन नहीं किया। अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ कि डी० ई० एस० कन्याओं में से कुछ गर्भ धारण कर ही नहीं पातीं। जिन कन्याओं ने गर्भ धारण किया व उनसे बच्चे उत्पन्न हुए, उनमें से आधी संख्या बालकों की थी। इन बालकों की प्रजनन क्षमता एवं जनन अंगों का परीक्षण किया गया, तो पाया गया कि इनमें से एक चौथाई संख्या में बच्चे विभिन्न प्रकार की जनन सम्बन्धी विकृतियों से ग्रस्त थे। ऐसी सन्ततियों की संख्या सारे विश्व में बढ़ती जा रही है।

यही बात प्रजनन निरोधी अन्यान्य उपकरणों के सम्बन्ध में भी न्यूनाधिक मात्रा में लागू होती है। उनके कारण स्वेच्छाचार को प्रोत्साहन मिलता है फलतः जननेन्द्रिय रोगों की वृद्धि के साथ-साथ उस जीवनी शक्ति का भारी अपव्यय भी होता है, जिसकी नींव पर कि आरोग्य और दीर्घजीवन की आधारशिला खड़ी हुई है।

यौनाचार और प्रजनन का दायित्व

विवाह को यौनाचार की खुली छूट या बलात्कार का कानूनी लाइसेन्स माना जाता है। पर वस्तुतः ऐसा है नहीं उसके पीछे अनेकों दायित्व और कर्तव्य जुड़े हुये हैं। उनका निर्वाह किये बिना इस अनुबंध की सफलता नहीं बनती। वरन् एक दूसरे के लिए गले के पत्थर और भार भूत बन जाते हैं। ऐसे झंझट में फँस जाते हैं, जिसे गरम दूध की भाँति न पीते बनता है न उगलते। साँप-छछूँदर की तरह असमंजस, संकोच और लोक-लाज से बाधित होकर किसी प्रकार समय काट लेना और गाड़ी धकेल लेना एक बात है और प्रसन्नता, उल्लास और सहयोग से भरा-पूरा दम्पत्ति जीवन बिताना सर्वथा दूसरी।

यौनाचार की अमर्यादित छूट विवाह के उपरान्त मिल जाने की बात सर्वथा अनुपयुक्त है। इस संदर्भ में दोनों पक्षों को एक दूसरे की शारीरिक और मानसिक स्थिति का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। दूसरे पक्ष को यदि अरुचि या असमर्थता है तो स्वस्थ पक्ष को आग्रह करने तथा दबाव डालने का उपचार नहीं करना चाहिए। स्त्री जननेन्द्रिय की संरचना इतनी कोमल है कि उस पर यदा-कदा ही दबाव पड़ना चाहिए। अति बरतने पर संवेदनशील अति कोमल अंग शीघ्र ही रुग्ण हो लेता है और बहुमूत्र, खुजली, प्रदर आदि से ग्रसित हो जाता है। अस्तु आतुरता व्यक्त करने वाले और इस कृत्य में अपना पौरुष समझने वाले नर को नारी की कठिनाई का ध्यान रखते हुये उसे कम से कम ही बाधित करना चाहिये अन्यथा एक के पीड़ित हो जाने पर दूसरे पक्ष को भी उसका भार वहन करना पड़ेगा। आरम्भिक दिनों में दिखाया गया इस तरह का अत्युत्साह अन्ततः दोनों के लिए पश्चात्ताप का कारण बनता है।

ब्रह्मचर्य का धार्मिक जीवन में महत्त्व है, उसका उद्देश्य दृष्टिकोण में पवित्रता भरना और ऊर्ध्वरिता बन कर मानसिक शक्तियों का परिपोषण करना है। उस क्षेत्र में इसके लिए कठोर अनुबंध भी हैं। पर उनका दाम्पत्य जीवन में धार्मिक या सामाजिक रोकथाम न होने पर भी विवेक का एवं शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य का प्रतिपादन है कि पति-पत्नी इस संबंध में जितनी उपेक्षा बरत सकें जितना मध्यान्तर रख सकें उतना ही उत्तम है।

इसका तात्कालिक लाभ यह मिलेगा कि नारी को परिपक्व आयु होने तक गर्भ धारण के झंझट से बचते हुये वह समय योग्यता संवर्धन में लगने का अवसर मिल जाता है। स्पष्ट है कि प्रजनन कर्म में नारी को ही अपने शरीर में से नया शरीर बनाना पड़ता है। ऐसी दशा में पत्नी का स्वास्थ्य परिपक्व होने का अवसर नहीं मिलता, उलटे उसे वर्तमान स्वास्थ्य में कटौती करने की जिम्मेदारी लद पड़ती है। उन दिनों मितली आना, अपच रहना, नींद घट जाना, शरीर में दर्द होना जैसी कई व्यथायें बढ़ जाती हैं। ऐसी दशा में ज्ञान संवर्धन की, शिक्षा की, आगे बढ़ने की गतिशीलता मात्र रुकती ही नहीं शिशु पालन का नया कार्य सिर पर आ जाने से वैसी संभावना ही एक प्रकार से समाप्त हो जाती है। प्रसव पीड़ा उस समय के स्राव तथा बाद में दूध निचुड़ते रहने के कारण न तो उपार्जित स्वास्थ्य का संरक्षण हो पाता है और न शारीरिक स्वास्थ्य के सुधरने एवं विद्याध्ययन की संभावना ही रहती है। जर्जर शरीर स्वभावतः चिड़चिड़ा हो जाता है एवं उसी दशा में दम्पत्ति जीवन में सरसता भी घटने लगती है। उपेक्षा, अन्यमनस्कता बढ़ती और खीज बढ़ती है। ऐसी दशा में सहयोग के स्रोत ही सूखने लगते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसका परोक्ष अर्थ यह हुआ कि दाम्पत्ति जीवन की आधी उपयोगिता इस कारण समाप्त हुई कि पत्नी पर बच्चों को जनने और पालने का असाधारण दबाव बढ़ता गया और वह एक चलते-फिरते कंकाल के रूप में अपना अस्तित्व भर बनाये रह सकी।

यौनाचार की नवविवाहित जीवन में इसलिए तो निश्चित रूप से आवश्यकता है कि पितृ गृह की तरह ससुराल का स्नेह, सहयोग एवं प्रशिक्षण भी भावी जीवन को समुन्नत बनाने की दृष्टि से उपलब्ध हो सके। पितृ कुल की कमाई को वह ससुराल में प्रवेश करते ही समाप्त कर दे। ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होना नारी के प्रति सहज अत्याचार है। भले ही कानून की दृष्टि में उसे पराधीन माना गया हो और उसके लिए मुकद्दमा चलाने या जेल जाने जैसा प्रावधान न हो।

बच्चा जनने से पूर्व नारी का शरीर परिपक्व व्यवस्था में पहुँच चुका होना चाहिए, वह प्रगति क्रम न्यूनतम पच्चीस वर्ष की आयु तक पहुँचे बिना परिपक्वावस्था तक नहीं पहुँचता।

कानून नारी को अठारह वर्ष की आयु में बालिग मान लेता है और विवाह योग्य ठहरा देता है किन्तु प्रकृति के अनुसार तालाब पूरा भर जाने के बाद ही उसमें से निकासी का सिलसिला चलना चाहिए। बाँध में पूरा पानी भर जाने के उपरान्त नहरों में पानी छोड़ा जाता है। जिस बाँध की तली में पानी जमा हुआ हो, उसमें से नहर बहाना शुरू कर दिया जाय तो भविष्य के लिए न बाँध ही कोई निश्चिन्तता दे सकेगा और नहरें ही सिंचाई के लिए उपयुक्त पानी दे सकेंगी। नारी को पच्चीस वर्ष से पूर्ण इस स्थिति में नहीं माना जाना चाहिए कि वह प्रजनन कृत्य ठीक तरह कर सकेगी और शिशु पालन के साथ-साथ अपना शरीर भी यथावत् बनाये रह सकेगी।

बच्चा उत्पन्न करने का अर्थ बाजार में चूँ-चूँ करने वाला रबड़ का गुड्डा खरीद लाना नहीं है। वरन् सच तो यह है कि उसके जन्मने के साथ ही अभिभावकों के सिर पर सौ जिम्मेदारियाँ आती हैं। कोमल शरीर पर तनिक सी अव्यवस्था का भारी प्रभाव पड़ता है फलतः उसे दुर्बलता और रुग्णता घेरने लगती है। बच्चे अपनी व्यथा को कह तो नहीं सकता इसलिए बुद्धिमान अभिभावकों को ही यह अनुमान लगाना पड़ता है कि बच्चे का स्वास्थ्य क्यों लड़खड़ाया और उसे सुधारने के लिए क्या सुधार परिवर्तन करना चाहिए। डाक्टर तो जल्दी में भीड़ निपटाने के लिए नुस्खे का पर्चा लिख कर छुट्टी पा लेते हैं। उनके पास कारण पूछने और निवारण के लिए रहने सहन का हेर-फेर समझाने के लिए समय भी नहीं होता। अस्तु माता-पिता की नासमझी बच्चे के भावी स्वास्थ्य की नींव हिला देती है।

बच्चों के तनिक बड़े होते ही उसे न केवल खिलौने चाहिए वरन् इतना बड़ा घर-आँगन भी चाहिए जिसमें वह भाग-दौड़ करके अपनी विकास प्रवृत्ति का परिपोषण कर सके। पिंजड़े जैसे छोटे घरों में कैद रहने पर बच्चे वैसे ही हो जाते हैं जैसे कि दरबे में बंद रहने वाले चूजे अपनी उड़ने की क्षमता गँवा बैठते हैं। बच्चों का मन घर से बाहर जाने और प्रकृति के दृश्य देखकर अपनी स्वाभाविक जानकारी बढ़ाने का होता है। पर यदि वह घुटन के वातावरण में कैद ही बना रहे तो आरम्भिक दिनों की उस आवश्यकता से वंचित रह जाता है, जो उसके भावी जीवन में स्फूर्ति और प्रगति का सिलसिला चलाने के लिए आवश्यक है।

स्मरण रहे शिशुपालन यदि ठीक रीति से किया जा सके तो बहुत खर्चीला पड़ता है। उसे शुद्ध दूध, फलों का रस आहार के लिए और खिलाने-सँभालने के लिए एक व्यक्ति की पूरी ड्यूटी अपेक्षित होती है।

प्रजनन का दायित्व लेने से पूर्व कई बार सोचें

पति-पत्नी के बीच प्रायः भावावेश में ऐसे संबोधन चलते रहते हैं, जिनसे महसूस होता है कि दोनों के बीच गहरी घनिष्ठता है। इतनी सघन मित्रता, जिसमें एक-दूसरे के प्रति अनन्य प्रेम भाव बनाये हुए हैं। एक-दूसरे के प्रति बड़ा त्याग कर सकते हैं और साथी को सुखी बनाने के लिए, उसका हित साधने के लिए बड़े से बड़ा उपहार दे सकते हैं।

पर परीक्षा की कसौटी पर कसने के उपरान्त प्रतीत होता है कि इस प्रदर्शन में छद्म ही छद्म भरा है। स्वार्थ साधने के लिए ठग अक्सर मीठी बोली बोलते हैं और अपना हितैषी सिद्ध करने के लिए प्रपंचों पर प्रपंच गढ़ते चले जाते हैं। इसी को कहते हैं मित्रता के नाम पर शत्रुता की घात लगाना। पुराने जमाने में शत्रु के साथ कटु वचन कहने, आक्रमण करने और नीचा दिखाने का रिवाज था। बात समाप्त हो जाती थी। कथनी और करनी एक रहने से कोई धोखे में नहीं रहता था। शत्रु के साथ सावधानी बरती जाती थी, पर इस प्रपंच के युग में तो सब कुछ उल्टा हो गया है। शत्रुता बरतने का सरल तरीका मित्रता की दुहाई देना है और जिसे मित्र कहते हैं उसकी बड़ी से बड़ी हानि करके अपना स्वार्थ सिद्ध करने में चूका नहीं जाता।

इसका एक अति स्पष्ट नमूना देखना हो, तो पति-पत्नी के बीच चलने वाले मधुरालाप को देखकर वस्तुस्थिति को समझा जा सकता है कि स्वार्थ सिद्ध करने के लिए कैसे मीठे वचन दिये जाते हैं और कैसे प्रपंच भरे व्यवहार किये जाते हैं। आश्चर्य होता है कि छल ने मित्रता का कैसा कपट आडम्बर ओढ़ लिया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कन्या अपने पिता के घर से ससुराल समस्त जीवन उत्सर्ग करने के लिए आती है। उसका सहज स्वाभाविक अधिकार बनता है कि पितृ गृह में जो स्नेह-सद्भाव उसे मिलता रहा है, उसकी तुलना में ससुराल में उसे अधिक स्नेह, सहयोग और सदव्यवहार हाथ लगेगा। इसका स्वरूप एक ही हो सकता है कि वह पितृ गृह से जैसा स्वास्थ्य, जैसा ज्ञान, जैसा व्यक्तित्व लेकर आई थी, उसकी तुलना में उसे कहीं अधिक उपहार, उपकार हस्तगत होगा। यह तभी हो सकता है, जब दूसरे घर से आई कन्या को हर दृष्टि से समर्थ, सुयोग्य, प्रगतिशील बनने का अवसर मिले। देखा जाता है कि पति-पत्नी को ढेरों समय एकान्त में रहने को मिलता है। इसका सदुपयोग एक ही है कि उतने समय स्वास्थ्य संवर्धन, ज्ञान के विस्तार और व्यक्तित्व को हर दृष्टि से विकसित करने में लगाता रहे। इस उद्देश्य की पूर्ति तभी हो सकती है, जब कोई किसी को अपनी मजबूरी के लिए उसका शोषण न करे और उस समय को पूरी ईमानदारी के साथ सर्वतोमुखी प्रगति का उपहार देने के लिए लगाता रहे। यह ध्यान रहे कि मेरी तुलना में साथी किसी भी प्रकार अपंग, असमर्थ, पिछड़ी स्थिति में न रहने पाये।

इसके लिए सर्वप्रथम कामुकता पर जितना अधिक अंकुश लगाया जा सकना संभव हो, लगाना चाहिए। स्वास्थ्य संवर्धन इसके बिना नहीं हो सकता। ज्ञान वृद्धि के लिए आवश्यक है कि एकान्त वाला समय साथी को अधिक शिक्षित बनाने में लगाया जाय। स्कूल भेजने, ट्यूशन लगाने जैसी व्यवस्था बन पड़े, तो उसमें किसी प्रकार की कमी न रहने दी जाय। साथी का सच्चा उपकार इसमें है कि उसे हर प्रकार से हर क्षेत्र में पोषण दिया जाय, शोषण कोई उपकार नहीं है। काम का बोझ लाद देना, जिम्मेदारियों को बोझ बढ़ा देना जैसे कार्यों को न तो उपकार की श्रेणी में गिना जा सकता है और न सहयोग की ही। हैरानी बढ़ाना, सामर्थ्य को क्षीण करना ऐसा कार्य नहीं है, जिसकी प्रशंसा की जा सके और जिसे मित्रता की श्रेणी में गिना जा सके।

विवाह होने का अर्थ व्यभिचार की, बलात्कार की कानूनी छूट मिल जाना नहीं है, वरन् यह है कि अपनी अपेक्षा साथी को अधिक सुयोग्य, समर्थ और स्वावलम्बी बनाया जाय। बच्चे उत्पन्न करने में स्त्री की क्षति पुरुष से कहीं अधिक होती है। पिता तो अक्सर बच्चों का आर्थिक भार ही उठाता है, पर माता तो अपना रक्त-माँस, लगातार नौ महीने निचोड़ते रहकर बच्चे का शरीर बनाती है, जनते समय इतनी दुरूह प्रसव पीड़ा सहन करती है, जिसमें कई बार तो उसके प्राणों पर भी आ बनती है। स्तन पान कराते रहने से लाल रक्त सफेद दूध के रूप में ही निचुड़ता है। अबोध स्थिति में शिशु की साज-संभाल करना भी उसी का काम है। हारी-बीमारी हो जाने पर अधिकांश समय सेवा में उसी को लगाना पड़ता है। प्रसव के उपरान्त प्रायः नवयुवतियों को भी बुढ़ापा आ घेरता है और कई प्रकार के रोग भी पीछे पड़ जाते हैं। इतने पर भी बालक की जिम्मेदारी माता की ही रही, पिता की नहीं। वह तो केवल वंश चलने, पिण्डदान मिलने आदि के झूठे सपने देखता रहता है। यदि बालक सुयोग्य न बन सका, तो निन्दा का भागी भी अपेक्षाकृत पिता को ही अधिक बनना पड़ता है।

सन्तानोत्पादन के उपरान्त जननी की प्रायः सभी प्रकार की प्रगति रुक जाती है। यह व्यवधान खड़ा करने में प्रायः पिता ही अधिक बाधक होता है। जहाँ तक कामुकता का संबंध है, लड़कियों को उठती उम्र में ही कुछ फुरहरी आती है, आयु बढ़ने के साथ तो वह अनायास ही चली जाती है। पुरुष ही है, जो इस प्रकार का आग्रह आये दिन करता रहता है।

अपने समय का हर समझदार समझता है कि जन्म दर जिस हिसाब से बढ़ रही है, उसे देखते हुए समाज का सर्वतोमुखी अहित इसके कारण होता जाता है। समस्यायें जितनी सुलझाने में नहीं आतीं, उससे ज्यादा नये प्रजनन के कारण निरन्तर बढ़ती ही जाती हैं। विशेषज्ञों का मत है कि जनसंख्या विस्फोट संसार का इतना बड़ा संकट है कि उसके कारण अगले दिनों महाविनाश का संकट खड़ा हो सकता है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी कमजोर होते जाने के कारण एक दिन ऐसा आ सकता है कि स्वस्थ और समर्थ सन्तानें ढूँढ़ पाना मुश्किल हो जायेगा। स्त्रियाँ तो निरन्तर हीन होती जाती हैं। इन सब विपत्तियों का कारण सन्तान की संख्या बढ़ते जाना है। विशेषतया यह मुसीबत तब और भी अधिक बढ़ जाती है, जब लड़कियों को किशोरावस्था आते-आते घर-गृहस्थी अपने सिर पर लादनी पड़ती है और स्वास्थ्य की बलि उसी अनाचार की बलिवेदी पर चढ़ानी पड़ती है।

इन दिनों संसार भर के मूर्धन्य एक ही मत पर सहमति व्यक्त कर रहे हैं कि स्त्रियों की विवाह-आयु पच्चीस वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए। इसके बाद उन्हें बहुमुखी अनुभव सम्पादन के लिए, समाज सेवा का परमार्थ करने के लिए, व्यक्तित्व के विकसित होने के लिए अवसर मिलना चाहिए। समय को देखते हुए यही औचित्यपूर्ण है और यही हितकर भी। इसके बाद ही जिनकी इच्छा हो, वे सन्तानोत्पादन जैसे कठिन मार्ग पर पैर बढ़ायें, अन्यथा मनुष्य जीवन इतना बहुमूल्य है कि उसे आज की विकट समस्याओं को देखते हुए लोकमंगल से सम्बन्धित प्रयोजनों में ही लगाना चाहिए। यौनाचार को विशुद्ध मनोरंजन कहा जा सकता है। उससे जननी का, पिता का, समूचे समाज का और परिवार का हर दृष्टि से अहित ही अहित है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि इस दिशा में अधिक कठोर संयम बरतने का प्रचलन चल पड़े, तो निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण जो अनेकानेक विपत्तियों की भरमार होती जाती है, उस पर सहज नियंत्रण पाया जा सकता है।

सार्थक गृहस्थी केवल उन्हीं की है, जिनमें पति पत्नी की और पत्नी पति की सर्वतोमुखी प्रगति में सहायक होकर एक-दूसरे के व्यक्तित्व को अत्यधिक सुविकसित बनाने में मदद करे। जहाँ इसके विपरीत प्रचलन चल रहा है, जहाँ एक-दूसरे की जीवनी-शक्ति को बर्बाद करने में लगे हों, हर दृष्टि से हानि ही हानि पहुँचा रहे हों, उन्हें यह कहने का अधिकार नहीं है कि वे मित्रता शब्द के साथ जुड़े हुए कर्तव्यों का पालन कर रहे हैं। दोहन, शोषण, पतन, पराभव के निमित्त ही जो प्रवृत्त हैं, उन्हें यह कहने का अधिकार कैसे मिल सकता है कि वे सच्चे अर्थों में मित्र हैं। इस बहाने-शत्रुता की अनीति ही बरत रहे हैं।

इन दिनों तो ऐसे उपाय भी निकल आये हैं, जिनके सहारे यौनाचार पर प्रतिबन्ध न चलने पर भी सन्तानोत्पादन से बचा जा सकता है। जिनके लिए पूर्ण रूपेण संयम साधना संभव न हो, वह ऐसे उपायों का सहारा ले सकते है, किन्तु जिन्हें बच्चे पालने का शौक हो, वे बेसहारों के, असमर्थों के बच्चे पालने के लिए रख सकते हैं और उन्हें सुयोग्य बनाकर परमार्थ लाभ पा सकते हैं। अनर्थ का भागी तो उन्हें बनना पड़ता है जो दूसरों के बच्चे को गोद लेकर उन पर अपना अधिकार ज़माते हैं और वंश चलने, पिण्ड दान मिलने या बुढ़ापे का सहारा बनने के दिवास्वप्न देखते हैं। यह प्रयोजन तो इन दिनों किसी के भी पूरे नहीं हो सकते।

विवाह और प्रजनन की नई समीक्षा

गृहस्थ व्यवस्था में विवाह, यौनाचार और प्रजनन को प्रमुखता मिलती रही है। यों दाम्पत्य-जीवन का वास्तविक उद्देश्य गंगा-यमुना जैसी थोड़ी अन्तर वाली धाराओं को एक में मिलाकर एक आत्म सम्पदा सम्पन्न संगम बनाना था। पर वह आदर्श व्यवहार में कम ही उतर सका।

इन दिनों विवाह की अभ्यस्त एवं पुरातन परिपाटी पर नये सिरे से विश्लेषण आरम्भ हुआ है। उसकी परिणतियों पर नये दृष्टिकोण से सोचा जा रहा है। इस सन्दर्भ में सबसे अधिक प्रमुखता प्रजनन सम्बन्धी विवाह को मिली है। कभी सन्तानोत्पादन ही दाम्पत्य जीवन की सफलता का चिन्ह माना जाता था। पर अब बात वैसी नहीं रही। सोचा जा रहा है कि प्रजननजन्य असुविधाओं और समस्याओं के रहते विवाह की उपयोगिता भी है कि नहीं।

प्रजनन की उपयोगिता पर प्रश्न चिन्ह पिछले दिनों अर्थशास्त्रियों तथा समाजशास्त्रियों ने लगाया है। इस सम्बन्ध में शुरूआत हुए थोड़ा ही समय हुआ है, पर बात कहाँ से कहाँ जा पहुँची।

माल्थस का ग्रन्थ 'ऐसे आन दि प्रिंसिपल ऑफ पापुलेशन' सन् १७८९ में प्रकाशित हुआ। उसने संसार भर के विचारशील वर्ग को झकझोर कर रख दिया। ग्रन्थ का प्रतिपादन विषय था बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण, गरीबी समेत अनेकानेक समस्याओं का उद्भव। उनने तथ्य, प्रमाण और आँकड़े प्रस्तुत करते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि नियन्त्रण न करने पर जनसंख्या इतनी तेजी से बढ़ेगी कि उसके लिए खाद्य, शिक्षा, वाहन, चिकित्सा जैसे आरम्भिक साधन तक न जुटाये जा सकेंगे। इसलिए जैसे भी हो समय रहते जनसंख्या वृद्धि की रोकथाम की जानी चाहिए।

आरम्भ में इस प्रतिपादन का धार्मिक क्षेत्रों में विशेष रूप से विरोध हुआ। लेखक को धर्मद्रोही ठहराया गया किन्तु विचारशीलों ने उस पर गम्भीरता से ध्यान दिया और समस्या को वास्तविक बताया।

प्रतिपादन ने जोर पकड़ा तो उसके कार्यान्वयन के लिए भी कदम बढ़ा। डा० चार्ल्स ड्राईस डेल तथा चार्ल्स वाडलाफ ने मिलकर सं० १८६१ में सन्तति निग्रह का प्रचार करने एवं उसके उपाय बताने के लिए एक संस्था स्थापित की और मन्तव्य को व्यावहारिक रूप देने के लिए 'एप्रीवोमित्स बुक' नामक पुस्तक प्रकाशित की। इसके लेखक थे रिचर्ड कारलाइल। उनने न केवल आर्थिक समस्याओं की अभिवृद्धि का कारण अनियन्त्रित प्रजनन को बताया वरन् नारी की दुर्दशा, अस्वस्थता, पराधीनता के लिए भी इस दबाव को दोषी ठहराया है। उनका कथन है कि यह अनावश्यक भार लादकर नारी का नर द्वारा उत्पीड़न किया जा रहा है। इस पुस्तक की देखते-देखते लाखों प्रतियाँ बिक गईं। उसका प्रभाव शिक्षित नारियों पर गहरा पड़ा। उनने प्रजनन भार से अपने को बचाने के लिए असहयोग और आना-कानी का रुख अपनाना आरम्भ कर दिया।

योरोप की औद्योगिक क्रान्ति से इस आन्दोलन को और भी अधिक बल मिला। १७वीं शताब्दी में तेजी से कल-कारखाने खुले। कितने ही नये उद्योग व्यवसाय आरम्भ हुए। उनमें श्रमिकों की बढ़ी हुई आवश्यकता पूरी करने के लिए पुरुषों से काम न चला तो महिलाओं की भर्ती चल पड़ी। इससे उनमें स्वावलम्बन, स्वाभिमान और साथ ही बराबरी का दावा करने जैसा उत्साह उभरा। इस कारण भी वे प्रजनन से बचने का प्रयत्न करने लगीं। कारखाने, दफ्तर जहाँ थे वहाँ निवास की कमी पड़ती थी। बढ़ा हुआ परिवार वहाँ कैसे रहे ? बिना आजीविका कमाये खर्चीली निर्वाह व्यवस्था की संगति कैसे बैठे ? नित नये बच्चों की बाढ़ को सम्भालने वाली औरत को घर से बाहर निकलने और कुछ कमाने का अवसर कहाँ मिले ? यह सभी प्रश्न ऐसे थे, जिनने व्यक्तिगत कारणों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से भी उस आर्थिक प्रतिपादन का समर्थन किया, जिसके अनुसार राष्ट्रीय अर्थ समस्या के समाधान में परिवार नियोजन की अनिवार्य आवश्यकता बताई गई थी।

विवाह में सदा से नर और नारी दोनों की सुविधा मानी जाती रही है। दो की घनिष्ठता एक नई संशक्त इकाई का सृजन करती है। स्थिर सहकारिता लाभदायक परिणाम प्रस्तुत करती है। यह सब सही होने पर भी जब विवाह के उपरान्त उन्मुक्त यौनाचार की छूट मिली और उसके फलस्वरूप बच्चों की भरमार से घनिष्ठता घटी और दरिद्रता-असुविधा बढ़ी तो नये सिरे से विचार आरम्भ हुआ कि कहीं विवाह अवांछनीय तो नहीं है। विशेषतया तब जबकि नारी को बहुप्रजनन के भार से लादकर एक प्रकार से जर्जर, बाधित और अपंग बना दिया जाता है। इस विचार ने पुरुषों की अपेक्षा नारी को अधिक आन्दोलित किया। फलतः वे स्वतन्त्र व्यक्तित्व की रक्षा के लिए बिना विवाह के रहना अधिक पसन्द करने लगीं। नारी स्वतन्त्रता आन्दोलन का आरम्भ तो उनके घटे हुए दर्जे के विरोध में असम्भव हुआ था। प्रथम चरण में इतना ही कहा गया था कि उन्हें भी मनुष्य समझा जाय और नर की तरह उन्हें भी मानवी अधिकारों से लाभान्वित होने दिया जाय। वह माँग पहले की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ गई है। उसमें नारी को अविवाहित जीवन पसन्द पड़ता है। विवाह हो तो वह ऐसा हो जिसमें स्वतन्त्रता में बाधा न पड़े और प्रजनन की कष्टसाध्य अग्नि परीक्षा में होकर बार-बार न गुजरना पड़े।

इस सन्दर्भ में कुछ पुस्तकें बहुत ही उत्तेजनात्मक वातावरण उत्पन्न करती हैं। वेटी फ्रिडेन की पुस्तक 'फेमिमिनिस्टिक' की योरोप और अमेरिका में बड़ी धूम रही। वह सन् १९६३ में छपी थी। उसमें विवाह को वासना तृप्ति का कानूनी रूप बताकर अनावश्यक ही नहीं अनैतिक भी ठहराया गया था। विवाह को कुआँ बताया गया था और उसमें न गिरने की सलाह दी गई थी।

नारी स्वतन्त्रता की माँग ने उन्हें कई क्षेत्रों में समानाधिकार प्राप्त करने का आँशिक अवसर प्रदान किया है। अमेरिका के श्रमिकों में ४० प्रतिशत महिलाएँ हैं, पर वे सभी कम महत्त्व के और कम वेतन के कामों पर नियुक्त हैं। महत्त्वपूर्ण पदों पर तो उनमें से मात्र ५ प्रतिशत को ही स्थान मिला है। इससे अच्छी स्थिति रूस की है, जिसमें श्रमजीवी महिलाओं में से ७० प्रतिशत को डॉक्टर-इन्जीनियर जैसे बड़े महत्त्वपूर्ण पद मिले हुए हैं।

यों सामान्यतया पुरुष ही हर क्षेत्र में समर्थ समझा जाता है पर नारी में भी अपनी कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो पुरुष की तुलना में उसे वरिष्ठ सिद्ध करती हैं। प्रजनन के लिए जिन क्रोमोजोन्स की अनिवार्य आवश्यकता है वे मात्र नारी में ही होती हैं। नारी का हृदय पुरुष की तुलना में अधिक बलवान होता है। दीर्घजीवन की दौड़ में भी वे अनेक असुविधाओं के रहते हुए भी आगे रहती हैं। जीवनी शक्ति की वे धनी होती हैं। महिलाएँ अधिक सम्वेदनशील, सहनशील और कल्पनाशील होती हैं। अध्ययन में वे अग्रिणी रहती और अच्छे नम्बर प्राप्त करती हैं। ये सभी तथ्य बताते हैं कि अपने को श्रेष्ठ समझने वाला पुरुष नारी के सामने कितना बौना है।

नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एजूकेशन आन सोशलाजिकल रिसर्च के फैलो डा० जान्स बर्नार्ड के अनुसार विवाह करके पुरुष नारी की अपेक्षा अधिक नफे में रहता है। इस आधार पर उसे जो सुविधाएँ मिलती हैं इसके कारण वह अविवाहितों की तुलना में अधिक दिन जीता और अधिक स्वस्थ रहता है। उसे बच्चे भी पैदा नहीं करने पड़ते हैं। चौकी-दारिन रसोईदारिन, धाय जैसे अनेकों कार्य वह बीबी से रोटी-कपड़े की कीमत पर वसूल करता है। उनका कथन यह भी है कि अविवाहित नारी की तुलना में विवाहित नारी शारीरिक और मानसिक दृष्टि से अधिक दुर्बल और दुःखी रहती है।

जार्ज बर्नार्डशा तक ने प्रचलित विवाहों पर कटु व्यंग्य करते हुए उन्हें कानूनसम्मत व्यभिचार की संज्ञा दी थी। क्योंकि उसके पीछे आदर्शों का बुरी तरह अभाव पाया जाता है।

इस शताब्दी के उपरोक्त विचार मन्थन ने कई प्रकार की प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न की हैं। अमेरिका में नारी मुक्ति आन्दोलन विद्वेष भरा उठ खड़ा हुआ है। उसमें पुरुष से पृथक् रहने और अपनी स्वतन्त्रता तथा प्रतिभा को अपने बलबूते विकसित करने का परामर्श है। विवाह भी वे समलिंगी करने को सुविधाजनक कहती हैं।

इसके विपरीत चीन से दूसरे ही तरह के दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं। वहाँ लिवास-पोशाक, काम धन्धे, जिम्मेदारी-व्यवस्था आदि में नर और नारी के बीच का भेद समाप्त कर दिया गया है। उत्तेजक वेषभूषा और शृंगारिकता का नाम भी नहीं दीखता। दोनों वर्ग कन्धे से कन्धा मिलाकर निर्धारित कार्यों में जुटे रहते हैं। परिवार नहीं बढ़ाते वरन् हँसते-हँसते दिन गुजारने की सादगी और तत्परता से भरी जिन्दगी गुजारते हैं।

अपने समय की अनेकानेक नव उद्भूत समस्याओं में से एक यह भी है कि नर और नारी के बीच जो खाई चलती आ रही है, पारस्परिक निर्भरता का वर्तमान परिपेक्ष में निर्वाह कैसे हो ? इस सन्दर्भ में सर्वाधिक विचारणीय है, विवाह को न करा जाय अथवा उसे किन अनुबन्धों के साथ स्वीकारा जाय।

उभरती हुई चेतना ने सुझाया है कि विवाह सहकारिता का एक सुविधाजनक समन्वय रहे। दो मित्र मिल-जुलकर जीवनचर्या के विभाजित उपक्रमों में अपनी-अपनी भूमिका निवाहें पर दोनों में से कोई किसी पर हावी न हो। स्वतन्त्रता के साथ भी आत्मीयता निभ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकती है। अलग व्यक्तित्व बनाये रहकर भी मित्रता बनाये रहने और मिल-जुलकर काम करने में कोई कठिनाई नहीं होती। इसे नये प्रयोग और अनुभवों से सीखा जा सकता है।

इसके साथ ही प्रजनन की समस्या पर फिर भी विचार करना शेष रह जाता है। उससे जितना बचा जाय उतना ही उत्तम है। न्यूनतम सन्तति रखने से ही स्वास्थ्य रक्षा, सुविधा एवं अर्थ व्यवस्था बनी रह सकती है। बालकों के विकास की दृष्टि से भी यह आवश्यकता है कि जितनों को सही रीति से समुन्नत बनाया जा सकता है। जितने को दुलार और संस्कार दिया जा सकता है उससे अधिक एक इंच भी आगे न बढ़ा जाय। सुसंस्कारिता सम्बर्धन तथा आत्मबल बढ़ाने की दृष्टि से यही उचित है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

सन्तानोत्पादन को निरुत्साहित किया जाय

एक आत्मानुभवी विद्वान का कथन है "सन्तान से मनुष्य के ऊँचे उद्देश्य की पूर्ति में बड़ी बाधा पड़ती है। पिता तो अधिक कमाने के कुचक्र में स्वास्थ्य, यौवन, अपना आनन्द, मनोरंजन और ज्ञान का विकास छोड़ देता है। माता अपने आप आधी भूखी-प्यासी रहकर शरीर का बूँद-बूँद शिशु को रस पिला देती है। दोनों शोषण किये जाते हैं। किसी सामाजिक अथवा उच्च उद्देश्य के लिये बेकार हो जाते हैं। जिन शिशुओं के पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था ठीक प्रकार से नहीं हो पाती, उन्हें जन्म देना अपराध है।"

इसी प्रकार एक विश्व-विख्यात वैज्ञानिक श्री हैनरी कैविडिश ने एक स्थान पर कहा है—"विवाह करने का अर्थ है—सन्तान। एक बार सन्तान के कुचक्र में फँसकर मनुष्य का स्वतन्त्र विकास रुक जाता है। उन्हीं के पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा, व्याह-शादी तथा अन्य सैकड़ों प्रकार की जिम्मेदारियों में मरकर खत्म हो जाना पड़ता है। बिगड़ी हुई सन्तान प्रत्यक्ष नरकतुल्य होती है। यथासम्भव शादी-व्याह के चक्र में न फँसकर स्वतन्त्र रूप से शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक या साहित्यिक सेवा करनी चाहिए। सन्तान का उत्तरदायित्व एक कठिन समस्या के समान मनुष्य की उन्नति रोक देने वाली बाधा है। एक बार विवाह करने या सन्तान को जन्म दे देने पर मनुष्य अधिक महत्त्वपूर्ण बातें छोड़ कर घर-गृहस्थ के कुटिल झंझटों में सदा सर्वदा के लिये फँस जाता है।

इन दोनों उद्धरणों में विवाह तथा सन्तान को झंझट बतलाते हुए उनका निषेध किया गया है। यह गलत नहीं कि विवाह और फिर उसके बाद सन्तान की जिम्मेदारी ऐसी बात है जो मनुष्य के विकास में बाधक होती ही है और यदि उस दायित्व को ठीक प्रकार से न निवाहा जाये तो वह पूरी जिन्दगी को नरकतुल्य बना देता है। मनुष्य का लोक भी बिगड़ता है और परलोक भी। तथापि मनुष्य की प्रकृति को देखते हुए विवाह तथा सन्तान को मानव-जीवन से पूर्णतया बहिष्कृत नहीं किया जा सकता।

हाँ बुरा है—भोग-विलास के दृष्टिकोण से विवाह करना और उसके बाद बिना किसी नीति-नियम अथवा जरूरत के सन्तान-पर-सन्तान पैदा करते जाना। विवाह की परिभाषा करते हुए एक विद्वान ने लिखा है—"विवाह तो एक प्रकार की मैत्री है। एक-से विचार, स्वभाव, आदर्श दृष्टिकोण और शिक्षा-दीक्षा वाले नर-नारी इस मैत्री के लिये ही परस्पर विवाहसूत्र में बँधते हैं। एक-सी रुचि होने के कारण उनकी जीवनरूपी यात्रा आनन्द से कट जाती है। इसी प्रकार सन्तानोत्पत्ति के विषय में कहा जा सकता है कि सन्तान कामोपभोग का परिणाम नहीं होना चाहिए। उसकी उत्पत्ति यथाविधि धर्म-कर्तव्य समझकर ही करनी चाहिए। केवल एक या दो सन्तान ही संसार का क्रम चलाते रहने के लिये पर्याप्त हैं। इसके लिये एक निकम्मी सेना बनाकर खड़ी कर देना कतई उचित नहीं है।

केवल एक सत्सन्तान सौ अयोग्य सन्तानों से बढ़कर है। जो समाज तथा राष्ट्र को एक सुयोग्य नागरिक भेंट करने के लिये सन्तानोत्पत्ति नियमों सहित धर्मपूर्वक किया करता है, वह सन्तान के पुण्य का भागी बनता है, नहीं तो अनियमित अथवा अधर्मपूर्वक, कामक्रीड़ा के फलस्वरूप उत्पन्न सन्तान तो यों भी नरकतुल्य होती है। अयोग्यता पूर्वक उत्पन्न की हुई सन्तान योग्य नहीं हो सकती। यह प्रकृति का एक नियम है। आज मनुष्य का जीवन बड़ा अस्त-व्यस्त तथा अप्राकृतिक हो गया है, ऐसी स्थिति में वांछानुरूप सन्तान पैदा कर सकना कठिन है। कुछ नहीं कहा जा सकता कि कैसी सन्तान पैदा हो जाय। अनियम तथा अप्राकृतिक रहन-सहन के कारण स्वस्थ दम्पत्ति की विकृत तथा रोगी सन्तान हो सकती है। पुत्रों में अपराधवृत्ति के संस्कार हो सकते हैं। अपराधी वृत्ति का बेटा बाप को जीवन भर सताता रहता है। किसी को मार-पीट देना, लड़कियों से छेडखानी करना, समाज में अनुशासनहीनता फैलाना, स्कूल-कालिज में गुण्डागर्दी करना। घर की पूँजी नष्ट करना, शराबखोरी, सिनेमा, सिगरेट, पान तथा मटरगस्ती करना, अपराधी वृत्ति के लड़कों का सहज स्वभाव हो जाता है। यदि किसी के एक दुष्ट अपराधी या मन्द बुद्धि पुत्र जन्म लेले तो उसकी प्रत्यक्ष मृत्यु हो जाती है। उसकी परेशानियों का वारपार नहीं रहता। ऐसी सन्तान से क्या तो परिवार या माता-पिता का हित हो सकता है और क्या समाज को लाभ ? बहुत-सी सन्तानें होने से उनमें से एक-दो का ऐसा निकल जाना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कोई बड़ी बात नहीं है। ऐसी सन्तानों से दु:खी न जाने कितने माता-पिता रोते-कराहते ईश्वर से ये मनाते देखे जा सकते हैं—'हे ईश्वर अच्छा होता कि तू इस प्रकार की विकृत सन्तान देने के स्थान पर नि:सन्तान ही रखता। कुलक्षणी सन्तान ऐसा शत्रु होता है, जो न तो मारा जा सकता है और न छोड़ा ही जा सकता है। सामान्य एवं साधारण मनुष्यों की तो बात छोड़ दीजिए। केवल एक बेटे हीरालाल गाँधी के बिगड़ जाने से महात्मा गाँधी जैसे उच्च मनोभूमि तथा आध्यात्मिक दृष्टिकोण वाले व्यक्ति जीवन भर परेशान रहे। हीरालाल को शराब तथा भक्ष्याभक्ष्य का कोई विचार नहीं था और उसने धर्म तक परिवर्तित कर डाला था। उसकी इन सब हरकतों से गाँधीजी जीवन भर कुढ़ते रहे थे और आखिर उन्होंने उसे अपना गलत अंग कहकर सम्बन्ध विच्छेद ही कर लिया था। औरंगजेब जैसे नालायक पुत्र ने पिता शाहजहाँ को बुढ़ापे में कैदखाने में डलवा कर भूखा-प्यासा रखकर मार डाला था। विवाह अथवा सन्तान करना अनुचित नहीं है। अनुचित है उनकी मर्यादा का उल्लंघन करना।

बहुत-से लोगों का कहना है कि विवाह के बाद ब्रह्मचर्य का पालन सम्भव नहीं। पति-पत्नी के एक साथ रहने से संयम कठिन ही नहीं असम्भव-सा ही रहता है। किन्तु यह कथन उन्हीं लोगों का होता है, जिनकी मनोभूमि विकृत, इन्द्रियाँ अनियन्त्रित तथा विवेक शिथिल हो जाता है अन्यथा विवाह के बाद तो ब्रह्मचर्य अधिक सरल हो जाता है। इस पर महात्मा गाँधी का यह कथन निश्चय ही शिक्षाप्रद तथा प्रकाश प्रदान करने वाला है। वे लिखते हैं—

"विवाहित व्यक्ति को भोग-विलास की क्षणभंगुरता, निस्सारता तथा उससे होने वाली सैकड़ों बुराइयों का पता चल जाता है। उसे यह ज्ञान रहता है कि भोग-विलास, कामोपभोग व सन्तानोत्पादन से शारीरिक कमजोरी, असंख्य रोगों और मृत्यु के अलावा कुछ भी हाथ नहीं लगता। उसे काम-सुख की गन्दगी का पता चल जाता है। विलासिता और काम-सुख मृत्यु को पास खींचकर लाते हैं। गुप्त इन्द्रियों तथा मूत्र सम्बन्धी रोगों से ग्रसित हो मनुष्य सड़-सड़ कर मरते हैं। काम-वासना में सुख ढूँढ़ने वाला निपट मूर्ख और अज्ञानी है। वह समय से पूर्व अकाल मृत्यु को प्राप्त होता है। चालीस-पैंतालीस की अल्पायु ही होते हैं, काम-वासना में सुख ढूँढ़ना महामूर्खता है। वीर्यनाश अवयवों को शिथिल और रोगी बनाकर प्रत्यक्ष मृत्यु को निमन्त्रण देता है। नारियों के गर्भाशय सम्बन्धी गुप्त रोग पैदा कर अकाल मृत्यु लाता है।"

ब्रह्मचर्य का नाश जहाँ मृत्यु लाता है वहाँ सन्तानों की वृद्धि के साथ उनमें विकृति भी भर देता है। वासना से उत्पन्न सन्तान स्वस्थ अथवा सुसंस्कारों वाली होगी, यह सम्भव नहीं। इसलिए विवाहित जीवन में तो काम-वासनाओं से और भी बचने की जरूरत है। उसमें मनुष्य की जिम्मेदारियाँ बढ़ी-चढ़ी रहती हैं। अधिक-से-अधिक परिश्रम तथा पुरुषार्थ करना पड़ता है। शक्ति का आधार वीर्यसंयम ही है। बहुत-सी सन्तानें पैदा करके अकाल में अपनी शक्तियों को क्षीण कर लेने के बाद मनुष्य किसी योग्य नहीं रहता। न तो वह हँसी-खुशी से जी पाता है और न इतना परिश्रम ही कर पाता है कि जिसका उपार्जन उस बढ़े हुए परिवार के लिये पर्याप्त हो सके। सन्तानें बिना पढ़ी तथा बिना विवाह के भी रह जाती हैं, तब वे माता-पिता को तो कष्ट देती ही हैं, समाज की नैतिकता तथा शांति भी भंग किया करती हैं।

संतानोत्पादन की वज्रमूर्खता

कभी मनुष्य जीवन बहुत सस्ता था। पेट भरने को अनाज और तन ढकने को थोड़ा सा कपड़ा और फूँस के झोंपड़े, यह सब हाथ की मेहनत से ही उपलब्ध हो जाते थे। खेती ढेरों थी, जंगल फैले पड़े थे। तब कृषि और पशुपालन के लिये यह सुविधाजनक होता था कि परिवार बड़ा हो अधिक बच्चे हों। तब जनसंख्या ही सम्पदा थी। जिसके कुटुम्ब में अधिक आदमी थे वह उतना ही समर्थ और सम्पन्न माना जाता था। श्रम ही तब वैभव था, घर के श्रमिक हों तो खर्च थोड़ा पड़ता था और उपार्जन अधिक होता था। मर्द-औरतें, लड़के-लड़की सभी श्रम करते थे।

आज की परिस्थितियाँ सर्वथा भिन्न हैं, न खेती है, न पशुपालन, जो है वह बाहर की मजदूरी पर बहुत महँगा पड़ता है, शिक्षा, चिकित्सा, मनोरंजन, विनोद, वाहन, आदि के खर्च अब बहुत बढ़ गये हैं जो पहले नहीं के बराबर थे। ऐसी दशा में सन्तानोत्पादन का धन्धा अतीव महँगा और कष्टकर हो गया है। महँगा इस दृष्टि से कि जो आजीविका सामान्य रीति से कमायी जाती है वह बच्चों के शिक्षण और स्वावलम्बन की दृष्टि से अत्यधिक महँगी है। फिर उनके विवाह-शादी से निपटना हँसी-खेल नहीं है। जिनके अधिक बच्चे हैं वह उतना ही अधिक चिन्तित, दुखी, उद्विग्न पाया जाता है। उनके लिये जो करना पड़ता है वह पड़ौसियों के स्तर का होना चाहिये। कमी रहने पर पत्नी, सम्बन्धी-मित्र और सन्तान सभी के ताने सुनने पड़ते हैं। कुछ दिन पूर्व ऐसा कुछ नहीं था बच्चे बड़ों का कहना मानते थे। इसलिए बुजुर्ग गौरव भी अनुभव करते थे और इच्छानुरूप चलाकर नफे में भी रहते थे। अब पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के दृष्टिकोण मे भी भारी अन्तर आ गया है। लड़का कमाने योग्य होते ही अपनी बीबी को लेकर अलग हो जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बाप के मरने के पहले ही घर की सम्पदा में अपना हिस्सा माँगता है। पढ़ाई में, शादी में अन्धाधुन्ध खर्च करने और फिर उत्तराधिकार की पूँजी देने के बाद घर खोखला हो जाता है। जो आशा की गई थी कि लड़के के बड़े होने पर उसकी आमदनी से परिवार का पोषण होगा और लागत की पूँजी ब्याज समेत वापस लौट आयेगी, वह सपने निरर्थक सिद्ध होते हैं और घर के अन्य लोगों के बीच एक नये प्रकार का कलह उत्पन्न होता है। यह पैसे का युग है। गृहपति सोचता है कि सन्तान उसके लिये हर दृष्टि से महँगी पड़ी। शिष्टाचार निर्वाह के स्थान पर आये दिन अपमान सहने पड़ते हैं।

पिछले समय में स्त्रियाँ चक्की पीसने, दही मथने से लेकर कृषि सम्बन्धी काम करने के कारण तन्दुरुस्त भी रहती थीं और अनायास ही व्यायाम होते रहने से प्रसव पीड़ा भी नहीं सहती थी। अब दुबली-पतली बधुएँ बेचारी काम धन्धा क्या करें अपना शरीर भी सम्हाले रहना भारी पड़ता है। ऐसी दशा में पुन: बच्चे उत्पन्न करने पड़ें तो समझना चाहिये कि आधी जिन्दगी कट गई। दो बच्चे होने के बाद बहू बेचारी बुढ़िया हो जाती है, घर के काम धन्धे में हाथ बँटाने की अपेक्षा सास, ननद से करती है कि वे उन पर कोई बजन न पड़ने दें। पति की नादानी उन पर इस जुल्म को और भी बढ़ा देती है। दुर्बल बधुओं को बच्चे जल्दी-जल्दी होने लगें तो उनके प्रसव आपरेशन से होते हैं, स्वयं बीमार रहती हैं, बच्चे बीमार रहते हैं और स्वभाव चिड़चिड़ा होने से आये दिन चैं-चैं होती है। इन परिस्थितियों में कितनों के लिये ही प्रसव प्राणघातक होता है।

विवाह से पूर्व वर-वधू जो रंग-बिरंगे सपने देखते हैं वे कोसों दूर रह जाते हैं। विलासिता की रंगरेलियाँ किसे सूझें जब सब ओर से मुसीबतें घिर कर इकट्ठी होती चली जा रही हों, ऐसी दशा में लड़के दाम्पत्य जीवन के साथ जो जिम्मेदारियाँ आती हैं, उन्हें निवाहने की अपेक्षा कतराने और इधर-उधर झाँकने लगते हैं। यहाँ से कलह की एक और शुरूआत होती है।

पुराने जमाने की स्थिति से आज की तुलना नही हो सकती। कभी अधिक संतान का होना वरदान और प्रसन्नता का कारण रहा होगा। आज की स्थिति ठीक उल्टी है अब वह अभिशाप और दुर्भाग्य का पर्याय अधिक है। जब तक संतान न हो तब तक लगता है घर में इन्द्र कुबेर जन्म लेने वाले हैं पर कुछ ही दिन में जब उनकी जिम्मेदारियाँ वहन करनी पड़ती हैं, तो प्रतीत होता है कि झूठे सपने देखे गये थे। सिर पर हजार मुसीबतें आ धमकने का नाम ही संतानोत्पादन है। पिता का अर्थ संतुलन चौपट होता है। माँ के स्वास्थ्य का सत्यानाश होता है। संतान के नखरे आसमान पर चढ़े रहते हैं। समाज पर असमय बोझ लदता है और देश जाति की बात सोचने वाले इन उत्पादनकर्ताओं को हजारों गालियाँ नित्य देते हैं। कारण कि देश की व्यवस्था का इतना सत्यानाश होता है जितना कि किसी दुर्दान्त शत्रु के आक्रमण से भी नहीं होता। हर साल नये स्कूल खुलते हैं नये अस्पताल बनते, नये कारखाने खड़े होते हैं पर जितना इनका लाभ मिलना चाहिये, उससे दूनी-चौगुनी आवश्यकता बढ़ जाती है। फलत: कमी आगे-आगे बढ़ती जाती है और प्रगति कोसों पीछे छूट जाती है। दोष संस्कार को, भाग्य को, भगवान को किसी को भी दिया जा सकता है। पर वास्तविकता यह है कि बढ़े हुये सन्तानोत्पादन का दैत्य ऐसा है जो प्रगति की सभी योजनाओं को चट कर जाता है और अभाव पहले से भी अधिक दीखने लगता है। शिक्षा का बजट तेजी से बढ़ता जाता है पर अशिक्षा का अनुपात पहले की अपेक्षा बढ़ ही जाता है। गति यही रही तो हम शिक्षा की, चिकित्सा की, बेकारी की मूलभूत समस्याओं को हजार वर्ष में भी हल न कर सकेंगे। परिवारों का स्वरूप बद से बदतर होता जायगा और व्यक्ति चिन्ताओं, उद्विग्नताओं से घिर कर अनिद्रा, रक्तचाप, मधुमेह, तनाव, आदि रोगों से ग्रसित रहकर अकाल में ही काल कवलित होता जायगा। इन मुसीबतों से घबराकर क्षणिक राहत पाने के लिये 'लोग नशों का आश्रय लेते हैं पर वे उल्टे यमदूत बन कर सर्वनाश में जो कमी रह जाती है उसे पूरी करते रहते हैं।' इन परिस्थितियों को देखते हुये जो समझदार हैं वे सन्तानोत्पादन पर अंकुश लगाते हैं। वे अपना दारिद्रय, स्त्री का शरीर, बच्चे का भविष्य नष्ट होने से बड़ी हद तक बचा लेते हैं।

वह समय चला गया जब लड़का होने से वंश चलने, पिण्ड मिलने जैसी बातें सोची जाती थीं। कोई वज्र मूर्ख ही ऐसी ओंधी बातें सोचता होगा। वंश चलने और सद्गति होने की बात अपने सत्कर्मों पर अवलम्बित है। कोई बेटा अपने पूर्वजों को अपने कन्धे पर लादकर स्वर्ग नहीं भेज सका। यह व्यर्थ की बात अब लोगों के सिर से छूटती जाती है। कहीं बची भी हैं तो उनका अन्त होने में अब देर नहीं। शरीर पर गुदना-गुदाना कभी फैशन रहा होगा। पर अब फूहड़पन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। ठीक इसी तरह सन्तानोत्पादन पर आज जो खुशियाँ मनायी जाती हैं, अगले दिनों उसे मातम जैसा दुर्भाग्य माना जाने लगे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

लड़कों की अपेक्षा लड़कियों का होना उत्तम है क्योंकि वे सारी जिन्दगी त्रास नहीं देतीं, विवाह के बाद अपने घर चली जाती हैं। दहेज की फिजूलखर्ची का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

झंझट तब तक है जब तक लोग अपनी ही जाति में विवाह करने की बात सोचते हैं, यह मूढ़ मति भी जल्दी ही समाप्त होने जा रही है। अमीरों के घर लड़की ब्याहने से-वह सुखी रहती हैं यह सोचा जाना भी असंगत है। लड़कियों को जला देने, नयी दुलहन से नया दहेज वसूल करने जैसी खुराफातें अमीर घरों में ही होती हैं। लड़के लड़की मिल कर काम करें तो मध्यम श्रेणी के लोग भी अमीरों से कहीं अधिक सुखी रहते हैं। यही बात अधिक पढ़े लड़कों के सम्बन्ध में भी है। उन्हें अफसरी मिलती नहीं, चपरासी बनने में नाक कटती है ऐसी दशा में ससुराल वालों का खून पीने के लिये पत्नी को त्रास देते हैं। ऐसे अमीरों अधिक पढ़ों में जितने खब्ती, जितने दुर्व्यसनी पाये जाते हैं उन्हें देखते हुये लड़कियाँ उनके पल्ले बाँध कर त्रास ही पाती हैं। यदि जाति-पाँति के कुचक्र से बचकर अधिक अमीर अधिक पढ़ा लड़का विवाह के लिये न ढूँढ़ा जाय तो पुत्र की अपेक्षा कन्या का जन्म, कहीं अधिक सौभाग्य सूचक रहेगा।

अन्धाधुन्ध प्रजनन हर दृष्टि से अदूरदर्शितापूर्ण

ब्रह्मचर्य के अधिकाधिक पालन और सन्तान संख्या के नियमन को भारतीय धर्म और संस्कृति में सदा से महत्त्व दिया जाता रहा है। बहुसंख्यक संतान उत्पन्न करने वाले सदा विपत्ति में फँसते रहे हैं। घर में नये मेहमान आमन्त्रित करने से पूर्व यह देखना ही चाहिए कि उनके स्वागत-सत्कार की उपयुक्त सामग्री पास में है या नहीं। जिन महिलाओं के शरीर में अपनी जीवन यात्रा ढोने से बचा हुआ अतिरिक्त रक्त-माँस नहीं, वे अपने ऊपर जीवन संकट ओढ़ कर ही प्रजनन का जोखिम भरा दुस्साहस कर सकती हैं। बच्चे आखिर माता का ही रस-रक्त तो दूध के रूप में पीते हैं। यदि वह पदार्थ शरीर में फालतू नहीं है तो संतान का शौक पूरा करना अपने ऊपर प्राणघातक विपत्ति मोल लेना है।

कई व्यक्ति अपनी पत्नियों के रोगी दुर्बल होते हुए भी संतान के लिए अति उत्साह दिखाते हैं। वे एक प्रकार से किसी काल्पनिक सुख के लिए पत्नी के प्राणघाती हत्यारे ही कहे जायेंगे। शरीरशास्त्रियों के अनुसार प्रसव वेदना का कष्टघाव और रक्त प्रवाह उतना भयंकर होता है जितना दस बार छुरे घोंपने का घातक आक्रमण। इस विपत्ति से जूझते हुए प्रायः पन्द्रह प्रतिशत महिलाएँ अपनी जान प्रसूति काल में ही गँवा देती हैं। संतान की कल्पनात्मक हविस पूरी करने के लिए जिन्होंने अपनी पत्नी को इस वेदना में धकेलने की ठान ठानी हो उन्हें यह नहीं कहना चाहिए कि पत्नी प्रेम भी उनकी दृष्टि में कोई चीज है। उसके जीवन-मरण से भी उनका कोई सहृदयता पूर्ण सम्बन्ध है।

अधिक प्रजनन के पक्ष में कई बार ऐसी लचर दलीलें पेश की जाती हैं जो एक बार तो सारगर्भित भी प्रतीत होती हैं पर जब गहरी दृष्टि से देखते हैं तो प्रतीत होता है कि उनमें भावी परिस्थितियों की कल्पना कर सकने की असमर्थता ही झाँकती दिखाई पड़ती है।

यह कहा जाता है कि पिछड़े हुए लोग जनसंख्या की वृद्धि अधिक करते हैं। उन्हें नियन्त्रण की बात समझ नहीं आती, समझदार लोग ही इस प्रकार का संयम करते हैं। फलतः अच्छे लोगों की सन्तानें घटती जायेंगी और पिछड़े लोग बढ़ जायेंगे फलस्वरूप भविष्य में उन्हीं का बहुमत हो जायगा। यह आशंका इसलिए निरर्थक है कि जो समझदार लोग समाज हित को ध्यान में रखकर सन्तानोत्पादन से हाथ खींचेंगे वे अपनी क्षमता को समाज हित में ही लगावेंगे और पिछड़े वर्ग को सुविकसित बनाने में लगेंगे ऐसी दशा में कोई पिछड़ा रहेगा ही नहीं। विद्वान, धनवान, गुणवान, प्रतिभावान वर्ग के लोग आज तो अपने और अपने बाल-बच्चों के लिए ही अपनी समस्त क्षमता खर्च करते रहते हैं जब वे संकीर्णता की परिधि से ऊपर उठ कर समाज हित की बात सोचने लगेंगे और प्रजनन पर नियन्त्रण स्वीकार करेंगे तो स्वभावतः उनमें उतनी उदारता भी जगेगी कि अपनी विभूतियों को पिछड़े हुए लोगों का पिछड़ापन दूर करने में नियोजित करें। ऐसी दशा में देश के सभी बच्चे उनके अपने बच्चे होंगे और यदि उन पर उच्च वर्ग का ध्यान बना रहा तो फिर वे बालक उसी भूमिका को सम्पन्न करेंगे, जो उच्च परिवारों में उत्पन्न हुए—साधन सुविधाओं में पले बालक कर सकते हैं। सच तो यह है कि अमीरी में जन्मे बालकों की अपेक्षा गरीबी में जन्मने वालों को यदि अवसर मिले तो वे कहीं अधिक तीव्र गति से प्रगति कर सकते हैं।

इसी प्रकार यह सोचना भी बेतुका है कि हिन्दू लोग ही सन्तानोत्पादन सीमित करने की बात पर ध्यान देते हैं। मुसलमान इस आन्दोलन में उतना उत्साह नहीं दिखाते। ऐसी दशा में मुसलमानों की संख्या बढ़ती जायगी, हिन्दू उनकी तुलना में घटते जायेंगे फलस्वरूप कुछ दिनों में आबादी के अनुपात से हिन्दुस्तान को मुसलिमस्तान बनने का खतरा उत्पन्न हो जायगा।

यह आशंका बालिग—मताधिकार के वर्तमान चुनाव ढाँचे को देखते हुए की जाती हैं। निकट भविष्य में न तो यह प्रजातन्त्री ढाँचा रहेगा और न वर्तमान साम्प्रदायिक कट्टरता के लिए कोई आधार शेष रह पायेगा। बौद्धिक, नैतिक और सामाजिक क्रान्ति के कारण विभेद की अनेक दीवारें विस्मार होने जा रही हैं, उनमें विभेद उत्पन्न करने वाला आज का सम्प्रदायवाद भी नष्ट होकर ही रहेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भोजन वस्त्र में भिन्न रुचि के कारण परस्पर कोई द्वेष-दुर्भाव पैदा नहीं होता, ठीक इसी प्रकार धर्म भेद भी सामाजिक वर्ग भेद पैदा कर सकने जैसा विषाक्त न रहेगा, उसके विषदंत तब तक पूरी तरह टूट चुके होंगे। वैसी पूरी सम्भावना एक विश्व धर्म की ही की जानी चाहिए। वर्तमान सम्प्रदायों की तो तब मात्र झाँकी ही रह सकती है। जिस द्वेष-दुर्भाव को देखते हुए आज किसी धर्मवालों की वृद्धि की बात सोची जाती है, उस दुष्टता के लिए अगले दिनों कहीं कोई स्थान न होगा। सभी मनुष्य मात्र बन कर रहेंगे और देश की सीमित भूमि सीमा को तोड़ कर विश्व राष्ट्र में सभी लोग विश्व नागरिक बनकर रहेंगे। इसके अतिरिक्त नई वैज्ञानिक एवं आर्थिक प्रगति के साथ उत्पन्न हुई समस्याओं का और कोई हल नहीं है। हमें उन अगले दिनों की सुनिश्चित संभावना को ही ध्यान में रखना चाहिए कि आज के विषदंश वाले सम्प्रदायवाद के भविष्य में भी इसी रूप में बने रहने की आशंका को मन में से पूरी तरह निकाल देना चाहिए।

संसार में बहुमत सदा पिछड़े और मूर्ख लोगों का रहा है। यदि आज के बालिग मताधिकार वाला प्रजातन्त्र आगे भी बना रहा तो कभी भी समझदार लोगों की सरकार नहीं बन सकेगी। अच्छी सरकार के लिए अच्छे मतदाता होने चाहिए। ऐसे लोग जो राष्ट्रीय उत्तरदायित्व को ठीक तरह समझ सकें और निवाह सकें आगे भी अब की ही तरह अल्पमात्रा में, अल्पमत में होंगे। अगले दिनों प्रजातन्त्र भले ही रहे पर उसकी चुनाव पद्धति में ऐसा हेर-फेर होगा ही कि उत्तरदायित्व को समझने और संभालने करने वाले वाले ही मतदान करें अथवा प्रत्याशी बनें। इसके लिए कसौटियाँ निर्धारित करनी पड़ेंगी। तभी कोई आदर्श सरकार बन सकेगी अन्यथा भीड़ का राज्य जैसा हो सकता है वैसा ही बना रहेगा। आज भले ही यह कुछ अट-पटा लगे पर यदि प्रजातन्त्र को सफल होना है तो उसे इस प्रकार का सुधार-परिवर्तन करना ही पड़ेगा। उस स्थिति में यह आशंका निर्मूल सिद्ध होगी कि द्वेष-दुर्भाव रखने वाले लोग बहुमत में आकर सामाजिक न्याय में विग्रह-विद्वेष उत्पन्न करेंगे। अगले दिनों हर व्यक्ति साम्प्रदायिक स्वार्थों से ऊँचा उठा हुआ होगा और उस प्रकार सोचने का, करने का अभ्यासी बनेगा जिससे न्याय या विवेक के टकराने की किसी को भी सुविधा न रहे। तब अमुक सम्प्रदाय का उल्लेख भी नहीं होगा। सभी मनुष्य होंगे। उस परिवर्तन को लाये बिना तो आज का बहुमत अल्पमत ज्यों का त्यों बना रहे तब भी शान्ति नहीं आ सकती। जब पाकिस्तान बना था तब तो मुसलमानों की संख्या और भी कम थी, हिन्दू और भी अधिक बहुमत में थे। तब भी विग्रह-विद्वेष फूट ही पड़ा था। योरोप के देश प्रायः सभी ईसाई हैं तो भी इनमें आये दिन युद्ध ठनते और विग्रह उत्पन्न होते रहते हैं।

जनसंख्या नियन्त्रण की विश्व विभीषिका का सामना करने में हमें इस विकृत को, आशंकाओं को ध्यान में रख कर असमंजस में पड़ने की जरूरत नहीं है। इन्हें तो अगला समय दूध में मक्खी की तरह निकाल कर फैंकने ही वाला है।

हर प्रकार घाटा ही घाटा

बालकों की संख्या बढ़ाना, ऐसी भूल है, जिसका प्रायश्चित समाज के सभी घटकों को करना पड़ता है। पिता पर अधिक अर्थ उपार्जन का दबाव पड़ता है। अब वह जमाना नहीं रहा कि बच्चे जरा-सा समझदार होते ही पशु चराने, घास खोदने, लकड़ी-गोबर बीनने जैसे छुट-पुट घरेलू काम करते हुए भी अपने लिए निर्वाह साधन कमा लेते थे, पर अब वह समय नहीं रहा। महँगाई ने पौष्टिक आहार प्राप्त करना दुर्लभ बना दिया है। शिक्षा भी कम खर्च में पूरी नहीं कराई जा सकती। तनिक-सी हारी-बीमारी आ घेरने पर उसके उपचार में ढेरों खर्च होता है। विवाह-शादी चाहे लड़के की हो या लड़की की, विपुल खर्च की गंगा बहती है। इसके उपरान्त जमाता की अन्यान्य आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकना भी इतना महँगा है कि साधारण स्तर का व्यक्ति अपना परिवार का औसत खर्च चलाते हुए, इस भार को वहन करने में कठिनाई से ही समर्थ हो पाता है। इसे जुटाने में ऐड़ी-चोटी का पसीना एक करना पड़ता है। साथ ही ऊपरी कमाई के स्रोत तलाश करने की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए अनुचित तरीके भी अपनाने पड़ते हैं। जिसके ऊपर जितने अधिक बच्चों का भार है, वह उतना ही चिन्तित और परेशान पाया जायगा। वे आशायें कदाचित् ही किसी की पूरी होती हों, जिसमें आज्ञाकारी श्रवणकुमार और राम-भरत जैसी संतान प्राप्त करने आशा पूरी हो सके। उनमें से अक्सर इधर-उधर से बुरी आदतें समेट-बटोर लाते हैं और उस बुद्धि के कारण समूचे परिवार को हैरानी का सामना करना पड़ता है।

माता के लिए हर बच्चे का जन्म, अपने लिए नये जन्म के समान भारी पड़ता है। गर्भावस्था का काल एक प्रकार से शारीरिक और मानसिक आवश्यकताओं से भरा रहता है। पेट काम नहीं करता, जी मिचलाता है, नींद घट आती है। इसके अतिरिक्त प्रसव वेदना बिना सुँघाये किये जाने वाले चीर-फाड़ आपरेशन की तरह भारी पड़ती है। यदि उस वैतरिणी से पार उतर लिया जाय, तो समझना चाहिए कि नया जन्म मिला अन्यथा उस अवसर पर अनेकों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है। फिर दिन-रात सेवा में संलग्न रहकर उनकी सुव्यवस्था बनाना भी सामान्य सामर्थ्य का काम नहीं है। पशु-पक्षियों के बच्चे तो आसानी से जन्म के बाद भागने-दौड़ने लगते हैं,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर मनुष्य बालक की साज-संभाल में प्राय: १० वर्ष से भी अधिक समय की तपश्चर्या करनी पड़ती है।

बालकों की शिक्षा-दीक्षा का, आहार-विहार का, स्वावलम्बन-सुसंस्कार का प्रबन्ध न हो सके, तो वे अनाथ रह जाते हैं। बेरोजगारी के, दुर्व्यसनों के कुचक्र में यदि वे फँस जाय, तो समझना चाहिए कि जीवन ही बर्बाद हुआ। ऐसी दशा में बालक अभिभावकों को भी कोसते हैं कि बिना समुचित प्रबन्ध के हमें अनचाहे अतिथि की तरह क्यों बुला लिया गया ? क्यों हमारा भविष्य अन्धकार मय बनाया ?

सर्वविदित है कि जनसंख्या अधिक बढ़ते जाने से राष्ट्रीय प्रगति में कितनी बाधा पड़ती है। जितने साधन किसी प्रकार जुट पाते हैं उससें अधिक संख्या में नवागन्तुक आ विराजते हैं। फलत: कमी को दूर करने की सारी योजनायें निष्फल चली जाती हैं। देश गरीबी की रेखा से ऊँचा उठ ही नहीं पाता। इन परिस्थितियों के रहते, नये बच्चों को जन्म देना प्रसन्नता का नहीं, चिन्ता और हैरानी का कारण ही समझा जाता है।

सन्तानों की संख्या बढ़ाना व्यक्ति और समाज के लिए घातक है

आखिर उन लोगों का इरादा क्या है जो सन्तान पर सन्तान उत्पन्न किये जा रहे हैं। छह-सात बच्चे हो चुके हैं किन्तु प्रजनन अभी बन्द नहीं है। प्रौढ़ावस्था पार कर चुके हैं किन्तु बच्चों का बोझ बढ़ाये चले जा रहे हैं। कभी यह विचार नहीं करते कि आखिर इसका परिणाम क्या होगा ? होगा यह कि या तो वे अपनी विधवा पर, क्योंकि इस प्रयास में उन्हें जीना तो ज्यादा दिन है ही नहीं, अनेक अबोध बच्चों का भार छोड़ जावेंगे, जो बेचारी जीवन भर रो-रोकर, मर-खप कर ढोयेगी या उस बड़े लड़के की जिन्दगी में आग लगा जायेंगे जो उनके शिथिल अथवा महायात्री होने तक किसी प्रकार छोटे-मोटे काम पर लग गया होगा और ज्यों-त्यों विवाह हो गया होगा। जरा सोचने की बात है कि वह विकासोन्मुख तरुण अपना और अपनी पत्नी का ही भरण-पोषण कठिनता से कर पायेगा, वह इतने भाई-बहिनों को कैसे तो पाल पायेगा और कैसे पढ़ा-लिखाकर योग्य बनायेगा। इसको तो अर्थ यही होगा कि वह पिता से भी जल्दी अपनी जवानी चिन्ताओं की भेंट चढ़ा देगा। पिता का पाप पुत्र भोगे यह तो बात कुछ समझ में नहीं आती है।

यह बात सही है कि भले भाई जिस प्रकार भी होगा अपने छोटे भाई-बहिनों को पालें पोसेंगे ही, इसके लिये उन्हें क्योंकि न कोई भी कष्ट सहना पड़े, त्याग करना पड़े, पर पिता को तो समझदारी से काम लेकर संयम बर्तना ही चाहिए। ऐसे परिवारों की भी कमी नहीं है जहाँ एक साथ पिता और पुत्र के सन्तान होती है। पिता के लिये यह प्रतियोगिता कितनी शोभनीय है ? यह बात शोचनीय है। किन्तु क्या कहा जाये पिता के उस उत्साह एवं नैतिक साहस को कि पुत्र और पौत्र का जन्मोत्सव एक साथ मनाकर भी समाज में शान से चलते हैं। कहना होगा कि इस प्रकार प्रजननशील प्रौढ़ों को न तो परवार और न समाज तथा राष्ट्र की कोई चिन्ता होती है। वे यह बात नहीं देख पा रहे हैं कि कुछ ही समय में यदि जनसंख्या की वृद्धि नियन्त्रित न हुई तो संसार में प्रलय के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगेंगे। जिस संसार में हम रहते हैं, जिस देश के हम नागरिक हैं, जिस राष्ट्र का अन्न-पानी खाते-पीते और जिस समाज की सहायता से जीते हैं, उसका हितचिन्तन करना हमारा पुण्य पवित्र कर्तव्य है और आज जनवृद्धि को नियंत्रित करना सबसे बड़ा देशहित साधन है। किन्तु क्या इस प्रकार के लोग इस ओर ध्यान दे पाते हैं ?

कुछ लोग एक पुत्र को पाने के लिए लड़कियों से घर भर लिया करते हैं। दो लड़कियाँ हो गईं। यही जिम्मेदारी काफी थी। लेकिन सन्तोष नहीं। एक लड़का भी हो जाता तो अच्छा था। लेकिन फिर कन्या आई। दु:ख तो हुआ पर आशा-एषणा का त्याग नहीं किया। पुन: लड़की, पुन:लड़की। फिर भी पुत्रेषणा नहीं जाती। देख रहे हैं कि लड़कियाँ ही हो रही हैं। उस अंधे सौदे का कोई विश्वास नहीं। ऐसा कोई साधन नहीं कि ठीक-ठीक लड़का-लड़की के बावत जाना जाये। केवल आशा और शायद के भरोसे प्रजनन नहीं रोकते आखिर नतीजा यह होता है कि जहाँ एक लड़की के विवाह में छक्के छूटते है वहाँ छ:-छ:-सात-सात लड़कियों से घर भर जाता है। इसका नतीजा सिवाय इसके और क्या हो सकता है कि किन्हीं एक-दो लड़कियों की शिक्षा-दीक्षा और व्याह-शादी ठीक से हो जाये और बाकी सब यों ही अधेड़ों, विधुरों, दूजहा, तीजहा को उचित-अनुचित स्थानों पर फेंका जाये। समाज की अभागी प्रथायें और कुरीतियाँ दो-एक लड़कियों के विवाह में ही कंगाल बना देती हैं तब भला छ:-छ: सात-सात लड़कियों की व्याह-शादी किस प्रकार ठीक से की जा सकती है।

जब दो लड़कियाँ हो गईं तभी सन्तान की प्यास बुझ जानी चाहिए थी और समझ लेना चाहिए था कि जिन्दगी के लिये काफी जिम्मेदारी और काम आ गया है। इन दो कन्याओं को ही सुयोग्य बनाने और अच्छे घर वर को सौंपने में ही इतना रुपया चाहिए जितना कठिनता से ही जमा हो सकेगा। अब अगर लड़का हो भी गया तो उसकी शिक्षा-दीक्षा और ब्याह-शादी के लिये रुपये के लाले पड़ जायेंगे। किन्तु मनुष्य की इस निरर्थक इच्छा को क्या कहा जाये जिसे पूरा करने की आशा में जिन्दगी पर बोझ पर बोझ रखता चला जाता है।

बहुत बार लोग अनेक बच्चे होने पर भी यदि विधुर हो जाते हैं तब भी दूसरी शादी कर लाते हैं और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चों की संख्या ड्यौढ़ी-दोगुनी बना लेते हैं। यदि उन्हें कोई सुधारवादी, समाजसेवी अथवा हितचिन्तक इसका विरोध करता हुआ समझाने का प्रयत्न करता है तो उनका नपा-तुला उत्तर मौजूद होता है—''क्या करें भाई शादी तो दूसरी नहीं करने को था किन्तु इन बच्चों की देख-भाल के लिए तो प्रबन्ध करना ही है। क्योंकि बच्चों की परेशानी मुझसे देखी नहीं जायेगी।'' बड़ा सुन्दर बहाना है। भला ऐसा कौन-सा कठोर होगा जो यह सम्मति दे कि आप शादी न करें भले ही बच्चे परेशान होते रहें। किन्तु इस प्रकार के बहानेवाज इस बात का उत्तर देने में या तो रोष प्रकट करेंगे या फिर दाँत निकालेंगे-कि विधाता भले ही बच्चों को तब तक ठीक से रखें जब तक उसके अपने बच्चे न हों। उसके अपने बच्चे होने पर इन दिवंगता जननी के लाड़िलों का क्या हाल होगा ? जब दूसरा बच्चा होने पर सगी माँ का पहले बच्चे से सिमट कर प्रेम दूसरे बच्चे पर चला जाता है, तब वहाँ तो कुक्षि की विषमता भी है।

स्पष्ट है यदि विशुद्ध रूप से बच्चों की परेशानी का ही विचार हो तो किसी वृद्ध विधवा, रिश्ते-नाते की दादी, बुआ, बहिन, भौजाई ऐसी किसी स्त्री को भी लाया जा सकता है जो बेचारी गरीब और निराश्रिता हो। इससे उपकार का पुण्य भी है और बच्चों की देख-भाल भी। और यदि ऐसा नहीं बन पड़े और दूसरा विवाह करते ही बने तो आगे के लिए परिवार-नियोजन का प्रबन्ध किया जा सकता है। किन्तु सत्य बात तो यह है कि बच्चों की देखभाल तो बहाना मात्र है, प्रेरणा होती है उस विकार की जिसे उन्हें पहली पत्नी से ही एक दो बच्चे हो जाने पर दृढ़तापूर्वक नियन्त्रित कर लेना था। इससे जो पत्नियाँ अधिक प्रजनन के कारण खोखली होकर अकाल में मर जाती हैं वह परिस्थिति न आती और यदि आ भी जाती तो एक-दो बच्चों का जो कि सयाने ही हो चुके होते स्वयं भी प्रबन्ध किया जा सकता था। मुसीबत आती है क्रम से उत्पन्न हुए अनेक छोटे बच्चों के कारण।

अनेक रईस और शौकीन तबीयत लोग दो-दो तीन-तीन शादियाँ करते या शायद कानून के भय से एक को तलाक देकर दूसरी से शादी कर लेते हैं और बिना सोचे-समझे जन-संख्या बढ़ाते चले जाते हैं। वे यह नहीं सोच पाते कि जब हम एक अकेले ने पाँच-सात सन्तानें बढ़ाकर आबादी वृद्धि की है तब यदि इन चार-चार पाँच-पाँच के भी इतनी-इतनी सन्तानें होंगी तो केवल एक पीढ़ी अथवा बीस साल में आबादी कितने गुना बढ़ जायेगी ?

अधिक सन्तानों को सुयोग्य बनाया जाना सम्भव नहीं। निश्चय ही उनमें से अनेक आबारा, अनैतिक, अपराधी तथा अनुशासनहीन हो जायेंगे। इस प्रकार की विकृत सन्तानें अभिभावकों के लिए तो जान का बवाल बन ही जाती हैं, समाज के लिए भी अभिशाप सिद्ध होती हैं। इसी सत्य को ध्यान में रखते हुए आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व जबकि जन-संख्या आज की अपेक्षा बहुत कम थी और भोजन, वस्त्र तथा जीवन की अन्य आवश्यक वस्तुओं की प्रचुरता थी, दूरदर्शी यूनानी दार्शनिक व विचारक अरस्तू ने अपने देशवासियों को सावधान करते हुए चेतावनी देदी थी—

''जन-संख्या की अतिरिक्त वृद्धि हो जाने पर समाज का आर्थिक, नैतिक और आध्यात्मिक पतन हो जाता है। सामाजिक व पारिवारिक व्यवस्था बिगड़ जाती है। निरर्थक मनुष्य राष्ट्र का भोजन खा-खा कर नष्ट कर डालते हैं। धर्माचार का त्याग कर निरंकुश, स्वेच्छाचारी हो जाने से लोग अनैतिक मार्गों पर चलने लगते हैं। उद्दण्ड घोड़ों की तरह किसी कायदे-कानून को नहीं मानते और समाज में अपराधों तथा आतंक का वातावरण उत्पन्न करते हैं, जिससे प्रगति में बाधा पड़ती है। अधिकांश नागरिक अविकसित, अशिक्षित और मूर्ख रह कर पशुओं जैसा जीवन व्यतीत करते और मक्खी-मच्छरों की तरह मरते रहते हैं। मानसिक तथा सामाजिक बुराइयों का प्रधान कारण आबादी अनियंत्रित वृद्धि ही है।''

अरस्तू ही क्यों भारतीय ऋषि-मुनियों ने तो इससे भी पहले जन-वृद्धि के दुष्परिणामों से सावधान कर दिया था। राम को उपदेश देते हुए मुनि वशिष्ठ ने अपने ग्रन्थ 'योग वाशिष्ठ' में कहा है—''जब किसी देश की जन-संख्या बहुत बढ़ जाती है तो अकाल, महामारी, युद्ध या भूकम्प आदि दैवी अथवा मानवीय आपत्तियाँ उठ खड़ी होती हैं, जिससे कीड़े-मकोड़े की तरह मानव-जाति का विनाश हो जाता है।''

पहले जब किसी एक स्थान की जन-संख्या बढ़ जाती थी तो बहुत से लोग दूसरे स्थान पर चले जाते थे। किन्तु आज संसार का कोना-कोना मनुष्यों से खचाखच भरा हुआ है, किसी को कहीं आने-जाने की सुविधा ही नहीं है। ऐसी दशा में सिवाय इसके कि देश भर की ईति-भीति में बरबादी हो अथवा सबल अपने अस्तित्व के लिए दूसरे निर्बलों को मार-काट कर अपने लिये स्थान बनायें-इसके सिवाय और क्या हो सकता है ? युद्ध का एक बहुत बड़ा कारण संसार में जन-संख्या की वृद्धि भी है।

भारत की बेतहाशा बढ़ती हुई जन-संख्या की चिन्ता संसार भर को है किन्तु स्वयं भारतवासियों को नहीं है। वे बराबर पीढ़ी-दर-पीढ़ी करोड़ों की आबादी प्रतिवर्ष बढ़ाते जा रहे हैं। जन-संख्या की यदि यही रफ्तार रही तो भारतवासियों को शीघ्र ही प्रलय के दृश्य देखने के लिये तैयार रहना चाहिए और अपनी बहुमूल्य सभ्यता एवं संस्कृति का मोह अभी से छोड़ने का अभ्यास करना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गृहस्थ एक तपोवन ४.४०

जो लोग वैज्ञानिक बल पर जन-संख्या और खाद्य सामग्री में अनुपात बने रहने की आशा करते हैं, उन्हें सावधान करने के लिए विद्वान माल्थस के आधुनिक विज्ञान से सम्मत तथा तर्क व प्रमाणों से पुष्ट यह विचार कुछ कम सत्यपूर्ण नहीं हैं।

"विज्ञान चाहे कितनी ही उन्नति क्यों न करता जाये, जमीन की उपज और उससे मिलने वाले अनाज की पैदावार एक नियत सीमा के भीतर ही बढ़ सकती है। प्रत्येक पौधे की जड़ और पत्तियों को फैलने के लिए जितना स्थान, समय, वायु, धूप व जल इत्यादि की आवश्यकता है, उसे जन-संख्या के अनुपात से खींचतान कर नहीं घटाया-बढ़ाया जा सकता। साथ ही यह भी अनुभव सिद्ध है कि जमीन की पैदावार को जब बहुत अधिक बढ़ाने की चेष्टा की जाती है तो शीघ्र ही ऐसा अवसर आता है कि परिश्रम के अनुपात से पैदावार घटने लगती है क्योंकि अप्राकृतिक ढंग से भूमि के साथ बलात्कार करने से उसकी उर्वरा-शक्ति नष्ट हो जाती है।

इन परिस्थितियों एवं तथ्यों के होते और जानते हुए भी जो लोग सन्तान वृद्धि का संयम नहीं करते, उनके लिए तो यही कहना पड़ेगा कि ऐसे लोग जीवन में सुख-शान्ति, स्वत्य सन्तान और सशक्त समाज का मूल्य, महत्त्व नहीं जानते और चाहते हैं कि जहाँ कल नष्ट होने को हो संसार आज नष्ट हो जाये।

अनियंत्रित प्रजनन-सर्वनाश का आह्वान

जनसंख्या वृद्धि की विभीषिका की ओर संसार के विचारशील लोगों का ध्यान विगत शताब्दी से ही आकर्षित हो गया था और उन्होंने इस खतरे की ओर विश्व नेताओं, सरकारों तथा सर्वसाधारण का ध्यान आकर्षित किया था। उनका कहना था कि समय रहते जनसंख्या वृद्धि की विभीषिका से निपटने का उपाय किया जाय अन्यथा समय निकल जाने पर कुछ करते-धरते न बन पड़ेगा और केवल पश्चाताप ही हाथ रह जायेगा।

इंग्लैण्ड के अर्थशास्त्री थामस माल्थस ने इस विषय में सप्रमाण बहुत कुछ कहा है। विगत शताब्दी में फ्रांस प्लास, नार्म डायस्टेले, ऐने वेनेट, चार्ल ग्रेडली, मेरी स्टोप्स प्रभृत्ति विचारकों ने जोरदार प्रमाणों के साथ जनसंख्या नियन्त्रण की आवश्यकता सिद्ध की और इंग्लैण्ड की ही नहीं समस्त संसार की जनता ने उन विचारों को ध्यानपूर्वक सुना और उस आवश्यकता को अनुभव किया।

वर्तमान शताब्दी के आरम्भ में अमेरिका में माडरेट सेंगर अब्राह्म स्टोन ने इस आवश्यकता को भली-भाँति सिद्ध किया। भारत की अपेक्षा पाँच गुनी भूमि और अत्यन्त स्वल्प जनसंख्या के कारण यों अमेरिका की आर्थिक समस्या वैसी नहीं थी, जिसके आधार पर परिवार नियन्त्रण की बात सोचनी पड़े, पर व्यक्तिगत, पारिवारिक और स्वयं शिशुओं के विकास पर इसका जो बुरा प्रभाव पड़ता है, उसे देखते हुए यह भली-भाँति स्वीकार किया गया है कि अवांछनीय गति से बढ़ता हुआ प्रजनन केवल संकट ही उत्पन्न कर सकता है।

विलियम गोडविन, सर वाल्टर रेले, प्रो० जीड, प्रो० ग्वेर्डे, विटरेणु प्रभृति कितने ही सांख्यकी विज्ञों का माल्थस से उन उपायों के बारे में मतभेद है, जिनके आधार पर संख्या नियन्त्रण किया जाना चाहिए, पर वे सभी एक स्वर से इस बात का समर्थन करते हैं कि बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या इस युग की सबसे बड़ी समस्या है और यदि उसे हल नहीं किया गया तो अपनी मूर्खता के दण्डस्वरूप ही मनुष्य जाति को रोते-बिलखते अपने हाथों आत्म-हत्या करने के लिए विवश होना पड़ेगा। अधिक उत्पादन और न्यायोचित वितरण से राहत मिलने की बात पर जोर देने वाले भी यह स्वीकार करते हैं कि यह उपाय सामयिक संकट हल्का कर सकते हैं, पर जनसंख्या का बढ़ता हुआ क्रम यथावत् चलने देना तो उन्हें भी स्वीकार नहीं।

बढ़ती हुई जनसंख्या का एक बड़ा दोष है कि प्राकृतिक सुविधा के अभाव में तथा खाद्य पदार्थों में जीवन तत्व घटते जाने के कारण पीढ़ियाँ दुर्बल होती चली जाती हैं, वे रुग्ण रहती हैं और काम करने की क्षमता घटती चली जाती है। फलतः हर स्तर का उत्पादन घटता है। शारीरिक और मानसिक बलिष्ठता घटने पर कामों का स्तर तथा परिमाण घटेगा ही। भीमकाय स्वसंचालित यन्त्र जनशक्ति की आवश्यकता तो पूरी कर सकते हैं, पर उनसे बेकारी बेहिसाब बढ़ती है जो और भी अधिक घातक है।

पशुओं को जीवित न रखा जा सकेगा, ऐसी दशा में दूध या माँस की उपलब्धि भी असम्भव हो जायेगी। समुद्र पर भी जब धावा पूरे वेग से बोला जायगा तो बेचारे जल-जन्तु कब तक अपना अस्तित्व बनाये रह सकेंगे। उन्हें भी आधी चौथाई शताब्दी के अन्दर अपना अस्तित्व खो बैठने के लिए विवश होना पड़ेगा। बढ़ता हुआ जल प्रदूषण अभी भी जल-जन्तुओं को समाप्त करने में लगा हुआ है। कल-कारखानों का विषाक्त जल नदी, नालों से लेकर समुद्री जल तक को विषैला किये दे रहा है, जल-जन्तु बेहिसाब मर रहे हैं। अगले दिनों औद्योगिक प्रगति के साथ कल-कारखाने बढ़ेंगे ही, जल प्रदूषण का निर्बाध क्रम चलेगा तब जल-जन्तुओं पर गुजारा करने की बात भी मृग-मरीचिका बनकर ही रह जायगी।

समुद्र से जल-जीव, वनस्पतियाँ तथा पशु-पक्षियों का माँस प्राप्त करने के प्रयास भी एक सीमा तक ही उस आवश्यकता को पूरा कर सकेंगे। माँस के लिए पाले जाने वाले जानवरों के लिए चारा तो चाहिए ही। भूमि की सीमा जब लोगों के निवास-प्रवास की—अन्न की आवश्यकता ही पूरा नहीं कर पाती तो इस माँस या दूध

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के लिए पाने जाने वाले पशुओं के लिए निवास तथा चारे के लिए भूमि कहाँ से आवेगी ? अर्थशास्त्री बताते हैं कि अगले दिनों पशुओं और मनुष्यों में प्रतिद्वन्द्वता होगी। कौन जीवित रहे इस संघर्ष में पशु हार जायगा और भूमि को पशुओं के उपयोग से छीनकर मनुष्यों के लिए प्रयुक्त किया जायगा। अन्न का भूसा तथा घास, कागज, काष्ठ जैसी सभ्यता सामग्री बनाने में खप जायगा।

विवाहित जीवन का मूल प्रयोजन दो समान स्थिति के साथियों का मिलकर जीवनोद्देश्य की दिशा में ठीक तरह गतिशील होने की सुविधा प्राप्त करना है। भिन्न लिंग के सहयोगी प्रकृति प्रेरित आकर्षण की पूर्ति भी करते हैं और उसमें भावनात्मक तृप्ति भी मिलती है। अस्तु जब शारीरिक, मानसिक और आर्थिक सुविधा हो तब विवाह के लिए उपयुक्त साथी ढूँढ़ लिया जा सकता है, किन्तु विवाह की सफलता प्रजनन के साथ नहीं जोड़ी जानी चाहिए। सन्तानरहित दाम्पत्य-जीवन किसी भी प्रकार असुविधाजनक नहीं होता, वरन् उससे प्रगति की दिशा में आगे बढ़ने की ओर भी अधिक सम्भावना रहती है। जो शक्ति नये बालकों को न्योत-बुलाने में और उसका भार वहन करने में खर्च की जाती है यदि उसे पति-पत्नी अपने विकास में खर्च करें तो निस्सन्देह इससे वे लोग अपना और समाज का अधिक हित कर सकते हैं। सन्तान तभी उत्पन्न की जाय जब उसकी जिम्मेदारियाँ उठा सकने की पूर्व तैयारी भली प्रकार कर ली गई हो। जब तक ऐसी स्थिति न आये तब तक विवाहित युग्मों को भी सन्तानोत्पादन से बचना चाहिए।

विवाह योग्य युवकों के लिए भी यही उचित है कि जब वे शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ सन्तानोत्पादन के योग्य परिपुष्ट हो जायँ और आर्थिक दृष्टि से अपने पैरों पर खड़े हो जाने योग्य हो जायँ, तभी विवाह की स्वीकृति अभिभावकों को दें। यदि मोहवश समय से पूर्व विवाह के लिए दबाव डाला जा रहा है तो उसके लिए नम्रतापूर्वक किन्तु साथ ही अत्यन्त दृढ़ता के साथ इन्कार ही कर देना चाहिए। इसमें न तो अवज्ञा की बात है और न अशिष्टता की। पेट भरा होने पर प्रियजनों के भोजन आग्रह से इन्कार किया जा सकता है और उसमें बुरा मानने की कोई बात नहीं होती तो फिर विवाह के सम्बन्ध में यदि कोई लड़का या लड़की अपनी स्थिति स्पष्ट कर दें तो अभिभावकों को उससे प्रसन्न ही होना चाहिए। बलात् किसी पर अवांछनीय विचार थोपना जितना अनैतिक है उसकी तुलना में इस प्रकार के दबाव से इन्कार कर देना अपेक्षाकृत कम ही अनुचित माना जाना चाहिए।

जो लोग विवाह की आवश्यकता अनुभव करें उन्हें प्रसन्नतापूर्वक वैसा करना चाहिए। घर के लोगों को उनकी रुचि के अनुरूप साथी उपलब्ध कराने में सहायता करनी चाहिए, पर इसके लिए किसी को अपनी सन्तान पर दबाव नहीं डालना चाहिए। यह दबाव अनैतिक, अदूर-दर्शितापूर्ण, असामाजिक और अवांछनीय है। कोई बालक कुमार्गगामी हो रहा हो तो उसे सुधारने के लिए दबाव देने का औचित्य है। पर यदि किसी लड़की या लड़के की इच्छा विवाह की नहीं है, वह वैवाहिक उत्तरदायित्वों को निवाहने में उस समय अपने को असमर्थ पाता है तो उचित यही है कि उसकी अपनी इच्छा को-जीवनयापन करने की रीति-नीति को मान्यता दी जाय और उसे अपने ढंग से अपना मार्ग चुनने दिया जाय। विवाह कौन, कब, किस उम्र या स्थिति में करे, इसके सम्बन्ध में हर किसी को स्वतन्त्रता होनी चाहिए। गलत साथी के चुनाव का खतरा टाला जाना चाहिए, पर अविवाहित रहने की यदि किसी बालक की इच्छा है तो अभिभावकों के लिए यह उचित है कि उस सन्दर्भ में किसी प्रकार का दबाव न डालें। कारण कि इसमें अनौचित्य जैसी कोई बात नहीं है, वरन् सच पूछा जाय तो इस प्रकार का निर्णय वैयक्तिक एवं सामाजिक सुविधाजनक ही है।

अपने समाज में रूढ़िवादी अभिभावक इस बात के लिए अत्यधिक उत्सुक पाये जाते हैं कि वे अपने बालकों का विवाह जितनी जल्दी हो सके निपटा कर निश्चित हो जायँ। इसमें वे धन और श्रम भी बहुत खर्च करते हैं। यदि वह धन या श्रम उन बालकों की शारीरिक, मानसिक उन्नति के लिए खर्च किया जाय तो विवाह की अपेक्षा उन्हें हजार गुना अधिक लाभान्वित किया जा सकता है यह सूझ-बूझ न जाने क्यों अपने समाज में उठती ही नहीं है ?

व्यभिचार अविवाहितों में बढ़ता है, विवाहितों में नहीं यह आशंका व्यर्थ है। व्यभिचार और सदाचार मानसिक स्थिति पर निर्भर है। विवाहित हो जाने पर इस कुकर्म पर कोई बन्धन नहीं बँधता वरन् अविवाहितों के व्यभिचारों की अपेक्षा वह और भी अधिक निरापद हो जाता है। यदि अन्वेषण किया जाय तो इस सन्दर्भ में अविवाहितों की अपेक्षा विवाहित ही अधिक दुराचरण अपनाये हुए पाये जायेंगे। मर्यादाओं का पालन यदि सीखा और सिखाया जाय तो अविवाहित रहना किसी भी दृष्टि से व्यक्ति और समाज के लिए अहितकर सिद्ध नहीं हो सकता। हर किसी का विवाह अवश्य ही होना चाहिए आजकल जो यह मूढ़-मान्यता प्रचलित है उसके पीछे विवेकशीलता नहीं वरन् रूढ़िवादिता की ही प्रधानता रहती है। अपने समाज में कन्याओं को किशोरावस्था में प्रवेश करते-करते कुहराम मच जाता है और हर कोई उनके विवाह की चिन्ता करने लगता है। लड़के बीस-पच्चीस वर्ष तक पढ़ते भी रह सकते हैं और अविवाहित भी रह सकते हैं, पर लड़कियों के लिए इतनी उम्र बहुत भारी पड़ती है। लड़की और लड़कों के बीच इस प्रकार का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भेद-भाव किया जाना किसी भी प्रकार तर्कसंगत नहीं, इसे रूढ़िवादी पूर्वाग्रह के ढर्रे पर लुढ़कने के अतिरिक्त और किसी दृष्टि से उचित नहीं ठहराया जा सकता। अविवाहित जीवन के खतरे अत्यधिक बढ़ा-चढ़ाकर हमने अपने मस्तिष्क में जमा लिए हैं यदि विश्लेषण किया जाय तो वे आशंकाएँ बहुत अंशों में निरर्थक और निर्मूल ही प्रतीत होंगी।

संयम ही हमें नष्ट होने से अब बचायेगा

लन्दन के प्रसिद्ध स्वास्थ्य विशेषज्ञ ने दो दशक पूर्व ब्लैकपूल में स्वास्थ्य काँग्रेस की रायल सोसायटी में एक निबन्ध पढ़ा जिसमें उन्होंने बताया—"सन् २०५० अर्थात् अगले ८० वर्षों में संसार की दशा महाप्रलय जैसी हो जायेगी। उस समय अब की तीन अरब की जनसंख्या बढ़कर २० अरब हो जायेगी।" भारतवर्ष में प्रति घण्टा ११०० की जनसंख्या वृद्धि होती है। प्रति वर्ष एक करोड़ बीस लाख लोग बढ़ जाते हैं, केरल जैसे छोटे से प्रान्त में १९७६ तक २४३४७००० हो जायेगी, यहाँ प्रति दिन १५०० नये शिशु जन्म ले लेते हैं।"

जनसंख्या वृद्धि के यह आँकड़े वस्तुतः चिन्ताजनक हैं, जनसंख्या का बढ़ना मानव जाति के लिये भयंकर संकट है, किन्तु क्या इस संकट का हल अप्राकृतिक साधनों से किया जा सकता है, यह प्रश्न भी उतना ही जटिल है, जितना जनसंख्या वृद्धि की समस्या। हमें उन फलितार्थों को आँख मूँदकर स्वीकार नहीं करना चाहिये, जो परिवार नियोजन के अन्तर्गत इन दिनों चल रहे हैं, इनका मनुष्य के स्वास्थ्य, शरीर, समाज पर किस तरह का प्रभाव पड़ रहा है, इसका जब तक अनुमान नहीं कर लेते, यह आयोजन महँगे और भारी पड़ेंगे।

माल्थस ने कहा था कि मनुष्य को पहले ही सद्बुद्धि से काम लेना चाहिये और जनसंख्या को इतना सीमित रखना चाहिए कि ऐसी परिस्थिति ही उत्पन्न न होने पाये कि प्राकृतिक अवरोधों के कारण कष्ट उठाने पड़ें।

माल्थस की उक्त चेतावनी अब सत्य प्रतीत होती जान पड़ रही है। समय अब भी इतना शेष है कि मनुष्य स्वयं को संभाल सके। यदि वह आत्म संयम द्वारा अपनी यह जनसंख्या वृद्धि की समस्या सुलझाने के लिये तैयार नहीं होता तो यह कार्य प्रकृति के लिये छोड़ देना चाहिए। प्रकृति अपने आप इतनी समझदार है कि या तो वह जितने प्राणी पैदा करती है, उनके लिये अवश्य सुविधायें भी देती रहे और यदि मानवीय विवेक निरन्तर असावधानी बरतने का दुःसाहस करे तो वह प्रकृति इस बात के लिये भी समर्थ है कि अपनी शक्ति से उसे नियन्त्रण में ले आये। भले ही वे नियन्त्रण अति कष्टकारक सिद्ध हों।

१७ जनवरी, १९६९ को नई दिल्ली से प्रसारित एक विज्ञप्ति में विश्व स्वास्थ्य संगठन के विशेषज्ञों ने अपना मत व्यक्त करते हुए बताया कि चूहे तथा चुहिया के एक जोड़े से पैदा हुई सन्तानों से तीन वर्षों में ३५ करोड़ चूहे हो सकते हैं। लेकिन प्रकृति ऐसा होने नहीं देती। यदि चूहों की मनमानी चल सकी होती तो तीन वर्षों में पृथ्वी पर अकेले चूहे इतने हो जाते कि चलने वाले व्यक्ति का हर अगला पाँव एक चूहे की देह पर पड़ता। प्रकृति ने चूहों पर यह प्रतिबन्ध लगा दिया है कि वे प्रति वर्ष अधिक से अधिक ६० बच्चे पैदा करें। मनुष्य भी यदि इसी ढंग से बच्चे पैदा करते रहे तो एक दिन अपने आप उनकी प्रजनन शक्ति समाप्त हो जायेगी। आजकल ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है, जो प्रजनन की क्षमता खो चुके हैं या खो रहे हैं।

मक्खी एक बार में १२० अण्डे देती है। गर्मी के दिनों में वह ६ बार अण्डे देती है। दस दिन में बच्चे भी निकल आते हैं और वह भी १४ दिन की आयु में प्रजनन (पावर ऑफ रिप्रोडक्शन) के योग्य हो जाते हैं। ६ पीढ़ियों में जन्मे, यदि सब बच्चों को किसी प्रकार जीवित रखा जा सके तो वे १/४ मिलियन क्यूबिक घन फीट अर्थात् २५०००० घन फीट जगह एक मक्खी के जोड़े के बच्चों के द्वारा एक मौसम में घेरी जा सकती है। (एक घन फुट का अर्थ एक फुट लम्बा, एक फुट चौड़ा और एक फुट ऊँचा स्थान होता है।) अब यदि संसार में पाई जाने वाली सब मक्खियों का हिसाब लगायें तो मालूम पड़ेगा कि इस पृथ्वी जितनी कई पृथ्वियाँ तो केवल मक्खियों के रहने के लिये ही आवश्यक हो जायेंगी।

प्रकृति उनके लिये अपना संहार अस्त्र प्रयोग करती है। साधारण-सी सर्दी आते ही मक्खियाँ मरकर अपने आप नष्ट हो जाती हैं। मनुष्य समाज के लिये भी यही बात हो सकती है। प्रजनन की गति जितनी बढ़ेगी मनुष्यों के स्वास्थ्य और शारीरिक क्षमतायें गिरती हुई चली जायेंगी और वे मौसम के हल्के से परिवर्तनों को भी सहन करने की स्थिति में नही रहेंगी। तब बीमारियाँ, नये-नये रोग इस तरह बढ़ेंगे कि असमर्थ व्यक्ति अपने आप नष्ट हो जायें, केवल वे लोग बचेंगे जिनके स्वास्थ्य वीर्य नाश की बीमारी से सुरक्षित हों। यदि मनुष्य अपने आप नहीं सँभलता तो प्रकृति को विवश होकर यह सामूहिक दण्ड प्रणाली मानव जाति के लिये भी लागू करनी ही पड़ेगी। आजकल बीमारियों में मृत्यु दर की वृद्धि और नये-नये रोगों की उत्पत्ति उसी का संकेत करती है, आग की स्थिति कितनी भयानक हो सकती है। इसकी तो कल्पना करते भय लगता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक सीप (आइस्टर) एक वर्ष में ६० मिलियन (एक मिलियन=१० लाख) अण्डे देती है, इस तरह एक जोड़े से पैदा होने वाले पाँच पीढ़ियों से ही जितनी सीपियाँ पैदा हो जायेंगी, उनका यदि एक स्थान पर ढेर किया जा सके तो वह ढेर पृथ्वी के आकार से आठ गुना बड़ा होगा। कार्डफिश नामक मछली एक करोड़ अण्डे देती है, यदि सभी अण्डों में से बच्चे निकल आयें तो उन्हें रहने के लिये समुद्र भी पूरा न पड़े। इनको कम करने के लिए प्रकृति ने ऐसे शत्रु तैयार किये हैं, जो इन्हें खाते रहें, मछलियों को अनिवार्य वन्ध्याकरण का दण्ड भी भुगतना पड़ता है। यदि मनुष्य भी स्वयं सचेत न हो तो एक दिन वह स्थिति अपने आप बन जायेगी, जब या तो जनसंख्या स्वयं एक दूसरे को मार कर खा लेगी। (युद्ध, महामारी, अकाल भी इसी के रूप हो सकते हैं।) या फिर स्त्रियों में बन्ध्यात्व बढ़ जायेगा और वे बच्चे ही पैदा न कर सकेंगी।

हाथी संसार में सबसे धीमी प्रजनन (ब्रीडिंग) वाला जीव है। वह ३० वर्ष की आयु से बच्चे देना प्रारम्भ करता है, यदि वह ३० और ९० वर्ष की आयु के बीच ६ बच्चे पैदा करे और इसी अनुपात से वे बच्चे भी आगे प्रजनन करते रहें तो ५०० वर्ष में ही एक जोड़े हाथी से डेढ़ करोड़ हाथी पैदा हो जायेंगे अर्थात् पृथ्वी पर तब केवल हाथी ही हाथी हों और किसी को रहने, खाने-पीने के लिये स्थान और साधन ही शेष न रहे।

प्रकृति में वह जबर्दस्त समझ और शक्ति है कि वह इस शारीरिक योग्यता वाले पशु की जनसंख्या को भी अनियन्त्रित नहीं होने देती। उन्हें वह हिसाब से मारती रहती है। यह उदाहरण यह बताते हैं कि यदि मनुष्य आत्म-नियन्त्रण के द्वारा जनसंख्या वृद्धि के लिये तैयार नहीं होता, तब या तो उसे अप्राकृतिक परिवार नियोजन प्रणाली भक्षण करेगी अथवा प्रकृति स्वयं ही अपनी संहारक प्रक्रिया द्वारा नष्ट करके रख देगी।

हमारे लिये व्यवहार्य यही है कि हम इन्द्रिय संयम और कामवासना का उद्दात्तीकरण सीखें। अप्राकृतिक प्रतिबन्धक अवरोधों से अपने चरित्र को भी बचायें और अपने स्वास्थ्य, शक्ति और समर्थता को भी बना रहने दें। यदि यह नहीं करते तो प्रकृति के इस नियम और दण्ड के लिये भी तैयार रहना आवश्यक है।

सन्तान सीमित ही रखें

हम सब सामाजिक प्राणी हैं। समाज में रहते उसकी सहायता, सहयोग तथा सम्पर्क से ही उचित विकास करते तथा उसी से अपनी जीविका कमाते और बच्चों की ब्याह शादी करते हैं। समाज के सहयोग के बिना हमारी किसी की जिन्दगी दो कदम भी नहीं चल सकती। समाज का मनुष्य जीवन में बड़ा महत्त्व है।

किन्तु सामान्यत: लोग अपने को सामाजिक न समझकर केवल पारिवारिक ही समझते हैं और उसी की अच्छाई-बुराई तथा सुख-दु:ख का विचार रखते हैं। उसी के लिए सब कुछ सोचना और उसी के लिए सब कुछ करना अपना कर्तव्य समझते हैं तथापि उन्हें समाज के साथ प्रतिकार के रूप में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से कुछ न कुछ सेवा देनी ही होती है। ऐसा किये बिना काम नहीं चल सकता। परिवार की सेवा भी समाज की ही सेवा है, मनुष्यों का दृष्टिकोण ही केवल अहंपूर्ण होता है। यदि परिवार को भी समाज का ही एक अंग समझकर समुचित रूप से सेवायें दी जायें, तब भी वह एक प्रकार से समाज की प्रत्यक्ष सेवा हो जाये। किन्तु लोग परिवार को अपना व्यक्तिगत अनुबंध समझकर उसका पालन एवं संचालन मनमाने ढंग से करते हैं, इसलिये उनकी सेवा सामाजिक परिसर तक बढ़कर व्यापक नहीं बन पाती।

परिवार समाज की एक इकाई है, ऐसा मानकर चलने वाले लोग, उसका पालन, संचालन एवं निर्माण इस प्रकार से ही करते हैं, जिससे समाज में सौन्दर्य, स्वास्थ्य तथा सुविधा की वृद्धि हो। ऐसे लोग परिवार को सन्तुलित तथा सुव्यवस्थित रखने का बड़ा ध्यान रखते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि सन्तुलित परिवारों से जहाँ व्यक्तिगत सुख-शान्ति तथा आत्म-विकास में सहायता मिलती है, वहाँ समाज की व्यवस्था पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ता है। अस्तु, प्रत्येक व्यक्ति को यथासम्भव अपने परिवार को सन्तुलित तथा नियोजित रखने का प्रयत्न करना चाहिए। जहाँ असन्तुलित तथा अनियोजित परिवार से अनेक प्रकार के कष्ट-क्लेशों का जन्म होता रहता है, सन्तुलित तथा नियोजित परिवार से सुख-सुविधा की कमी नहीं रहती। इस विषय में अपने अनुभव के आधार पर एक विद्वान ने इस प्रकार बतलाया है—

"यदि आप मेरे सुखी परिवार का रहस्य जानना चाहते हैं तो मैं बतलाता हूँ कि इस सबका श्रेय मेरी बी० ए० पास पत्नी को है। मैं तो वाणिज्य का एक अध्यापक मात्र हूँ। मैं परिवार नियोजन जैसी चीज क्या जानूँ ? मेरी पत्नी संसार और विशेष रूप से हमारे देश में होने वाली अन्धाधुन्ध जन वृद्धि से उत्पन्न होने वाली हानियों से पूर्णतया परिचित हैं। वे इस समस्या पर पढ़ती और विचार करती रहती हैं। साथ ही उन परिवारों की दयनीय दशा भी देखती रहती हैं जो बिना सोचे-समझे संतानों पर सन्तानें उत्पन्न किये जाते हैं। इतना ही नहीं वे जो कुछ करती हैं उसे जीवन में यथार्थ रूप से उतारती भी हैं। हमारे परिवार की सुख-शान्ति का आधार केवल दो श्रेष्ठ, विकसित, स्वस्थ तथा सुन्दर सन्तानें ही हैं। हमारी शिक्षिता तथा यथार्थवादी पत्नी ने परिवार नियोजन के लिए प्राकृतिक से लेकर कृत्रिम तक सारे उपलब्ध साधनों तथा उपायों को काम में लाकर परिवार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सीमा से बाहर बढ़ने नहीं दिया। उनके मस्तिष्क से कभी भी यह विचार तिरोहित नहीं होता कि भारत की जनसंख्या यदि इसी गति से प्रतिवर्ष लाखों-करोड़ों में बढ़ती रहे तो स्थिति कितनी भयानक हो जायेगी ! हम सबको, देश को उस भयावह स्थिति से, जिसमें न भोजन मिले, न वस्त्र और न रहने के लिये स्थान। इन्हें बचाने के लिये अपने घरों में परिवार नियोजन का काम प्रारम्भ कर ही देना चाहिए। जनसंख्या की वृद्धि की इस अनियोजित गति को रोका ही जाना चाहिए और यह काम तभी पूरा होगा जब हम सब परिवार नियोजन में आस्था रखें और उसे यथार्थ रूप में अपने जीवनों में मूर्तिमान करें। हमारी इस आस्था को एक अच्छी गति भी मिल सकती है यदि अनियोजित परिवारों से होने वाली वैयक्तिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय हानियों पर सच्चाई के साथ विचार करें और उन्हें अपने हृदय में अनुभव कर यह समझें कि आज भारत के जो परिवार इस गलती से निकृष्ट जीवन बिता रहे हैं, वह वांछनीय नहीं। इसे बदला ही जाना चाहिए और सरलतापूर्वक बदला भी जा सकता है।''

कितना समीचीन तथा समयानुकूल विचार है। निस्संदेह सन्तुलित तथा नियोजित परिवार में गृहस्थ जीवन की सुख-शान्ति की सारी सम्भावनायें निहित हैं और इसके विपरीत आचरण करने पर ऐसा कोई दुःख नहीं जो गृहस्थ जीवन में न आ जाता हो। तुलनात्मक दृष्टिकोण से विचार करने पर यह सत्य सहज ही स्पष्ट हो जाता है।

नियोजित परिवार माने छोटा परिवार, ऐसा परिवार जिसमें हर विवाहित के एक या दो बच्चे हों और अधिक से अधिक तीन, यदि परिस्थिति स्वीकृति देती हो। परिवार को संक्षिप्त रखने के प्रयत्न में सबसे पहला प्रयत्न यही होगा कि एक के बाद दूसरा बच्चा कम से कम पाँच या छः वर्ष बाद हो। इसका एक लाभ यह भी होगा कि हर बच्चा पूरी तरह स्वस्थ रूप से पैदा होगा। उसका कारण स्पष्ट है कि बार-बार बच्चा न होने के झंझट से बचे रहने से माता का स्वास्थ्य सुरक्षित रहेगा। स्वस्थ सन्तान, स्वस्थ माता के ही गर्भ से उत्पन्न हो सकती। प्रजनन संयम से उनके सारे अवयव तथा अंग नीरोग तथा यथोचित रूप में रहते हैं। उसकी कुक्षि में निर्मित बच्चे के विकृत अथवा रुग्ण होने का प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरे बच्चे के जन्म में पाँच-छः वर्ष का अन्तर रहने से पहले बच्चे को पूरे समय भर माँ का दूध मिलता रहेगा। माँ का दूध बच्चे के लिए अमृत की तरह गुणकारी होता है। पूरी तरह प्राप्त होने से वह खूब हृष्ट-पुष्ट तथा सुन्दर हो जायेगा, नींव गहरी और मजबूत होगी, जो आगे चलकर भी उसे पूरे जीवन भर स्वस्थ तथा सुखी रहेगी। जिसने जन्मजात स्वस्थ तथा अरुग्ण बच्चा पा लिया उसने मानो गृहस्थ जीवन का एक बहुत बड़ा सुफल प्राप्त कर लिया।

बच्चा होने के बाद पाँच-छः साल तक के लिए माँ का शरीर बड़ा ही शिथिल तथा कमजोर हो जाता है, जिसको संयम तथा पौष्टिक भोजन की बहुत जरूरत रहती है। परिवार नियोजन के आधार पर उसकी वह आवश्यकता पूरी हो जाती है। पाँच-छः साल तक दूसरे बच्चे की अभिलाषा न रखने वाले बुद्धिमान दम्पत्ति उस दिशा में हर संयम को, यथासम्भव पालन करने का पूरा प्रयत्न करेंगे और अपने पवित्र संकल्प के बल पर उन्हें कोई विशेष कठिनाई नहीं होगी। ऐसा संकल्प वे ही दम्पत्ति करते और निभाते हैं, जो वासना के कीड़े नहीं होते और जीवन के लिये ब्रह्मचर्य का महत्त्व समझते हैं। संयम से रक्षित माँ का ओज तेज वर्धित होकर उसे पुनः स्वस्थ तथा परिपूर्ण बना देगा। साथ ही कितनी ही महँगाई क्यों न हो और कितनी ही सामान्य स्थिति क्यों न हो यदि प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा सा भी पौष्टिक भोजन, घी, दूध, मेवा, फल आदि माता को मिलता रहा तो पाँच-छः साल का समय इतना पर्याप्त होता है कि उसके शरीर की सारी आवश्यकता पूरी हो जायेगी। अनेक बच्चे रहने से यह सम्भव नहीं। सबके लिए व्यवस्था हो न सकेगी और जो व्यवस्था हो भी सके उसका लाभ बच्चों को वंचित कर माता स्वयं उठाती रहे, यह किसी प्रकार भी वह न कर पायेगी। यह सुविधा केवल नियोजित परिवार में ही रह सकती है। स्वस्थ पत्नी गृहस्थ जीवन की सुख-शांति का दूसरा सुफल है।

इसके विपरीत जिन दम्पत्ति को हर साल, दूसरे साल बच्चा होता रहता है, उनके न तो बच्चे ही स्वस्थ रहते हैं और न पत्नी। अस्वास्थ्य के साथ अस्वस्थ अनेक बच्चों की देखभाल और परिश्रम के सथ समुचित भोजन का अभाव उन सबको न जाने और कितने रोगों से बाँध देगा। पत्नी सौन्दर्य नष्ट हो जायेगा, स्वभाव खराब हो जायगा, बच्चे दिन-रात रें-रें करते रहेंगे और गृहस्थ बेचारा उनकी दवादारू के लिये दिन-रात परिश्रम तथा भाग-दौड़ करता रहेगा। ऐसी स्थिति में वह कौन-सा शारीरिक तथा मानसिक क्लेश हो सकता है जो उन सबको विशेषतया गृहस्थ को नहीं मिलेगा।

परिवार नियोजित रहने अर्थात् एक-दो बच्चे रहने से उनके पालन-पोषण, रहन-सहन, शिक्षा-दीक्षा, प्रतिभा तथा विशेषतायें विकसित करने पर पूरा-पूरा ध्यान दिया जा सकता है। उसके लिये खर्च भी जुटाया जा सकता है। कितना ही हाथ तंगवक्यों न हो फिर भी एक दो बच्चों का लालन-पालन तथा शिक्षा-दीक्षा का समुचित प्रबन्ध किया ही जा सकता है। ढेरों बच्चों होने से, उन पर जो, उनमें से अधिक होनहार तथा कुशाग्र बद्धि होते हैं और जिन पर विशेष ध्यान की आवश्यकता है, समुचित ध्यान नहीं दिया जा पाता। अनेक बच्चों में किसी एक पर विशेष ध्यान पक्षपात जैसा होगा। जो माता-पिता के लिए कर सकना न तो सम्भव है और यदि कोई ऐसा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते हैं तो गृह-कलह के बीज बोते हैं जो जल्दी ही विष फल उत्पन्न करने लगते हैं। नियोजित परिवार में यह कठिनाई नहीं रहती। एक दो बच्चे होते हैं, उन पर पूरा-पूरा ध्यान केन्द्रित किया जा सकता है। पारस्परिक वैमनस्य अथवा ईर्ष्या-द्वेष का प्रश्न ही नहीं उठता। यदि वे दोनों बच्चे कुशाग्र बुद्धि के हैं, तब तो उन्हें हर प्रकार का प्रोत्साहन तथा प्रबन्ध देकर आगे बढ़ाया ही जा सकता है और यदि वे नहीं भी हैं तो प्रयत्न बल पर उन्हें प्रतिभावान तथा होनहार बनाया जा सकता है। इस प्रकार समुचित रूप से पालित तथा विकसित किये गये बच्चे समाज के कितने सुन्दर नागरिक बन सकते हैं, इसका अनुमान भर हृदय में पुलक भर देता है। सन्तान सुयोग्य होकर समाज में प्रतिष्ठा पाये-यह गृहस्थ जीवन का ऐसा तीसरा सुफल है, जिसका सुख माता-पिता से सँभाले नहीं सँभलता।

एक दो बच्चे होने से माता-पिता न उन्हें केवल समुचित लालन-पालन ही दे सकते हैं, बल्कि अपना पूरा प्यार तथा वात्सल्य भी दे सकते हैं, उनकी स्नेह धारा अनेकधा न होकर उन दो बच्चों तक ही केन्द्रित रहकर उन्हें ओत-प्रोत कर देती है। उनके जीवन को सन्तुष्ट तथा शीतल रखती है। माता-पिता का स्नेह बच्चों के लिए किसी भी पौष्टिक पदार्थ से हजार गुना गुणकारी होता है। जिन बच्चों को यह पूरी तरह मिलता रहता है वे यों ही स्वस्थ तथा विकसित होते चलते हैं। साथ ही केन्द्रित होकर उनके स्नेह तथा वात्सल्य का सुख उन्हें भी परितृप्त रखा करता है। प्रेम की अनुभूति ईश्वरीय प्रसार है किन्तु यह हर्ष एवं उल्लास का हेतु बनता तभी है जब कहीं पर केन्द्रित हो, अन्यथा कट-कुटकर और जीर्ण-शीर्ण होकर निष्प्रभाव हो जाता है। माता-पिता से पूरा प्रेम पाकर बच्चे भी उन्हें अपना पूरा आदर तथा श्रद्धा देने लगते हैं। वे अधिकाधिक विनम्र तथा आज्ञाकारी बन जाते हैं। सुयोग्य सन्तानों का आज्ञाकारी होना गृहस्थ जीवन का चौथा सुफल है, जिसका सुख अनिवर्चनीय होता है। इसे कोई विरले बुद्धिमान माता-पिता ही पाते हैं।

इसके विपरीत जिन माता-पिता के अनेक बच्चे होते है, उनका प्रेम किसी बच्चे पर भी केन्द्रित नहीं हो पाता। वह यों ही बूँद-बूँद इससे उस पर और उससे इस पर छितराता हुए बेकार ही चला जाता है। न तो बच्चों को सन्तोष होता है और न माता-पिता को अनभूत। स्नेह के प्यासे रहकर बहुधा अविनम्र तथा अवज्ञाकारी हो जाते हैं। स्नेह न पाने से उनका हृदय भी कठोर तथा कर्कश बन जाता है। वे आपस में लड़ते-झगड़ते और बाहर जाकर दूसरों के साथ उपद्रव उत्पन्न करते हैं। रोज शिकवा-शिकायत भिजवाते और माता-पिता की प्रतिष्ठा गिराते हैं। बच्चों की इन हरकतों के कारण माता को कितनी मार्मिक पीड़ी होती होगी, इसे तो भुक्त-भोगी ही बतला सकते हैं। इसी पीड़ा से कराहकर तो लोग कह उठते हैं कि "नालायक बच्चे होने से कहीं अच्छा है कि परमात्मा बिना बच्चे का ही रखे।"

इस प्रकार किसी भी दृष्टि से क्यों न देखा जाये नियोजित परिवार हर प्रकार से सुख-शान्ति के हेतु तथा अनियन्त्रित परिवार हर प्रकार से कष्ट-क्लेश का कारण होता है। एक दो अथवा अधिक से अधिक तीन बच्चों के नियोजित परिवार में माता-पिता अपना सम्पूर्ण समय, शक्ति, उत्साह, प्रेम, पैसा आदि लगाकर उन्हें श्रेष्ठतम नागरिक बना सकते हैं। उनके शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक, आध्यात्मिक तथा शैक्षणिक हर प्रकार के विकास पर पूरा-पूरा ध्यान दे सकते हैं। इससे बच्चे सुयोग्य नागरिक बनकर समाज के सदस्य रत्न तो बनते ही हैं, साथ ही माता-पिता के लिए भी सुख-शान्ति तथा सन्तोष के बड़े आधार बनते हैं। जो बुद्धिमान दम्पत्ति यह बात ठीक से हृदयंगम करके तदरूप व्यवस्था करते हैं, वे जीवन में सन्तुष्ट और सुखी रहते ही हैं। इसमें न कोई बाधा है न कोई सन्देह।

सन्तानोत्पादन का उत्तरदायित्व समझ-बूझ कर ही उठायें

किसी जमाने में अधिक बच्चे उत्पन्न होना सौभाग्य का चिन्ह माना जाता था। वह समय तब था जब जन-संख्या कम थी, भूमि बहुत खाली पड़ी थी, सुरक्षा, कृषि तथा अन्य विकास कार्यों के लिए अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता थी।

आज स्थिति बिल्कुल बदल गई। अब जन-संख्या बढ़ते-बढ़ते खतरे के चिन्ह तक आ गई है। जितना अन्न धरती उगा पाती है, खाने वाले उससे अधिक बढ़ गये हैं। निवास की समस्या, यातायात की समस्या दिन-दिन जटिल होती चली जा रही है। स्कूलों में बच्चों के लिए जगह नहीं, अस्पतालों में स्थान नहीं, रेल और बसों में भीड़ का ठिकाना नहीं। इस बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए नौकरी, रोजगार, व्यापार आदि का कुछ प्रबन्ध बन नहीं पड़ रहा है । सबसे जटिल है शिक्षित बेकारों की समस्या ! न तो सरकार के पास देने के लिए नौकरी है और न प्रतिस्पर्धा में व्यापार खड़ा रह पाता है।

दुकानें हजारों की 'पगड़ी' दिये बिना नहीं मिलती। ईमानदारी के धंधे में उतनी बचत कहाँ होती है जिससे उतनी बड़ी रकम 'पगड़ी' में दी जायें और फिर उसके बाद व्यापार में धन लगाया जाय। ऐसी स्थिति सर्वसाधारण की कहाँ होती है ? फिर व्यापार कैसे हो ! नौकरी के द्वार बन्द, व्यापार की गुंजायश नहीं-गृह उद्योगों का न तो प्रचलन है और न शिक्षण का प्रबन्ध, ऐसी दशा में नई पीढ़ी के लिए निर्वाह के रास्ते बन्द या जटिल होते चले जा रहे हैं। कृषि की जोतें पीढ़ी-दर-पीढ़ी छोटी होती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चलती हैं। छोटी जोतों में बँटी हुई खेती से तो एक भी परिवार का गुजारा नहीं होता।

इस धक्का पेल की भीड़ को और अधिक बढ़ाना समाज के लिए विपत्ति और राष्ट्र के लिए संकट उत्पन्न करना है। व्यक्तिगत जीवन में सन्तानोत्पादन से संकट ही बढ़ सकता है, उससे किसी प्रकार के वैयक्तिक या सामाजिक लाभ की आशा करना, इन परिस्थितियों में व्यर्थ है। जिनके लिए देश में जगह नहीं है, उन्हें बुलाकर केवल संकट में ही धकेला जा सकता है। हर नया बच्चा पहले वालों को मिलने वाली दूध की बूँदों और रोटियों के टुकड़ों में हिस्सा बँटाता है। अस्तु, पहले वालों के लिए कमी पड़ती जाती है। हर बच्चे के हिस्से में जितना दूध आता था—नई वृद्धि के कारण उसका अनुपात घटता ही चला जायेगा। चारागाह न रहने में पशु भी कसाई के घाट उतर रहे हैं। दूध बढ़ाने की गुंजायश तब बने जब पशु पालन के लिए जगह बचे। आदमियों के रहने और खाने की जगह नहीं बच रही है, तो बेचारे पशु कहाँ निर्वाह करें ? उनकी संख्या घटेगी तो दूध भी घटेगा। यही वृद्धि क्रम चलता रहा तो एक-एक बूँद दूध के लिए बच्चों को तरसाना पड़ेगा।

पौष्टिक खाद्य पदार्थों के अभाव में वंश परम्परा की दुर्बलता लेकर जन्मी आजकल की लड़कियाँ वयस्क होने पर अपना ढाँचा ही किसी प्रकार खड़ा रख सकें तो गनीमत समझना चाहिए। उन पर बच्चे उत्पन्न करने का बोझ डालना प्रत्यक्ष अत्याचार है ! न उनके शरीर में रक्त और न उनकी छाती में पर्याप्त दूध होता है। ऐसी दशा में अविकसित बच्चे ही जन्म लेंगे और माता का दूध न मिलने पर असमर्थ होकर ही जियेंगे। ऐसी सन्तानें माता-पिता को कष्ट ही देती हैं। अपने परिवार के लिए, अपने लिए और देश के लिए भार सिद्ध होती हैं। ऐसे दुर्बलकाय प्राणी भावी पीढ़ियों को और भी गई-गुजरी बनाते चलते हैं।

कमजोर माताएँ बच्चों को जन्म देकर अपने लिए प्रत्यक्ष जीवन संकट मोल लेती हैं। हर बार का गर्भ धारण करना उनकी जिन्दगी की अवधि घटाता चलता है। प्रसव कष्ट में कितनों को ही जान गँवानी पड़ती है। जो बची रहती है उनका दूध पीकर बच्चे उन्हें खोखला कर देते हैं। विवाह से पूर्व जो लड़की थोड़ी स्वस्थ लगती थी वह एक दो बच्चों को जन्म देने के बाद ही बुढ़िया बन जाती है ! अपना शरीर संभालना ही कठिन पड़ रहा था, फिर दो-दो तीन-तीन बच्चों को कैसे सँभाला जाय ? बेचारी मौत जिन्दगी के बीच झूलती रहती हैं। सारा जीवन नीरस हो जाता है। रूप, आकर्षण एवं यौवन का उभार ढल जाने से पतियों के व्यवहार में जो अन्तर आता जाता है, वह और भी अधिक निराश करता है।

सन्तानोत्पादन माता के लिए ही विपत्ति बन कर नहीं आता वरन् पिताओं की भी पिटाई करता है। इस महँगाई के जमाने में बच्चे पालना-हाथी पालने जैसा है। भोजन, वस्त्र, दवा, शिक्षा कितनी महँगी हैं, उसका हिसाब लगाने से बच्चे और बड़े आदमी में कोई खास अन्तर नहीं रह जाता। विवाह-शादियों में जो रस्म-रिवाज हैं वे बुरी तरह प्राण खींचते हैं। कन्याओं के विवाह की समस्या मध्यम वर्ग के लिए फाँसी के फँदे जैसी है। लड़कों को काम-धन्धे में लगाना, उन्हें स्वावलम्बी बनाना भी साधारण काम नहीं है।

जब तक बच्चे नहीं होते तब तक लगता है न जाने क्या कमी रह गई और जब होते हैं तो लगता है न जाने क्या सौभाग्य आ धमका। पर जैसे ही वास्तविकता सामने आती है पता लगता है कि मछली के काँटा निगलने जैसी भूल हो गई। इस जंजाल में मनुष्य कुछ ही दिनों में इस बुरी तरह जकड़ जाता है कि आये दिन की समस्याओं से रोज ही रोते-खीजते निपटना पड़ता है। कोई बड़ा काम करने की-किसी महत्वाकांक्षा की पूर्ति की बात तो सपना ही हो जाती है।

किसी जमाने में धार्मिक मान्यता थी कि बच्चे पिण्ड दान देते हैं तो पुरखों की परलोक में सद्गति होती है। कभी सोचा जाता था कि वंश चलता है, नाम रहता है। यह मूढ़ मान्यताएँ ऐसी बेतुकी हैं कि विचार करने पर इनमें रत्ती भर भी तथ्य दिखाई नहीं पड़ता। मनुष्य को अपने ही भले-बुरे का पुण्य-पाप मिलता है। वंश सत्कर्मों के द्वारा उपलब्ध हुए यश से चलता है। कुतिया हर बार चार-छह बच्चे और सुअरिया आठ-दस तक बच्चे जनती है, न उनसे बाप का वंश चलता न माँ का। फिर दो-तीन पीढ़ी के बाद तो वंशधर नाम तक भूल जाते हैं। तीन-चार पीढ़ियाँ अस्सी बरस में बीत जाती हैं। इतने दिनों में ही नाम भुला दिया गया तो उससे बरगद का पेड लगा देना अच्छा जिसे दो सौ वर्ष तो नाम वंश चलें। यह निरर्थक मान्यताएँ हैं जिनमें नासमझ लोग ही उलझे रह सकते हैं। बुढ़ापे में सन्तान सहारा देगी इस मृग तृष्णा की वास्तविकता को अपने चारों ओर दृष्टि पसार कर भली प्रकार देखा, समझा जा सकता है कि आज की औलाद अपने माँ बाप से किस तरह पेश आती है।

हर बच्चे के इच्छुक नर-नारी को वह उत्तरदायित्व उठाने से पूर्व हजार बार विचार करना चाहिए कि उसमें शारीरिक, आर्थिक और बौद्धिक क्षमता इतनी है भी कि भावी सन्तानों का ठीक प्रकार उत्तरदायित्व वहन कर सके ? यदि पूरी तरह अपनी क्षमता दिखाई पड़े तो वह दुस्साहस करना चाहिए, अन्यथा बुद्धिमानी इसी में है कि सन्तानोत्पादन को इस जमाने में एक भारी जोखिम मान कर उससे दूर रहा जाय। बिना सन्तान का दाम्पत्य जीवन अपेक्षाकृत अधिक सुखद और अधिक शान्तिपूर्ण होता है। इस तथ्य की यथार्थता को बिना बच्चे वाले लोग बच्चे वालों की दुर्दशा को देख कर ही-दूसरों के अनुभव के आधार पर ही समझ लें यही श्रेयस्कर है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नासमझ लोगों को ब्रह्मा भी नहीं समझा सकता पर समझदार लोग इस तथ्य को समझते हैं और अपनी आर्थिक स्थिति सन्तोषजनक न हो तो सन्तानोत्पादन तो दूर विवाह भी नहीं करते। पाश्चात्य देशों में लगभग एक चौथाई नर-नारी विवाह योग्य होते हुए भी इसी कारण विवाह नहीं करते। हमारा यह दुर्भाग्य ही है कि यहाँ हर नर-नारी का विवाह करना एवं सन्तानोत्पादन अनिवार्य माना जाता है। पहले तो पुत्र कामना से अनेक विवाह करने की मूढ़ता भी प्रचलित थी।

नव निर्माण के संदर्भ में हमें हर किसी को समझाना चाहिए कि संख्या नहीं स्तर बढ़ाना चाहिए। अपने पेट में से निकला बच्चा ही अपना होता है, उस संकीर्णता का अब अन्त होना चाहिए। जिन्हें बच्चों का शौक है वे दूसरों के उधार लेलें और उन्हें पाल पोष कर स्वावलम्बी बना दें। यह संतान सुख का सबसे सरल और सही तरीका है। लोगों की शक्ति संतानोत्पादन और पारिवारिक भार वाहन में कम से कम लगे और उस प्रवाह को लोकमंगल की दिशा में लगाया जाय! व्यक्ति और समाज की कठिनाइयों को हल्का करने की दृष्टि से तो सन्तानोत्पादन को निरुत्साहित किया ही जाना चाहिए।

अधिक बच्चे उत्पन्न कर सिर दर्द न बढ़ाइए

हमारे देश की जनसंख्या दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है। अनुमानत: ५५ हजार बच्चे प्रतिदिन उत्पन्न होते हैं अर्थात् प्रतिदिन ५५ हजार बालकों के भरण-पोषण के लिए साधन जुटाने आवश्यक हैं। यदि प्रत्येक को आधा किलो दूध प्रतिदिन दें तो लगभग २७ हजार किलो दूध की आवश्यकता पड़ेगी। फिर आज २७ हजार किलो, कल ५५ हजार किलो, परसों एक लाख किलो और महीने भर बाद ८ लाख किलो दूध की प्रतिदिन आवश्यकता होगी। हमारे यहाँ गायें वैसे भी अधिक अच्छी नस्ल की नहीं हैं अतएव प्रतिदिन इतने दूध का उत्पादन कठिन ही है। दूध का उत्पादन न होने का अभिप्राय है छोटे बच्चों को अपना भोजन-दूध न मिल पाना और ऐसी स्थिति में बालक और माँ-दोनों के स्वास्थ्य पर ही बुरा प्रभाव पड़ता है। फिर समस्या यहीं हल नहीं हो जाती अपितु वस्त्र, भोजन, आवास, शिक्षा, आजीविका आदि से सम्बन्धित अनेकानेक समस्याएँ सुरसा के मुख की भाँति बढ़ती ही जाती हैं। ज्यों-ज्यों आबादी बढ़ती जायेगी, त्यों-त्यों समस्याएँ और सामाजिक असन्तोष भी बढ़ता जायेगा।

इन सब समस्याओं के सुलझाने का तथा परिवार और समाज में सुख-शांति लाने का उपाय है—परिवार नियोजन। यदि प्रत्येक माता-पिता यह निश्चय करलें कि दो या तीन बच्चों से अधिक सन्तान उत्पन्न नहीं करेंगे तो कठिनाइयाँ सुलझ सकती हैं। माँ का स्वास्थ्य सुधरेगा, पिता की चिन्ताएँ कम होंगी, बालकों का पूर्ण विकास हो सकेगा तथा समाज में सुख-शान्ति बनी रहेगी।

बढ़ती हुई आबादी प्रत्येक दृष्टि से हानिकारक है। सर्वप्रथम हम परिवार को और उसमें भी माँ को ही लें माँ के रक्त, मज्जा से बालक का निर्माण होता है, नौ मास कष्ट सहकर वह उसे गर्भ में धारण करती है, दुग्ध रूप में परिणत अपने रक्त से पालती है तथा बड़े होने तक अन्य अनगिनत कष्ट सहन करती है।

ज्यों-ज्यों बच्चे बढ़ते हैं, पिता के उत्तरदायित्व भी बढ़ते जाते हैं। नौकरी या व्यापार से उसे सीमित धन मिलता है परन्तु बच्चे बढ़ने के साथ-साथ उनकी शिक्षा, वस्त्र, भोजन आदि की समस्याएँ बढ़ती जाती हैं। उस पिता की मन:स्थिति को सोचिये, जो अपने बच्चों के लिए घी, दूध तो क्या भोजन भी न जुटा पाता हो, उन्हें अधिक बच्चे होने के कारण किसी को भी समुचित शिक्षा न दिला पाता हो। दुर्भाग्य से कहीं उसके दो-चार लड़कियाँ भी हुयीं, तो उनके विवाह और दहेज की चिन्ता करते-करते उसका मन हीं नहीं अपितु तन भी घुलता जाता है।

अब हम बच्चों को लें। यदि एक बालक होगा तो निश्चित ही उसे अच्छा भोजन, अच्छी देख-रेख मिल सकेगी। माता-पिता का पूरा-पूरा अवधान तथा दुलार उस पर रहेगा जो कि उसके व्यक्तित्व के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निवाहेगा। माता-पिता कष्टों में रहकर भी उसे शिक्षा दिलाने का प्रयास करेंगे। अधिक बालक होने पर न तो सबकी उचित देखरेख ही संभव है और न एक मध्यमवर्गीय तथा निम्नवर्गीय परिवार के लिए उन्हें पौष्टिक भोजन दे पाना ही सम्भव है। अधिक बच्चे तो परिवार में प्राय: उपेक्षित से घास-फूँस की भाँति बढ़ते हैं और माता-पिता का समुचित निर्देशन और स्नेह न पाकर अपराधी भी बन जाते हैं।

सामाजिक पहलू को देखें तो वह और भी अधिक दयनीय है। देश में अन्न की कमी है, खाने वाले अधिक हैं, दूध की बात तो दूर रही पेट भर भोजन पाना भी कष्टसाध्य है। परिणामत: पौष्टिक भोजन के अभाव में शरीर कमजोर होता जा रहा है और नई पीढ़ी दुर्बल और शक्तिहीन-सी होती जा रही है। आबादी अधिक होने के कारण बालकों को न तो अच्छी शिक्षा मिल पाती है और न नौकरी। परिणाम यह होता है कि उनकी विविध उच्छृंखलताएँ अपराधों और विघटनात्मक कार्यों के रूप में फूटती हैं, जिससे समाज की सुख-शान्ति को खतरा उत्पन्न होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभिभावक हैं, तो उत्तरदायित्व भी निभाइये

जिस पर अपनी सारी हैसियत दाँव पर लगी हो, ऐसे व्यवसाय में हाथ डालते समय समझदार लोग गम्भीरतापूर्वक सोच-विचार करते हैं। ट्रैक्टर सत्तर हजार का आता है। उसके लिए बैंक लोन लेते समय अपनी जमीन गिरवी रखनी पड़ती है, कहीं न कहीं से धन जुटाना पड़ता है। ट्रैक्टर के लायक काम न हो, चलाते ही एक्सीडेन्ट हो जाय तो मशीन कबाड़ी के हाथ बेचनी पड़ती है। जमीन नीलाम होती है। चलाते समय भतीजे के हाथ पैर टूट गए तो ऐसी अपंगता सदा दुःख देती रहती है। सोचा कुछ, हुआ कुछ इसे कहते हैं समझ का या समय का फेर।

सन्तानोत्पादन कृत्य में हाथ डालने वाले आमतौर से ट्रैक्टर खरीदने से भी बढ़े-चढ़े लाभ मिलने के सपने देखते हैं। बेटी नहीं निश्चित रूप से बेटा ही होगा। वंश चलेगा, पितरों को पिण्डदान मिलते रहेंगे, बुढ़ापे का सहारा होगा और नाम रोशन करेगा, सदा सेवा करेगा और आज्ञानुवर्ती रहेगा, रूप और गुण का धनी होगा।'' जिस दिन से भ्रूण स्थापित होता है उसी दिन से इन्हीं सपनों के रंग-विरंगे, सुनहरे चित्र गढ़े जाते रहते हैं। मस्तिष्क पर वे ही छाए रहते हैं। पर वास्तविकता किस रूप में सामने आवेगी, यह कहना कठिन है। काली-कुरूप लड़कियाँ होती चली गईं और उनके लिए वर ढूँढ़ना और दहेज जुटाने का प्रश्न सामने आया तब उसका हल किस प्रकार निकलेगा, यह सब अविज्ञात के अंचल में ही छिपा रहता है।

सन्तान अपने साथ अधिकांश विशेषताएँ वंशानुक्रम के आधार पर लेकर आती है। उनमें जननी और जनक जैसी संरचना, मुखाकृति ही नहीं होती वरन् गुण, कर्म, स्वभाव की भी अनुकृति होती है। रज-वीर्य में माता-पिता की ही नहीं, उनके पूर्वजों की भी महत्त्वपूर्ण थाती का संकलन साथ होता है। इसलिए प्रजनन जैसे कार्य की कल्पना करने, उसकी ओर कदम बढ़ाने वालों को सौ बार सोचना चाहिए कि जो उत्पन्न किया जा रहा है, उसके लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि बनी या नहीं। किसान फसल काटने और उसे जमा करने का प्रबन्ध करने से पूर्व खेत की जुताई, खाद, पानी आदि की व्यवस्था पहले करता है। इस ओर आँखें बन्द किए रहने और कुछ भी किसी भी समय बो देने पर मनचाही फसल के सपने देखना ऐसा ही है, जैसा शेखचिल्ली का परिवार बसाना इस प्रयास को चाहें तो पाँच बीघे वाले का उतावली में ट्रैक्टर खरीद लाना भी कह सकते हैं।

आवश्यक नहीं—कि सन्तानोत्पादन का प्रतिफल इच्छानुरूप ही होगा, उसमें प्रसन्नता लाभ ही मिलता रहेगा। उसका सरंजाम ठीक से न जुटाया गया होता तो जीवन भर उस गलती का दण्ड ही भुगतना पड़ेगा। गर्भवती को समुचित पोषण न मिले पूरे नौ महीने कलह-क्लेश में काटने पड़ें, रुग्णता में कोई चिकित्सा की पूछताछ न करे तो जन्मेगा सो आरम्भ से ही दुर्बल और रोगी पैदा होगा। उसकी साज-संभाल और चिकित्सा इतनी महँगी, इतनी खीज भरी होगी कि बुढ़ापे का सहारा विवाह के एक वर्ष के भीतर ही नासमझी का बदला चुकाने लगेगा।

लड़का हो या लड़की उसे शारीरिक और मानसिक दृष्टि से स्वस्थ तो होना ही चाहिए। यह भाग्य भरोसे नहीं होता। उत्पादनकर्ताओं की अपनी निज की स्थिति कैसी है, इसकी तस्वीर खिंचकर आती है। साँचा जैसा भी होगा, ढली वस्तु वैसी ही शक्ल-सूरत की होगी। गुण भी उसके वैसे ही होंगे। अस्वस्थता और दुर्गुण साथ लेकर जन्मने वाले बालक माँ-बाप से उनकी करतूत का बदला सारे जीवन चुकाते हैं। दुर्गुणी बालक अपने लिए अभिशाप होते हैं, सम्पर्क वालों, सम्बन्धी-कुटुम्बियों को त्रास देने में कमी नहीं छोड़ते। सबसे अधिक वे छोटे रहने तक माता को और बड़े होते ही पिता को सताते हैं और यह सिलसिला आजीवन चलता रहता है। जिनने सब कुछ भाग्य भरोसे ही छोड़ रखा है, जिन्हें प्रजनन के पीछे कोई उत्तरदायित्व दिखाई नहीं पड़ते, काम कौतुक का नशा ही जिन्हें यौनाचार के लिए प्रेरित करता है और प्रकृति की खिलवाड़ के अनुसार बच्चे छप्पर पर से आ टपकते हैं, जिन्हें आगे-पीछे का कोई ज्ञान नहीं है, जिन्हें किसी जिम्मेदारी का भी बोध नहीं है, उनके लिए तो बिल्ली के बच्चे जनने की तरह यह भी एक खिलवाड़ है। बिल्ली जिन्दगी भर ३०-४० बच्चे जनती है पर उनमें से कितनों का क्या भविष्य हुआ, इस सम्बन्ध में कुछ सोचने की उसे आवश्यकता भी प्रतीत नहीं होती। प्रकृति ने अपने सृजन की शृंखला को चलाते रहने के लिए प्राणियों के साथ जो मजाक किया है, उसे पशु-पक्षी, कीट-पतंग ही नहीं ऐसे नर पशु भी वहन करते हैं, जिन्हें बच्चे के स्तर तथा भविष्य के बारे में अपनी जिम्मेदारी का कोई बोध नहीं है। वे कई-कई बच्चे जल्दी घर-आँगन में बिखेर देते हैं, पर यह कदापि अनुभव नहीं करते कि इनके प्रति जनने से पहले और बाद में क्या कुछ करना भी था क्या ? यदि हाँ, तो उस जिम्मेदारी को किस प्रकार, किस सीमा तक निवाहा गया।

माता-पिता का अपना स्वास्थ्य सुदृढ़, आयु परिपक्व और अनुभव समुचित होना चाहिए। जिन विशेषताओं को बालकों में देखना है, उन सबका वर्षों पहले स्वयम् अभ्यास करना चाहिए। बच्चा माता के उदर में अपने स्तर का निर्माण एक बड़ी सीमा तक कर लेता है, अतएव जन्मदात्री के लिए वैसी सुविधा, शिक्षा, प्रसन्नता का प्रबन्ध होना चाहिए, जिससे उस सम्बन्ध में कोई अभाव रहने के कारण बालक विद्रोही होकर न जन्मे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जन्मने के बाद वह ढेरों तरह की देखभाल की अपेक्षा करता है, चुहिया के और स्त्री के बच्चों में अन्तर है। उसके लिए आहार, वस्त्र, सफाई, सुविधा के ढेरों उपचार चाहिए। एक वर्ष का होने तक वह अधर में लटका होता है। साल भर के भीतर सौ पीछे बीस बच्चे तनिक सी असावधानी के कारण मौत के मुँह में चले जाते हैं। न आप अपने मुँह से वे कठिनाइयाँ-आवश्यकता बता पाते हैं और न इस स्थिति में होते हैं कि चूजों की तरह बिना मुर्गी के किसी प्रकार की सहायता माँगे अपना गुजारा आप करते रह सकें। बबूल के झाड़ और छुई-मुई के पौधों में जो अन्तर होता है, वही अन्य प्राणियों और मनुष्यों के बच्चों में होता है। वे बहुत ही कोमल होते हैं। तनिक सी असावधानी में बीमार पड़ जाते और मौत के मुँह में चले जाते हैं। इनके लिए क्या किया जाना चाहिए, यह तो किसी अच्छी पुस्तक से पढ़ा या नर्स से पूछा जा सकता है। पर प्रश्न जानकारी की कमी का नहीं, लापरवाही का है। गोदी में उठा लेना और खिलौने की तरह हिला-डुला कर यथास्थान रख देने से काम नहीं चलता। किसी लड़की, नौकरानी या दाया के ऊपर उसे लादे फिरने की व्यवस्था से भी काम नहीं चलता। अभिभावकों में इतनी गहरी दिलचस्पी होनी चाहिए कि उस गूँगे, बहरे, अपंग, माँस-पिण्ड की हर आवश्यकता को समझ सकने लायक मनोविज्ञान विकसित कर सकें और ऐसी सन्तुलित व्यवस्था रख सकें कि कमी या अभाव में से किसी का भी दबाव उस कली से कोमल शिशु को मरोड़ कर न रख दे।

जन्म दिन से लेकर एक वर्ष के होने तक तो उन पर सोते-जागते बराबर निगरानी रखनी पड़ती है। इसके बाद स्कूल जाने योग्य पाँच वर्ष का होने तक और भी अधिक सतर्कता बरतनी पड़ती है। क्योंकि इन दिनों बच्चों की अपनी अकल तथा प्रवृत्ति काम करने लगती है अनुभवहीनता के कारण उन दिनों वह जो भी करता है उसमें उचित का अंश कम और अनुचित का अधिक होता है। मारपीट से, डराने से बात और भी बिगड़ती है। इसलिए न केवल दुलार वरन् सुधार का भी ऐसा मिश्रित प्रयोग करना पड़ता है, जिससे वह झगड़े भी नहीं, रूठे भी नहीं किन्तु वह करने-सीखने लगे जो उसके हित में हैं और जो आप कराना चाहते हैं। ऐसा दुटप्पा व्यवहार कर सकने के लिए गहरी चतुरता और सूक्ष्म बुद्धि चाहिए। वह किसी न किसी प्रकार सीखनी और प्रयोग में लानी ही होगी अन्यथा बच्चा आग पकड़ने, बर्र या कील मुँह में दे लेने, सीढ़ियों पर से नीचे फिसल पड़ने, खड़े होने के प्रयास में गिर कर चोट लगा लेने जैसी कुछ करतूतें कर बैठेगा।

माता-पिता ही नहीं, समूचे परिवार की शारीरिक और मानसिक विद्युत शक्ति का प्रभाव बच्चों पर पड़ता है। जो भी उन्हें गोदी में लेते हैं, खिलाते हैं, उनके व्यक्तित्व का असर छोटे बच्चों पर पड़ता है। उनके स्वभावों और संस्कारों को वे तेजी से ग्रहण करते हैं। इसलिए जो सतर्कता पहले माता को बरतनी पड़ती थी, वह अब परिवार के सभी सदस्यों को बरतनी चाहिए। बच्चों से कुछ कहने या पढ़ाने-सिखाने की अपेक्षा अपने आपको इस स्तर का बनाना चाहिए, जिसके सहज प्रभाव से बच्चा प्रभावित होकर अपने व्यक्तित्व में उत्कृष्टता का समावेश कर सके।

जब तक बच्चा स्कूल नहीं जाता, तब तक परिवार के बच्चे तथा बड़े ही उसके सहपाठी हैं। वे जो करते हैं, जो कहते हैं प्रायः उसी की नकल बालक करते हैं। इसलिए उनके खेल-खिलवाड़ का प्रबन्ध करते हुए भी उसमें उपयुक्तता का समावेश होना चाहिए। बालकों को भोजन और खाने का समय अलग-अलग उनकी स्थिति के अनुरूप होना चाहिए। बड़े जब जो खाएँ, उसी में बच्चों को भी साथ रखें, तो बालक के पेट में भारी चीजें अधिक मात्रा में पहुँचेंगी और उसे अपच अन्य बीमारियों का शिकार बनायेंगी। चलने-फिरने लगने के बाद मिट्टी-धूल तथा दूसरे प्रकार की गन्दगियों से उनका सम्पर्क बनता है। अतएव उनके कपड़े बार-बार बदलने चाहिए। खाने पीने के पूर्व एवं बाद हाथ-मुँह धो लेने जैसे सफाई की आदतें इन्हीं दिनों डालनी चाहिए। यह काम स्वयं करने और उनसे नकल कराने की विधि से ही हो सकता है। बच्चों के भविष्य को ध्यान में रखते हुए परिवार के सभी लोगों को अपना रवैया सुधारना चाहिए ताकि उसके अनुकरण का अच्छा प्रभाव पड़े। इन दिनों समूचा परिवार ही बालक का अध्यापक होता है। यह बात उन्हें समझनी या समझाई जानी चाहिए।

छोटे बालकों की बुद्धि तो उतनी तीव्र नहीं होती पर भावनाएँ बड़ों की अपेक्षा कहीं अधिक संवेदनशील होती हैं। मार-पीट, गाली-गलौज, रोना-पीटना तथा अश्लील हरकतों के मूल में जो कारण होता है, उसे वे पकड़ लेते हैं। यही नहीं, उनके पीछे छिपे हुए बुराई वाले अंश को अपेक्षाकृत अधिक जल्दी पकड़ते हैं। जैसे-जैसे बच्चा विकसित होता जाता है, वैसे-वैसे उसका लोगों से सम्पर्क भी बढ़ता जाता है। बराबर के या बड़े बच्चों के साथ खेलता भी है। इसलिए अब इस सारे परिवार पर नजर रखनी चाहिए। इनमें से कोई उजड्ड होगा तो उसकी हरकतें बालक को प्रभावित किए बिना न रहेंगी। इस आयु में जमे हुए संस्कार जड़ पकड़ लेते हैं और बड़े होने पर भी स्थिर बने रहते हैं। इन आदतों को छुड़ाना पीछे बहुत कठिन पड़ता है।

जब तक बच्चा स्कूल न जाने लगे तब तक अधिक सतर्कता का सिलसिला बढ़ता ही जाता है। उन्हें विकसित करने के लिए घर से बाहर ले जाना, मनोरंजन के छोटे-मोटे दृश्य दिखाना और उनके माध्यम से उन्हें सत्प्रवृत्तियों से परिचित कराने का क्रम भी चलाते रहना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाहिए। इसमें माता ही नहीं पिता को भी अपना सहयोग करना चाहिए और न केवल बच्चों को वरन् इस बहाने पूरे परिवार को सद्गुणों का अभ्यस्त बनाना चाहिए।

जब तक बच्चा स्कूल न जाने लगे तब नया बच्चा माता के गर्भ में न आने पाए। इसकी पूरी सतर्कता रखनी चाहिए अन्यथा स्त्री की शक्ति, परिवार व्यवस्था, बच्चों की बहुमुखी सतर्कता आदि में व्यय होने से उसका उतना योगदान न बन पड़ेगा, जितना कि आवश्यक है। आमतौर से पाँच वर्ष की आयु से स्कूलों में भर्ती होती है पर जहाँ छोटे बच्चों के लिए शिशु मन्दिर हैं वहाँ पहले भी उनकी भर्ती की जा सकती है। उन दिनों पढ़ना-लिखना तो अधिक नहीं हो पाता, पर बुद्धि विकास के लिए चित्रों या खिलौनों के माध्यम से उनकी जानकारी का क्षेत्र बढ़ाया जा सकता है। इस सन्दर्भ में भी यह देखभाल रखनी चाहिए कि वहाँ का वातावरण कैसा है ? घर से बेगार भगाने के लिए कहीं फूहड़ कानवेण्ट के शिशु मन्दिरों में बालक भेजे गए तो वहाँ के अनुपयुक्त रवैये से बालक सुधरने और विकसित होने के स्थान पर कुरुचि को जल्दी पकड़ लेते हैं। यह सभी बातें अभिभावकों के दायित्व से सम्बन्धित हैं एवं ध्यान में रखने योग्य हैं।

उद्धत यौनाचार के भयावह दुष्परिणाम

विवाह के साथ ही नर-नारी के बीच यौन सम्बन्धों की छूट मिलती है और उनमें ही यह प्रतिबन्ध है कि वह पतिव्रत और पत्नीव्रत की मर्यादाओं के अनुरूप ही चलें। जब सन्तानोत्पादन की आवश्यकता दोनों पक्ष समान रूप से अनुभव करें, तभी उस प्रसंग में हाथ डाला जाय अन्यथा हँसी-विनोद, हास-परिहास जैसे क्रीड़ा-कौतुकों से प्रेम प्रदर्शन का उद्देश्य पूरा कर लिया जाय। स्नेह और सहयोग दिनचर्या के प्रत्येक क्रिया-कलाप में समन्वित रखा जा सकता है और उतने भर से दाम्पत्य-जीवन में उल्लास एवं उत्साह बना रह सकता है।

सृष्टि के सभी जीव-जन्तु इस मर्यादा का पालन करते हैं। उनमें से अधिकांश वर्ष में एक बार ही प्रजनन प्रयोजन के लिए इस ओर कदम बढ़ाते हैं। बुद्धिहीन होते हुए भी वे प्रकृति अनुशासन का पालन करते हुए साथ-साथ रहते हुए इस मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते।

अकेला मनुष्य ही है। जो इस अनुबन्ध का उल्लंघन करता है और यौनाचार को मनोरंजन का विषय बनाता है। प्रजनन अंगों की संरचना ऐसी है जिनका यौनाचार के निमित्त न्यूनतम उपयोग ही किया जाना चाहिए। सो भी मात्र अपने जोड़ीदार के साथ। इसका उल्लंघन करने से स्वास्थ्य खोखला होता है। तेज और सौन्दर्य घटता है, जीवनी शक्ति में कमी पड़ती है। फिर कहीं यदि इस सन्दर्भ से मर्यादाओं का उल्लंघन चल पड़े। नर नारी अनेकों को अपना साथी बनाने और उच्छृंखलता बरतने लगें तो यौन रोगों की उत्पत्ति होना स्वाभाविक है। पारस्परिक सद्भावना और विश्वासपात्रता घटती है। इतना ही नहीं अनाचार की ओर देखने-सुनने वालों का भी मन चलता है और यह शृंखला बढ़ते चलने पर पारिवारिक ही नहीं सामाजिक जीवन का भी ढाँचा बखेर देती है। सन्तान पर बुरा असर पड़ता है और आर्थिक अपव्यय का एक नया द्वार खुलता है। इन सबमें बड़ी बात है कि अनेकों के साथ दाम्पत्य सम्पर्क स्थापित करने का प्रतिफल भयंकर यौन रोगों के रूप में सामने आते हैं। जो जीवन भर कष्ट देते हैं। उनका स्थायी उपचार भी नहीं हो पाता। एक पक्ष इस प्रकार के रोगों से ग्रसित हो तो उसकी छूत दूसरे पक्ष को लगती है। सन्तानोत्पादन का क्रम चल पड़े तो नवजात शिशु भी उस वंश परम्परा को साथ लेकर आते हैं और पीढ़ी दर पीढ़ी वह अभिशाप त्रास देता रहता है। व्यभिचारी और व्यभिचारिणाँ प्राय: इस प्रकार के रोगों के शिकार पाये जाते हैं। वेश्याओं के यहाँ इस व्यथा का उत्पादन होता है और उसकी बेल इतनी लम्बी चलती है कि वह न जाने कितनों को अपनी चपेट में लेकर विनाशकारी दुष्परिणाम उत्पन्न करती है। जिन देशों या समाज में यौन स्वेच्छाचार पनपता है, उसके पारिवारिक जीवन में आशंका, अविश्वास और कलह के केन्द्र रहते ही हैं साथ ही यह भयंकर रोग परम्परा इस तेजी से पनपती है कि दोषियों के साथ-साथ निर्दोष भी गेहूँ के साथ घुन की तरह पिसते हैं। पाश्चात्य देशों में यह व्यथा बेतरह बढ़ती जा रही है क्योंकि वहाँ दाम्पत्य मर्यादाओं का पालन अनिवार्य नहीं समझा जाता।

प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त युवकों और प्रौढ़ों का बहुत बड़ी संख्या में संहार हुआ। फलत: आश्रितों की भावनात्मक और आर्थिक स्थिति को भारी आघात लगा। नारियों की तुलना में नर बहुत कम रह गये। अनाथ महिलाओं के सामने पारिवारिक निर्वाह की एक विकट समस्या के रूप में सामने आयी, फिर वे भावनात्मक सहयोग का अभाव भी अनुभव करने लगीं। इन दोनों कमियों की सहज पूर्ति यौन स्वेच्छाचार अपनाने से होती थी। इसलिए वह अधिक सस्ता और व्यापक होता चला गया। दाम्पत्य मर्यादाएँ नहीं के बराबर रह गईं।

इस कुप्रचलन के जहाँ अन्यान्य दुष्परिणाम सामने आये वहाँ एक महान संकट यौन रोगों के रूप में सामने आया। प्रदर, प्रमेह, स्वप्नदोष जैसे सामान्य रोगों से व्याधि उन महारोगों तक फैली जिन्हें सुजाक या 'सिफलिस' कहते हैं। छोटे रोगों को तो लोग गुपचुप भी सहन करते रहें, पर 'सिफलिस' वैसा रोग नहीं है जो छिपाये छिप सके। उसमें लगभग कोढ़ जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इतना ही नहीं उसमें जननेन्द्रियाँ सड़ने-गलने लगती हैं और रक्त में उस रोग के विषाणुओं की अभिवृद्धि से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सारे शरीर में व्रण-विस्फोट होने लगते हैं। इससे भी बड़ी बात है कि वह छूत की बीमारियों में अग्रणी होने से एक से दूसरे को दौड़कर लगता है और निर्दोष भी असावधानी के कारण इस संक्रामक व्यथा के चंगुल में जकड़ जाते हैं और अपने सम्पर्क क्षेत्र इसी आग में झुलसते हैं।

सन् १९१४ से १९१९ तक चले प्रथम विश्व महायुद्ध का दौर प्रायः योरोप के देशों में रहा। विशेषतया जर्मनी के निकटवर्ती देशों में। इसलिए युद्ध के उपरान्त अन्य समस्याओं के अतिरिक्त व्यभिचार की बाढ़ आई। लगे हाथों संक्रामक रोग 'सिफलिस' भी उबल पडा। जिनने उसका दुष्परिणाम देखा वे ऐसे रोगियों को साक्षात् यमदूत समझकर अपना प्राण बचाने के लिए घबराने और दूर रहने लगे।

जेल में एक पादरी की मृत्यु इसी रोग से हुई। एक से दूसरे में इसकी भयंकरता की जानकारी अफवाहों के साथ फैली, फलतः उस जेल के कैदी कहीं अन्यत्र तबादले के लिए आग्रह करने लगे। चूँकि चर्चा दूर-दूर तक फैल चुकी थी, इसलिए जहाँ भी उनके तबादले होने थे, वहाँ के कैदियों ने उन्हें अपने यहाँ न आने देने का हठ ठान लिया। अन्त में उस सिर दर्द से कैदियों को मुक्त करके अधिकारियों ने किसी प्रकार अपना पीछा छुड़ाया।

बात कैदियों की नहीं गली-मुहल्लों की थी। एक ही छोटे कस्बे में करीब २००० रोगी ऐसे पाये गये, जिनकी बीमारी प्रत्यक्ष दीखती थी। उन्हें कोई घर में रखने को तैयार न हो रहा था। अस्पतालों के डाक्टरों ने भी उनका इलाज करने से इन्कार कर दिया। ऐसी दशा में उनके लिए किसी पुराने किले का खण्डहर निवास गृह बनाया गया। डाक्टर वहीं एक जगह खाने और लगाने की दवाएँ रखवा देता था। शासन भी भोजन, वस्त्र का ऐसा प्रबन्ध कर देता था कि एक स्टोर से वे लोग स्वयं ही अपने काम की चीजें निकाल लिया करें। जिन्हें प्रबन्धक नियुक्त किया गया था वे भी अपनी लम्बी छुट्टी लेकर चले गये या स्तीफे भेज दिये।

वैज्ञानिक शोधों ने इसे अच्छा करने की तो नहीं पर किसी सीमा तक दबाने की औषधियाँ निकालीं। प्रतिबन्धों के बीच पीड़ित भारी संख्या में मरे और इसके उपरान्त वर्षा थमने की तरह रोगों की भयंकरता घटी पर उसके बीजाणु एक-दूसरे को प्रभावित करते रहे।

इस संकट को युद्ध का अभिशाप माना गया। सैनिकों के गली-मुहल्लों में प्रवेश करने पर प्रतिबन्ध लगाये गये। बड़े जन सम्पर्क वाले कारखानों में इसकी डाक्टरी जाँच जल्दी-जल्दी होने लगी। महिलाओं के लिए अलग से अस्पताल बने। जनसाधारण को इस भयंकरता से परिचित कराया गया तो एक शताब्दी में यह तूफान किसी प्रकार रुका और सामान्य स्थिति बनी।

इसके बाद दूसरा महायुद्ध आ धमका। उनने भी वही पुरानी परिस्थितियों को नया जीवन दिया। इस बीच एक और नया व्यसन पनपा 'समलिंगी यौनाचार' का। पुरुष पुरुषों से और स्त्रियाँ स्त्रियों से अपनी उच्छृंखल आदत का किसी प्रकार समाधान करने लगीं। सोचा गया था कि कदाचित् उससे वह पुरानी व्यथा न उभरेगी और व्यसन को भी तृप्ति मिलती रहेगी।

यह प्रयास और अधिक अप्राकृतिक होने के कारण नये रूप में उभरा। इस नये रोग का नाम 'ऐड्स' (ए० आय० डी० एस०) अर्थात् एक्वायर्ड इम्यूनो डेफीशिएन्सी सिन्ड्रोम रखा गया। ऐन्टीबायटिक्सों के नये आविष्कारों ने सिर्फ इतनी ही मदद की कि पुराने लक्षणों को नया रूप दे दिया।

इस रोग का रोगी अपने स्नायु समूहों की क्षमता तथा ज्ञान तन्तुओं की क्षमता खोता चला जाता है और कुछ ही सप्ताह में पक्षाघात पीड़ित की तरह अपंग हो जाता है। इसी स्थिति में उसकी मृत्यु हो जाती है। अच्छाई इतनी ही है कि रोगी को बहुत दिन पैर नहीं पटकने पड़ते। इलाज पर ज्यादा खर्च नहीं कराना पड़ता और जल्दी ही परलोक की टिकट कटा लेता है।

पिछली बार 'सिफलिस' का दौर योरोप तक सीमित रहा क्योंकि तब तक आवागमन के साधन सीमित थे और औद्योगीकरण, पर्यटन भी इतना नहीं बढ़ा था कि उस कारण 'सिफलिस' का क्षेत्र विस्तार हो सके। इसके लिए गोरों को ही चरित्र भ्रष्ट माना जाता था और युद्धोन्माद का दुहरा दण्ड भुगतते हुए देखा जाता था। पर अभी तीसरा युद्ध नहीं आया। जहाँ-तहाँ छुटपुट लड़ाइयाँ ही चलीं किन्तु अन्य कारणों से आवागमन बढ़ गया। यह प्रायः सम्पन्न होते हैं और नई-नई जगहों में नये-नये प्रकार से व्यसन को भुनाना चाहते हैं। फलतः नया रोग 'ए० आई० डी० एस०' अब क्रमशः विश्वव्यापी होता चला जा रहा है। उसने अपनी लपेट में एशिया को ले लिया है। सिंगापुर, थाईलैण्ड एक प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र बनता जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय तस्करी का भी वह अड्डा बनता जाता है, साथ ही व्यभिचार का केन्द्र भी। इसका प्रतिफल स्पष्ट है। उधर से इस रोग के बीज लेकर लोग अपने-अपने यहाँ वापस लौटते हैं और फिर अपने परिवार, पड़ौस को इस उपहार का वितरण करते हैं।

प्लेग-हैजा की तरह द्रुतगति से इसका विस्तार नहीं होता और न लक्षण ही इतने स्पष्ट प्रकट होते हैं। जानकारी तब मिलती है जब पानी सिर के ऊपर होकर उतर जाता है। पोशाकों का फैशन जैसे जल्दी-जल्दी बदलता रहता है और उसकी नकल यहाँ से वहाँ होती रहती है, उसी प्रकार अब रोगों का प्रचलन भी चित्र-विचित्र रूप में आता है। पूर्वकाल में यौन रोग नपुंसकता के तथा दुर्गन्धित स्रावों के रूप में उपजते थे। पीछे वे सुजाक, आतशक के रूप में बदल गये। जब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इनकी रोकथाम के कुछ उपाय खोजे गये तब तक नये रोग एड्स की भयंकरता सामने आ गई है। उसकी पहुँच संसार के कोने-कोने में पहुँचती जाती है, पर्यवेक्षण से पता चला है कि अब इस रोग के रोगी लाखों की परिधि पार करके करोड़ों में पहुँच चुके हैं और अभी कोई कारगर उपाय इसका नहीं खोजा जा सका। जब तक खोजा जायगा तब तक प्रचलित उद्दण्डता के कारण उसका कोई और रूप सामने आ उपस्थित होगा।

कोलम्बस अमेरिका की खोज में गया था। वहाँ रैड इण्डियन महिलाओं से सम्पर्क साधा और लौटने पर इस प्रकार सड़ा कि जननेन्द्रिय से लेकर पेट तक बुरी तरह सड़ गया था।

अभिनव 'एड्स' रोग पर नियन्त्रण कब तक हो सकेगा। इसका उत्तर एक ही है कि यौन सदाचार को अनिवार्य मानने वाली पुरातन दम्पत्य परम्परा को अपना कर परिवार को स्वर्ग बनाने से इन्कार किया जाता रहा तब तक उस क्षेत्र को नरक की अनेकानेक व्यथाओं वेदनाओं से मुक्त नहीं रखा जा सकता। इन अभिशापों में 'ऐड्स' जैसे रोगों की अभिवृद्धि तो निश्चित ही है। हम अपने दुष्कर्मों का प्रतिफल हाथों-हाथ भुगतेंगे ही।

कामुकता का यह अतिवाद और भी हानिकारक

मनुष्य जिस व्यक्ति या आकृति-प्रकृति का अधिक चिन्तन करता है वह उसी ढाँचे में ढलता जाता है। यह एक प्रसिद्ध एवं सर्वविदित मानसिक तथ्य है। तत्वज्ञानी इस संदर्भ में कीट-पतंगे का उदाहरण देते रहते हैं। इष्टदेव का ध्यान करके उन्हीं विशेषताओं से अपने को ढालने का प्रयत्न किया जाता है।

टिड्डा, जब तक हरी घास रहती है, तब तक हरे रंग का रहता है और जब घास सूखकर पीली पड़ जाती है तो उसका शरीर भी पीला पड़ जाता है। यह दृष्टि के सामने रहने वाले पदार्थ के अनुरूप ढलने की प्रक्रिया है जो सर्वत्र किसी न किसी रूप में देखी जाती है। उदाहरण के लिए कुसंग और सत्संग के कारण मनुष्यों का चिन्तन और चरित्र उसी ढाँचे में ढल जाता है।

यह प्रसंग नर-मादा प्रसंगों में भी अत्यधिक लागू होता है। पुरुष प्रकृति का नारी के ढाँचे में ढलना और नारी का पुरुष स्थान ग्रहण करने का उत्साह बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि किसकी मनोदशा पर किसका प्रभाव तन्मयता और किस गहराई तक चढ़ा रहता है।

पति-पत्नी का सहयोगी प्यार एक बात है। नारी का नर के विषय में अत्यधिक चिन्ता करना या नर का नारी के रूप-यौवन विशेषतया जननेन्द्रियों की कल्पना करते रहना आरम्भ में प्रतिपक्ष के प्रति थोड़ा आकर्षण तो बढ़ाता है, पर कुछ ही दिनों में ऐसी मनःस्थिति बन जाती है कि इष्ट के प्रति समर्पित होने की भावना बलवती होने लगती है। हिजड़ों में वही देखा गया है। वे या तो नर होकर नारी वेषभूषा या मनःस्थिति के प्रति अपने को समर्पित करते हैं या नारी अपनी स्थिति को अपर्याप्त मानकर पुरुष के गौरव, वर्चस्व या सौंदर्य के प्रति अपने को समर्पित कर देती है। ऐसी दशा में पुरानी संरचना और नवीन आकर्षण के बीच द्वन्द्व युद्ध चल पड़ता है और स्थिति मध्यवर्ती बन जाती है।

विगत ५० वर्षों में लिंग परिवर्तन के आपरेशन जितने हुए हैं, इतने इससे पहले कभी नहीं हुए थे। नपुंसकता का अनुपात भी बढ़ा है। नारी अपने नारीत्व को हीन मानती है और नर में अपने से विपरीत पक्ष के प्रति इतना आकर्षण बढ़ जाता है कि वह उसी प्रकार की रतिक्रिया में आनन्द की कल्पना करता है। ऐसी स्थिति में आतुरता की परिणति मध्यवर्ती नपुंसकता में होती है।

चूँकि समाज में नर का प्रभुत्व है। मादा की अपेक्षा उसे सुविधाएँ, स्वालम्बन और वर्चस्व अधिक प्राप्त है। इसलिए नारी की महत्वाकांक्षा नर की स्थिति में पहुँचने की होती है। ऐसी महिलाएँ उन कार्यों में रस लेती हैं, जिनमें उन्हें पुरुष जैसा काम करने का अवसर मिले। नौकरियों में भी ऐसे काम ढूँढ़ती हैं जिनमें उन्हें संकोचशीलता के बंधनों में न बँधकर पुरुषोचित पराक्रम दिखाने का अवसर मिले। सेना में, पुलिस में, व्यवसाय में नारी का बढ़ता उत्साह इसी मनोवृत्ति का परिचायक है।

सामान्य रहन-सहन में भी इन दिनों इस तथ्य की झाँकी मिलती है। लड़के दाढ़ी-मूँछ रखना पसंद नहीं करते। बाल भी अपेक्षाकृत ऐसा रखते हैं, जिसे देखने से नर-नारी की पहचान न हो सके। लड़कियाँ इस संबंध में एक कदम और आगे हैं। उनकी अभिरुचि पुरुष वेश की ओर बढ़ रही है और ऐसे खेलों में अपनी वरिष्ठता वह सिद्ध कर रही है, जिनमें पहले पुरुषों का ही एकाधिकार था।

नर-नारी को समानता और नारी मानवीय मौलिक अधिकारों की दृष्टि से इसमें कोई हर्ज नहीं, वरन् अच्छा है कि नर-नारी सभी एक स्तर पर रहें और मिल-जुलकर साथी-सहयोगी की तरह सहकारिता का सिद्धान्त अपनायें।

पर चिन्ता की बात तब बनती है, जब कामुकता की दृष्टि से कोई पक्ष दूसरे पक्ष की ओर इस कदर आकर्षित और चिन्तनरत होता है कि उसे अपनी स्थिति पर असंतोष और दूसरे पक्ष का वर्चस्व प्रतीत होने लगे। ऐसी दशा में मनःस्थिति, शारीरिक स्थिति और सामाजिक व्यवस्था में व्यतिक्रम उत्पन्न होता है और यह अतिवाद बड़ी उपहासास्पद और चिन्ताजनक समस्याएँ उत्पन्न करता है।

अच्छा यही है कि आत्म गौरव को न गँवाया जाय। अपने को हेय और और दूसरे को श्रेष्ठ न माना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाय। प्रकृति ने जो जिम्मेदारी सौंपी है, समाज परम्पराओं ने आकृति-प्रकृति के अनुरूप जो परम्परा चलाई है, उसे यथावत् चलने दिया जाय।

धरती खिसक जाय तो आश्चर्य नहीं

अमेरिका के एक वैज्ञानिक श्री मार्सटन बेट्स ने भविष्यवाणी की है, "यदि अगली शताब्दियों में विश्व की जनसंख्या वर्तमान गति से ही बढ़ती रही तो विश्व के कुल जन-समूह का वजन उतना हो जायेगा, जितना कि पृथ्वी का वजन है अर्थात् पृथ्वी का भार दूना हो जायेगा।"

ग्रह-नक्षत्र जिस गुरुत्वाकर्षण बल के सहारे आकाश में स्थिर हैं, उसका कम या अधिक होना उनके भार से भी सम्बन्ध रखता है। भार बढ़ने के साथ गुरुत्वाकर्षण बल ढीला पड़े और पृथ्वी अपने कक्ष से खिसक कर कहीं और जा लगे तो कोई आश्चर्य नहीं।

डा० बेट्स के अनुसार १९६० में विश्व की जनसंख्या तीन अरब तीस करोड़ थी, अमेरिकी जनसंख्या अध्ययन व्यूरो द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट में कहा गया है कि विश्व की जनसंख्या प्रतिवर्ष ६ करोड़ पचास लाख बढ़ रही है। १९८० तक ४, अरब ३० करोड़ और सन् २००० तक वह १० अरब अर्थात् १९६० से तीन गुनी से भी अधिक हो जायेगी। अकेले चीन की संख्या तब एक अरब ५० करोड़ होगी और यदि महामारी, युद्ध जैसी विभीषिका न आई और भरण-पोषण के साधन उपलब्ध होते रहे तो भारतवर्ष की ही जनसंख्या १ अरब हो जायेगी।

ईसा से आठ हजार वर्ष पूर्व सारे संसार में कुल लगभग २५ लाख लोग थे। उस समय न कोई अकाल का भय था, न महामारी का। पृथ्वी का वातावरण शुद्ध था, खाने को प्रकृति ही इतना दे देती थी कि कृषि आदि में व्यर्थ परिश्रम न करना पड़ता था। लोग देशाटन और ज्ञानार्जन का आनन्द लेते थे। जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ी जटिलता बढ़ती गई और उसी अनुपात से स्वास्थ्य, आरोग्य, आजीविका, संरक्षण, खाद्य पदार्थ, निवास-स्थान, शिक्षा, सामाजिकता, अपराध आदि समस्याएँ भी बढ़ती गईं। आज तो जनसंख्या वृद्धि के कारण सारा संसार ही एक समस्या बन गया है।

ईसा जन्मे तब लगभग ३० करोड़ जनसंख्या थी। १७५० में दुगुनी से भी अधिक ७५ करोड़ के लगभग हो गई। १८५० में ११० करोड़ लोग इस पृथ्वी पर आ चुके थे, १९०० ई० में १६० करोड़ की जनसंख्या थी। १९२० में १८१ करोड़ ९० लाख और १९४० में २२४ करोड़ ६० लाख। १९६१ में यह संख्या बढ़ कर ३०६ करोड़, ९० लाख हो गई। जनसंख्या की यह बढ़ोत्तरी कम होने का नाम नहीं लेती, पृथ्वी में अधिक से अधिक १६०० करोड़ जनसंख्या का भार उठाने की क्षमता है। इससे एक छटांक वजन भी बढ़ा तो पृथ्वी रसातल को चली जायेगी। अर्थात् प्रलय हो जायेगी।

संयम न बरता गया तो यह स्थिति अधिक दूर नहीं। '१.९' यह संख्या लिखने में जितना समय लगा, उतनी देर में १.९ नये बच्चों ने जन्म ले लिया। अब अनुमान करें यह पूरा लेख लिखने तक ऊपर के दिये सब आँकड़े बदल जायेंगे। एक मिनट में २२५ बच्चे जन्म लेते हैं, एक घण्टे में उनकी संख्या २२५×६० =१३५०० हो जाती है। इस हिसाब से एक दिन में १३५००×२४=३२४००० होनी चाहिये पर बढ़ोत्तरी इससे अधिक होगी, क्योंकि अधिक से अधिक २० वर्ष में यह बच्चे भी बच्चे पैदा करने लगते हैं, अर्थात् वृद्धि का क्रम चक्रवृद्धि ब्याज की दर से बढ़ता है। पहले प्रतिदिन वृद्धि का औसत १ लाख ३६ हजार ९८६ था। १ घण्टे में ५ हजार ७०८ और १ मिनट में ९५ आदमी बढ़ते थे, उस हिसाब से १९७५ में ३८२ करोड़, ८० लाख, सन् २००० में ६८० करोड़ २०५० ई० में १३०० करोड़ एवं २०६४ में १६०० करोड़ हो जाने को थी, पर अब २२५ बच्चे प्रति मिनट पैदा होते हैं, यह पहले औसत से दो गुने से भी अधिक है, अर्थात् जनसंख्या से जो विस्फोट १०० वर्ष बाद होने वाला था, वह अब इसी शताब्दी के अन्त में हो जाये तो कोई आश्चर्य नहीं।

बदलती परिस्थितियों में विचार भी बदलें

कुत्ता कभी-कभी जहाँ-तहाँ से सूखी हड्डी उठा लाता है। उसे इतने चाव से चबाता है, मानों उसमें माँस जैसी स्वादिष्ट वस्तुएँ भरी पड़ी हों। सूखी हड्डी चबाते-चबाते जबड़ा छिल जाता है और मसूड़ों से खून बहने लगता है। उसे चखते हुए कुत्ता स्वादिष्ट वस्तुएँ उपलब्ध करने की कल्पना करता है, पर वस्तुतः वैसा कुछ होता नहीं। सूखी हड्डी तो जैसी, है वैसी ही रहेगी। जबड़े के खून-माँस को यदि शिकार मानने लगे तो यह उसकी भ्रमग्रस्तता ही है।

कामुकता एक मनोविकार मात्र है। वह जब तब उन्माद की तरह चढ़ता है और कल्पना के अनुरूप कुछ पाने में कल्पनाओं की झड़ी लगा देता है, पर वस्तुतः ऐसा होता नहीं। अपनी बहुमूल्य जीवन शक्ति का क्षण भर में निचुड़ जाने वाला सार ही ऐसा कुछ प्रतीत होता है, मानो कहीं से नियामत हाथ लग गई हो। होता इतना भर है कि अपना ही प्राण क्षरण होता है और ऐसा दृश्य खड़ा करता है मानो कोई उमंग हाथ लग गई हो। वस्तुतः जिस आनन्द की अनुभूति कामुकता के उन्माद काल में होती है, वह कहीं बाहर से नहीं आती, किसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूसरे से उपलब्ध हुई नहीं होती। मात्र अपना ही जीवन रस निचुड़ने से ऐसा प्रतीत होता है। इसे एक आश्चर्य ही कहना चाहिए कि अपने रक्त का स्वाद किसी दूसरे का प्रतीत होता है। इस भ्रान्ति को आश्चर्य के अतिरिक्त और क्या कहा जाय ?

चूहा पिंजड़े में घी से चुपड़ी रोटी को सूँघ कर उस में घुस जाता है। रोटी कितनी खा पाता है, इसका तो एक बार प्रवेश कर जाने पर ही पता चलता है। जीवन का अन्त उसे उसी जंजाल में जकड़े हुए व्यतीत करना पड़ता है।

सरकारी कानून में एक 'दफा' है कि बलात्कार, व्यभिचार करने वाले को लम्बे समय की सजा भुगतनी पड़ती है। ईश्वर के यहाँ कानून तो नहीं, पर कुचक्र एक ऐसा है कि कामुकता को नियति समझकर उस कुचक्र में फँस जाने वाले को हर जुर्म में प्रायः बीस वर्ष की सजा होती है। कामुकता का परिणाम बच्चा उत्पन्न होना होता है। उनके लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा, चिकित्सा, मनोरंजन, पढ़ाई, शादी से लेकर उसके लिए कुछ उत्तराधिकार में छोड़ मरने के लिए दिन-रात ईमानदारी, बेईमानी से किसी भी प्रकार कुछ करते रहना पड़ता है। यह सिलसिला एक के बाद दूसरे के क्रम में से आगे बढ़ने लगता है और एक बच्चा पैदा करने की सजा बीस वर्ष भुगतनी पड़ती है। इस अवधि में शारीरिक, मानसिक श्रम, समझदारी, नैतिक गिरावट आदि के कुचक्र में ही प्रायः सारा समय खप जाता है। इच्छा, आकांक्षा भी प्रायः समूची ही उसी प्रयोजन के लिए लग जाती हैं। जब उत्तरदायित्वों से निपटने का समय आता है, तब वह मनुष्य बुरी तरह खोखला हो चुका होता है। बार्धक्य और मौत इर्द-गिर्द घुमड़ने लगती है। कुछ अतिरिक्त कमा न पाने के कारण घर वाले भी तिरस्कार करते हैं और मरने में कितने दिन बाकी हैं, इसकी गणना करते रहते हैं। भूल का सुधार कर नये सिरे से जीवन को महत्त्वपूर्ण कार्यों में लगा सकें, इसका अवसर भी निकल चुका होता है। सम्पदा पर से स्वामित्व तो परिवार वाले छीन ही लेते हैं, पर मोह फिर भी बना रहता है कि सम्पदा हमारी है। यद्यपि इसका इच्छित उपयोग कर सकने का अधिकार पहले ही छिन चुका होता है।

औसत आदमी की यही दुर्गति है। उसका मूल कारण खोजने पर कामुकता का वह ललक भरा उन्माद ही आधारभूत कारण होता है, जो जीवनी शक्ति को बुरी तरह निचोड़ लेता है। शरीर और मस्तिष्क को इस योग्य नहीं रहने देता कि वह कुछ संतोषजनक, उत्साहवर्धक काम कर सके। इस अवधि में जो-जो संस्कार एकत्रित कर लिए जाते हैं, वे शरीर के अन्दर शैतान की तरह चढ़े रहते हैं। कल्पनाओं पर तो हावी रहते ही हैं, चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण करने के बाद कहीं एक बार मिलने वाले मनुष्य जन्म को इसी दुर्गति में गँवा देना पड़ता है। नशेबाजी से भी बुरी किस्म की इस मदिरा को तो उत्सुकतापूर्वक पीते रहते हैं, सार तत्व गँवाते रहते हैं और साथ ही यह भी अनुभव करते रहते हैं कि न जाने किसका, कहाँ से, कब वजनदार पर लग गये।

विवाह का अर्थ कभी यह हुआ करता था कि दो व्यक्ति मिलकर एक और एक के अक्षर सघनता के स्तर पर रख लेने पर ११ हो जाते थे। उतनी शक्ति अर्जित कर लेते थे, उतना महत्त्वपूर्ण कार्य कर लेते थे, पर अब विवाह की उल्टी परिभाषा हो गई है। एक है-जीवनी शक्ति को निचोड़कर गन्दी नाली में बहा देना, दूसरा यह कि बच्चों का ऐसा भार लद जाना, जिसकी कोई उपयोगिता तो है नहीं। इसके लिए जिंदगी को पूरी तरह खपा-लुटा देना पड़ता है। यदि इस अनर्थ से किसी प्रकार बचा जा सका होता, तो बहुमूल्य मनुष्य जीवन का ऐसा श्रेष्ठतम उपयोग हो सकता, जिससे कि देवता भी ईर्ष्या करते। मनुष्य जीवन इतना महत्त्वपूर्ण है कि भगवान को भी जब कभी अवतार धारण करना पड़ता है, तो इसी आवरण को धारण करके आते हैं।

कोई समय था, जब कृषि योग्य भूमि पर्याप्त थी। जनसंख्या कम थी। तब खेतों और 'बागों' की साज-संभाल और रखवाली के लिए मनुष्यों की जनसंख्या अपेक्षित थी। तब प्रजनन खुशी का विषय समझा जाता था, पर अब तो परिस्थितियाँ बिल्कुल उल्टी हो गई हैं। जनसंख्या अन्धाधुन्ध बढ़ गई है और मूलभूत साधनों की उतनी ही कमी पड़ रही है, जितनी की जनसंख्या वृद्धि के हिसाब से आवश्यक समझी जाती है और उन्हें जुटाने के लिए आवश्यकता अनुभव की जा रही है। ऐसी दशा में प्रजनन बढ़ाना समाज के लिए अनेक संकट खड़े करना है। आज की सर्वाधिक ज्वलन्त समस्या बढ़ती हुई आबादी को रोके जाने की है। इस निमित्त अनेकों प्रयोग हो रहे हैं कि मनुष्यों का उत्पादन बढ़ने न पाये। ऐसी विपरीत परिस्थितियों में कोई समझदार यह नहीं सोचता कि वंश बढ़ाने से स्वर्ग में सद्गति मिलेगी, वंश चलेगा, पिण्डदान मिलेगा। आज की परिस्थितियाँ हर किसी से यही अपेक्षा करती हैं कि वंश वृद्धि को कठोरतापूर्वक रोका जाय। ऐसी दशा में प्रजनन की अभिवृद्धि खुशी का नहीं, वरन् विपत्ति का, दुर्भाग्य का कारण ही माना जा सकता है। अस्तु, हर समझदार आदमी को देश की, अपनी निज की समस्याओं को समझते हुए जनसंख्या बढ़ाकर देश द्रोह का भाजन नहीं बनना चाहिए। इन दिनों तो जो इस अनर्थ से जितना बच सके, वह उतना ही विचारशील और समाज सेवा में हाथ बँटाने वाला व्यक्ति माना जायगा।

सन्तान बुढ़ापे में सहारा बनेगी, यह सोचना भी वर्तमान परिस्थितियों में सर्वथा भूल है। नये जोड़ों को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने और अपने प्रजनन की समस्या हल करते ही नहीं बन पड़ती, फिर बड़े-बूढ़ों की सेवा-सहायता करने आशा करना तो और भी व्यर्थ है। वातावरण को देखते हुए यह किसी को भी आशा नहीं करनी चाहिए कि हमारे घर श्रवणकुमार पैदा होंगे। आज का अर्थशास्त्र तो बूढ़े-निकम्मे पशुओं की तरह दुर्बल-रोगी और बिना कमाऊ बूढ़ों को भी किसी प्रकार कहीं ठिकाने लगा देने की ही सोच रहा है। ऐसी दशा में बच्चे से सेवा-सहायता पाने की अपेक्षा यही सोचना चाहिए कि उन पर अपनी जिम्मेदारियाँ लादे बिना ही जीवन से छुटकारा पा लिया जाय, तो अच्छा है। पिण्डदान मिलने पर स्वर्ग जाने जैसी मान्यताओं को तो अब पूरी तरह छोड़ ही देना चाहिए।

जिन्हें एकाकी जीवन में असुविधा होती हो, वह बिना बच्चे का झंझट पाले किसी प्रकार सह-जीवन का रास्ता निकाल लेते हैं। इस प्रकार पुरुष भी सहयोगी की तरह रह सकता है और स्त्रियों को भी सहेलियों की तरह मान सकता है। कामुकता की दुष्प्रवृत्तियों पर विचार करने भर से यह बात सहज ही समझ में आ सकती है कि प्रजनन की व्यथा मोल लिए बिना भी उस तरह रहा जा सकता है जैसे कि संयुक्त परिवार सहजीवन की सुविधाओं का लाभ उठाते रहते हैं और कामुकता के दुष्परिणामों से बचे रहते हैं।

अपने बच्चों के लिए स्वावलम्बन, उत्तराधिकार में सम्पदा छोड़ना और मोहवश आवश्यकता से अधिक खर्च भी करना पड़ता है, पर यदि असहायों के बालक पाल लिए जायँ तो वे सदा कृतज्ञ भी रहेंगे और उस सहायता से अनेक भले आदमियों के द्वारा प्रशंसा सुनने का लाभ मिलेगा, जबकि अपने बच्चे सदा कमी की शिकायत ही करते रहते हैं और यही उलाहना देते रहते हैं कि हमारे लिए यह किस काम का। वे अपना अधिकार मानते हैं कि जिनने जन्म दिया है, उन्हें सम्पन्नता के लिए भरपूर धन भी जुटाना चाहिए, इसमें कमी रहने पर यही उलाहना सुनने को मिलता है कि यदि बच्चों के लिए भरपूर सुविधा नहीं जुटाई जा सकती थी, तो उन्हें पैदा ही क्यों किया ?

जिस प्रकार अनेक कुरीतियों का अब खण्डन होने लगा है, उसी प्रकार अब यह मान्यता भी बदली जानी चाहिए कि बच्चे बढ़ाकर स्त्री का स्वास्थ्य, अपना आर्थिक भार और बच्चे का भविष्य खराब करने की अपेक्षा यही अच्छा है कि प्रजनन से जो जितना बच सके, वह अपने को उतना ही बुद्धिमान माने और अपनी समझदारी को सुसम्पन्नता का निमित्त कारण समझे।

सन्तान की लालसा एक मूर्खतापूर्ण स्वार्थपरता

आज विचारशील वर्ग में सन्तानोत्पादन की निरर्थकता एक स्वर से स्वीकार की जा रही है। केवल अदूरदर्शी व्यक्ति ही उसके लिये लालायित पाये जाते हैं। जिन्हें वैयक्तिक और सामाजिक हित-अनहित का कुछ विवेक-विचार नहीं है, उन्हीं की यह इच्छा रहती है कि उनके यहाँ जल्दी या अधिक संख्या में पुत्र उत्पन्न हों, कैसे आश्चर्य की बात है कि पिछड़े वर्ग का हर व्यक्ति पुत्र की ही आकांक्षा करता है, जबकि सृष्टि के नियमानुसार आधी संख्या कन्याओं की और आधी पुत्रों की होनी चाहिए। नर अपनी जाति की बढ़ोत्तरी सोचे भी तो एक बात है पर जब नारी भी पुत्र की ही आकांक्षा करती है, तो इस अवांछनीय चिन्तन पर अधिक अचम्भा होता है। आदिमकाल में जीवन संघर्ष की जटिलता में नर की उपयोगिता अधिक रही होगी पर आज तो भावना और बुद्धि को महत्त्व मिलने से नारी की ही उपयोगिता अधिक सिद्ध होगी, ऐसी दशा में कन्या जन्म को श्रेय मिलना चाहिए पर हैरत इसी बात की है कि हजारों-लाखों वर्ष पूर्व का दृष्टिकोण ही जहाँ का तहाँ बना हुआ है और बदली हुई परिस्थितियाँ हमारी मान्यताओं को प्रभावित नहीं कर रही हैं।

विचारशील वर्ग को यह स्वीकार करना पड़ रहा है कि सन्तानोत्पादन अब किसी भी प्रकार लाभदायक उद्योग नहीं रहा। उसमें हर दृष्टि से घाटा ही घाटा है। पुरुष सोचता है उससे उसके ऊपर आर्थिक भार बढ़ता है। जिस धन से वह वर्तमान परिवार को अधिक सुविकसित बना सकता है, उसमें नये हिस्सेदार जोड़ लेने से घर में पुराने और नये साझीदार की अभावग्रस्तता ही बढ़ेगी। जो समय, साधन सामयिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं उन्हें और भी अधिक विभाजित करने से मात्र कठिनाइयाँ ही बढ़ेंगी। जिन मेहमानों के आतिथ्य की समुचित व्यवस्था नहीं उन्हें आमन्त्रित करते रहने में समझदारी की क्या बात है ?

स्त्रियाँ सोचती हैं प्रजनन एक प्रकार से मौत से जूझना है। महिलाओं का मृत्यु में एक बहुत बड़ा भाग प्रसव कष्ट में ही मर-खप जाने वालियों का ही होता है। छुरों के गोदे जाने वाली घोर तड़पाने वाली व्यथा सहने और अपने स्वास्थ्य रस को निचोड़ कर खोखली हो जाने में किस महिला को क्या लाभ हो सकता है। जितना समय कोई नारी अपनी ज्ञान वृद्धि, स्वास्थ्य रक्षा, आजीविका उपार्जन, गृह व्यवस्था, समाज सेवा जैसे महत्त्वपूर्ण कामों में लगाकर बहुत कुछ हित साधन कर सकती है, उसे बच्चे जनने और पालने में लगाकर उसे क्या मिलता है? माता बनने के बाद उनकी व्यक्तिगत प्रतिभा एवं प्रगति का एक प्रकार से अन्त ही हो जाता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। आजीविका के लिये वे नितान्त पराश्रित हो जाती हैं और इस के लिए उन्हें पग-पग पर अपमानित जीवन जीने के लिए विवश होना पड़ता है। बच्चों का बोझ वहन करते हुए वे न तो आर्थिक दृष्टि से अपने पैरों पर खड़ी रह सकती हैं और न पति के लिए आकर्षक रह जाती हैं स्वयं उनकी सुख-सुविधाएँ और महत्वाकांक्षायें भी स्वप्न होती चली जाती हैं। घर से बाहर जाने के अवसर तो प्रायः छिन ही जाते हैं। क्या मनोरंजन क्या महत्त्वपूर्ण अवसर सभी प्रकरणों में उसके लिए घर से बाहर जा सकना एक प्रकार से अशक्य हो जाता है। जब अपने आप अपनाई इस बाधित स्थिति की दुर्दशा पर विचार करती है तो उसे खेद ही होता है और उन तथाकथित शुभचिन्तकों, अभिभावकों पर क्रोध भी आता है जिनने अपनी कन्या को दुर्गति में धकेलने के लिये किस प्रकार सिर पर आसमान उठाया था और किस प्रकार आर्थिक कठिनाइयाँ सहन की थीं।

सुविधाजनक परिस्थितियों में सीमित सन्तानोत्पादन किया जा सकता है। पर उसके पीछे वे लाभ नहीं सोचे जाने चाहिए जो आज सोचे जाते हैं। मरने के बाद बेटे के पिण्डदान देने से स्वर्ग मिलेगा, यह मान्यता और मूढ़ता की ही झाँकी कराती है। कोई व्यक्ति अपने ही भले-बुरे कर्मों से स्वर्ग-नरक जा सकता है। बेटे का पुण्य बाप- का—बाप का बेटे को, भला किस प्रकार मिल सकता है। वंश चलेगा, नाम चलेगा जैसी बात भी अविवेकी ही सोचते हैं। हर वर्ष २० बच्चे जनने वाली शूकरी का वंश यश उसकी सन्तान कहाँ बढ़ा पाती है। हममें से किसे अपने छठी पीढ़ी के पूर्वज का नाम याद है ? जब नाम तक वंशजों का याद नहीं रहता तो कोई मूर्ख ही यह सोच सकता है कि उसका वंश चल रहा है। उत्तराधिकार में सारी कमाई केवल बेटे को ही देकर मरा जाय यह अत्यन्त घृणित स्तर की स्वार्थ भरी संकीर्णता है। जिस समाज के सहयोग से सम्पदा कमाई और जोड़ी गई उसे पुण्य-परमार्थ के आधार पर वापिस किया जाना चाहिए, यही पूँजी का सही सदुपयोग है। अपनी श्राद्ध परम्परा के पीछे यही आदर्श है कि उत्तराधिकारी अपने पूर्वजों की सम्पदा को हराम की कमाई समझें, उसे स्वीकार न करें और किसी परमार्थ कार्य में लगा दें। हर दूरदर्शी और नीतिवान अभिभावक को अपनी बची पूँजी का ऐसा ही उपयोग करना चाहिए। बच्चों को सुयोग्य, सुसंस्कृत और स्वावलम्बी बनाने भर की अपनी जिम्मेदारी समझनी चाहिए। उनके लिये बैठे-बैठे हराम की कमाई खाने के लिए छोड़ जाना, उन्हें हरामी, आलसी व्यसनी एवं दुर्गुणी बनने का रास्ता खोलना है। यह मोह सन्तान के प्रति उपकार नहीं अपकार ही सिद्ध होता है।

कई सन्तानरहित व्यक्ति दूसरा विवाह करने की—किसी दूसरे का बच्चा गोद लेने की बात सोचते रहते हैं, ऐसे लोगों को परले सिरे का स्वार्थी, संकीर्ण और निष्ठुर कहना चाहिए। जिस पूँजी से समाज का बहुत हित साधन हो सकता था उनका लोक-परलोक बन सकता था, उसे किसी एक व्यक्ति को देने भर की बात सोचते रहना यह सिद्ध करता है कि यह अत्यन्त निकृष्ट मनोभूमि का व्यक्ति है। उदारता और दूरदर्शिता जैसी मानवोचित सत्प्रवृत्तियाँ उसे छूकर भी नहीं निकलीं। ऐसे लोग सन्तान, प्राप्ति के लिए तथाकथित धार्मिक कर्मकाण्ड भी करते रहते हैं। उद्देश्य और संकल्प की दृष्टि से ऐसे दान-पुण्य को निकृष्ट स्तर का ही माना जा सकता है। ऐसी पूजा को शायद ही कोई देवी-देवता स्वीकार कर सके। ईश्वर तो भावना देखता है कृत्य नहीं। मोहग्रस्त उद्देश्य लेकर किये गये धर्म कृत्य भी ईश्वर की प्रसन्नता का कारण नहीं बन सकते।

हँसने-खेलने के लिये अपने निज के बच्चे ही हों यह आवश्यक नहीं। यदि उदारता के कुछ बीजाणु अन्तःकरण में जीवित हैं तो अपने पराये का और भाव भुलाकर किसी के भी बच्चों से हँसा-खेला जा सकता है। मुफ्त में आनन्द उठाया जा सकता है, भेद अनावश्यक चिन्ताओं तथा जिम्मेदारियों से बचा जा सकता है। अगणित बालक ऐसे मिल सकते हैं जिन्हें घोर अभावग्रस्त जीवनयापन करना पड़ता है, उनकी सहायता करना अधिक श्रेयस्कर है। अपने बच्चों को ही पाला-पोसा जाय यह अनिवार्य क्यों होना चाहिए ? जो नहीं हैं उन्हें जानने के लिए कोई व्याकुल रहे और अपने आस-पास जो अगणित बालक विलख रहे हैं उनकी ओर से निष्ठुर बने रहा जाय तो इससे वात्सल्य की आकुलता कैसे समझी जा सकती है ?

वृद्धावस्था में संतान सेवा करेगी तब काम चलेगा ऐसा सोचना आत्महीनता का, आत्म-विश्वास के अभाव का ही द्योतक है। परावलम्बी जीवन की आकांक्षा करने वाले एक प्रकार से मृतक ही कहे जायेंगे। आज के वातावरण में जबकि पारिवारिक कर्तव्य स्त्री-बच्चों तक भी ठीक तरह कोई नहीं निभा रहा है, तब बूढ़े माँ-बाप पर बेटे चँवर डुलायेंगे इस मूर्खों के स्वप्न से जितनी जल्दी जमीन पर उतर आया जाय उतना ही अच्छा है। मरते समय तक बुड्ढे को अपनी हड्डियाँ कोल्हू में पेल कर उनका तेल बेटे-पोतों पर चुपड़ते रहना पड़ता है। उसमें कमी पड़ती है तो सारे परिवार की आँखें किस तरह लाल-पीली होती हैं इसे कोई भी आँखों वालों अपने आस-पास भी नजर पसार कर देख सकता है। समय की माँग है कि कामेच्छा और प्रजनन में अन्तर किया जाना चाहिए। यह समय की माँग है।

प्राचीनकाल में यह दोनों परस्पर जुड़ी हुई थीं। एक समय ऐसा भी था जब सघन वन्य प्रदेशों से अन्नोत्पादन तथा पशुपालन का लाभ उठाने के लिए बड़े परिवारों की आवश्यकता थी। वन्य जीवों से अपना उत्पादन तथा अस्तित्व बचाने के लिए भी यह आवश्यक था कि परिवार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के सदस्यों की संख्या बड़ी हो। इस सामयिक आवश्यकता की पूर्ति के लिये सन्तानोत्पादन को प्रोत्साहन दिया जाता था। उसके लिये हर्षोत्सव मनाये जाते थे तथा परलोक में सद्गति और बुढ़ापे में सहारा देने के लिए सन्तान की आवश्यकता समझी जाती थी। उन दिनों अन्न की, स्थान की नहीं, श्रम की कमी थी। उसकी पूर्ति के लिये सन्तानोत्पादन भी एक उद्योग था। इसके लिये सम्पन्न लोग अधिक पत्नी रखते थे और इस व्यवसाय में अधिक लाभ उठाते थे। पर अब परिस्थितियाँ बदल ही नहीं गईं, एक प्रकार से विपरीत हो गई हैं। पृथ्वी का उत्पादन और विस्तार कहाँ तक बढ़ सकता है ? जिस वेग से संख्या वृद्धि हो रही है उस क्रम से साधनों की बढ़ोत्तरी कितना ही प्रयत्न करने पर भी नहीं हो सकती। साधनहीन जनसंख्या को दुर्गति सहन करनी पड़ती है और उस दुर्गति की सड़न एवं दुर्गन्ध से सारा सामाजिक वातावरण विषाक्त होता है। इस स्थिति में व्यक्ति और समाज को समान रूप से दुःख भोगना पड़ता है।

कामेच्छा पर नियन्त्रण करके सन्तानोत्पादन घटाया जा सकता है। बड़ी उम्र में विवाह करना। विवाहितों को यथाशक्ति संयम बरतना—ढलती आयु में प्रजनन को लज्जास्पद माना जाना—बहुसन्तान वालों को अविवेकी एवं असामाजिक ठहराया जाना जैसी विचारणाओं को यदि मान्यता मिले तो सन्तान बढ़ाने से पूर्व हर किसी को उसके दुष्परिणामों पर विचार करने का अवसर मिलेगा और अनयन्त्रित वृद्धि रुकेगी। प्राचीनकाल की तरह अब भी अविवाहित रहने वालों को प्रशंसनीय, विवेकशील एवं आदर्शवादी ठहराया जाना चाहिए और उन्हें आदर की दृष्टि से देखा जाना चाहिये। प्राचीनकाल में ब्रह्मचारी, परिव्राजक, साधु-ब्राह्मण प्रायः अविवाहित ही रहते थे। यदि आदर्शवादी व्यक्ति विवाह बन्धन में भी बँधते थे तो परस्पर सहयोग से अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य करने की क्षमता बढ़ाना ही उसका उद्देश्य रहता था। प्रजनन से तो वे विवाहित होने पर भी बचते रहते थे। आज उस परम्परा को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। आदर्शवाद के नाम पर न सही आपत्तिकालीन संकट का विशेष कर्तव्य समझकर भी यदि सन्तानोत्पादन के प्रति उपेक्षा या उदासीनता बरती जाय तो उसे प्रशंसनीय ही ठहराया जाना चाहिए।

संतानहीनता की स्थिति से परेशान न हों

सांसारिक सुखों में एक संतान सुख भी है। अपनी बनाई निर्जीव वस्तुएँ भी प्रिय लगती हैं फिर संतान तो सजीव वस्तु है। बाजार में बिकने वाले खिलौने मनुष्य का मन आकर्षित करते हैं फिर चलता-फिरता, हँसता-बोलता, कोमल भावनाओं का आदान-प्रदान करने वाला खिलौना तो और भी सुन्दर लगता है। पिता का, पालन-पोषण करने वाले का, गौरव भी तो संतान से मिलता है। इस गौरव से मनुष्य के मन में रहने वाली बड़प्पन प्राप्त करने की इच्छा तृप्त होती है। बड़े होने पर यह बालक मेरा नाम चलावेगा, मेरे रिक्त स्थान की पूर्ति करेगा, मेरी सेवा करेगा तथा वृद्धावस्था, बीमारी आदि में सहारा देगा, घर को सुसम्पन्न बनावेगा ऐसी आशाएँ पिता अपने बालक से करता है।

एक और भी मनोवैज्ञानिक कारण सन्तान प्रेम का है वह यह कि मनुष्य अपनी अतृप्त इच्छाओं को तृप्त करने लिए बालक को माध्यम बनाकर तृप्ति लाभ करना चाहता है। जैसे कोई व्यक्ति स्वयं तो धन नहीं कमा सका पर उसके मन में यह आशा लगी रहती है कि मेरा बेटा प्रचुर धन कमावेगा। खुद को कुरूप स्त्री मिली तो वह उस अतृप्त इच्छा को, बेटे की बहू सुन्दर प्राप्त करके करना चाहता है। इसी प्रकार गुजरे हुए बालकपन को वह एक बार फिर पाना चाहता है पर अपने जीवन में यह संभव नहीं, इसलिए सन्तान की बाल लीलाओं में रस लेकर वह उन हशरतों को पूरी करता है। अपने अधूरे काम को पूरा होने की पुत्र या शिष्य से आशा की जाती है। इस प्रकार अपनी असफलताओं की निराशा को पिता, अपनी सन्तान के रूप में पूरा करने की कल्पनाएँ, आशाएँ बाँधता है। यह मानसिक आयोजन पड़ा ही प्रिय लगता है। इन आशा तन्तुओं से अपने को आवद्ध करके, अभागा मनुष्य भी सौभाग्य की सुनहरी किरणों की झाँकी किया करता है। यह मन का महल, सच्चे महल से भी अधिक प्रिय लगता है क्योंकि वास्तविक वस्तु की अपेक्षा उसका चित्र अधिक सुहावना लगता है। इन सब कारणों से सर्वसाधारण की इच्छा होती है कि उसे सन्तान सुख मिले। उपरोक्त कारणों में से कन्या की अपेक्षा पुत्र द्वारा अधिक की पूर्ति होती है। इसलिए लोग कन्या की अपेक्षा पुत्र को अधिक चाहते हैं। अधिक पुत्र होना अधिक सौभाग्यशाली होने का चिन्ह समझा जाता है।

परन्तु कितने ही मनुष्य ऐसे हैं जिन्हें पुत्र नहीं है। वे पुत्र प्राप्ति के लिए बड़े चिन्तित रहते हैं। जिनके केवल कन्याएँ हैं, वे बेटे की कामना करते हैं। कितने तो ऐसे हैं जिनके न कन्या है न पुत्र, वे और भी अधिक चिन्तित देखे जाते हैं। इस चिन्ता के निवारण के लिए, देवी, देवता, साधु, सन्त, वैद्य-डाक्टर, मनाये जाते हैं फिर भी कइयों को सफलता नहीं मिलती है। ऐसे लोग प्रायः बहुत दुखी, चिन्तित और निराश देखे जाते हैं। आइए, विचार करें कि क्या यह चिन्ता वास्तविक है ? क्या सन्तान की आवश्यकता इतनी अनिवार्य है कि उसके बिना मनुष्य इतना दुखी रहे ?

इस लेख को आरम्भ करते हुए, हमने सबसे प्रथम ही वे कारण बता दिये हैं जिनके कारण सन्तान प्राप्ति की इच्छा होती है। इन सब कारणों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने से यह प्रतीत नहीं होता कि इन सबकी पूर्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

केवल अपने निजी बालकों के द्वारा ही हो सकती है। ममता और मोह से प्रेरित होकर 'अपनी' कहलाने वाली वस्तुओं में ही प्रसन्नता अनुभव करता है। इसलिए उन्हें जमा करता रहता है। घर, मोटर, जायदाद, जेवर, जवाहरात, स्त्री, पुत्र, सब 'अपने' होने चाहिए। यह अपनापन, बहुत संचय की तृष्णा उपजाता है अन्यथा उपयोगिता की दृष्टि से कितनी ही वस्तुएँ निरर्थक होती हैं। फिर भी उनके संचय की तृष्णा बढ़ती ही जाती है। सन्तान के संबंध में भी ऐसी ही बात है। जिन इच्छाओं की पूर्ति के लिए सन्तान चाहते हैं, उनमें से कितनी ही तो ऐसी हैं जो किन्हीं विरलों की ही पूर्ण होती हैं और कितनी ही ऐसी हैं जो दूसरों के बालकों से पूर्ण हो सकती हैं। कितनी ही इच्छाएँ ऐसी हैं जो केवल मात्र भ्रम हैं। तीनों ही प्रकार की इच्छाओं पर सम्मिलित रूप से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वे इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं हैं कि उनके बिना इतना दुखी होना चाहिए जितने कि आजकल के सन्तानहीन देखे जाते हैं।

संतान से जो इच्छा किन्हीं विरलों की ही पूर्ण होती हैं, वे गौरव की, कमाई खिलाने की, सेवा मिलने की हैं। आज के समय ऐसे सपूतों के दर्शन दुर्लभ हैं। बुड्ढे माँ-बाप को एक भार समझा जाता है, उसकी मृत्यु की प्रतीक्षा की जाती है। जबान बेटा घर का मालिक होता है, बुड्ढे के हाथ में कोई शक्ति नहीं रहती, वह पराश्रित हो जाता है, अपनी इच्छा पूर्ति के लिए कमाऊ बेटे के मुँह की ओर ताकता है, उसकी टेड़ी भवों को देखकर सहम जाता है। चौपाल की चर्चा में तो बुड्ढे को ही बाप कहा जाता है, पर व्यावहारिक रूप में बेटा-बाप बन जाता है बाप को बेटे की तरह रहना पड़ता है। जवानी के नशे में अक्सर आज के बेटे बाप का सम्मान तो नहीं ही करते हैं अपितु अवसर आने पर अपमान तक करने में नहीं चूकते। जो बड़े-बड़े मनसूबे बाप बाँधा करता था, बेटे से जिस व्यवहार की आशाएँ किया करता था, समय आने पर वह बालू का महल विस्मार हुआ दिखाई देता है। किन्हीं विरलों की ही यह इच्छा पूर्ण होती हैं।

बालकों को तोतली बोली, मधुर मुसक्यान, निष्कपट स्नेह, यह सब तो पड़ौसी के बालक से भी प्राप्त हो सकते हैं। सेवा, उपकार और सद्गुणों से पराये अपने हो जाते हैं। जो प्रत्युपकार बेटे नहीं चुकाते, वह शिष्यों से, अनुयायियों से प्राप्त हो जाता है। आज गाँधीजी के असंख्यों अनुयायी उनके इशारे पर अपना तन, मन, धन न्यौछावर करने को तत्पर हैं, जवाहर लाल नेहरू के आदेश पर लाखों की संख्या में भारतवासी अपने शिर कटवाने को तैयार हैं। अन्धे विरजानन्द की, वेदप्रचार की अभिलाषा पूर्ण करने के लिए उनके शिष्य दयानन्द ने आजीवन ब्रह्मचारी रहकर जीवन अर्पण करना स्वीकार किया था। गुरुनानक के शिष्यों ने अपने गुरु के आदेश पर क्या क्या नहीं किया ? जो बातें दूसरों के लड़कों ने कर दिखाईं, वह अपने लड़के भी नहीं कर सकते। महात्मा गाँधी के सगे लड़के उनके अनुयायी नहीं हैं, उनके कहने में नहीं चलते पर दूसरों के लड़के उनकी आशा को ईश्वर की आज्ञा की तरह मानते हैं। सेठ जमनालालबजाज अपने को गाँधीजी को गोद धरा पुत्र कहा करते थे। बापू की आज्ञानुसार लाखों रुपयों की सम्पत्ति सेठजी खर्च करते रहते थे। इतनी कमाई उनके किसी सगे बेटे ने उनके आदेश पर खर्च नहीं की। तात्पर्य यह है कि संतान इच्छा के कितने ही कारण ऐसे हैं, जिनकी पूर्ति दूसरों के बालकों में आत्मभाव रखने से हो सकती है।

कुछ कारण ऐसे हैं, जिन्हें केवल भ्रम कहा जा सकता है, जैसे यह ख्याल करना कि बेटे से हमारा नाम चलेगा। इन पंक्तियों के पाठकों से हम पूछते हैं कि—आप कृपा कर अपने पूर्वजों के पीढ़ी-दर-पीढ़ी के हिसाब से नाम बताइये ? तीन-चार-पाँच पीढ़ी से अधिक ऊपर की पीढ़ी के पूर्वजों के नाम शायद ही किसी को याद होंगे। जब अपने ही पोते, पर पोतों को नाम नहीं याद रहा तो दुनिया मे तो संतान द्वारा चलेगा ही कैसे ? यह दुनिया ब्लैक बोर्ड की तरह है, जिस पर बार-बार अक्षर लिखे और मिटाये जाते हैं। खेत में बार-बार बीज बोये जाते हैं और बार-बार फसल काटी जाती है। हर बरसात में असंख्य बूँदें पानी की बरसती हैं और अपने रास्ते चली जाती हैं। क्या इनमें से किसी का नाम चलता है ? कौन किसे याद रखता है ? दुनिया की याददाश्त इतनी फालतू नहीं है कि वह गये-गुजरे आदमियों को याद रखे, उनके नाम चलाये। सृष्टि के आदि से अब तक असंख्यों मनुष्य हुए और मर गये। उनकी संतानें मौजूद हैं पर नाम याद रखने का किसी को अवकाश नहीं है। यह सब देखते हुए जो यह सोचते हैं कि संतान से मेरा नाम चलेगा वह भारी भ्रम है।

इसी प्रकार यह भी भ्रम है कि मरने के बाद भी संतान खाना-पीना परलोक में पहुँचाया करेगी। हर आत्मा स्वतंत्र है। उसे अपने कर्म का ही फल मिलता है। बेटे की रोटी से परलोकवासी आत्मा का पेट नहीं भरता। परमात्मा इतना कंगाल नहीं है कि उसके घर में रोटी का अकाल पड़ जाय और बेटे के पिंडोदक बिना बाप को भूखा-प्यासा रहना पड़े। सद्गति अपने कर्मों से होती है। इसके लिए बेटे का आसरा तकना निरर्थक है।

मेरे पीछे मेरा उत्तराधिकारी कौन होगा ? यह बात भी भला कोई चिन्ता की बात है। लेने के लिए तो हर कोई हाथ पसारे खड़ा है। जिसे भी दे जाइए वही खुशी से फूला न समायेगा। फिर जिनके लिए छोड़ा जाया जायगा वे उसका सदुपयोग ही करेंगे, इसका भी कोई निश्चय नहीं। हम देखते हैं कि कितने ही लड़के बाप के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

माल को लूट का माल समझकर ऐसी बेदर्दी से फूँकते हैं कि देखने वालों को तरस आता है।

इन सब बातों पर विचार करने से पता चलता है कि बेटा हो ही, यह कोई ऐसी अनिवार्य आवश्यकता नहीं है, जिसके बिना किसी को चिन्तित होना पड़े। कई दृष्टियों से तो यह अच्छा भी है। बालकों की भरण-पोषण की काफी जिम्मेदारी पड़ती है। उनके भोजन, वस्त्र, शिक्षा, शादी, व्यापार के लिए पिता को जितनी शक्ति खर्च करनी पड़ती है, जीवन का जितना बहुमूल्य मान उत्सर्ग करना पड़ता है यदि उतना परमार्थ में खर्च किया जाता तो आत्म कल्याण की दिशा में एक भारी मोर्चा फतह हो सकता था। अपने बीमार पड़ते ही, भगवान का ध्यान आने की अपेक्षा यह चिन्ता सवार होती है कि मेरे बाद बच्चों की क्या दशा होगी। मरते वक्त चित्त इसी बेचैनी में जाता है फलस्वरूप उस अतृप्ति के कारण फिर जन्म लेना पड़ता है। बच्चों की आवश्यकता पूर्ति के लिए चिन्तित मनुष्य, न करने योग्य कार्य भी करने लगता है। जिन्हें संतान नहीं है, वे इस प्रकार के झंझटों से आसानी से बचे रह सकते हैं।

चीन और भारत यह दो देश ऐसे हैं जिनकी जनसंख्या बहुत बढ़ गई है। इस बढ़ी आबादी के लिए अन्न जुटाना मुश्किल पड़ रहा है। चारागाह जोत डाले गये हैं। पशुओं के चरने की जगहें छीनकर खेती की जा रही है पर आवश्यकता भर के लिए अन्न पूरा नहीं होता। फलस्वरूप भुखमरी और बीमारी से एक बड़ी जनसंख्या काल के गाल मे चली जाती है। ऐसी स्थिति में और अधिक आबादी बढ़ाना, देश के लिए भार रूप है। सभी विचारक इस बात की बड़ी आवश्यकता अनुभव कर रहे हैं कि देश में अर्थ संकट उत्पन्न नहीं करना है तो जिस तेजी से जनसंख्या बढ़ रही है, उसे रोका जाय। महात्मा गाँधी ब्रह्मचर्य द्वारा संतान निरोध की अपील करते हैं। दूसरे विद्वान इसके लिए कृत्रिम उपायों तक का सुझाव पेश करते हैं। जो, हो, इतना निश्चित है कि जनसंख्या की वृद्धि से विश्व की, मानव जाति की कठिनाइयाँ बढ़ती हैं घटती नहीं।

इन बातों पर विचार करते हुए निस्संतानों को दुखी होने का कोई कारण नहीं। उन्हें जो स्थिति प्राप्त है, उसमें उन्हें भगवत् कृपा की झाँकी करनी चाहिए क्योंकि इस स्थिति के कारण वे लाभ में ही हैं घाटे में नहीं। जो समय सन्तान के भरण-पोषण में लगता उसे सत्कर्मों में लगाना चाहिए। जो धन सन्तान के लिए खर्च करना था या उनके लिए छोड़ जाना था उसे शुभ कार्यों के लिए, संसार में धर्म बढ़ाने के लिए लगा जाना चाहिए। शुभकर्म से सच्ची सद्गति प्राप्ति होती है। इसलिए शुभ कर्म को ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर जाना चाहिए। धर्म के लिए लगाई हुई पूँजी, ईश्वर की बैंक में जमा हो जाती है और जन्म-जन्मान्तरों तक मिलती रहती है। इससे अधिक सम्पत्ति की सुरक्षा और क्या हो सकती है ?

इस लेख का तात्पर्य यह नहीं है कि सन्तान व्यर्थ है। जिन्हें ईश्वर ने दी है वे उसे ईश्वर प्रदत्त उत्तरदायित्व समझ कर भली प्रकार निवाहें। सन्तान को प्रभु की अमानत समझ कर उसके पोषण और विकास के लिए ईमानदार माली की तरह उन पौधों की सेवा में लगे रहें। जिन्हें भगवान ने सन्तान नहीं दी है वे आत्मोन्नति में अपनी शक्ति लगावें। सद्गुण बढ़ावें, धर्म सम्पत्ति बढ़ावें, इस संचय से उनका बुढ़ापा आसानी से आनन्द पूर्वक कट जायगा। संतानरहित होना भी संतानवान् होने की तरह ही सौभाग्य का चिन्ह है। हमें दोनों ही स्थितियों में प्रसन्न रहना चाहिए।

अधिक बच्चे उत्पन्न करना सामाजिक अपराध है

विश्व की तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या अनेकों समस्याओं तथा चिन्ताओं का कारण बनी हुई है। विशेषज्ञों का कथन है कि यदि जनसंख्या में इसी गति से वृद्धि होती रही तो २००० ई० तक संसार की आबादी १० अरब हो जायेगी। यदि जन्म दर घटाई न गयी तो एक दिन ऐसा आयेगा कि धरती पर लोगों का खड़े होना भी कठिन हो जायेगा। वस्तुतः जनसंख्या की बाढ़ परमाणु अस्त्रों से भी अधिक घातक है क्योंकि वे तो मानव-देह को ही नष्ट करते हैं परन्तु तीव्रता से बढ़ती हुई आबादी इतनी विकट समस्याएँ उत्पन्न करती है कि वे मानव का आत्मगौरव तथा आत्म-शक्ति ही नष्ट कर देती है।

अन्य देशों की अपेक्षा हमारे देश में जनसंख्या अधिक तीव्रता से बढ़ती जा रही है। इस दृष्टि से चीन के बाद हमारा ही स्थान है। जनसंख्या की वृद्धि के साथ-साथ पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक आदि सभी क्षेत्रों में असंख्य समस्याएँ खड़ी हो गयी हैं। न लोगों को खाने को पौष्टिक भोजन मिलता है, न रहने को शुद्ध जलवायु तथा समुचित स्थान। शैक्षणिक सुविधाएँ भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त नहीं हो पातीं। स्कूलों तथा कॉलिजों में अनेकों छात्र-छात्राएँ प्रवेश पाना चाहते हैं परन्तु वहाँ भी स्थान का अभाव है। आर्थिक दरिद्रता बढ़ती जा रही है। आम जनता को तन ढकने को वस्त्र भी पूरी तरह से उपलब्ध नहीं है। हमारे यहाँ साल भर में औसत रूप से एक व्यक्ति १६ गज कपड़े का उपयोग करता है जबकि अमेरिका में प्रति व्यक्ति ४० गज से भी अधिक वस्त्रों की खपत है। बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ बेकारी की समस्या भी सुरसा के मुख की भाँति बढ़ती ही जा रही है, जिससे देश की युवा-शक्ति का ह्रास हो रहा है तथा उसमें विविध कुण्ठाएँ तथा अपराध बढ़ रहे हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि हम देश के प्रति सच्चे अर्थों में वफादार बनना चाहते हैं तो हमारा प्राथमिक कर्तव्य है कि अधिक बच्चे उत्पन्न कर समस्याएँ न बढ़ाएँ। प्राचीन समय में तो महामारियों तथा प्राकृतिक विप्लवों के द्वारा प्रकृति स्वयं ही जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण कर लेती थी परन्तु आज हमने रोगों पर, अकाल तथा प्राकृतिक बाधाओं पर भी विजय प्राप्त कर ली है। परिणाम यह हुआ है कि एक ओर जहाँ जन्मदर में वृद्धि हो रही है, मृत्यु-दर घटती जा रही है।

किसी भी देश की सम्पन्नता, समृद्धि तथा प्रगति उसके नागरिकों के स्वास्थ्य, शिक्षा, नैतिकता तथा आर्थिक स्थिति और उत्पादन से सम्बद्ध होती है। विश्व के कई देश अपनी इन्हीं शक्तियों के बल पर प्रगति की दौड़ में हम से आगे निकल गये हैं।

हमारे धर्मशास्त्रों में भी परिवार-नियोजन या संतति निग्रह पर बल दिया गया है। ब्रह्मचर्य साधना की बात उसमें पग-पग पर कही गयी है। वृहदारण्यक उपनिषद् में सन्तति निरोध के लिए विशेष मन्त्रों का पाठ वर्णित है। आयुर्वेद के एक प्राचीन ग्रन्थ में भी तुलसी के प्रयोग द्वारा गर्भ-निरोध की बात कहीं गयी है। मनु का भी कथन है कि मनुष्य को एक ही सन्तान उत्पन्न करनी चाहिये, अधिक नहीं। प्रथम सन्तान ही धर्मज होती है। योग तरंगिणी में भी जन्म-निरोध के उपायों का उल्लेख किया गया है।

वस्तुत: यदि एक सन्तान को ही सर्वगुण सम्पन्न बनाया जाये, तो वही देश के प्रति सबसे बड़ी श्रद्धान्जलि है। इसी में हम सबका हित निहित है। बच्चे उत्पन्न करना आज दो व्यक्तियों का वैयक्तिक विषय नहीं रहा है अपितु इससे समस्त मानव जाति का सुख-स्वास्थ्य प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हो रहा है।

देश, काल व परिस्थितियाँ उग्र रूप से प्रत्येक नागरिक से इसी बात की अपेक्षा रखती हैं कि वह अधिक सन्तान का मोह त्यागकर मर्यादित जीवन जीए तथा एक या दो ही बच्चे उत्पन्न कर उन्हें सुयोग्य नागरिक बनाने का लोक हितकारी दृष्टिकोण अपनाये।

संतान बढ़ाना-दु:ख-दारिद्र्य को न्यौत बुलाना

सन्तान की संख्या सीमित रखी जाय, इस बात पर भारतीय मनीषियों ने सदा ही बल दिया है। आज तो जन-संख्या की विभीषिका की विश्व भर में छाया है, किन्तु जनसंख्या की भयावहता मात्र ही सीमित सन्तान के आग्रह का आधार नहीं। प्राचीन शास्त्रीय उद्धरणों एवं पुराण कथाओं का अध्ययन यह स्पष्ट कर देगा कि अतीत में जिन कारणों से सन्तान-संख्या कम ही रखने पर बल दिया जाता था, उनमें जन-संख्या की कोई भी चर्चा नहीं थी। यह स्वाभाविक है, क्योंकि उन दिनों जन-संख्या कम थी। परन्तु सामाजिक व्यवस्था, मनुष्य की सीमाएँ एवं स्वभाव का गम्भीर अध्ययन करने वाले प्राचीन भारतीय समाज के चिन्तकों की दृष्टि में यह तथ्य स्पष्ट था कि अधिक सन्तान पैदा करना पुरुषार्थ नहीं, दुख-कष्टों का आमन्त्रण है। विश्व के सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद में भी स्पष्टता से कहा गया है—

''बहु प्रजा निर्ऋतिमाविवेश।।''

(ऋग्वेद १।१६४।३२)

अर्थात् 'अधिक सन्तानें सदा कष्ट का कारण बनती हैं।

बाद में नीतिकारों ने तर्क, उपमा, उदाहरण आदि द्वारा बार-बार सीमित सन्तानोत्पादन की सराहना की। क्योंकि वे जानते थे सन्तान या मनुष्य कोई पदार्थ अथवा वस्तु मात्र नहीं है, जिसके रख-रखाव की व्यवस्था धन या उपकरण के द्वारा कर देना पर्याप्त हो। मनुष्य तो एक अति संवेदनशील सचेतन प्राणी है, उसकी संवेदना को भी पग-पग पर पोषण मिलना चाहिए और संवेदनात्मक पोषण की सामर्थ्य प्रत्येक व्यक्ति यानी माता-पिता में सीमित ही होती है। सन्तान के लिए आहार, वस्त्र एवं सुविधा उपकरण का प्रबन्ध भर पर्याप्त नहीं। प्रत्येक माता-पिता द्वारा प्रत्येक सन्तान को भरपूर समय, सद्भाव, स्नेह, मार्गदर्शन देना एवं उसका नियंत्रण करना आवश्यक है। इसके साथ ही जननी के शरीर की भी प्राकृतिक सीमाएँ हैं। उस पर अधिक बोझ उसके व्यक्तित्व में न्यूनता पैदा करता है। अत: भौतिक समृद्धि होने मात्र से किसी भी नागरिक को यह अधिकार नहीं प्राप्त हो जाता कि वह चाहे जितनी संतति को जन्म दे। वस्तुत: अधिक सन्तान उत्पन्न कर, फिर उन्हें मात्र वस्तुओं और सुविधाओं की प्रचुरता के बीच छोड़ देना स्वयं में मानवता का अपमान करना है। क्योंकि मनुष्य जीवन में भौतिक उपकरणों का जितना महत्त्वपूर्ण स्थान है, भाव संवेदनाओं का उससे कम नहीं, अधिक ही है। मनुष्य का भावनात्मक पोषण प्रारम्भिक स्थिति में निजी लगाव, प्रगाढ़ आत्मीयता तथा सतत् मार्गदर्शन की अपेक्षा रखता है। यह काम भृत्यों, धायों आदि द्वारा नहीं हो पाता। माँ का स्नेह, बच्चों के विकास की अत्यावश्यक खुराक है। इसी प्रकार माँ का दूध भी शिशु के लिए सर्वोत्तम पोषक आहार है। दोनों ही दृष्टियों से, एक नारी सीमित सन्तान का ही समुचित पोषण कर सकती है और जिस सन्तान के आरम्भिक पोषण में ही त्रुटि रह जाय, उसके व्यक्तित्व का त्रुटिहीन विकास असम्भव है।

यही कारण है कि पुरातन युग के सर्वाधिपति नरेश भी कम ही सन्तानें पैदा करते थे। इसका यह अर्थ नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि रानियों में सन्तति प्रजनन की क्षमता कुछ न्यून होती थी अथवा राजाओं में ही ऐसी कोई बात रहती थी! यह भी कारण कदापि नहीं कि राजा को भगवान ही कम सन्तान देते थे। भगवान पर पक्षपात का आरोपण उनकी सत्ता का ही उपहास है। आयुर्वेद जैसे सुविकसित चिकित्सा-विज्ञान एवं पर्याप्त पोषक आहार-व्यवस्था के विद्यमान रहने पर सर्वसाधनसम्पन्न राजा-रानियों में शारीरिक न्यूनता की कमी मानना भी युक्तिसंगत नहीं। वस्तुत: वे लोग जिम्मेदारी की भावना यानी दायित्व बोध के ही कारण सीमित सन्तानें उत्पन्न करते थे। फिर जिन राजाओं-रानियों के अधिक सन्तानें होती थीं, उनकी दुर्गति भी इस तथ्य को प्रतिपादित करती थी कि समुचित भावनात्मक देखरेख व पोषण से वंचित सन्तानें विकसित व्यक्तित्व की स्वामिनी नहीं हो पातीं। धृतराष्ट्र गान्धारी के सौ बेटों का व्यक्तित्व पाण्डु-कुन्ती के तीन एवं पाण्डु-माद्री के दो पुत्रों की तुलना में हल्का एवं घटिया था और कौरवों की निकृष्टता ने ही महाभारत युद्ध का आधार विनिर्मित किया। महाराजा सगर की दो रानियाँ थीं। दोनों ने तप किया। वरदान माँगने का अवसर मिलने पर एक ने हजार पुत्र माँगे, दूसरी ने एक। हजार पुत्र समुचित भावनात्मक पोषण के अभाव में झगड़ालू, उपद्रवी, उद्धत और अनाचारी निकले। अन्तत: अपने दर्प एवं दुर्बुद्धि के कारण वे महर्षि कपिल के साथ अन्याय कर बैठे और मारे गये। तब जो दूसरी रानी का एकमात्र पुत्र था। जिसको समुचित भावनात्मक पोषण, मार्गदर्शन प्राप्त हुआ था, उसने अपनी बुद्धि, विद्या, शील एवं सौजन्य से महर्षि कपिल को भी प्रसन्न कर लिया तथा राज्य का समुचित संचालन किया एवं कीर्ति प्राप्त की। भगवान राम कुल चार ही भाई थे और उनमें से प्रत्येक के दो-दो ही पुत्र हुए। सभी यशस्वी एवं श्रेष्ठ चारित्र्य सम्पन्न बने। जबकि रावण के 'इक लख पूत' अपनी अस्त-व्यस्त मन:स्थिति के कारण भीषण विनाशक परिस्थितियों को जन्म देने वाले सिद्ध हुए। नीतिशास्त्रों में इसीलिए कहा गया है—

वरमेको गुणी पुत्रो, निर्गुणैश्च शतैरपि।

एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति, न तु तारा: सहस्रश:॥

अर्थात् सैकडों मूर्ख बेटों की अपेक्षा एक ही गुणी पुत्र श्रेष्ठ है। जैसे अकेला चाँद अन्धकार को दूर करता है, हजारों तारे नहीं। उसी प्रकार एक गुणी पुत्र समाज में अन्धकार दूर करता व प्रकाश फैलाता है।

इसी प्रकार नीतिकारों ने विविध तर्क व उदाहरण देकर संतान-संख्या सीमित रखने का महत्त्व समझाया है। इनमें से एक तर्क यह भी है कि शेरनी एक ही पुत्र उत्पन्न कर वन में निर्भय विचरती है, जबकि गर्दभी दस बेटे जनने पर भी भार ही ढोने को विवश होती है, तात्पर्य यह कि मुख्यत: तो स्वयं का व्यक्तित्व ही काम आता है, फिर यदि संतान द्वारा संरक्षण तथा सहायता की अपेक्षा हो, तो भी एक ही वीर एवं गुणी पुत्र जैसा संरक्षण दे सकता है, गुणहीन या दुर्बल व्यक्तित्व वाले दसों बेटे वैसा नहीं दे सकते।

अधिक संतानों से कष्टों का आरम्भ तो जननी के स्वास्थ्य पर प्रहार से ही हो जाता है। फिर स्नेहपूर्ण मार्गदर्शन की कमी संतानों का व्यक्तित्व अस्त-व्यस्त कर देती है। आज के आर्थिक संकट के युग में अधिक बच्चों का खाने-पहनने, पढ़ाई-लिखाई, चिकित्सा, स्वास्थ्य आदि का खर्च उठा पाना अच्छे-खासे मध्यमवर्गीय परिवार को भी भारी पड़ता है। साथ ही विलासिता का वातावरण संतानों में शौक-मौज की जो उमंगें उछालता है, उनमें तो धन स्वाहा ही होता चला जाता है। बेटी के व्याह और बेटों की आजीविका का प्रबन्ध भी धन की अपेक्षा रखता है। ऐसे में अधिक संख्या में बच्चे हुए तो वे अभाव, अपोषण, असम्मान एवं अपमान के आघात झेलते हुए अविकसित जीवन जीने को विवश होते हैं। हीनता की ग्रन्थियाँ उनमें बढ़ती रहती हैं। परस्पर ईर्ष्या, द्वेष पनपता है। इससे बच्चों का स्वयं का व्यक्तित्व विकृत रहता है, परिवार में विघटन बढ़ता है और समाज पर भी अनुचित दबाव बढ़ता है। अधिक जनसंख्या होने पर सरकारें आहार, शिक्षा, चिकित्सा, आवास, आजीविका एवं यातायात सम्बन्धी पर्याप्त व्यवस्था नहीं कर पाती। ऐसे में अव्यवस्था, अराजकता, असामाजिकता फैलती है। अत: आज की स्थिति में तो सीमित सन्तानों का महत्त्व और भी अधिक बढ़ गया है। संतान पैदा करना आसान है, उसके प्रति जिम्मेदारी का समुचित निर्वाह बहुत कठिन है। उस दायित्व को निभा नहीं पाए, तो संतान ऐसी निकलेगी जो कुल को कलंकित करे और समाज पर भार बने। वैसे भी संतान के कारण यश किसको मिला है ? यश तो अपने ही तप-त्याग और सत्कर्मों से मिलता है। वृद्धावस्था में पुत्र से संरक्षण और सुख पाने की आशा भी मृगमरीचिका है। बालक यदि सुसंस्कारी नहीं रहा, तो वह वृद्धावस्था में त्रास ही देगा, सुख नहीं।

स्वयं के समुचित विकास, सामाजिक कर्तव्य-भावना और संतान के सर्वतोमुखी परिपालन-परिपोषण के नैतिक दायित्व—सभी दृष्टियों से उचित यही है कि प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक युग तक के मनीषियों के परामर्श को समझा जाए तथा मर्यादित प्रजनन को ही स्वीकार किया जाय।

सन्तान के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण साफ करें

हमारे देश में प्राय: १८ वर्ष का लड़का तथा १४ वर्ष की कन्या प्रजनन योग्य हो जाते हैं। कुछ का इससे अधिक आयु में भी विवाह हो जाता है और कुछ का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इससे कम में भी। यद्यपि कानून ने २१ वर्ष से कम आयु के और १८ वर्ष से कम आयु के युवक-युवती का विवाह गैरकानूनी ठहराया है। पर सामाजिक कुरीतियों और बाल विवाह के प्रचलन के कारण लोग इस वय से काफी कम आयु के लड़के-लड़कियों का विवाह कर देते हैं और आशा करते हैं कि हम कब दादा, बाबा, नाना या दादी, नानी बनें।

विवाह के बाद दो-चार वर्ष इतनी आतुरता से प्रतीक्षा की जाती है पौत्र या पौत्री की कि लगता है कोई खजाना मिल जायगा और इसके बाद भी यदि सन्तान नहीं होती तो घर के सब लोगों को बड़ी चिन्ता होने लगती है कि हमारा वंश चलेगा या नहीं, हमारे कुल का दीपक जन्मेगा या नहीं और तरह तरह के टोने-टोटकों से लेकर वैद्य-हकीमों तथा डाक्टरों के यहाँ भाग-दौड़ और जाँच-पड़ताल की जाने लगती हैं कि हम पुत्र रत्न की प्राप्ति की आशा करें या छोड़ दें।

न जाने क्यों सन्तान की सन्तान का मुँह देखने के लिए हम लोग इतना व्याकुल रहते हैं ? तीन-चार वर्ष तक बच्चे न होने पर चिन्ता होने लगती है तथा दौड़-धूप शुरू हो जाती है और आठ दस वर्ष तक सन्तान न होने पर अपना दुर्भाग्य कह कर सिर पीट लिया जाता है। सन्तान के प्रति इतनी उत्सुकता और आतुरता का कारण यह है कि लोग सन्तान को कुल का त्राता मानते हैं। समझा जाता है कि अपने रक्त बिन्दु से उत्पन्न हुई सन्तान ही हमारा उद्धार कर सकती है।

इन दिनों जब परिवार नियोजन को अधिक प्रोत्साहन दिया जाने लगा, संतति निग्रह को अधिक आवश्यक बताया जाने लगा है तो उन लोगों की चिंता और भी बढ़ गयी है जिन्हें सन्तान नहीं है अथवा है भी तो कन्या है। उन्हें अपने वंश चलने की चिन्ता होने लगी है। यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि यह कोई जरूरी नहीं है कि वंश की यशोवृद्धि या कुल का नाम सन्तान से ही चले और मान भी लिया जाय कि कुल का नाम सन्तान से ही चले तो इसकी क्या गारण्टी है कि आने वाली पीढ़ी के कारण परिवार की सत्कीर्ति ही बढ़े। यह भी तो हो सकता है कि बच्चे आगे चल कर दुष्ट निकल जायँ और परिवार की, कुल की कीर्ति बढ़ाने के स्थान पर उसे कलंकित ही करें।

सन्तान न होते हुए भी संसार में कितने ही लोगों का यश अभी भी उज्ज्वल और धवल है। कृष्ण को सभी कोई जानते हैं पर उनकी सन्तानों के नाम भी शायद ही किसी को मालूम हों। राम के बाद लवकुश को छोड़कर उनकी अगली पीढ़ी के किन लोगों का नाम दुनिया को मालूम है। महावीर तो वीतराग और गृहत्यागी तपस्वी थे, उनका यश आज भी बढ़ रहा है। बुद्ध को राहुल से अधिक लोग जानते हैं। ईसा ने तो विवाह भी नहीं किया था। शंकराचार्य, रामानन्द, तुलसीदास, सूरदास, मीरा, कबीर, ज्ञानेश्वर, रैदास, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, महर्षिरमण, रामतीर्थ आदि कितने ही सन्त महात्मा थे जो या तो अविवाहित रहे अथवा ग्रहस्थ भी रहे तो उनकी कीर्ति सन्तान से नहीं उनके सत्कर्मों से ही अमर हुई। व्यक्ति का नाम और यश और सद्गति सन्तान से नहीं, उसके सद्गुणों और सत्कर्मों से बढ़ता और अमर होता है।

शास्त्रों में इस तरह की बातों पर जोर इसलिए नहीं दिया गया कि वंशवृद्धि से ही सद्गति मिलती है। सद्गति तो मिलती है व्यक्ति को अपने सत्कर्मों से। मनुस्मृति का यह श्लोक द्रष्टव्य है—

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम्।

दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुलसंततिम्।।

(अ० २५ श्लोक १५९)

अर्थात्—कइयों हजार कुमार, ब्रह्मचारी ब्राह्मणों ने बिना सन्तान उत्पन्न किये ही अपने उच्च विचारों, सत्कार्यों तथा सेवा व्रतों द्वारा स्वर्गलोक को प्राप्त किया है।

वंशवृद्धि के लिए शास्त्रों में जहाँ भी प्रोत्साहन परक उपदेश आये हैं। उनका कुल अर्थ इतना है कि उस समय एक तो आबादी कम थी और दूसरे समाज को योग्य नागरिक प्रदान करने का कर्तव्य बोध प्रत्येक व्यक्ति को कराया जाता था। यह नहीं कि जिस-तिस को कीड़े-मकोड़ों की तरह सन्तानोत्पादन की छूट दे दी जाती थी। स्मृतियों में दुष्ट, पतित और दुराचारी व्यक्तियों को पुंसत्वहीन करने का स्पष्ट आदेश है। जिसका अर्थ है कि समाज में कुसंस्कारी सन्तान का जन्म रोकने की कड़ी व्यवस्था थी।

समाज को सुयोग्य नागरिक देने के लिए ही प्रजनन किया जाय। न कि अयोग्य और प्रतिभाहीन बच्चों को जन्म दिया जाय। वंशवृद्धि की प्रेरणा का एकमात्र यही आधार है, पर लकीर के फकीर लोग केवल सन्तान की संख्या बढ़ाते चलने को ही वंशवृद्धि समझते हैं।

पूछा जाता है कि वंशवृद्धि के लिए सन्तानोत्पादन नहीं किया जाय तो फिर विवाह का ही क्या उद्देश्य ? विवाह का उद्देश्य प्रजा की वृद्धि ही तो है। यह सोचना गलत है। विवाह का उद्देश्य प्रजनन मात्र ही नहीं है। वह तो एक छोटा-सा दायित्व भर है, जिसे भी निभाया जाता है अन्यथा विवाह तो एक घनिष्ठ, आत्मीय और अन्तरंग साथी के लिए किया जाता है। प्रजनन मात्र ही विवाह का उद्देश्य होता तो फिर सभी जानवारों के विवाह होने चाहिए। पशु-पक्षी तो जब प्रजनन की आवश्यकता अनुभव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते हैं तभी एक साथ रहते हैं। अन्य समय में नहीं जबकि मनुष्य पति-पत्नी एक दूसरे से आत्मीयता और प्रेम के तारों से एक दूसरे के प्रति जन्म भर के लिए घनिष्ठ सम्पर्क सूत्रों में बँधे रहते हैं। इस प्रकार विवाह की सार्थकता सन्तानोत्पादन में खोजना व्यर्थ ही नहीं हानिकारक भी है।

कई लोग वृद्धावस्था में संरक्षण और सेवा की आशा से सन्तान का होना आवश्यक मानते हैं। उनका कहना है कि वृद्धावस्था में जब हमारी शारीरिक शक्तियाँ चुक जायेंगी और हम बेकार हो जायेंगे तो हमें रोटी कौन खिलायेगा ? यह निरी मृगतृष्णा है और आज के युग में तो वयस्क सन्तानों से भरण-पोषण तथा सेवा-सुश्रूषा की आशा करना एक भयंकर छलावा है। वर्तमान स्थिति में ही कितने पुत्र अपने माँ-बाप को रोटियाँ देते हैं, उनकी गुजर-बसर का प्रबन्ध करते हैं। अपने सन्दर्भ में ही सोचा जाय तो वस्तुस्थिति का अनुमान लगाया जा सकता कि हम अपने माँ-बाप को रोटी देते हैं तो हमारी सन्तानें भी हमें देंगी। हम अपने माता-पिता की सेवा-सुश्रूषा करते भी हैं तो भी यह मान कर चलना गलत है कि आने वाली पीढ़ी हमारी रोटी का प्रबन्ध करेंगी। क्योंकि जैसे-जैसे मनुष्य का जीवन जटिल होता जा रहा है वैसे-वैसे उसकी आवश्यकताएँ बढ़ती जा रही हैं और भविष्य की पीढ़ी उन आवश्यकताओं को पूरा करने में ही इतनी व्यस्त होगी कि माँ-बाप की चिन्ता करना उसके लिए कठिन होगा।

बुढ़ापे और असमर्थ अवस्था में सन्तान इसे संरक्षण की आशा मध्यम वर्ग में होती है, तो गरीब परिवारों में यह समझा जाता है कि बच्चे अभी पाँच-सात साल में कमाने लायक हो जायेंगे। कहीं मेहनत-मजदूरी करेंगे। निर्धन तथा मजदूर पेशा लोग आगन्तुक सन्तान को परिवार के लिए दो और कमाऊ हाथ के रूप में देखते हैं। अब्बल तो छोटे बच्चों को काम-धन्धे में लगाया ही नहीं जा सकेता और यदि लगा भी दिया गया हो तो वे कितना क्या कमा कर हाथ पर रखेंगे। तीस-चालीस रुपये महीने कमा भी लिये तो परिवार को उस बच्चे पर जो खर्च करना पड़ा, वह उसकी तुलना में आधा भी नहीं है। फिर बच्चे-आठ-दस वर्ष की उम्र तक ही तो काम पर लगाये जा सकते है। इससे पहले किसी भाव नहीं। तब तक तो परिवार को जो खर्च करना पड़ा, वह कमाने से पहले खाने वाले हाथ बढ़ने की स्थिति ही साकार करता है।

सन्तान के सम्बन्ध में एक अन्धविश्वास यह भी प्रचलित है कि बच्चे भगवान की देन हैं और भगवान बच्चों को पैदा करने से पहले भोजन का प्रबन्ध कर देता है। सब अपनी-अपनी किस्मत लिखा कर लाये हैं और किस्मत का तो मिलेगा ही। यह सोचना गलत है, बच्चे भगवान की देन नहीं हैं। जब उनके जन्म को रोकना सम्भव नहीं था तब तो यह मानना थोड़ा बहुत ठीक भी था, पर अब जबकि सन्तति निग्रह भी सम्भव है और सन्तान को जन्म देना भी अपने हाथ में है, तो यह अन्धविश्वास हमारे रूढ़िग्रस्त मन की एक चालाकी भरी चाल मात्र है।

माना भी जाय कि बच्चे भगवान की देन हैं, वे ईश्वर की इच्छा से जन्म लेते हैं तो फिर जब वे बीमार पड़ते हैं और मरने के करीब होते हैं तो उन्हें ठीक रखने के लिए भागदौड़ नहीं करनी चाहिए। भगवान बच्चों को जन्म देता है, उन्हें आयु देता है, भोजन देता है तो जीवित रखने के लिए हम अपनी इच्छा क्यों चलाते हैं। वहाँ भी हमें सन्तोष करना चाहिए कि ईश्वर ने जन्म दिया है तो ईश्वर ही उसे वापस भी बुला रहा है। लेकिन उसे ठीक करने और स्वस्थ रखने की भाग-दौड़ दृढ़ता के साथ यह सिद्ध करती है कि बच्चों को भगवान की देन बताने के पीछे हमारे अपने निहित स्वार्थ या स्वयं की अनुचित इच्छाएँ ही रहती हैं।

कुछ लोग परिवार को सीमित रखना तो चाहते हैं पर उनकी आकांक्षा यह रहती है कि कम से कम एक पुत्र तो हो ही जाय और पुत्र की आशा में सन्तान की संख्या बढ़ाते चलते हैं। पुत्र और पुत्री में भेद करना हमारे संकीर्ण-स्वार्थी मन की ही कुचाल है। पुत्र प्राप्ति की लालसा के मूल में वही अपेक्षाएँ निहित रहती है, जिनका प्रारम्भ में उल्लेख किया जा चुका है कि कुल का नाम चलेगा, वंश की वृद्धि होगी, बुढ़ापे का सहारा मिलेगा और हमारे पास थोड़ी-बहुत सम्पत्ति है तो उसका पहरेदार तैयार होगा। उपरोक्त अपेक्षाएँ कितनी अविवेकपूर्ण हैं यह विचार किया ही जा चुका है और जहाँ तक सम्पत्ति के उत्तराधिकारी का प्रश्न है समाज से श्रेष्ठ उत्तराधिकारी कोई और नहीं।

यों तो आज के समय में ईमानदारी से उपार्जन और निर्वाह करने के बाद सम्पत्ति का अर्जन करना वैसे ही कठिन है और यह भी नोट कर रखना चाहिए कि आने वाला युग सम्पत्ति का नहीं-सद्गुणों का होगा, श्रम और सत्कार्यों का होगा। जिनके पास पैतृक सम्पत्ति है, उसे अपनी सन्तानों को सौंप जाने की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। माना कि अब तक उसे सुरक्षित रखा गया पर आगे भी वह सुरक्षित रहेगी इसकी क्या आश्वासना। सन्तान यदि कुकर्मी, अपव्ययी, विलासी या खर्चीली निकल गयी अथवा उसके साथ कुछ ऐसी परिस्थितियाँ जुड़ गयीं जो सम्पत्ति को बेच डाले या हाथ से गँवा दे तो। जब जरा भी निश्चित नहीं है तो हमें सन्तान के लिए इतना लालायित नहीं रहना चाहिए।

समय बदल गया है। अब स्वर्ग सन्तान वालों को नहीं, सीमित सन्तान वालों को मिलेगा। सन्तान के सम्बन्ध में हमें अपना दृष्टिकोण साफ रखना चाहिए तथा विवेक और औचित्य को स्वीकार करने के लिए आगे आना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संतान न होना ईश्वर की कृपा ही समझिये

संसार की तीन एषणाओं में एक पुत्रेषणा भी होती है और शायद सबसे भयंकर। मनुष्य के पास धन-सम्पत्ति, वैभव-विभूति प्रचुर मात्रा में हो किन्तु पुत्र न हो तो उसे संसार सूना दिखाई देता है। इस भाव से कि इसका कोई भोगने वाला नहीं है, यों ही सब ठग-ठगुओं के हाथ लग जायेगी, उसे अपनी सम्पत्ति काँटे-सी खटकने लगती है। इसके विपरीत सन्तानें हों और धन-दौलत न हो तो लोग यह सोच कर संतोष कर लेते हैं कि धन-दौलत नहीं घर तो बच्चों से भरा-पूरा है। इस झूँठे सन्तोष के कारण पुत्रेषणा-वित्तेषणा से भी बड़ी होती है और लोकेषणा तो किन्हीं-किन्हीं उन लोगों में होती है, जिनके पास बहुत कुछ है किन्तु समाज में उनका नाम नहीं रटा जाता, उनकी पूजा नहीं होती।

एषणाओं को विद्वानों ने पिशाचिनी कहा है। इनकी तृप्ति के लिये मनुष्य क्या-क्या कर्म-कुकर्म नहीं कर डालता। घूँसखोरी, ठगी, बेईमानी, अनीति, अत्याचार, शोषण, विश्वासघात, भ्रष्टाचार, हत्या, लूट-पाट, मक्कारी जैसे पापों के पीछे वित्तेषणा की बहुत कुछ प्रेरणा रहा करती है। लोकेषणा भी मनुष्य का कम पतन नहीं करती। किन्तु पुत्रेषणा तो मनुष्य को पागल ही बना देती है।

सन्तान के लिए मनुष्य बुरी तरह लालायित रहा करता है। उसके लिए वह पूजा-पाठ, जप-तप, दान-दक्षिणा, यज्ञ-याग करने के साथ-साथ ओझा, पंडित, ज्योतिषी, सयाने, मन्दिर, मस्जिद, श्मशान, कब्र, पीर मियाँ, मुल्ला, भूत-प्रेत, टोटका-टोना, व्रत-उपवास तन्त्र-मन्त्र, भेंट-बलिदान जैसे न जाने कितने कृत्य-कुकृत्य करने और मानने-पूजने को तैयार रहता है। उसकी पुत्रेषणा उसे यह समझने ही नहीं देती कि वह जो कुछ कर रहा है वह कहाँ तक उचित अथवा अनुचित है। इसमें कोई सार, कोई सत्य, कोई वास्तविकता है भी या नहीं ?

ऐसी घटनायें आये दिन सुनने में आती रहती हैं कि अमुक व्यक्ति ने सन्तान के लिए दूसरे के, अमुक के बच्चे को देवता की भेंट चढ़ा दिया। अमुक स्त्री ने एक बच्चे के कान या उँगलियाँ काटलीं, बाल उखाड़ लिये या उसे आग से दाग दिया। अमुक ने अमुक के मकान में आग लगादी। यह नित्य प्रति की घटनाएँ हैं जो पुत्रेषणा के कारण घटती रहती हैं। आये दिन अखबारों में छपता रहता है कि अमुक स्त्री पुत्र की कामना से चोर-चाण्डालों के चंगुल में फँसकर अपना सर्वस्व गवाँ बैठी। कपड़े, जेवर, रुपये तो साधारण से ज्योतिषी तथा रंगली ठग ले जाया करते हैं। इस एषणा के दुष्परिणाम लोग आये दिन देखते रहते हैं तब भी इसकी भयंकरता से सावधान नहीं होते।

संतान हो बहुत अच्छा है। किन्तु यदि नहीं है तो कोई ऐसी भयंकर बात नहीं है कि जिसके लिये इतना पागल हो जाया जाये। जहाँ तक सन्तान सुख का सवाल है, किसी भी सन्तान वाले से जाकर पूछा जा सकता है कि वह बेटे-पोतों अथवा बेटी-जमाई से क्या सुख पा रहा है। निश्चय ही अधिकांश लोग रोते और अपने भाग्य को कोसते मिलेंगे। आप उनसे सन्तान सुख का प्रश्न कीजिये और वे दुःख-क्लेशों का चिट्ठा खोल कर बैठ जायेंगे, परेशानियाँ और चिन्तायें गिनाने लगेंगे। तब पता नहीं कि लोग संतान के लिए क्यों तो इतने लालायित रहते हैं और क्यों अपने को अभागा समझते हैं।

बहुत से लोगों का विचार रहता है कि संतान न होने से समाज में हीन दृष्टि से देखा जाता है। सम्भव है कोई अविवेकी अथवा अविचारी व्यक्ति ऐसा करते हों। कोई समझदार, सज्जन तथा दूरदर्शी व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता। क्योंकि वह जानता है कि संतान का झंझट न होने से इस व्यक्ति के पास आत्म विकास, समाज-सेवा, स्वास्थ्य-निर्माण अथवा अन्य लोकोपयोगी कार्य करने के लिए सन्तानों से बोझिल व्यक्तियों से कहीं अधिक सुविधा तथा अवसर है। अब यह बात दूसरी है कि कोई ऐसी सुविधा पाकर व्यर्थ जीवन खोकर अथवा संतान के चक्कर में पड़ कर लोकोपयोगी कार्य सम्पादित न करे और किसी प्रकार अपवाद अथवा आलोचना का विषय बने। सन्तान नहीं है लोगों की हेय दृष्टि का डर है तो अच्छे काम करिये समाज सेवा में उतरिये, दूसरे के बच्चों को प्यार करिये, उनकी शिक्षा तथा विकास में सहायक बनिए। किसी की क्या मजाल कि हीन दृष्टि से देख सके अथवा सम्पन्न हीनता की ओर संकेत कर सके।

मूढ़ सन्तान वाले ही सन्तानहीनों की ओर उँगली उठाते देखे जाते हैं। इसमें और कोई तत्त्व नहीं होता केवल अपनी परेशानियों को छिपाने और दूसरे की निश्चिन्तता को घटाने अथवा उसका मूल्य कम करने के लिए ही ऐसा किया करते हैं। हाँ, एक कारण संतानहीनों को हेय दृष्टि से देखने का यह हो सकता है कि आये दिन की मूढ़ घटनायें देख-सुनकर सन्तान वाले सन्तानहीन से यह सोचकर घबराते रहते हैं कि यह हमारे बच्चों से ईर्ष्या करता होगा और किसी भी समय उससे प्रेरित होकर अथवा सन्तान पाने की इच्छा से किसी टोने-टोटके द्वारा उन्हें हानि पहुँचा सकता है। पर किसी भी सभ्य तथा समझदार व्यक्ति को इसलिए सन्तान के अभाव में अपने को हीन अथवा अभागा नहीं समझना चाहिए।

जहाँ तक सन्तान द्वारा कुल चलने और परलोक सुधरने की आशा का प्रश्न है, वह भी कोई महत्त्वपूर्ण बात नहीं है। परलोक केवल अपने सत्कर्मों से ही सुधरता और बनता है। कोई किसी के परलोक को बना-बिगाड़ नहीं सकता ! लोक में पिता के नाम पर पुत्र द्वारा जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुछ दान-पुण्य, पिण्ड-पारायण, तर्पण-वृद्धि किया जाता है, वह सब पिता के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने का एक ढंग है। पुत्र का अपना सत्कर्म है जिसका फल वह स्वयं पायेगा इससे पिता के परलोक का कोई सम्बन्ध नहीं है। जिस प्रकार अन्य देवताओं की पूजा की जाती है, उसी प्रकार पिण्ड-तर्पण आदि पितरों की पूजा विधि है। क्योंकि हमारे गुरुजन पूजनीय ही होते हैं और शरीरोपरान्त उन्हें देवता की योनि में माना जाता है।

संतानहीनता की स्थिति में उनके पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा के खर्च में कटौती जैसी सुविधा तथा सम्भावना को छोड़ कर लोग संतान की आशा-एषणा में अपने को घुलाया और कर्म-अकर्म किया करते हैं, यह आश्चर्य ही नहीं खेद का विषय है। अनेक लोग तो पुत्रेषणा की प्रेरणा से ऐसी-ऐसी गल्ती कर जाते हैं कि उनका पूरा जीवन अशांत एवं कंटकाकीर्ण बन जाता है। बहुत बार तो लोग स्त्री के होते हुये भी पुत्र की इच्छा से दूसरा विवाह कर लिया करते हैं। तब उन्हें कुछ समय बाद किस विपत्ति का सामना करना पड़ता है ? यह तो भुक्तभोगी ही जानते होंगे। हाँ देखने वाले इतना जरूर देखते हैं कि उनके घर में दिन-रात कलह मचा रहता है। न रात चैन न दिन चैन। दो प्रचंडकाओं के बीच विचारा पुरुष निरीह घुन की तरह पिसा करता है।

संतान न होने से बहुत से लोग पत्नी का ही तिरस्कार किया करते हैं। घर में सास, ननद चैन नहीं लेने देतीं। सभी सताते और ताने मारते हैं। पति तिरस्कार और उपेक्षा करता है—ऐसी असहनीय स्थिति में अनेक अबोध स्त्रियाँ न जाने क्या-क्या कर बैठती हैं और आत्महत्या की घटनायें तो रोज ही सुनने को मिलती रहती हैं। अनेक क्रूर, कूढ़मग्ज लोग तो संतान के लिए स्त्रियों को चीर-फाड़, दवा-दारू, टटके-टोटकों तथा व्रत-उपवासों द्वारा निर्जीव और पागल ही बना देते हैं।

संतानहीनता को अभाग्य अथवा सामाजिक कमी समझना भारी भूल है। आज के युग में संतान होना और उसके पालन-पोषण का उत्तरदायित्व इतना भयंकर कर्तव्य है कि लोगों से सँभालते नहीं सँभल रहा है। उनकी जिन्दगी का अणु-क्षण केवल इसी चक्कर में बीत जाता है। न तो वे कोई मनोविनोद कर पाते हैं और न पुण्य और न उनसे आत्म-कल्याण की जुगत बन पाती है। संतान है अच्छा है। नहीं तो उससे भी अच्छा है बहुत कुछ कर सकने की सुविधा तथा अवसर पाकर उसे यों ही पुत्रेषणा से संतप्त होकर आहें भरने और रोने-कलपने में बिता देना ठीक नहीं। इस निवृत्ति को भगवान की इच्छा और कृपा समझा जाये और अपनी उस संपन्नता को, सम्पत्ति को तथा निश्चिन्तता को आत्म-कल्याण, समाज-कल्याण, राष्ट्रहित और मानवता की सेवा में लगाना चाहिए। इन सत्कर्मों से मिलने वाली सुख-शान्ति संतान हीनता के झूँठे दुःख से हजार लाख गुना संतोषदायक होगी। पुत्रेषणा की पिशाचिनी से ग्रसित होकर पुण्य परमार्थ का ध्यान त्याग कर पागलों जैसे रोते-कलपते रहना और कर्म-अकर्म करना किसी भी दशा में बुद्धिमानी नहीं है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य और सन्तानोत्पत्ति

जनसंख्या की रिपोर्ट से पता चलता है कि भारतवर्ष के निवासियों की औसत आयु ४५ वर्ष से अधिक नहीं है जबकि अन्य देशवासियों की आयु इससे कहीं अधिक है। हमारे देश में जो बच्चे पैदा होते हैं उनमें प्रति हजार दो सौ बच्चे तो तत्काल मर जाते हैं। यही हालत औरतों की है। जो महिलाएँ कम उम्र में गर्भाधान करतीं हैं वे असमय में ही काल कवलित हो जाती हैं। बहुत सी महिलाएँ तो प्रसूति-गृह के बाहर भी नहीं हो पातीं और इसी बीच उनके जीवन की इति श्री हो जाती है। खोज करने पर पता चला है कि मुस्लिम महिलाओं की अपेक्षा हिन्दू महिलाओं की असामयिक मृत्यु अधिक होती है। इसके दो कारण हैं। पहला कारण कम उम्र में शादी का होना और दूसरा कारण जो इसी कारण के अन्तर्गत ही आ जाता है, कम उम्र में स्त्रियों का गर्भाधान करना है।

सर जान मेगा नामक अँग्रेज समाज विज्ञानी ने बहुत छानबीन के बाद बतलाया है कि भारत में एक हजार औरतों में सौ औरतें प्रसूतकाल में बच्चा पैदा होने के पहले ही मर जाती हैं और दो लाख स्त्रियाँ प्रतिवर्ष बच्चा जनने के बाद मर जाती हैं। कुछ वर्ष पूर्व जनेवा में भाषण करते हुए श्रीमती तरनी सिन्हा ने बतलाया था कि भारत की महिलायें अपने बच्चों को अफीम खिलाया करती हैं, इस कारण एक हजार में २४६ लड़के मौत के शिकार बन जाते हैं और जो शेष रह जाते हैं उनके अवयव अफीम खाने के कारण खराब हो जाते हैं। ५०३०४ आदमी विक्षिप्त, २३०८९५ लूले, ६०१३७० बहरे और १४७९११ आदमी कुष्ट रोग से पीड़ित हैं। सन् १९३० से लेकर सन् १९३९ तक ७७२३३ आदमी चेचक से शिकार हुए। १३३८९१५ आदमी प्लेग से मरे। २२७४३८ आदमी हैजे से मरे। ३८९८३२३ आदमी बुखार आने के कारण मर गये, इससे यह बात स्पष्ट हो गयी कि भारतवासियों के स्वास्थ्य की हालत दिनों-दिन खराब होती जा रही है। हमारे देश की आबादी दिन प्रतिदिन बढ़ रही है, इसी कारण यहाँ अधिकांश बच्चे अस्वस्थ पैदा होते हैं और जीवन भर वे रोगी से ही बने रहते हैं। भले आदमियों की अपेक्षा उन लोगों की आबादी अधिक बढ़ रही है जिनके लिये भर पेट भोजनों की व्यवस्था होना भी कठिन है। फल यह हो रहा है कि भुक्मरों की संख्या बढ़ रही है।

अब प्रश्न यह है कि इस बढ़ते हुए रोग को किस तरह से रोका जाय। किस उपायों का सहारा लेने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से देश की वर्तमान स्थिति को सुधारा जा सकता है। अन्य देशों ने जिन उपायों के द्वारा अपने देश की आवादी को कम किया है, यदि भारत में उन्हीं उपायों से काम लिया जाय तो बहुत लाभ हो सकता है। अन्य देशों में यदि कोई आदमी मृगी रोग से पीड़ित होता है तो देश की सरकार उसे विवाह करने की अनुमत नहीं देती, लेकिन भारत की दशा इसके सर्वदा विपरीत है। यहाँ सड़क पर भूखे पेट सो जाने वाले भिखारी भी विवाह करते हैं और एक-एक नहीं दो-दो, चार-चार सन्तानें पैदा करते हैं। मोण्टना प्रदेश में यह नियम है कि विवाह के पूर्व वर-वधू की डाक्टरी परीक्षा होती है । जब डाक्टर उन लोगों को पूर्ण स्वस्थ होने का प्रमाण पत्र दे देता है, तब विवाह करने की आज्ञा दी जाती है। जर्मन इस सम्बन्ध में तनिक उदारता से काम लेता है। वहाँ पर केवल उन लोगों के स्वास्थ्य की ही परीक्षा होती है जो कुष्ठ, मृगी या दूसरे प्रकार के किसी अन्य घातक रोग से पीड़ित होते हैं । हमारे देश के लिये यह बड़े दुख की बात है कि यहाँ पर इस प्रकार के विवाह करने वालों पर किसी तरह का प्रतिबन्ध नहीं है।

लोग इस बात का कारण जानना चाहेंगे कि भारतवासी विवाह और सन्तान पैदा करने के लिये क्यों उत्सुक रहते हैं। इसका प्रधान कारण हिन्दुओं की यह धारणा है कि पुत्र के तर्पण किये बिना मृत व्यक्ति की आत्मा को शान्ति नहीं मिलती। जॉन चाटल ने 'भारत में जनसंख्या का प्रश्न' नामक पुस्तक में लिखा है कि यदि किसी उच्च घराने की कोई लड़की अविवाहिता रह जाय तो भारतवासी उसे बहुत बुरा समझेंगे और लड़की के पिता की ३ पुश्त तक को इसका कुफल भोगना पड़ेगा। या तो वे जाति बहिष्कृत कर दिये जायेंगे या किसी अन्य रूप से समाज अपने क्रोध का बुखार उतारेगा।

ऐसे विवाह कदापि न होने देने चाहिए जिनके द्वारा विकृत सन्तानें पैदा होने की सम्भावना हो। यदि यह मालूम हो जाय कि कोई आदमी किसी ऐसे रोग से पीड़ित है कि विवाह के बाद यदि उसके सन्तान होगी तो सन्तान में रोग का अंश रहेगा तो ऐसे आदमी का विवाह हर्गिज न होने दिया जाय। यदि इस पद्धति का अनुसरण किया जाय तो थोड़े ही दिनों में भारत में स्वस्थ्य बच्चे पैदा होने लगें और बेकारी का प्रश्न भी बहुत कुछ मात्रा में हल हो जाय।

इन भ्रान्त विचारधाराओं का निवारण करके अविवाहित जीवन बिताने और अधिक आयु में विवाह करने को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। यदि राष्ट्रीय स्वास्थ्य की उन्नति करनी है तो अधिक बच्चे पैदा करने को बुरा समझने की प्रवृत्ति पैदा करना आवश्यक है।

समय रहते संभलने की समझदारी

बुद्धिमानी का तकाजा यह है कि अगले खाई-खंदकों को खंदेलते हुए उस राह पर चलने का प्रबंध करें, जिसमें जोखिम कम से कम हों। जिन्हें इस प्रकार की शक्ति नहीं मिलती है, वे ही अन्धी भेड़ों की तरह आगे चलने वाले के पीछे-पीछे चलते जाते हैं और खंदक में गिरकर प्राण गँवाते हैं। चूहे पकड़ने वाले पिंजड़े में घी की गन्ध वाला रोटी का टुकड़ा लगा देते हैं। चूहों को वह स्वादिष्ट खाद्य ही सब कुछ प्रतीत होता है। उतावली में यह नहीं सोच पाते कि पिंजड़े का इतना बड़ा जाल-जंजाल किसी धूर्तराज ने किसलिये बनाया और लुभाने का सरंजाम जुटाया है। दूरदर्शिता का अभाव ही है, जो मनमानी करने के लिये उकसाता है, तुरन्त के लाभ को ही सब कुछ बताता है और भविष्य में उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों के संबंध में कुछ भी सोचने के लिये अक्ल पर पर्दा डाल देता है।

कोई जमाना रहा होगा जब भूमि की अधिकता थी, जंगल बहुत थे। कृषि और पशुपालन के लिये जिनके पास आदमी अधिक थे, वे अधिक सुरक्षित रहते और अधिक लाभ उठाते थे। इसलिये सन्तानोत्पादन के साथ अनेक कठिनाइयाँ जुड़े रहने के साथ-साथ सुविधा-साधनों का लाभ देखते हुए उसे लाभदायक माना जाता रहा होगा, पर अब तो परिस्थितियाँ सर्वथा उल्टी हो गयी हैं और उस पुराने प्रचलन को यथावत् न अपनाये रहने पर जोर देती हैं। दुधारू पशुओं का सन्तानोत्पादन तो किसी प्रकार लाभदायक भी माना जाता है, क्योंकि बूढ़े होने से पहले ही उनकी चमड़ी-पसली उखाड़ कर जगह खाली करा ली जाती है, पर मनुष्य के संबंध में ऐसी व्यवस्था भी तो नहीं है।

बच्चे पालना कभी माता का छोटा सा खेल-खिलवाड़ स्तर का काम था। थोड़े समझदार होते ही बच्चे पशुपालन में हाथ बँटाने लगते थे। खेतों में भी उनकी कुछ न कुछ भूमिका जुड़ने लगती थी। दायित्व कुछ भी नहीं, शिक्षा आदि का झंझट भी नहीं था। समान स्तर के लोग विवाह-शादी, घरेलू उत्सवों की तरह बिना खर्च कर लियां करते थे। फिर वर-वधू के गृह प्रवेश के उपरान्त भी घर में एक परिश्रमी कार्यकर्ता की तरह आर्थिक सुविधा बढ़ाने में लाभदायक सिद्ध होने लगते थे। उन भूमि बहुलता के दिनों में जो कार्य अति सरल थे, वे अब परिस्थितियाँ बदल जाने से उल्टे कष्टकारक और भारभूत हो गये हैं।

कठोर शारीरिक श्रम की अभ्यस्त महिलाओं का प्रसव कार्य साधारण परिस्थितियों में ही सुलट जाता था। आज काम करने की शक्ति एवं रुचि घट जाने के कारण अधिकांश महिलाओं की श्रमशीलता अत्यधिक घट गई है। फलस्वरूप प्रसव वेदना अपेक्षाकृत अधिक सहनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़ती है और कई बार तो प्राणघातक तक हो जाती है। इन दिनों प्रसव के उपरान्त स्त्री का नया जन्म हुआ समझा जाता है। कामुक दबाव के आगे, भोलेपन या विवशता में सिर झुका देने का दुष्परिणाम महिलाओं को अपने स्वास्थ्य की, रूप-लावण्य की आहुति देने के रूप में चुकाना पड़ता है। शिशुपालन में उन्हें कितना समय एवं मनोयोग लगाना पड़ता है, कितनी कठिनाइयाँ सहनी पड़ती हैं उसे भुक्तभोगी ही जानती हैं। फिर भी प्रचलन तो प्रचलन जो ठहरा। सास, ननद, रिश्तेदार, सखी, सहेली आदि तक ताना मारते हैं कि इतने दिन हो गये फिर भी बच्चा क्यों नहीं हुआ ? इस अवसर से बचने के लिये भोली महिलाएँ भी उसी तरह सोचने और चाहने लगती हैं। पुरुषों के मस्तिष्क पर तो कामुक उत्तेजनाओं के साधन-सरंजाम बढ़ते चले जाने के कारण चिन्तन विकृतियों का लदान बढ़ता ही जाता है। इस माहौल में यौनाचार की प्रवृत्ति बढ़ती है और बच्चे पर बच्चे होने लगते हैं।

प्रकृति दुर्बल प्राणियों पर अधिक बच्चे उड़ेलने की जल्दी करती है कि अशक्तता के कारण वे जल्दी मरेंगे और उनके बच्चे भी कम ही जियेंगे। ऐसी दशा में वंश नाश का अवसर न आने देने के लिये दुर्बलों में उत्तेजना सदा बढ़ी-चढ़ी ही होती है। चूहे, खरगोश, मेंढक, मछली, कीड़े-मकोड़े इसीलिये अधिक बच्चे जनते हैं कि उनका जीवन खतरे से ही भरा रहता है। शूकर, कुत्ते, बिल्ली भी इस दौड़ में आगे रहते हैं। कारण स्पष्ट है कि जन्मदात्री की अशक्तता और सन्तान की दुर्बलता के रहते उस उत्पादन में से अधिकांश विनाश के मुँह में चला जाता है।

इसके विपरीत हाथी, सिंह आदि बलिष्ठ प्राणी न्यूनतम सन्तानोत्पादन ही करते हैं, क्योंकि समर्थता की छाया में स्वयं भी सुरक्षित रहते हैं और बच्चों को भी भली प्रकार सँभाल लेते हैं। जिस प्रजाति में बहुप्रजनन चल पड़े, उसके बारे में यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रकृति ने उसकी दुर्बलता, अशक्तता और अल्प जीवन को भाँप लिया है और इसी हेतु उसने बहुप्रजनन के रास्ते भार हल्का किये रहने का सोच बना लिया है।

मनुष्य की समझदारी इसमें है कि आगे की संभावनाओं पर विचार करते हुए आज की प्रवृत्तियों का निर्धारण करे। सर्दी, गर्मी, वर्षा आने से पहले ही उनका सामना करने योग्य आवश्यक प्रबन्ध कर लिया जाता है। खेती बोते और काटते समय तदनुरूप व्यवस्था बनाई जाती है। मौत, बुढ़ापे में क्या समस्यायें खड़ी होंगी, उनके सम्बन्ध में लोग पहले से ही विचार करना आरम्भ कर देते हैं। कर्ज लेते ही उसके चुकाने की योजना बनाई जाती है। ठीक इसी प्रकार बच्चे उत्पन्न करने जैसे असाधारण उत्तरदायित्व से भरे बोझ को वहन करने से पूर्व सामर्थ्य को तौल लेना चाहिये और तदुपरान्त कदम बढ़ाने का साहस करना चाहिये। इसे खिलवाड़ न समझा जाय। यह खिलौने से घर सजाना नहीं है, वरन् एक दायित्व है, जिससे घर-परिवार का हर सदस्य प्रभावित होता है। उनमें से हर घटक पर नयी जिम्मेदारी बढ़ती है और हर किसी की सुविधा पर, अर्थ व्यवस्था पर उसकी प्रतिक्रिया होती है, जिसमें यदि कमी रही या रखी गयी तो कई प्रकार के संकट एवं अपयश जुड़ जाते हैं।

यह प्रश्न व्यक्तिगत नहीं है। इस नये दायित्व का दबाव अभिभावकों या परिजनों पर ही नहीं, वरन् उससे समूचा देश, समूचा विश्व प्रभावित होता है। बूँद-बूँद मिलने से घड़ा भरने या जलाशय बनने की उक्ति चरितार्थ होती है। प्राय: बीस वर्ष में एक नयी पीढ़ी बन जाती है। एक जोड़ा चार बच्चे पैदा करे तो पाँच पीढ़ियों में वह क्रम १ से ४, ४ से १६, १६ से ६४, ६४ से २५६ हो जाता है, अर्थात एक सौ पचास प्रतिशत। उपक्रम पिछले दिनों अपने ढर्रे पर चलता रहा है और उसका विस्तार इतना अधिक हो गया है कि जमीन की उपज, जलाशयों की जल सम्पदा कम पड़ने लगी है। वायु प्रदूषण भी इसी कारण बढ़ा है। इस प्रकार आवास और निर्वाह की समस्या जटिल हो गयी है। वायु प्रदूषण भी इसी कारण बढ़ा है। इस प्रकार आवास और निर्वाह की समस्या जटिल हो गयी है। घिचपिच से अनेकों कठिनाइयाँ बढ़ती हैं। स्वास्थ्य, शिक्षा और आजीविका जैसी प्रमुख आवश्यकताओं की पूर्ति कठिन हो जाती है। प्रगति के लिये किये गये जिन प्रयासों से बड़ी-बड़ी आशायें लगायी जाती हैं, वे सभी धूमिल हो जाती हैं।

मनुष्य सर्वथा एकाकी नहीं है। उसकी सामाजिकता पारस्परिक मिलन से सुविस्तृत सामाजिकता उत्पन्न करती है। एक ढेला फेंकने से समूचे तालाब में लहरें उठने लगती हैं। एक की गलती यदि अन्य लोग भी साधारण बात मानकर प्रचलन की तरह अपनाने लगें तो फिर उसका अन्तिम परिणाम सभी के लिये भयंकर विपत्ति बन करे सामने आयेगा।

जनसंख्या की वृद्धि ऐसी ही विनाशकारी दुष्प्रवृत्ति है, जो सीमा का उल्लंघन करने पर समस्त संसार के लिये, प्राणि मात्र के लिये विपत्ति का कारण बन सकती है। इसे समय रहते रोकने में ही समझदारी है।

सन्तानोत्पादन आवश्यक न माना जाए

सैद्धान्तिक दृष्टि से देखा जाय तो सन्तान पैदा करना इतनी जिम्मेदारी का काम है जिसे स्वीकार करने का साहस बिरले लोग ही कर सकते हैं। किन्तु काम वासना के वशीभूत लोग चाहे-अनचाहे सन्तान की जिम्मेदारियाँ सिर पर लादते चले जाते हैं। यह काम वासना हर प्राणी के अन्दर प्रकृति ने सृष्टि का सन्तुलन बनाये रखने के लिये की है। सामान्य स्थिति में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सन्तानोत्पादन के अत्यन्त कठिन कष्टसाध्य और भारी उत्तरदायित्वों भरी प्रक्रिया स्वीकार करने से समझदार मनुष्य सर्वथा इन्कार कर सकते थे। उन्हें जीवन की दूसरी धाराओं में अपनी क्षमताओं का नियोजन स्पष्टत: अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण लग सकता था। ऐसी दशा में प्रकृति की यह इच्छा पूरी न होती कि प्राणियों की पीढ़ियाँ जीवित रहें और वंश चलते रहें। अस्तु, प्रकृति ने एक विचित्र और विलक्षण क्रम प्राणियों के गले बाँध दिया है कि वे काम कौतुक के लिए लालायित होकर अनायास ही उस बोझ को गले से बाँध लें जिसे वे सम्भवत: विवेक पूर्वक स्वीकार न करते।

सन्तानोत्पादन के पक्ष में एक यह मान्यता भी कार्य करती है जिसके अनुसार यह समझा जाता है कि सन्तानोत्पादन हर व्यक्ति का सामाजिक कर्तव्य है, किन्तु यह मान्यता आज सही नहीं है। किसी जमाने में वीरान भूमि ही सर्वत्र फैली पड़ी थी। वन्य प्रदेश योजनों भूखण्ड घेरे हुये थे। वन्य पशुओं का साम्राज्य था। प्रकृति सम्पदा प्रचुर मात्रा में बिखरी पड़ी थी पर उसका उत्खनन एवं उपयोग अल्पसंख्यक मनुष्यों के लिए अति कठिन था। उस जमाने में मानवी जनसंख्या की वृद्धि आवश्यक समझी गई होगी ओर सन्तानोत्पादन को प्रसन्नतादायक सौभाग्य माना गया होगा। तब उत्पन्न हुए मनुष्यों के लिए अन्न एवं अन्य प्रकृति सम्पदाओं की प्रचुर मात्रा उपलब्ध थी और निर्वाह के साधनों में कोई न्यूनता प्रतीत नहीं होती थी। ऐसी दशा में अधिक प्रजनन उपयोगी समझा गया होगा और उसे कई काल्पनिक एव वास्तविक तर्क प्रस्तुत करके उपयुक्त सिद्ध किया गया होगा। उन दिनों सन्तान के द्वारा पिण्डदान मिलने और स्वर्ग पाने की मान्यता गढ़ी गई होगी। सन्तान रहितों की भर्त्सना की गई होगी। उस युग में इस प्रकार की मान्यताओं का कुछ महत्त्व भी हो सकता था।

आज की स्थिति सर्वथा विपरीत है। इन दिनों परिस्थितियाँ ठीक उल्टी हो गई हैं। संसार भर में जनसंख्या चक्रवृद्धि गति से अत्यन्त तेजी से बढ़ी है और इतनी तेजी से बढ़ रही है कि निर्वाह के प्राकृतिक साधनों का पूरे उत्साह के साथ दोहन करने पर भी वहाँ सर्वथा अपर्याप्त सिद्ध हो रहे हैं। अब कृषि योग्य जमीनों का चप्पा-चप्पा कुरेद डाला गया है। खाद्य उत्पादन में सारा कौशल झोंक दिया गया है फिर भी हर दिशा से 'अपर्याप्त' का हा-हाकार सुनाई पड़ रहा है। माँग अधिक और उत्पादन कम होने के कारण महँगाई आकाश चूमने लगी है। घास पर निर्वाह करने और नकली दूध बनाने की तैयारियाँ चल पड़ी हैं। बढ़ती हुई आबादी के लिए अन्न, वस्त्र, निवास, रोजगार, वाहन, शिक्षा, चिकित्सा जैसी अनिवार्य आवश्यकताओं को जुटा सकना कठिन पड़ रहा है। सरकारें अनेक प्रकार की निवास योजनाएँ बनाती हैं किन्तु उनकी सफलता बढ़ती हुई आबादी के कारण जलते तवें पर पानी की बूँदें पड़ने की तरह अपर्याप्त सिद्ध होती हैं।

अर्थशास्त्रियों की दृष्टि में संसार की सबसे बड़ी समस्या बढ़ती हुई आबादी है। दूरदर्शी विचारकों ने मानव समाज को चेतावनी दी है कि यदि प्रजनन का उत्साह न रुका तो एक शताब्दी के भीतर ही आधी जनसंख्या को निर्वाह साधनों के अभाव में तड़प-तड़प कर प्राण देने पड़ेंगे।

धरती की उत्पादन शक्ति सीमित है। वह असंख्य जनसंख्या के लिए आहार नहीं दे सकती। कोई सरकार शिक्षा, यातायात, उद्योग, व्यवसाय, सुविधा-साधनों की सीमित व्यवस्था ही कर सकती है। अमर्यादित सन्तान उत्पादन की सीमा तक उन्हें नहीं बढ़ाया जा सकता। भारी विपत्ति यह है कि वह चक्रवृद्धि गति से बढ़ती है। यदि एक से चार की उत्पत्ति हो तो पहली पीढ़ी में ४, दूसरी में १६, तीसरी में ६४, चौथी में २५६ तथा पाँचवीं में १०२४ हो जाती है। पाँच पीढ़ियाँ प्राय: सौ-डेढ़ सौ वर्ष में पूरी हो जाती हैं। इतनी अवधि में एक व्यक्ति से हजार बन जायँ तो धरती पर खड़े होने को भी जगह न बचेगी। अच्छा इतना ही है कि प्रकृति अपने नृशंस कुल्हाड़े से इस अवांछनीय उत्पादन को काटती, कुचलती, जलाती एवं बर्बाद करती चली जाती है, तब कहीं सन्तुलन बना रह पाता है। महामारी, युद्ध, भूकम्प, बाढ़, अकाल आदि के कष्टदायक कुल्हाड़े चलते हैं और बढ़ी हुई जनसंख्या रोती-रुलाती अपने घर चली जाती है।

अब चिकित्सा आदि के सुविधा साधन बढ़ गये हैं। अस्तु, मृत्यु दर घट रही है और जीवन की औसत आयु बढ़ोत्तरी पर है। फलत: जन्म दर की तुलना में मृत्यु दर कम हो गई है और आबादी तेजी से बढ़ रही है। इस कुचक्र का सामना कर सकना किसी सरकार के लिए सम्भव नहीं हो सकता। आजीविका, शिक्षा, चिकित्सा, यातायात आदि के साधन ऐडी-चोटी एक करने पर भी उतने नहीं जुट सकते जितनी कि आबादी बढ़ जाती है। अस्तु, अभाव और संकट निवारण के लिए किये गये सारे प्रयास बेकार हो जाते हैं—समस्याएँ जहाँ की तहाँ खड़ी रहकर और आगे बढ़ जाती हैं फलत: असन्तोष बढ़ता और अशान्ति फैलती है।

आज की परिस्थितियों की तुलना लाखों वर्ष पहले की स्थिति से नहीं हो सकती। आज उस समय की उन मान्यताओं का समर्थन नहीं किया जा सकता, जिनमें सन्तान वालों को सौभाग्यवान और सन्तानरहित को अभागा कहा जाता था। आज तो ठीक उलटी परिभाषा करनी पड़ेगी। जो जितने अधिक बच्चे उत्पन्न करता है, वह संसार में उतनी ही अधिक कठिनाई उत्पन्न करता है और समाज का उसी अनुपात से भार बढ़ाता है। जबकि करोड़ों लोगों को आधे पेट सोना पड़ता है तब नई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आबादी बढ़ाना उन विभुक्षितों के ग्रास छीनने वाली नई भीड़ खड़ी कर देना है। आज की स्थिति में सन्तानोत्पादन को दूसरे शब्दों में समाजद्रोह का पाप कहा जाय तो तनिक भी अत्युक्ति नहीं होगी।

अवांछनीय प्रजनन कितने संकट उत्पन्न करता है? इसे गम्भीरता से समझने का प्रयत्न करने पर लगता है, **'मरणं बिन्दु पातेन'**— की उक्ति अक्षरशः सही है। विशेष प्रकार की बिच्छू मादा और एक खास किस्म की मकड़ी प्रजनन के साथ ही मृत्यु के मुख में चली जाती है। मनुष्य को वैसा तो नहीं करना पड़ता पर त्रास लगभग उतना ही मिलता है।

माता के रक्त-माँस से ही बच्चे पैदा होते हैं, उसी का रक्त दूध बनकर सन्तान का पोषण करता है। नौ महीने पेट में रखते समय उसे ही लगभग रुग्ण स्थिति का कष्ट सहना पड़ता है। प्रसव पीड़ा का वर्णन नहीं हो सकता। कई बार तो वह मृत्यु के समय की यातना से भी अधिक कष्टकारक होती है। बहुत बड़ी संख्या में स्त्रियाँ असह्य प्रसव पीड़ा में ही हर साल प्राण त्यागती हैं। जो बच जाती हैं वे शिशु पालन के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले दबाव के कारण चिरस्थायी रुग्णता की शिकार बन जाती हैं। दिन भर काम, रात भर बच्चों की साज-सँभाल उन्हें दिन-दिन थकाती ही चली जाती है। दरिद्रता के कारण अधिकांश माताओं के लिये पौष्टिक भोजन, दवादारू तथा विश्राम का प्रबन्ध नहीं हो पाता। इस प्रकार एक के बाद दूसरे बच्चे के बोझ से लदती जाने वाली नारी अर्ध मृतक बन कर ही मौत के दिन पूरे करती है। संतान उत्पन्न करके नारी के हाथ क्या लगा ? इसका लेखा-जोखा लिया जाय तो दुर्बलता, रुग्णता, पीड़ा, अविश्रान्ति असमय की कुरूप वृद्धावस्था और अकाल मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ उसे मिल सका हो ऐसा प्रतीत नहीं होता।

पिता को इस सन्तानोत्पादन से क्या मिला? उसका आर्थिक भार लगातार बढ़ता गया। बच्चे की बढ़ती हुई आयु अधिक खर्चे की माँग करती है। नवजात शिशु भी लगभग वयस्कों के बराबर ही खर्च करा लेते हैं। उन्हें दूध, खिलौने, आकर्षक कपड़े, साज-संभाल की व्यवस्था, दवादारू आदि में थोड़ा-थोड़ा करके भी ढेरों पैसा चला जाता है। वे बड़े होते हैं तो अधिक दाम के कपड़े, जेब खर्च, शिक्षा खर्च की रकम बढ़ती है। विवाह-शादी, उन्हें काम-धन्धे में लगाना और उत्तराधिकार में कुछ न कुछ छोड़ने का खर्च जोड़ा जाय तो वे आँकड़े चौकाने वाले होते हैं। जिनके कई बच्चे हैं वे अगर हिसाब लगाने बैठें तो पता चलेगा कि जन्म से लेकर स्वावलम्बी होने तक की अवधि में उन पर कितनी बड़ी धन राशि खर्च हो गई है। उनके लिए कितनी अधिक चिन्ता करनी पड़ी है। उनके लिए आवश्यक साधन जुटाने में उपयुक्त आजीविका स्रोत जब कम पड़ते हैं तो अनुपयुक्त तरीके अपनाने के लिए विवश होना पड़ता है। विवाह-शादियों में खर्च होने वाली राशि जुटाने के लिए अधिकतर लोग वे साधन अपनाते हैं, जिन्हें नैतिक नहीं कहा जा सकता।

प्रजनन के लिए आरम्भ में अति उत्साही व्यक्ति कुछ ही समय में अपनी वह मूर्खता अनुभव करते हुए सिर धुनकर पछताते हैं और सोचते हैं कि जिसे लाभ या वरदान समझा गया था वह भारी घाटे से, संकट से लदा अभिशाप भर था।

हर नया बच्चा अपने पूर्ववर्ती भाई-बहिनों की रोटी और उन्नति में हिस्सा बँटाता आता है और उनके उज्ज्वल भविष्य को धूमिल करता है। हर बाप अपने माता-पिता और भाई-बहिनों की सेवा करके पारिवारिक ऋण से मुक्त होने की क्षमता गँवाता चला जाता है। वृद्ध माता-पिता की सेवा करना अपने छोटे भाई-बहिनों को शिक्षा सहायता करने के धर्म कर्तव्यों का पालन उनके लिए सम्भव ही नहीं हो सकता, जो आये दिन बच्चे जनने की मूर्खता करते चले जाते हैं। ऋण चुकाने से मुँह मोड़ना और अवांछनीय अतिथियों को न्यौत-न्यौत कर बुलाते चलना किस प्रकार बुद्धिमानी हो सकती है, इसे वे ही लोग बता सकते हैं जो सन्तानोत्पादन में उत्साह प्रदर्शित करते और उसे प्रसन्नता का कारण मानते हैं।

दरिद्रता के वातावरण में जन्मे बालकों का शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक विकास अधूरा एवं विकृत हो रहता है। इस स्तर की बढ़ती हुई जनसंख्या अपने समय तथा समाज के लिये मात्र कठिनाइयाँ और समस्यायें ही उत्पन्न करती हैं। दुर्बल शरीर वाली पीढ़ियाँ अपने गुजारे भर के लिये पर्याप्त उत्पादन नहीं कर सकतीं फिर राष्ट्रीय समृद्धि में तो उनका योगदान होगा ही क्या? आये दिन बीमार पड़े रहने वाले लोग स्वयं कष्ट पाते हैं, घर वालों पर भार बनते हैं, दवादारू पर पैसा बर्बाद कराते हैं और बीमारी के छूत से दूसरों को बीमार करते हैं। इसी प्रकार मानसिक विकृतिग्रस्त बच्चे आये दिन उपद्रवों और अपराधों की भूमिका बनाते रहते हैं। जिन लोगों के बीच रहते हैं उन्हें चैन से नहीं रहने देते, स्वयं भी कहाँ चैन से रहते हैं। यह उस अविकसित स्थिति का परिणाम है जो अभावग्रस्त परिस्थितियों में जन्म लेने के कारण उनके गले बँध गई है।

वर्तमान परिस्थितियों में प्रजनन कर्म में प्रवृत्त होने से पूर्व हर विवेकशील नर-नारी को हजार बार विचार करना चाहिये कि क्या वह सचमुच समुन्नत स्तर की सन्तान का निर्माण करने की मनःस्थिति और परिस्थिति में हैं? यदि नहीं तो बुद्धिमत्ता इसी में है कि अपनी आर्थिक स्थिति जननी की शारीरिक स्थिति को, बच्चों के भविष्य को और देश की प्रगति को बर्बादी से बचाने के लिए सन्तानोत्पादन पर विराम लगा कर ही रखा जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अमर्यादित प्रजनन की समस्या और समाधान

प्रसिद्ध अँग्रेजी विद्वान माल्थस ने सन् १९७८ में जन-संख्या वृद्धि की विभीषिका पर एक निबन्धावली लिखी। जिसमें विभिन्न प्रकार के भारी संकटों पर प्रकाश डाला गया है। अपने दूरदर्शी विचार प्रस्तुत करते हुए माल्थस ने लिखा है कि "जीवित रहने के लिए प्रकृति के अंचल में उपलब्ध आहार की तुलना में प्राणियों ने अपनी संख्या अधिक बढ़ा ली है। वृद्धि का यह क्रम निरन्तर जारी है। पर जितनी मात्रा आहार की प्रकृति के आँगन में विद्यमान है उसी अनुपात में प्राणी जीवित रह सकते हैं। इस सन्तुलन को बनाये रखने के लिए ही प्रकृति प्रकोपों का संरजाम जुटाती तथा इस माध्यम से अनावश्यक वृद्धि में रोक-थाम करने की व्यवस्था बनाती है।"

सुप्रसिद्ध विद्वान फ्रैंकलिन का कहना है कि जीव-जन्तुओं एवं वनस्पतियों में स्वाभाविक रूप से बढ़ने की अद्भुत क्षमता है। यदि वे एक दूसरे की वृद्धि में बाधक न बनें तथा बढ़ने के लिए आहार एवं स्थान की कमी न हो तो उनकी वृद्धि की कोई सीमा न होगी। इस पृथ्वी पर यदि विभिन्न प्रकार की वृक्ष, वनस्पतियाँ न होतीं तथा प्रकृति ने एक प्रकार का एक ही वृक्ष लगाया होता तो भी एक वृक्ष ही अपनी उत्पादन क्षमता से इतना विस्तार कर लेता कि समस्त पृथ्वी उससे भर जाती।" वनस्पति शास्त्र विशेषज्ञ लिनियन लिखते हैं कि यदि एक वृक्ष से केवल दो बीज प्रतिवर्ष उत्पन्न हों तथा वे जीवित रहें तो मात्र बीस वर्षों में एक वृक्ष से दस लाख वृक्ष हो जायेंगे। बरगद, पीपल आदि वृक्षों से कई करोड़ बीज प्रति वर्ष पैदा होते हैं। यदि प्रत्येक को उगने के लिए स्थान, प्रकाश एवं पोषण मिलता रहे तो सभी बड़े वृक्ष बन जायेंगे। किन्तु इनमें से अधिकांश गल जाते हैं। कुछ को पशु-पक्षी खा जाते हैं। जो थोड़े उगते भी हैं उनमें से शक्तिशाली अपने समीपवर्ती कमजोर को दबा देते हैं। इस तरह प्रकृति के नियन्त्रण की स्वसंचालित प्रक्रिया चलती रहती है।

आधुनिक विकासवाद के जनक चार्ल्स डारविन अपनी पुस्तक 'ओरिजन आफ स्पेसीज' में लिखते हैं कि यदि पशु-पक्षियों की वृद्धि नियन्त्रित न हो, मात्र एक जोड़े जानवर के बच्चों से ही कुछ ही सदियों में सारी पृथ्वी भर जायेगी।

पर इस तथ्य के साथ यह सत्य भी जुड़ा हुआ है कि प्रकृति ने जिस उदारता के साथ वनस्पतियों एवं जीव-जन्तुओं को अपनी संतति बढ़ाने की सामर्थ्य दे रखी है, दूसरी ओर आहार आदि साधनों को सीमित करके इस असीम अभिवृद्धि में रोक भी लगाती है। यदि यह व्यवस्था प्रकृति द्वारा न की गयी होती तो कुछ ही वर्षों मे मात्र एक जोड़े पशु अथवा पक्षियों से सारी पृथ्वी भर जाती। किन्तु कठोर प्रकृति नियम व्यवस्था के कारण उतने ही जीवित रह पाते हैं, जितने कि सृष्टि सन्तुलन को बनाये रखने के लिए आवश्यक हैं। यही बात वृक्ष, वनस्पतियों के संदर्भ में भी है। जीव जगत में अस्तित्व की रक्षा के लिए 'स्ट्रगल फार एक्जिस्टेन्स' ऐण्ड 'सरवाइवल ऑफ दी फिटेस्ट' का डारविनवादी सिद्धान्त चलता रहता है। अनियंत्रित विस्तार के नियमन एवं नियंत्रण का क्रम गतिशील रहता है। सृष्टि संतुलन को कायम रखने के लिए यह व्यवस्था आवश्यक है और उपयोगी भी। वह लाखों को एक क्षण में पैदा करती है पर अधिकांश को नष्ट-भ्रष्ट कर डालती है। करोड़ों को जीवन देती है पर दूसरे ही क्षण छीन भी लेती है।

सृष्टि का मुकुटमणि और सर्वाधिक बुद्धिमान प्राणी होने के नाते अन्य प्राणियों की भाँति मनुष्य प्रकृति के समक्ष पराधीन नहीं है। प्रकृति पर नियमन एवं नियंत्रण की सामर्थ्य भी उसने विकसित करली है। अस्तु, प्रकृति के अवरोध, प्रकोप उसकी अभिवृद्धि को रोकने में एक सीमा तक ही कारगर हो पाते हैं। पहले वैज्ञानिक क्षेत्र में इतना विकास भी नहीं हुआ था। आज जैसे चिकित्सा के साधन भी उपलब्ध नहीं थे। प्रकृति प्रकोपों से बचाव के लिए इतने सुविकसित संसाधन भी न थे। यही कारण था कि जन-संख्या का विस्तार अपरिमित नहीं होने पाता था। प्रकोपों, महामारियों आदि द्वारा प्रकृति अनियन्त्रित वृद्धि को रोकती थी। प्रकृति पर एक सीमा तक नियन्त्रण पा लेने से मनुष्य ने अपनी बुद्धि व कुशलता के सहारे सुरक्षात्मक उपाय अधिक विकसित कर लिए हैं। मृत्यु दर में भारी गिरावट और जन्म दर में असामान्य वृद्धि हुई है।

ऐतिहासिक गवेषणाओं के अनुसार औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व सम्पूर्ण विश्व की कुल जन-संख्या ५० करोड़ थी। चक्रवृद्धि ब्याज की भाँति क्रमशः बढ़ते-बढ़ते १९वीं सदी के मध्य तक एक अरब तक जा पहुँची। १९५६ तक ३ अरब तथा १५ वर्षों में बढ़कर लगभग चार अरब तक पहुँच गयी। ऐसी सम्भावना है कि यदि बढ़ने की गति यही रही तो इस सदी के अन्त तक विश्व की कुल जनसंख्या ६ अरब तक पहुँच जायेगी। इसमें सर्वाधिक वृद्धि एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका देशों में हुई है। पूरे विश्व का तीन चौथाई अर्थात् ३ अरब आबादी मात्र इन देशों में सिमटी है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार सन् २००० तक हर दूसरा व्यक्ति एशिया का होगा।

यों तो जन-संख्या हर देश में बढ़ी है पर विश्व में चीन के बाद दूसरा नम्बर भारत का आता है। मात्र ८० वर्षों के अन्तराल में भारत की जन-संख्या में तीन गुने का अन्तर आया है। सन् १९०१ में भारत की कुल आबादी २३ करोड़ ८३ लाख, १९११ में २५ करोड़ २० लाख, १९२१ में २६ करोड़ १३ लाख, १९३१ में २७ करोड़ ८९ लाख, १९४१ में ३१ करोड़ ८६

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लाख, १९५१ में ३६ करोड़ १० लाख, १९६१ में ४३ करोड़ ९२ लाख, १९७१ में ५४ करोड़ ८१ लाख से बढ़ते-बढ़ते १९८१ तक ६८ करोड़ ३८ लाख तक जा पहुँची है। मात्र पिछले दस वर्षों में २४-७५ प्रतिशत अर्थात् १३ करोड़ ५० लाख की वृद्धि जनसंख्या में हुई है।

'दी गार्जियन वीकली' २६ अप्रैल, १९८१ में जेम्स कैमरोन ने भारतीय जन-संख्या की बढ़ोत्तरी के विषय में लिखा है कि मात्र दस वर्षों में भारत एक जापान और दो आस्ट्रेलिया पैदा करता है। संयुक्त राज्य अमेरिका यू० एस० एस० आर० तथा इन्डोनेशिया की कुल सम्मिलित आबादी मिलकर भी भारत से कम पड़ती है। कुछ विश्व के क्षेत्रफल का २४ प्रतिशत भारत में है जबकि जनसंख्या का १५ प्रतिशत। इस असन्तुलन की परिणति ही गरीबी, बेकारी, बेराजगारी, अशिक्षा जैसे दुष्परिणामों के रूप में परिलक्षित हो रही है।

बढ़ती हुई जन-संख्या की रोकथाम के लिए अन्य देशों ने अपने-अपने देशों की परिस्थितियों के अनुरूप कार्यक्रम बनाये हैं और उनके क्रियान्वयन के लिए कठोर कदम भी उठाये हैं। अपने यहाँ की परिस्थितियाँ तो जन-संख्या वृद्धि का अतिरिक्त भार सहन कर सकने में सर्वथा अक्षम हैं। अभी जितनी आबादी है उतनी के लिए अन्न, वस्त्र, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य की सुविधा जुटा पाना कठिन पड़ रहा है और अधिक बढ़ने से तो स्थिति और भी विकट हो सकती है। फिर रोकथाम की व्यवस्था कैसे बने? अनियंत्रित प्रजनन को किस तरह रोका जाय? इस प्रश्न का हल अभी भी व्यावहारिक स्तर पर नहीं निकल सकता है। सरकारी तंत्र इस दिशा में प्रयत्नशील है और यह प्रयास चलना भी चाहिए। पर इसके साथ ही कुछ ऐसे व्यावहारिक कदम भी उठाये जाने चाहिए जो प्रजनन को बढ़ावा देने की रोकथाम करने में सक्षम हों इस दिशा में कुछ रचनात्मक सुझाव ऐसे हैं, जिनके कार्यान्वित करने पर आशातीत सफलता मिल सकती है।

देश में एक ऐसी विचार क्रान्ति की आवश्यकता है जो कामुक एवं अश्लील चिन्तन की रोकथाम कर सके। नारी के प्रति कामुक एवं अश्लील चिन्तन अधिक प्रजनन का कारण बनता है। अश्लीलता को बढ़ावा देने वाले विज्ञापनों, साहित्यों, पत्र-पत्रिकाओं एवं स्वच्छन्द यौनाचार के प्रतिपादनों पर कड़ाई से प्रतिबन्ध लगे। इसके लिए आवश्यकता पड़े तो विरोध एवं संघर्ष के लिए विचार शील वर्ग का संगठन खड़ा किया जाय। नारी को वासना तृप्ति का साधन नहीं सहयोगी और सहधर्मिणी माना जाय, इसके लिए ऐसे वातावरण निर्माण की आवश्यकता है, जो श्रृंगारिकता एवं कामुकता के तत्वों से मुक्त हो। साहित्यकार, कवि, कलाकार, गायक प्रभृत्ति प्रतिभाएँ नारी के प्रति पवित्रतम भाव उभारने में महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ निभा सकती हैं। ऐसे चलचित्रों एवं विज्ञापनों पर भी रोकथाम होनी चाहिए जो मस्तिष्क को उत्तेजित करते तथा कामुक चिन्तन को बढ़ावा देते हों।

विवाह की उम्र बढ़ा देने से भी जन-संख्या नियंत्रण में एक सीमा तक सहयोग मिल सकता है। शरीर शास्त्रियों का निष्कर्ष है कि नारियों में प्रजनन सर्वाधिक पन्द्रह और तीस वर्ष के मध्य की अवधि में होता है। उनकी प्रजनन क्षमता सत्तरह और पच्चीस के बीच सबसे अधिक पायी गई। अपने यहाँ कच्ची आयु में ही लड़के-लड़कियों को विवाह में बाँध देने की कितने ही स्थानों परम्परा है। अपरिपक्व मस्तिष्कों के लिए मनोरंजन के लिए सबसे आकर्षक केन्द्र बिन्दु सेक्स बनता है। जिसकी परिणति बच्चों के रूप में होती है। भारत की अधिकांशतः नारियाँ पच्चीस-तीस वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते कितने ही बच्चों की माँ बन चुकी होती है। किशोरावस्था का तूफानी आवेश जब कई बच्चों के रूप में प्रकट होता है तब उन्हें अपनी गलती का भान होता है, तब तक गरीबी और दरिद्रता अपना पल्ला उनके चारों ओर पसार चुकी होती हैं।

शारदा एक्ट के पास होने से बाल विवाह अपराध की श्रेणी में आ गया है पर अज्ञानवश आज भी राजस्थान, म० प्र०, उत्तर प्रदेश जैसे कितने ही प्रदेशों में यह प्रचलित है। इस नियम की उपेक्षा-अवमानना होते इन प्रान्तों में सहज ही देखा जा सकता है। विवाह के लिए लड़के एवं लड़कियों की निर्धारित आयु क्रमशः २१ और १८ वर्ष है। इसे भी बढ़ाया जाना चाहिए। विवाह के लिए पुरुष की आयु २५ और ३० के बीच तथा नारी की २० और २५ के बीच बढ़ा देने से भी प्रजनन में बढ़ोत्तरी को रोका जा सकता है। इसके साथ ही सुशिक्षित, स्वस्थ, अनुभवी, जिम्मेदार, स्वावलम्बी व्यक्तियों को ही विवाह के लिए प्रोत्साहन एवं अनुमति मिलनी चाहिए। यह नियम नर और नारी दोनों पर समान रूप से लागू होता है।

जनस्तर एवं सरकारी स्तर पर इनका क्रियान्वयन हो सके तो ही इस सुरसा के मुँह की भाँति बढ़ती जन-संख्या पर नियन्त्रण कर सकना सम्भव हो सकता है। विश्व के अनेकों देशों ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठाये हैं। यहाँ भी अविलम्ब जन-संख्या वृद्धि की रोकथाम के लिए ठोस कदम उठने चाहिए। इसके बिना देश की प्रगति के लिए किए जाने वाले अन्यान्य भौतिक प्रयास सफल नहीं हो सकेंगे।

जन्मदर घटाने में इस प्रकार योगदान दीजिए

हमारे देश की जनसंख्या द्रुतगति से बढ़ती जा रही है, जिसके कारण देश की प्राप्ति एवं समृद्धि को एक प्रकार से संकट ही उत्पन्न हो गया है। एक ओर तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रति डेढ़ सैकिण्ड के बाद एक बालक का जन्म हो रहा है, दूसरी ओर देश में जो स्वास्थ्य योजनाएँ चली हैं उससे मृत्यु दर में काफी कमी आ गयी है। पहले प्रत्येक भारतीय की औसत आयु २३ वर्ष थी किन्तु अब ५० वर्ष हो गयी है और संभावना है कि जैसे-जैसे स्वास्थ्य योजनाएँ विकसित होती जायेंगी, अगले १० वर्षों में वह ५५-६० वर्ष तक बढ़ जायेगी। इसका अभिप्राय यह हुआ कि औसत आयु तो पहले से दुगनी से भी अधिक बढ़ गयी है परन्तु उसी अनुपात में जन्मदर में कमी नहीं हुई है अतएव जनसंख्या अविराम गति से बढ़ती जा रही है।

जब तक मृत्यु-दर तथा जन्मदर के मध्य सामंजस्य स्थापित नहीं होगा, तब तक जनसंख्या का नियन्त्रण असम्भव है। जन्मदर की बाढ़ को रोकने के लिए अनेक उपाय खोजे गये हैं, कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि यदि लड़कियों के विवाह की न्यूनतम आयु २० वर्ष कर दी जाये तो जन्मदर में ३०% तक की कमी आ जायेगी। देर से विवाह करने से कम बच्चे होंगे। अतएव इस कानून को निश्चित रूप से लागू कर दिया जाना चाहिए। जो उल्लंघन करें, उन्हें सरकार दण्डित करे।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या विवाह की आयु बढ़ा देने से जन्मदर में कमी आ जायेगी? क्या देश की ग्रामीण जनता को देखते हुए यह कानून बनाना उचित है? विवाह की आयु बढ़ाना हितकर ही होगा क्योंकि कानून के डर से लोग बाल-विवाह से विमुख होंगे तथा बड़ी आयु में विवाह होने से बालक कम होंगे। विवाह की आयु में वृद्धि ग्रामीणों के हित में भी होगी। छोटी-छोटी आयु में विवाह करने से स्त्री तथा पुरुष दोनों का शारीरिक एवं मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। ऐसे दम्पत्ति जिन्होंने छोटी आयु से ही अपने शरीरों को निचोड़ना प्रारम्भ कर दिया, कभी नीरोग एवं स्वस्थ सन्तति उत्पन्न नहीं कर सकते। किशोरियाँ यदि प्रजनन करती हैं तो उनका स्वयं का जीवन भी संकट में रहता है। अस्पताल की रिपोर्टों से पता लगता है कि बीस वर्ष से कम आयु की जितनी लड़कियाँ प्रसव पीड़ा में मरती हैं, उससे चौथाई भी बड़ी आयु की स्त्रियाँ इस संकट में प्राण नहीं गँवाती। अतएव लड़कियों की जान को जोखिम में डालने वाले अभिभावक बुद्धिमान नहीं कहे जा सकते।

प्राय: देखा जाता है कि शिक्षित परिवारों में विवाह अपेक्षाकृत विलम्ब से होता है। कन्या अध्ययन कर रही होती है और आमतौर से कोई कानून न होने पर भी देर से ही वैवाहिक सूत्रों में आबद्ध होती है। शिक्षित युवक तथा युवतियाँ इस बात से परिचित होते हैं कि शिक्षा पूरी किये बिना, अपने पैरों पर खड़े हुए बिना—विवाह करने का अभिप्राय है अपनी मानसिक तथा शारीरिक शक्तियों का विघटन करना तथा अर्थाभाव से दाम्पत्य जीवन की खुशियों को नष्ट करना। साथ ही बड़ी आयु में उनका मानसिक स्तर भी विकसित हो जाता है तथा वे यह भी भलीभाँति समझ जाते हैं कि इस महँगाई के जमाने में अधिक बच्चे उत्पन्न करने का अर्थ है दाम्पत्य तथा पारिवारिक जीवन की प्रसन्नताओं पर कुठाराघात, बच्चों के भविष्य के साथ खिलवाड़ तथा राष्ट्र के प्रति द्रोह। सर्वेक्षण के अनुसार शिक्षित महिलाओं वालें क्षेत्रों में जन्मदर काफी कम पायी जाती है।

लोगों में परिवार नियोजन तथा वैवाहिक विषयों से सम्बन्धित उत्तम साहित्य उपलब्ध कराना चाहिए, जिससे कि वे अंधविश्वासों तथा रूढ़ियों से मुक्त हों—स्वतन्त्र कार्य-कलाप कर सकें। शिक्षा तथा आजीविका की सुविधाएँ मिलने पर स्त्रियाँ भी स्वभावत: देर से विवाह करेंगी तथा सोच-विचार कर बालकों की संख्या बढ़ायेंगे। कम बालक होने से माता तथा शिशु दोनों का स्वास्थ्य अच्छा रहेगा तथा समाज को स्वस्थ, सबल नागरिक प्रदान किये जा सकेंगे।

अवांछनीय प्रजनन से हाथ खींचें

पिछड़े स्तर की जनसंख्या का बढ़ना किसी भी देश के लिए अभिशाप होता है। आज रोजगार की तुलना में आबादी का बढ़ना संकटपूर्ण तो है ही, साथ ही यदि अनुत्पादक स्तर के लोग बढ़े तो समझना चाहिए कि दुहरी मुसीबत सामने खड़ी हुई। फिर यदि उनमें से भी रोगी, अपंग, असमर्थों की भरमार हो तो उनके निर्वाह देखभाल, सेवा-सुश्रूषा, चिकित्सा आदि पर जो दूसरों का समय तथा धन खर्च होता है, उसे एक दैवी प्रकोप की तरह ही समझा जाना चाहिए। अपना देश ऐसी ही मुसीबत में फँसा है तथा फँसता जा रहा है।

कुजनेट्स रोस्टो, हिगिन्स, सिंगर, करीहारा के अनुसार "जो देश जितना ही अर्द्ध विकसित होता है, उस देश में कृषि पर जनसंख्या का भार उतना ही अधिक होता है।" भारत की, इस दृष्टिकोण से, अर्थ व्यवस्था की अर्द्धविकसित प्रवृत्ति स्पष्ट होती है। भारत में कार्यशील या उत्पादक व्यक्तियों की मात्रा केवल ४४ प्रतिशत है। शेष में अनुत्पादक ही भरे पड़े हैं।

तीव्रगति से बढ़ती हुई जनसंख्या भारत के आर्थिक विकास के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। जनसंख्या नियन्त्रण के बिना आर्थिक विकास संभव नहीं है। भारत में जनसंख्या का दबाव अभी इतना अधिक है कि इसके विकास की दर में कमी लाना प्रधान आवश्यकता है। जनसंख्या की दृष्टि से हमारे दौड़ने की चाल इतनी तीव्र है कि आर्थिक दृष्टि से परिवर्तनों तथा प्रगति के बावजूद, हम एक ही स्थान पर स्थिर हैं।

देहाती क्षेत्रों में मृत्युदर १३१ प्रति हजार है जबकि शहरी क्षेत्रों में ८१ प्रति हजार है। अनुमान है कि प्रत्येक आठवाँ बच्चा एक वर्ष के भीतर मर जाता है। शिशुओं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की मृत्यु के अनेक कारणों में मुख्य रूप से कुपोषण है। ५ वर्ष से कम आयु के जिन बच्चों की मृत्यु होती है, उनमें अनुमानत: ४० प्रतिशत की मृत्यु कुपोषण के कारण होती है।

भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद के सर्वेक्षण के अनुसार १ से ६ वर्ष की आयु के बच्चों में न्यूनतम ६० प्रतिशत बच्चे कुपोषण से होने वाली खून की कमी और प्रोटीन, कैलोरी कुपोषण से किसी न किसी प्रकार से ग्रस्त हैं। अनुमानत: प्रत्येक वर्ष में लगभग एक लाख बच्चों की मृत्यु कुपोषण के कारण हो जाती है। अनुमानत: १५ वर्ष से कम आयु के लगभग ५ लाख बच्चे नेत्रहीन होंगे तथा पूर्व स्कूल आयु के १०-१५ प्रतिशत बच्चे विटामिन 'ए की कमी के कारण नेत्रहीन हो गये हैं। ६ से ११ वर्ष आयु के २ करोड़ २० लाख बच्चे लगभग स्कूल नहीं जाते। इनमें से १ करोड़ ८० लाख अथवा ७५ प्रतिशत राजस्थान, उत्तरप्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, बिहार, जम्मू-कश्मीर, मध्यप्रदेश, उड़ीसा और पं० बंगाल में हैं। सर्वेक्षण के अनुसार स्कूल छोड़ने वाले बच्चे अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों के हैं और दुर्बल वर्गों की लड़कियाँ हैं पहली तथा दूसरी कक्षा से पढ़ाई छोड़ देने वाले बच्चों की संख्या अनुमानत: ४२.८ प्रतिशत तक है।

जनसंख्या की अधिकतम कार्यशीलता में साक्षरता की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता होती है। जिन देशों में साक्षरता अधिक है वहाँ जनसंख्या की किस्म उत्तम व कार्यशीलता अधिक है। शिक्षा की महत्ता स्पष्ट करते हुये चेस्टर वाउल्स ने लिखा है कि "प्राकृतिक शक्तियों के नियन्त्रण और संरूपण करने तथा एक व्यवस्थित गतिशील और न्यायपूर्ण समाज का निर्माण करने में शिक्षा सभी उपकरणों में सर्वाधिक शक्तिशाली है। अत: शिक्षा का गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों प्रकार का विस्तार आवश्यक है। प्रो० आर्थर लीविस ने भी ज्ञान तत्व को आर्थिक विकास का मूल माना है। भारत में साक्षरता १९५१ की जनसंख्या में १९.२ प्रतिशत थी, १९६१ में २४ तथा १९७१ में २९.३५ थी, केरल में ६० प्रतिशत जनसंख्या साक्षर है।

१९७१ में जनसंख्या में २४.६ प्रतिशत की वृद्धि हुई, जिसके फलस्वरूप १०८ मिलियन की वृद्धि हुई और जबकि जापान की कुल जनसंख्या १०३ मिलियन और अमेरिका की २०६ मिलियन। जनसंख्या में जन्मदर मुख्य है। भारत में लड़कियों की औसत विवाह की उम्र १६ वर्ष है। १९-२० वर्ष में वह दो बच्चों की माँ तथा २-३ वर्ष के अन्तराल से बच्चों को जन्म देते हुए ३५ वर्ष में ५-६ बच्चों की माँ बन जाती है। सामान्य रूप से ६-७ बच्चों को जन्म देती है। इसका कारण बाल-विवाह मुख्य है तथा अन्य सामाजिक एवं धार्मिक कारणों से भारत की जन्मदर अन्य देशों की तुलना में अधिक है। कनाडा में जन्मदर २८.७ प्रति हजार, अमेरिका में १८.८ प्रति हजार, ब्रिटेन में १५.६ प्रति हजार और भारत में ३९ प्रति हजार है। यह वृद्धि संख्या चीन से भी अधिक है।

भारत की जनसंख्या में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की संख्या अधिक है और इसमें निरन्तर वृद्धि भी हो रही है। १९२१ में प्रति हजार पर ९५५ स्त्रियाँ थीं, १९६१ में ९४१ तथा १९७१ में ९२२ रह गई। पुरुषों की संख्या ५१.७ प्रतिशत तथा स्त्रियों की संख्या ४८.३ प्रतिशत है। किन्तु यूरोपियन देशों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक हैं। अमेरिका में १९६१ में प्रति हजार पुरुषों पर १०३० स्त्रियाँ, ब्रिटेन में एक हजार ६८ स्त्रियाँ और रूस में १ हजार २२० स्त्रियाँ थीं। अपने यहाँ इसका कारण बाल विवाह के कारण प्रसव में मृत्यु, स्त्रियों की उपेक्षा, गर्म जलवायु, घरेलू काम-काज के झंझट में स्त्रियों का पिसा रहना आदि महत्त्वपूर्ण हैं।

लड़कियों का जन्म लड़कों की अपेक्षा कम हो रहा है—ऐसी बात नहीं है। किन्तु लड़कों की तुलना में उन्हें हेय समझा जाता है और लालन-पालन से लेकर चिकित्सा तक में वैसा व्यवहार नहीं किया जाता जैसा कि लड़कों के साथ होता है। फलत: वे उनमें से कितनी ही बाल मृत्यु की शिकार होती हैं और कितनी ही दुर्बल स्वास्थ्य लेकर भी बालविवाह की शिकार बनती हैं तथा अविकसित स्थिति में ही मातृत्व का भार वहन करने के कारण प्रसव काल में अथवा उसके कुछ दिन उपरान्त दुर्बलताजन्य रोगों से आक्रान्त होकर बेमौत मरती हैं। स्त्रियों की संख्या पुरुषों की तुलना में कम होने का यही बहुत बड़ा कारण है। दुर्बल महिलाओं के बच्चे तो स्वभावत: दुर्बल और रोगाक्रान्त होते हैं।

भारती समाचार के अनुसार लखनऊ विश्वविद्यालय में जनसंख्या अनुसंधान केन्द्र के डॉ० जगदीश नारायण श्रीवास्तव के एक सर्वेक्षण से यह तथ्य प्रकाश में आया कि सन् १९७१ में उत्तरप्रदेश की प्रति एक हजार बालिकाओं में से ५१.४ प्रतिशत का विवाह १५ वर्ष के पहले ही हो गया। इसकी स्थिति सभी जनपदों में भिन्न है। देहरादून में २२ प्रतिशत कन्याओं का विवाह १५ वर्ष की आयु के पूर्व हुआ तथा वस्ती जिले में ८० प्रतिशत हुआ। बुन्देलखण्ड तथा पूर्वी उत्तरप्रदेश के क्षेत्रों में इसका अधिकांश प्रचलन है। पहाड़ी तथा पश्चिमी क्षेत्रों में कम है।

इस सर्वेक्षण के अनुसार आर्थिक रूप से सम्पन्न जिलों में बाल-विवाह का चलन कम है। पिछड़े वर्ग के लोग अज्ञानतावश कम उम्र में बच्चों के विवाह करते हैं। इतना ही नहीं उनके बच्चे बच्ची भी जल्दी-जल्दी होते हैं। बीस-पच्चीस वर्ष की युवतियाँ प्राय: ४-५ बच्चों की माता बन जाती हैं।

असमर्थ आर्थिक स्थिति के अभिभावक बच्चों के स्वास्थ्य, शिक्षा आदि का उत्तरदायित्व निभाने में असमर्थ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहने के कारण उन्हें छोटी आयु में ही आजीविका उपार्जन के लिए बाधित करते हैं। फलतः जो आयु विकसित होने को थी, वह काम के दबाव में पिस कर गई-गुजरी स्थिति में बन कर रह जाती है। ऐसे बच्चे बड़े होने शारीरिक दृष्टि से रुग्ण, दुर्बल और मानसिक दृष्टि से पिछड़ेपन के अभिशापों से ग्रसित रहकर किसी प्रकार निर्वाह करते हैं। इसका प्रतिफल सारे समाज को भुगतना पड़ता है।

जनसंख्या वृद्धि के अभिशापों को जितनी जल्दी समझा जा सके उतना ही अच्छा है। वर्तमान महँगाई, बेरोजगारी और निर्वाह साधनों की कमी कठिनाई को देखते हुए तो इस अवांछनीय उत्पादन को रोकने के लिए वातावरण बनाया और शक्ति भर प्रयत्न किया ही जाना चाहिए।

अधिक सन्तान या जान की आफत

स्त्री आखिर स्त्री थी—कोई मशीन नहीं थी। बेचारी अप्राकृतिक दबाव कहाँ तक सहन कर पाती। ६ बच्चों को पहले ही जन्म दे चुकी थी। ७वाँ बच्चा गर्भ में था, तभी से उसकी स्थिति नाजुक थी। देखने वालों को पता है कि ३५ वर्ष की स्त्री ६० वर्ष से भी अधिक लगती थी। शरीर का रस-रक्त था, सो ६ बच्चे ले गये। ७वें बच्चे की प्रसव पीड़ा सहन करना काबू से बाहर हो गया। बेचारी अस्पताल से घर भी न आ सकी, वहीं दम तोड़ कर परलोक चली गई।

नाजुक थी तो क्या हुआ, किसी तरह घर का बोझ तो उठाये हुई थी, पर जैसे ही उसकी मृत्यु हुई घर में आफत उठ खड़ी हुई। उसका पति रामप्रसाद रेडी में काँच और चीनी मिट्टी के गिलास-प्याले बेचता है। लोग कहते हैं रामप्रसाद बड़ा सीधा और सज्जन है पर सज्जनता से गृहस्थी की व्यवस्था का क्या सम्बन्ध? दो बच्चे रहे होते तो पत्नी आयुपर्यन्त साथ देती। सारा जीवन-तत्त्व ३५ वर्ष की आयु में ही बँट गया। आमदनी मुश्किल से ३) रोज की होती और आठ व्यक्तियों का पेट-पालन करना पड़ता था। न किसी को पौष्टिक आहार मिल पाया, न तन ढाँपने को साबित कपड़े। ६ बच्चों में एक बच्चा भी ऐसा न हुआ जो किसी तरह प्राइमरी से आगे बढ़ पाता। उनमें भी चार बच्चों को स्कूल का मुँह देखना भी नसीब न हुआ।

अधिक आबादी का अभिशाप आज सम्पूर्ण विश्व की समस्या है, पर उसका असली रूप ऐसे निम्न और मध्यम श्रेणी के परिवारों में ही देखने को आता है। आपका ध्यान इस ओर नहीं है, यह कभी सोचते नहीं कि इस फिजूल की सेना को कौन खिलायेगा-पिलायेगा? अन्धाधुन्ध बच्चे पैदा करने का अनुत्तरदायित्वपूर्ण कार्य आज अधिकांश व्यक्ति कर रहे हैं, उसके सामूहिक दुष्परिणाम सबके सामने हैं।

व्यक्तिगत रूप से हमारे लिए रामप्रसाद का लेखा-जोखा ही बहुत है। स्त्री का निधन हुआ, बच्चे को उसकी बुआ ने पाल लिया पर उसको अपनी भी तो सन्तानें थीं। असली माँ की सी परवरिश न दे सकी होगी, सो दूसरे महीने छोटा बच्चा भी चला बसा। इन्हीं दिनों सारी मण्डी में चेचक फैली—एक साथ ही तीन बच्चे उसके शिकार हुए। रामप्रसाद खुद बर्तन बेचने चला जाता है। बड़ा १५ वर्ष का लड़का जिसकी पढ़ने की उम्र थी, वह घर में स्त्री का काम करता है। खाना बनाना, बर्तन धोना, चूल्हा-चौका साफ करना—यहीं तक उसके कार्य सीमित हैं तो संस्कार क्या आकाश से टपकेंगे? दूसरी ११ वर्ष की लड़की है, दोनों दिन भर फू-फू करते हैं तब कहीं घर वालों को खाना मिलता है। बीमारों की सुने कौन?

तीन व्यक्ति मर गये पर घर में रामप्रसाद सहित ६ उम्मीदवार हैं। सही हिसाब फैलाया जाये तो १००) से भी सबकी उदरपूर्ति नहीं कर सकते। कभी ऐसा न हुआ, जब वह कर्जमन्द न रहा हो। दूसरे-तीसरे दिन कोई-न-कोई धौंस जमाने वाला आ ही जाता है। लड़की भी अब सयानी हो रही है, उसकी क्या चिन्ता न होगी? यों कहना चाहिए कि अधिक सन्तान पैदा कर रामप्रसाद ने किसी का भला नहीं किया, स्वयं दुष्परिणाम भुगत रहा है, सो परमात्मा जाने उसका अन्त कहाँ होगा?

रामप्रसाद तो विशाल समस्या का एक बहुत छोटा रूप है। ऐसे सैकड़ों लोग हैं, जो अधिक सन्तान के कष्ट से पीड़ित हैं, पर दोष किसे दें? यह तो अपनी-अपनी समस्या है। सज्जन है, राम का भक्त है—सो तो अच्छी बात है, पर कमाने-धमाने, भोजन-वस्त्र जुटाने का काम तो उसी को करना है। अपने, अपनी स्त्री और बच्चों के प्रति शुद्ध सज्जनता तो तब थी जब घर को व्यवस्थित रख पाता, थोड़े बच्चे पैदा किये जाते। इसमें उसका भी भला था और देश का भी।

सुसंतुलित परिवार-सुखी परिवार

पहला बच्चा हुआ तभी डाक्टर ने कह दिया—"देखो! हिम्मतलालजी, दूसरा बालक पैदा किया तो अपनी पत्नी के जीवित रहने की आशा मत करना। किसी तरह प्रसव-कष्ट झेल भी गई तो इसे टी० बी० हो जायेगी।" उस समय तो अच्छा जी! कह कर हिम्मत लाल जी ठक्कर घर चले आये पर उनकी वास्तविक इच्छा तब भी यही थी कि कम से कम एक दो बालक और हो जाते तो अच्छा था।

विचार-संघर्ष कई दिन तक चला। अन्त में उसने अपने मित्र श्री यशराज धीरू भाई मिस्त्री से परामर्श किया। यशराज ने उसे सलाह दी—भाई मेरी सुनो तो डाक्टर की राय मान लो। अधिक संतान के चक्कर में न पड़ो नहीं तो धर्मपत्नी भी चली जायेगी। डेढ सौ रुपये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के साधारण क्लर्क को अधिक संतान का बोझ उठाना इस जमाने में एक बहुत बड़ी आफत है। न किसी को अच्छा खिला सकोगे, न पढ़ा-लिखा सकोगे। स्वस्थ, शिक्षित और भली प्रकार संस्कारों में ढाला गया एक बालक हो तो उसी से सौ बालकों का सुख पा लोगे। अधिक संतान का सुख विडम्बना मात्र ही है।

बात हिम्मतलाल की भी समझ में आ गई। एक सप्ताह की छुट्टी लेकर उसने अपनी नसबन्दी करा ली। इस तरह उसने सर्वप्रथम एक तरह से अपनी धर्मपत्नी को जीवन दान दिया। दुबली-पतली वैसे ही है, कौन जाने दूसरी संतान होने पर बचती भी या न बचती।

आज कोई १६ वर्ष हुये इस बात को कोई आकर घर देखे, स्त्री बालकों देखे तो उनका रहन-सहन देख कर यही कहेगा कोई अच्छे खाते-पीते घर वाले हैं। उनका लड़का कृष्णगोपाल इस वर्ष मैट्रिक की परीक्षा में प्रथम उत्तीर्ण हुआ। बालक के प्रति माता-पिता दोनों का स्वाभाविक स्नेह है। अब तो उन्हें १८०, के लगभग मिलते हैं पर महँगाई और आवश्यकताओं के युग में १८०) से क्या बनता है। तो भी कोई यह अनुमान नहीं लगा सकता कि इतनी आय में यह लोग इतना अच्छा जीवन कैसे बिताते हैं।

बात साफ है। तीन आदमियों का भोजन खर्च जो बिल्कुल मामूली होता, उसमें थोड़ा-ज्यादा खर्च करके अच्छा खाना खाते हैं। दूध, मक्खन और सब्जी की व्यवस्था हो जाय तो पौष्टिकता के लिए और क्या चाहिए। यदि दो बालक और हो जाते और १००) भोजन के लिए रखे जाते तो २०)-२०) एक-एक हिस्से पड़ते। किसी को दूध मिलता किसी को नहीं, सब्जी कभी सप्ताह में दो दिन मिलती। पर तीन व्यक्तियों में ३३ रुपये प्रति व्यक्ति का औसत आता है हर एक के हिस्से में १३ रुपये अधिक। इतने में भोजन की पौष्टिकता बढ़ाना कौन-सी कठिन बात है।

बालक भी स्वस्थ, माँ भी स्वस्थ और हिम्मतलाल को भी कोई चिन्ता नहीं, सब अच्छा पहनते हैं आनन्द से रहते हैं। घर सजा-सजाया रहता। बालक ५ वर्ष में बी० ए० कर लेगा और पढ़ना चाहेगा तो भी दिक्कत नहीं। एक बालक की पढ़ाई का खर्च हर मध्यम श्रेणी का व्यक्ति बखूबी बर्दास्त कर सकता है भले ही भविष्य के लिये अर्जित पूँजी न बचे। बालक पढ़-लिख कर किसी रोजगार से लग जाय तो फिर उसकी आवश्यकता भी क्या?

ऐसे सुखी परिवार की यहाँ सभी प्रशंसा करते हैं और जब कभी परिवार नियोजन की चर्चा होती है तो लोग हिम्मतलाल का उदाहरण देते हैं। है भी बात ठीक, आमदनी तो निश्चित मात्रा में ही बढ़ाई जा सकती है। अधिक लोगों की समुचित व्यवस्था भी एक सिर दर्द है। थोड़े लोग हों तो उनकी देख-रेख, सेवा-सुश्रूषा भी भली बन पड़ती है। ''सुसंतुलित और सुनियोजित परिवार सुखी परिवार'' यह किसी ने झूठ नहीं कहा। इसे कोई भी व्यवहार कसौटी पर कस कर देख सकता है।

भगवान ने दिया बेटा

कमला का विवाह हुए दस वर्ष हुए थे। घर में भगवान का दिया सब कुछ था, पति व्यापार करते थे। खूब आमदनी होती थी, मजे से निर्वाह भी चलता और यथाशक्ति दीन-दुखियों के आड़े भी आया करते। इतना सब होते हुए भी उन दोनों पति-पत्नी तथा परिवार के अन्य वयोवृद्ध सदस्यों को एक अभाव सालता रहता, वह था घर का आँगन बच्चों की किलकारियों से सूना पड़ा था। कमला ने दस वर्षों तक एक भी सन्तान को जन्म नहीं दिया। पति-पत्नी दोनों ने डॉक्टरी जाँच करवायी, इलाज भी करवाया लेकिन कोई परिणाम न निकला, कोख सूनी की सूनी ही रही।

सास-ससुर तो और भी पीछे पड़े हुए थे। चाहते थे कि जान-भोपाओं और देवी-देवताओं की शरण भी ली जाय परन्तु कमला स्वस्थ और प्रगतिशील विचारों की महिला थी। इन क्षेत्रों में घटने वाली दुर्घटनाओं के बारे में पढ़-सुन कर तो वह और भी समझदार हो गयी थी। फिर भी सास-ससुर का आग्रह बना ही रहा और कमला भी विनम्रतापूर्वक अपनी बात रख कर, इस क्षेत्र में चल रही अवांछनीय प्रवृत्तियों की घटनायें सुनाकर वस्तुस्थिति से अवगत कराती रही। इन बातों को सुनकर सास-ससुर ज्यादा दबाव तो नहीं देते फिर भी आग्रह तो बना ही रहता और कमला यह सन्तोष किये हुए थी कि अपने वश के सभी प्रयत्न कर लिये और वे सफल नहीं हुए तो अब व्यर्थ परेशान क्यों हुआ जाय।

एक दोपहर! कमला ने अपने पति के विश्राम कक्ष में देखा—वे किसी पुराने मित्र से बात कर रहे। मित्र की गोदी में एक बच्चा भी था। उसके सम्बन्ध में जब कमला के पति रामदयाल ने पूछा तो मित्र ने बताया इस कमनसीब बच्चे की माँ इसे जन्म देकर ही जाती रही। मेरे कुटुम्ब में मैं अकेला ही हूँ अतः इसकी जिम्मेदारी मुझ पर आ गयी। क्या करूँ? मजबूरी है। बच्चे की ठीक से देखभाल नहीं हो पाती आखिर मैं इसकी माँ तो नहीं बन सकता न।

इसके बाद दो-चार इधर-उधर की बातें चली। फिर रामदयाल ने बच्चे की ही चर्चा छेड़ते हुए कहा अच्छा जय प्रकाश। एक बात पूछूँ।

''हाँ , हाँ पूछो न।''

''यार कहीं तू बुरा तो नहीं मानेगा।''

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"अरे मैंने कभी बुरा माना है। रामू !" मित्र ने बढ़े सौहार्द्र से कहा।

"अगर इस बच्चे को कोई स्त्री अपना बेटा समझ कर पाले तो तुम क्या पालने दोगे।"

"पर ऐसी स्त्री कहाँ मिल सकती है?"

"मिले या न मिले। मैं तो इतना पूछना चाहता हूँ कि तुम पालने दोगे या नहीं पालने दोगे?"-रामदयाल ने कहा।

"सचमुच अगर कोई माँ बन कर पाले तो मुझे कोई एतराज नहीं होगा"—जयप्रकाश वर्मा ने कहा। इतना सुनकर कमला का मातृत्व जाग उठा और वह चट से किवाड़ खोल कर अन्दर गयी। बच्चे को उसने हाथ में उठाया और गोदी में लेकर बोली—"मैं इसकी माँ बनूँगी, इसकी सार सम्हाल करूँगी और अपने हृदय का अमृत सींच कर इसे पालूँगी बड़ा करूँगी।"

बच्चा भी कमला की छाती से चिपट गया। जय प्रकाश ने अपने मित्र की ओर हर्षित दृष्टि से देखा और जयप्रकाश ने कमला की ओर "भाभी तुम धन्य हो"-अनायास ही उसके कण्ठ से ये स्वर फूट पड़े।

कमला और रामदयाल के इस निर्णय का पता जब परिवार के अन्य लोगों को चला तो सब बड़े कुपित हुए तब रामदयाल ने समझाया- इस बालक का इस प्रकार घर में आना भगवान द्वारा ही नियोजित था। उसने कमला के उदर से नहीं तो किसी और के उदर से हमारे लिए यह बच्चा भेजा है। क्या जरूरी है कि अपने पेट से ही बच्चे को जन्म दिया जाय। समाज में और भी तो बच्चे हैं जो माँ की गोद को तरसते हैं, उन बच्चों को वे महिलायें सम्हालें जो औलाद के लिए तरसती हैं, तो दोनों की आकांक्षा पूरी हो सकती हैं।

बच्चे यों न बढ़ाइये कि उन्हें पालते-पालते मर जाना पड़े

साइक्लोपटेरस नाम की मछली एक बार में ८०००० से लेकर १३६०००० तक अण्डे देती है। मनुष्यों की तरह उसकी भी यह मूढ़ मान्यता है कि बच्चे सौभाग्य का प्रतीक होते हैं। अपनी इस मूर्खता के कारण ही उसका जीवन सदैव संकट में बीतता है।

मादा अपने पति की कामुक वृत्ति का लाभ लेती है। अण्डे दिये और पति को सौंपे। आप तो घूमने-फिरने निकल गई और पति महोदय पर उस तरह बोझा आ पड़ा, जैसे अन्धाधुन्ध बच्चे करने वाले पुरुषों पर उनके भरण-पोषण, आजीविका, वस्त्र, शिक्षा आदि का दबाव पड़ता है। न तो लड़कों को पौष्टिक आहार मिल पाता है, न विकास की समुचित परिस्थितियाँ। उसका परिवार छाती का पीपल बना उसे ही त्रास देता रहता है।

नर इस बड़े ढेर को कभी सिर, कभी पूँछ से हिलाता रहता है। फिर भी कई बार उन्हें पर्याप्त शुद्ध जल नहीं मिल पाता, आवश्यक ऑक्सीजन नहीं मिल पाती। सैकड़ों अण्डे इसी में मर जाते हैं। जो बच जाते हैं वे भी अधिकांश कमजोर और बीमार ही बने रहते हैं।

शक्तिशाली निर्बलों को खा जाते हैं, किसी को इसका उदाहरण देखना हो तो बहुसंख्य संतानों वाली इस मछली को देख लें। छोटी-छोटी मछलियाँ भी इसे चारों तरफ से सताती रहती हैं। कौवे तथा बगुले आदि पक्षी तो इसके लिये यमराज हैं। वे चोंच मार-मारकर नर को अधमरा कर देते हैं और अच्चे-बच्चे खा-पीकर बराबर कर देते हैं।

फिर भी शायद प्रकृति ने उसे इसलिये पैदा किया है कि मानो वह मनुष्य के लिय उदाहरण छोड़ना चाहती हो—देख लो सन्तान की संख्या बढ़ाने, अपनी समर्थता का बिल्कुल ध्यान न देने का यही परिणाम होता है।

इतना होने पर भी न नर मानता है, न मादा। हर तीसरे महीने फिर वही उतने ही अण्डों की फौज तैयार कर देते हैं। नर अपनी कामुकता का शिकार होता है। मादा तो फिर घूमने निकल जाती है और नर महोदय को फिर वही झंझट और संकट वाला जीवन। सबसे अधिक बच्चे पैदा करने वाला, जीवन भर भय-ग्रस्त, कमजोर और आपत्तियों में डूबा हुआ। उसे न कभी समुद्र में सैर का आनन्द मिल पाता है, न तरह-तरह की वस्तुयें खाने-पीने का। थोड़े ही दिन में परलोक की तैयारी करने लगता है।

कार्डफिश भी ऐसी ही मछली है, एक बार में ६०००,००० अण्डे देने वाली। इस मछली का ही तेल है जो औषधियों के काम में लिया जाता है। कमजोर होने के कारण अपनी सुरक्षा भी नहीं कर पाती। सारे समुद्र में कुल पाँच होतीं पर स्वस्थ और समर्थ होतीं तो क्योंकर यह दशा होती है।

तरबोट मछली ९०००००० अण्डे देती है। बच्चे भोजन के टुकड़ों पर ऐसे लड़ते हैं, जैसे माँस के एक टुकडे के लिये कई चीलें। यादवों की तरह का मुशल पर्व मनता है, सारे बच्चे लड़-झगड़कर मर जाते हैं। यही दशा कमजोर नस्ल वाली लिंग मछली ही होती है, यह एक बार में २८००००० अण्डे देती है।

परिवार नियोजन की चर्चा होती है, तब अनेक भावुक हिन्दू यह आक्षेप लगाते है कि सरकार पक्षपात करती है, मुसलमानों पर वह सन्तान सीमा बंधका दबाव नहीं डालती। ऐसे लोगों को अनुभव करना चाहिये कि संसार में संख्या नहीं समर्थता जीतती है। एक भेड़िया सैकड़ों बकरियों को मार डालता है । कहते हैं कि सिंह के सारे जीवन में दो ही बच्चे होते है पर उनकी शक्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और सामर्थ्य के आगे जंगल के हाथी, गैंड़े जैसे भीमकाय जीव भी पानी भरते हैं।

भले ही पक्षपात हो पर हमें मुसलमानों की सन्तान-सीमा का भय नहीं करना चाहिये। थोड़ी सन्तान हों पर स्वस्थ और समर्थ हों तो हम विश्व-विजयी बन सकते हैं। पर सत्तर करोड़ चीनी बनने से तो हम अपने आप में ही संकट खड़ा कर लेंगे।

संख्या ही बलवान् होती तो आइस्टर सीप संसार में सबसे शक्तिशाली होती। एक जोड़ा आइस्टर एक वर्ष में ६६०००००००००००००००००००००००००००००० (छासठ के आगे तैतीस शून्य) अण्डे देता है। इनका ढेर बनाया जाय तो वह पृथ्वी के आकार से आठ गुना बड़ा हो पर यह स्थिति आने ही नहीं पाती। समुद्र के छोटे-छोटे जीव भी इनकी असमर्थता का लाभ उठाते हैं, थोड़े ही दिन में वे इन्हें खा-पीकर बराबर कर देते हैं।

यदि इन समुद्री जीवों से हम शिक्षा ले पायें तो फिर संख्या का लोभ न कर अपनी जाति की समर्थता विकसित करने का प्रयत्न करें, उसी से हम संसार में विजयी हो सके हैं। संसार में सिंह के सदृश सिरमौर हो सकते हैं।

सन्तान की संख्या नहीं, स्तर बढ़ाइये

जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणामों पर विचारक, मनीषियों का सदा से ध्यान रहा है और वे समय-समय पर लोगों को इसके खतरे से आगाह भी करते रहे हैं। अब से कोई दो-ढाई हजार वर्ष पहले यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने अपने देशवासियों को सचेत करते हुए कहा था—"जनसंख्या की अतिरिक्त वृद्धि हो जाने पर समाज का आर्थिक, नैतिक और आध्यात्मिक पतन हो जाता है। सामाजिक व पारिवारिक व्यवस्था बिगड़ जाती है। निरर्थक रूप से बढ़े हुए लोग राष्ट्र का भोजन खा-खाकर नष्ट कर डालते हैं। ऐसी परिस्थितियाँ विनिर्मित होने लगती हैं कि लोग धर्माचरण का त्याग कर देते हैं और निरंकुश, स्वेच्छाचारी बनकर अनैतिक मार्ग पर चलने लगते हैं। भीड़ उद्दण्ड घोड़ों की तरह किसी कानून-कायदे को नहीं मानती और समाज में अपराध तथा आतंक का वातावरण पैदा हो जाता है, जिससे स्वाभाविक ही प्रगति में बाधा पड़ती है। अधिकांश नागरिक अविकसित, अशिक्षित और मूर्ख रहकर पशुओं जैसा जीवन व्यतीत करते हैं तथा मक्खी-मच्छरों की तरह मरते रहते हैं। मानसिक तथा सामाजिक बुराइयों का प्रधान कारण आबादी की यह अनियमित वृद्धि ही बन जाता है। अरस्तू ही क्यों भारतीय ऋषि-मुनियों ने तो इससे भी पहले जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणामों से सावधान कर दिया था। राम को उपदेश देते हुए मुनि वशिष्ठ कहते हैं कि—'जब किसी देश की जनसंख्या बहुत बढ़ जाती है तो अकाल, महामारी, युद्ध या भूकम्प आदि दैवी विपत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। लोग आपस में ही कुत्ते-बिल्लियों की तरह लड़-झगड़ कर कीड़े-मकोड़ों के समान मरने लगते हैं।'

इन दिनों विश्व की जनसंख्या इतनी अधिक बढ़ी है जितनी पहिले कभी नहीं बढ़ी। अब से डेढ़ दो हजार वर्ष पूर्व बहुत थोड़े से लोग इस पृथ्वी पर निवास करते थे और जब किसी एक स्थान की जनसंख्या बढ़ जाती है तो बहुत से लोग दूसरे स्थानों पर चले जाते थे। किन्तु अब तो संसार का कोना-कोना मनुष्यों से खचाखच भरा हुआ है। कोई कहीं और जाकर बसने की सोचे तो भी भीड़-भाड़ में जाकर ही बसना पड़ेगा। एकान्त या शान्त स्थान में जाकर बसने की कहीं कोई सुविधा नहीं है। जनसंख्या वृद्धि के क्या दुष्परिणाम हो सकते हैं ? इसके कारण कौन सी विभीषिकाएँ उत्पन्न हो सकती हैं ? यह एक अलग चर्चा का विषय है। यहाँ तो उस समस्या के कारणों और उसके समाधानों पर ही विचार करना अभीष्ट है।

जनसंख्या कहाँ से बढ़ती है ? सरल सा उत्तर है परिवारों से। विवाह होते हैं, परिवार बसते हैं और बच्चे जन्म लेते हैं। जितने बच्चे जन्म लेते हैं, उनकी समग्र संख्या आबादी वृद्धि के रूप में सामने आती है। तो क्या बच्चों को जन्म देना बन्द कर दिया जाय ? परिवार बसाये ही न जाएँ ? विवाह किये ही न जाएँ ? न परिवार बसाना अनावश्यक ठहराया जा रहा है ? न विवाह करना अनावश्यक है। सन्तान की संख्या बढ़ाते चलना—यह न केवल अनावश्यक है वरन् हानिकारक भी। उपयोगिता की दृष्टि से भी देखा जाए तो एक के बाद एक सन्तान को जन्म देते जाने की क्या सार्थकता है ? उससे कौन-सा उद्देश्य पूरा होता है ? और क्या जरूरत है कि सन्तान पर सन्तान जन्म देते चलते हुए परिवार पर तो बोझ बढ़ाया ही जाए, समाज के लिए भी संकट खड़ा किया जाय ? अधिक सन्तान जन्म देने के कारण ही जनसंख्या का सन्तुलन बिगड़ता है।

यह भी होता है कि पहली सन्तान लड़की होती है, दूसरी सन्तान भी लड़की होती है और मन में पुत्र को प्राप्त करने की लालसा इतनी तीव्र होती है कि उसकी आशा में लोग लड़कियों से घर भर लेते हैं। दो लड़कियाँ हो गईं, यही जिम्मेदारी कोई कम नहीं थी लेकिन सन्तोष नहीं। सोचते हैं एक लड़का भी हो जाता तो अच्छा था। लेकिन फिर कन्या आ गयी। दुःख तो हुआ पर आशा, तृष्णा का त्याग नहीं किया। पुनः लड़की, पुनः लड़की, फिर भी पुत्रेषणा नहीं जाती। देख रहे हैं कि लड़कियाँ हो रही हैं। इस अन्धे सौदे का कोई विश्वास नहीं। ऐसा कोई साधन नहीं कि ठीक-ठीक लड़के या लड़की के सम्बन्ध में जाना जाए, केवल आशा और शायद के भरोसे ही प्रजनन का क्रम चलता रहता है और आगे चल कर परिणाम यह होता है कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक ही कन्या के विवाह में जहाँ छक्के छूट जाते हैं वहाँ छः सात-सात लड़कियों से घर भरा रहता है। इसका परिणाम सिवाय इसके क्या हो सकता है कि घर में किसी बच्चे का ठीक से पालन-पोषण नहीं हो पाता, किसी की भी समुचित शिक्षा दीक्षा नहीं हो पाती।

उचित तो यह था कि एक-दो कन्याओं का जन्म होने पर ही प्रजनन का क्रम रोक दिया जाता और समझ लिया जाता कि अब जिन्दगी के लिए काफी जिम्मेदारी और बड़ा काम आ गया है। इन दो कन्याओं को ही सुयोग्य बनाने और अच्छे घर-वर को सौंपने में इतना धन चाहिए जो कठिनता से जमा ही हो पाता है। अब अगर लड़का हो भी गया तो उसकी शिक्षा-दीक्षा और ब्याह-शादी के लिए अधिक तंगी का सामना करना पड़ेगा। किन्तु भारतीय मानस की इस मूढ़ लालसा को क्या कहा जाए जिसे पूरा करने की आशा में वह जिम्मेदारी पर जिम्मेदारी बढ़ाता चलता है और अपने साथ ही नहीं बच्चों के साथ भी नृशंस खिलबाड़ समाज के प्रति द्रोह करता है।

एक तो अधिकांश परिवारों की आर्थिक स्थिति वैसे ही कमजोर है, कहना नहीं होगा कि अपना देश दुनिया से सबसे गरीब देशों में गिना जाता है। आम आदमी की आर्थिक स्थिति शोचनीय ही है उस पर सन्तान की संख्या बढ़ाते चलना परिवार को और भी अस्त-व्यस्त कर देने जैसा होता है। दो ढाई सौ रुपये की नौकरी करने वाला कोई दुकानदार या कारीगर अपने पाँच-छह बच्चों के पालन-पोषण और पढ़ाई-लिखाई का खर्च उठाने में निश्चित ही असमर्थ होता है। बड़े परिवार का खर्च उसकी कमर ही तोड़कर रख देता है।

अनेक बार बड़े परिवार की बढ़ी हुई आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा कर पाने की स्थिति न होने से कई लोग तङ्ग आकर आत्महत्या तक कर लेते हैं। काश कि वे अधिक बच्चे पैदा करने से पहले इस प्रकार आमन्त्रित की जानेवाली जिम्मेदारियों की गम्भीरता समझ पाते। एक मुसीबत यह भी होती है कि मध्यवर्ग के लोगों को अपने रहन-सहन का स्तर भी ठीक-ठाक ही रखना पड़ता है। बच्चों को नहीं पढ़ाते हैं तो समाज में मुँह उठाकर बात नहीं कर सकते और पढ़ाते हैं तो उतना खर्च नहीं जुटता फलतः परिवार की अन्य आवश्यकताओं में कटौती करनी पड़ती है। खाने-पीने के बजट में कमी करनी पड़ती है। जिसका अर्थ है परिवार के स्वास्थ्य का नाश। इतने पर भी खर्च पूरा नहीं पड़ता तो कर्ज लेना पड़ता है। मध्यवर्ग के परिवारों की आर्थिक स्थिति इसी लिए लड़खड़ाई रहती है कि उसे समाज में अपना स्तर बनाकर रखना पड़ता है और आमदनी इतनी होती नहीं है कि बड़े परिवार की आवश्यकताएँ सुविधापूर्वक सरलता से पूरी की जाती रहें। इस स्थिति में बच्चों को ऊँची शिक्षा दिलाना, उनके मानसिक विकास के लिए उपयुक्त वातावरण और परिस्थितियाँ पैदा करना चाहने पर भी सम्भव नहीं होता। इसलिए दम्पत्ति को चाहिए कि वे उतने ही पैर फैलावें, जितनी लम्बी चादर हो। उतने ही बच्चे पैदा करें, जितनों का ठीक-ढंग से पालन-पोषण किया जा सके।

भलीभाँति पालन-पोषण किये गये बालक ही ठीक ढंग से विकसित हो पाते हैं। वे तभी अच्छे नागरिक बन पाते हैं जबकि उनका मानसिक विकास स्वस्थ दिशा में हुआ हो, उनकी गुप्त शक्तियों के खिलने के लिए उपयुक्त वातावरण मिला हो और इसके लिए केवल, धन ही नहीं समय और सामर्थ्य भी आवश्यक है। आर्थिक दृष्टि से कोई व्यक्ति सम्पन्न, समृद्ध हो तो भी वह अपने सात-आठ बच्चों का समुचित विकास इसलिए नहीं कर पाता कि उसके पास सबकी देखभाल के लिए पर्याप्त समय नहीं है। इस प्रकार सन्तान की संख्या बढ़ाते चलना किसी भी व्यक्ति के लिए उचित नहीं है, बल्कि यह कई तरह से राष्ट्रघाती भी है। क्योंकि बच्चे बढ़ते हैं तो उनकी जरूरतों को पूरा करने के लिए अधिक साधन भी चाहिए। ऐसे समर्थ सम्पन्न व्यक्ति थोड़े से ही हैं, जिनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कही जा सके। दुर्बल आर्थिक स्थिति के व्यक्ति बढ़ी आवश्यकताओं को सरलता से पूरा नहीं कर पाते। इसलिए उन्हें विवश होकर बेईमानी, अनीति, चोरी और भ्रष्टाचार का मार्ग अपनाना पड़ता है।

नई पीढ़ी में उद्दण्डता, उच्छृंखलता और आपराधिक वृत्तियाँ बढ़ती दिखाई दे रही हैं तो उसका भी यही कारण है कि अधिक संख्या में बच्चे होने के कारण माता-पिता उन पर समुचित ध्यान नहीं दे पाते। उन्हें पर्याप्त लाड़-प्यार और स्नेह-दुलार नहीं मिलता। ठीक से सार-सम्भाल नहीं हो पाती और वे पथभ्रष्ट होकर आपराधिक प्रवृत्तियाँ अपनाने लगते हैं। अधिक सन्तान होने पर सभी को सुयोग्य बना पाना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है और जब उन्हें सुयोग्य बनाने के लिए आवश्यक प्रयास नहीं किये जायेंगे तो स्वाभाविक है कि उनमें से अनेक अवारागर्दी, अनैतिक, अपराधी और उच्छृंखल प्रवृत्तियाँ अपनाने लगेंगे।

अस्तु, सन्तान की संख्या बढ़ाना किसी भी हालत में उचित नहीं है। बल्कि इसे अक्षम्य सामाजिक अपराध करार दिया जाना चाहिए। अब वैसी परिस्थितियाँ नहीं हैं, जिनमें इन शास्त्रीय उपदेशों को व्यावहारिक कहा जा सके जिनमें कि सन्तान का होना सौभाग्य का सूचक कहा गया है। बड़ी-बूढ़ियों के दूधों नहाने और पूतों फलने के आशीर्वाद को आशीर्वाद नहीं अभिशाप ही कहा जाना चाहिए और सन्तान की कामना को मूर्खता से भी आगे विमूढ़ पागलपन कहा जाना चाहिए। सन्तान की संख्या बढ़ाने की बात को परले सिरे की मूर्खता मानते हुए, जो हैं उन्हीं का स्तर बढ़ाने और विकास करने की बात

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सोचनी चाहिए। उल्लेखनीय है कि सन्तान का स्तर और उसकी योग्यता का अभिवर्धन तभी सम्भव है जब वह संख्या में दो-तीन से ज्यादा न हो। इससे अधिक सन्तान बढ़ाना परले दर्जे की मूर्खता ही कही जानी चाहिए क्योंकि यह मूढ़ता अपने लिए, सन्तान के लिए, परिवार के लिए, समाज और देश के लिए, सभी के लिए अनर्थकारी ही है।

अधिकारी व्यक्ति ही सन्तान उत्पन्न करें

विश्व की जनसंख्या जिस तेजी से बढ़ रही है उसे देखते हुए यह आशंका की जाने लगी है कि जनसंख्या की यही तीव्र बाढ़ कहीं मनुष्य जाति का अन्त ही कर देने का कारण न बन जाय। सुनने और सोचने में यह बात विचित्र अवश्य लगती है पर उतनी ही सच भी है। पृथ्वी के पास निश्चित मात्रा में भोजन है, निश्चित जल भण्डार है और उस पर लहराता हुआ वायुमण्डल भी निश्चित प्राणियों की प्राणवायु को पूरा कर सकता है। उस सम्मिलित पोषण के सामग्री पर केवल मनुष्य का ही एकाधिकार नहीं है। प्रकृति को अन्य प्राणियों की आवश्यकतायें पूरी करनी पड़ती हैं जिनकी संख्या अरबों-खरबों में है, कहना चाहिए असंख्य है।

फिर मनुष्य के लिए आवश्यक आहार भी अलग है जो अन्य पशु-पक्षियों से मेल नहीं खाता। भोजन, आवास और जल, वायु का अभाव तथा प्रदूषण समस्या अभी से अनुभव की जाने लगी है। जबकि इस शताब्दी के अन्त तक जनसंख्या का दूना विस्तार हो जाने की सम्भावना व्यक्त की जा रही है। इतने व्यक्तियों के लिए प्रकृति शायद ही आहार जुटा पाये। ऐसी परिस्थितियों में मनुष्य को जीने के लिए कठोर संघर्ष करना पड़ेगा। न केवल प्रकृति से वरन् अपने ही समान अन्य मनुष्यों से भी। इस जीवन संघर्ष में मनुष्य को ही हारना पड़ेगा। प्रकृति तो एक नियत सीमा तक ही उत्पादन कर सकती है। इस सम्बन्ध में माल्थस का सिद्धान्त सर्वप्रसिद्ध है, जिसमें कहा है कि—'विज्ञान चाहे कितनी भी उन्नति क्यों न करता जाय, जमीन की पैदावार एक नियत सीमा तक ही बढ़ सकती है। प्रत्येक पौधे की जड़ और पत्तियों को फैलाने के लिए जितना स्थान, वायु, धूप, जल इत्यादि चाहिए उसे जनसंख्या के अनुपात से खींचतान कर नहीं बढ़ाया जा सकता। इसी प्रकरण में दूसरी बात माल्थस ने यह कही है कि जमीन की उर्वरा शक्ति को जब बहुत अधिक बढ़ाने की चेष्टा की जाती है, तो शीघ्र ही ऐसा अवसर आ जाता है कि तमाम प्रयत्नों के बावजूद भी उसकी उर्वरा शक्ति अचानक कम होने लगती है। इसका कारण यह है कि इस उद्देश्य से निरन्तर जोती, बोई जाने वाली जमीन सारहीन, शक्तिहीन और अनुत्पादक हो जाती है। क्योंकि उसके सारतत्वों का क्षय होने लगता है। इसी आधार पर मनुष्य जाति के विनाश की आशंका व्यक्त करते हुए ऐलिनाय विश्वविद्यालय के प्रख्यात भौतिकशास्त्री प्रो. हीजवान फोस्टेर ने सन् २०३६ में मनुष्य जाति के नष्ट हो जाने की भविष्यवाणी करते हुए कहा—''उस वर्ष बढ़ती हुई आबादी अपनी चरम सीमा पर पहुँच जायगी। तब जनसंख्या इतनी बढ़ जायगी कि वे अपना भोजन प्राप्त करने और रहने की जगह पर अपना अधिकार रखने के लिए आपस में ही लड़ेंगे। तब भुखमरी, युद्ध और अकाल की आपदाओं का पहाड़ भी टूट पड़ेगा तथा मनुष्य का अस्तित्व ही नष्ट हो जायगा।''

जनसंख्या वृद्धि के कारण सम्भावित विनाश की धारणा को पुष्ट करते हुए प्रो. फोस्टेर ने पुरातात्विक अनुसन्धानकर्ताओं को मिले हजारों वर्ष पूर्व के उन विशालकाय जन्तुओं के अवशेषों का भी उल्लेख किया है। जिनकी नस्ल भी अब समाप्त हो गयी है। उन्होंने कहा है दस लाख वर्ष पूर्व पृथ्वी पर रह रहे हाथियों से भी पाँच और दस गुने तक बड़े शक्तिशाली पशु इसलिए लुप्त नहीं हो गये कि वे जीवन संघर्ष में हार गये थे वरन् उनके लुप्त होने के कारण यह है कि उनकी संतति इतनी बढ़ गयी जिससे उनके लिए उपलब्ध भोजन कम पड़ना और 'लिविंग स्पेस' भी सिकुड़ने लगा।

मनुष्य जाति के विनाश की सम्भावना को किसी प्रकार टाला भी जाय पर जनसंख्या का विस्तार इसी गति से होता रहा, तो भविष्य में विकासशील मनुष्य की सभ्यता की आशा किसी भी प्रकार नहीं की जा सकती। इसका कारण है भीड़ में व्यक्ति की प्रतिभा का नष्ट हो जाना। विशेषज्ञों का कथन है कि मनुष्य की प्रतिभा खुले स्थान में ही निखरती है, लेकिन उस खुले स्थान में अधिक लोग हो जायँ तो व्यक्ति एक अनजाना भार अनुभव करने लगेगा। कई प्रयोगों द्वारा इन निष्कर्षों पर पहुँचा जा सका। एक कमरे में बहुत से आदमियों को इकट्ठा किया और उन्हें चुप रहने को कहा गया। थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद वे एक तनाव महसूस करने लगे।

मानसिक तनाव के बढ़ने के साथ ही साथ व्यक्ति का विवेक भी नष्ट होने लगता है। इस बात को यों आसानी से समझा जा सकता है कि आदमी किसी की हत्या करने की कम ही हिम्मत कर पाता है। जबकि भीड़ आसानी से कर देती है। दंगा-फसाद में अकेले व्यक्ति नहीं—व्यक्तियों के दल ही लड़ते हैं और वे लोग जो मारपीट तक से डरते, हत्यायें कर डालते, आग लगा देते हैं। लूटमार कर लेते हैं। अकेला व्यक्ति यहाँ तक कि जोर से भी चिल्लाने में झिझकता है जबकि जुलूस में लोग गला फाड़-फाड़कर चिल्लाने लगते हैं। एकाकी व्यक्ति पर समूह का प्रभाव असंदिग्ध रूप से पड़ता है और अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से निर्णय लेने की अपेक्षा भीड़ के साथ ही चलने लगता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विवेक के अभाव में प्रतिभा का उदय और विकास भी असम्भव है। बड़े-बड़े महापुरुषों, विद्वानों, साहित्यकारों और वैज्ञानिकों ने अपने महान कार्य, ज्ञानार्जन, साहित्य सृजन तथा अनुसंधान एकान्त में ही किये हैं। जनसंख्या का अनुपात जब इतना बढ़ जायगा कि एकान्त मिलना ही सम्भव न होगा तो मानवी सभ्यता को विकास की ओर अग्रसर करने वाले महत्कार्य सम्पन्न करना असम्भव ही हो जायगा। क्योंकि एकान्त में ही व्यक्ति अपने ध्यान, मानसिक शक्ति और मनायोग केन्द्रित कर पाता है, जो कि सृजन का आधार है। एकान्त मिलना ही जब दूभर हो जायगा तो सभ्यता का विकास करने वाला सृजन भी कहाँ होगा।

प्रतिभा के नष्ट होने के साथ आबादी वृद्धि में सम्पन्नता घटने और निर्धनता बढ़ने का भी खतरा है। विश्व में जितनी पूँजी है, जितना उत्पादन है और जितनी सम्पन्नता है, उसमें वृद्धि की गति एक है जबकि जनसंख्या की वृद्धि अधिक तीव्रगति से होती है। ऐसी स्थिति में उपलब्ध साधन और पूँजी कभी भी संसार की समस्त आबादी के लिए अपर्याप्त हो सकते हैं।

सम्पन्नता की दृष्टि से एक तथ्य और द्रष्टव्य है कि धनवानों की अपेक्षा गरीबों के यहाँ ही ज्यादा बच्चे होते हैं। अधिकांश लोग काम सेवन मनोरंजन के उद्देश्य से करते हैं न कि सन्तानोत्पादन के लिए। गर्भधारण और सन्तान का जन्म तो आकस्मिक और अप्रत्याशित दुर्घटना की तरह हो जाता है। सम्पन्न-समर्थों या मध्यवर्गीय लोग अपनी मनोरंजन की क्षुधा साहित्य पढ़ने, सिनेमा देखने, संगीत सुनने में या और भी इसी प्रकार के अन्य उपायों से शांत कर लेते हैं। पर अलभ्य रहने के कारण निर्धन दूसरे उपाय अपनाने के स्थान पर काम सेवन ही मनोरंजन की तरह करते हैं। उसी में दुर्घटना के समान बच्चों का जन्म हो जाता है। वस्तुतः एक-दो बच्चों के बाद शायद ही कोई और सन्तान चाहता हो। एक तो गरीबी और ऊपर से अप्रत्याशित रूप से जन्मे अनपेक्षित बच्चे। उनका खर्च और भी गरीबी को बढ़ा देता है। न बच्चों को समुचित पोषण और सन्तुलित आहार मिल पाता है तथा न ही माता-पिता का दारिद्रय कम होता है, उल्टे और भी बढ़ जाता है। ऐसी स्थिति में सन्तानोत्पादन अपने लिए तो चिन्ताजनक होता ही है, बच्चों के प्रति भी अपराधपूर्ण बन जाता है। क्योंकि उन्हें बाल्यकाल जो कुछ जितना और जिस तरह मिलना चाहिए वह अलभ्य ही रहता है। अभाव और गरीबी में जन्मे-पले बच्चों का स्वाभाविक विकास कहाँ से हो सकता है ? निस्सन्देह पालन-पोषण और देख-रेख में अक्षम, असमर्थ होते हुए बच्चों को जन्म देना अपराधपूर्ण ही है, जिसका कोई दण्ड न होते हुए भी नारकीय अभिशाप तो भोगना ही पड़ता है।

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि जो माता-पिता कम सन्तान उत्पन्न करते हैं, उनके बच्चे अधिक प्रतिभाशाली होते हैं तथा जिनके बहुत सारे बच्चे वे शारीरिक दृष्टि से ही नहीं मानसिक दृष्टि से भी रुग्ण और प्रतिभाहीन होते हैं। अधिक सन्तान उत्पन्न करने से माता-पिता के सारे गुण, सारी विशेषतायें और सारी क्षमतायें अधिक बच्चों में बँट जाती हैं। जबकि सन्तति यदि सीमित हो तो उनमें माता-पिता के अधिकांश गुण और अधिकांश प्रतिभायें आसानी से आ जाती हैं। अनुभवी माली किसी पौधे में बड़ा या सुन्दर फूल चाहता है, तो वह छोटे-छोटे फूलों को पहले ही काट देता है। सुन्दरता जो सब फूलों में बँट सकती थी वह इसी कारण एक ही फूल में बह कर आ जाती है। यदि उनकी सम्भावना को भी किसी प्रकार क्षीण किया जा सके तो एक ही फूल और अधिक सुन्दर रूप में भी विकसित हो सकता है। फूलों के सम्बन्ध में यह किया जा सके या नहीं पर मनुष्य तो अपनी सन्तति का नियमन करने में समर्थ है। यदि ऐसा किया जाने लगे तो आठ-आठ, दस-दस बच्चों में बँट जाने वाली प्रतिभा जो बाद में कितने ही कारणों से लुप्त हो जाती है को एक या दो बच्चों में ही उत्पन्न की जा सकती है।

अधिक बच्चों को स्वास्थ्य की दृष्टि से भी कमजोर ही पाया जाता है। क्योंकि वे माँ का दूध, उसका स्नेह-ममत्व, पिता का लाड़-प्यार अभी अपेक्षित रूप में भली-भाँति पा भी नहीं सका था कि दूसरे बच्चे का जन्म हो जाता है। माता भी एक बच्चे को जन्म देने के बाद कम से कम पाँच साल तक दूसरे बच्चे की माँ बनने में स्वास्थ्य की दृष्टि से योग्य नहीं हो पाती। वैसी ही स्थिति में—अस्वस्थ और अशक्त दशा में पुनः गर्भ धारण उसके स्वास्थ्य को और भी कमजोर बनाता है, भावी बच्चे को भी इस कारण गर्भावस्था से ही कमजोर, अशक्त और रुग्ण बना डालता है। जन्म के बाद जीवन भर उसके स्वस्थ और सबल होने की सम्भावना नहीं रहती है।

जनसंख्या वृद्धि ने किस प्रकार मनुष्य जाति के अस्तित्व और सभ्यता पर ही प्रश्नचिह्न लगा दिया है—यह जानने के बाद उसे अनुत्तरित ही नहीं छोड़ दिया जाना चाहिए। समस्या का समाधान यह है कि सन्तान कम से कम पैदा की जाय और वे लोग तो सन्तति को एकदम नियंत्रित ही नहीं प्रतिबन्धित भी कर दें, जो अपने बच्चों को अच्छा जीवन देने में असमर्थ हैं। अच्छी शिक्षा, पोषक आहार, स्नेह-ममत्व, आवश्यक सुविधाये और अच्छे संस्कार देने में असमर्थ, अशिक्षित, निर्धन, निष्ठुर और कंगाल लोगों को बच्चों के जन्म पर तुरन्त ही रोक लगा देनी चाहिए। बिना यह सोचे-समझे कि हमारा नाम कैसे चलेगा, कुल कैसे बचेगा। नाम और कुल बाद की बात है पहले बच्चों के लिए आवश्यक समुचित जीवन सुविधायें हैं। उन्हें उपलब्ध कराने में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असमर्थ रहते हुए बच्चों को आमन्त्रण देना उनके प्रति अन्याय है। यह मान्यता भी निराधार है कि सन्तान से नाम चलता है। दो-तीन पीढ़ी पहले के पूर्वजों का नाम शायद ही किसी को याद रहता हो तो यह आशा भी किस आधार पर की जाय कि आने वाली पीढ़ियाँ हमारी याद करेंगी। नाम सन्तान से नहीं अच्छे कार्यों से चलता है। राम, कृष्ण और बुद्ध, महावीर से लेकर राणाप्रताप, शिवाजी, सूरदास, तुलसी, मीरा, ज्ञानदेव की पीढ़ी में पैदा हुए लोगों का किसी को पता नहीं फिर भी वे अमर हैं।

अयोग्य और अनाधिकारी व्यक्तियों को सन्तानोत्पादन के लिए निरुत्साहित करने के साथ-साथ प्रतिभाशाली, बुद्धिमान, योग्य और विकसित व्यक्तियों को ही सीमित सन्तानोत्पादन करने दिया जाय। यहाँ याद रखना आवश्यक है कि अधिक बच्चे वे भी न पैदा करें। क्योंकि इससे उनके संस्कार और क्षमता से बच्चों के वंचित रह जाने की संभावना है। जो अपने बच्चों को उचित शिक्षा, पर्याप्त पोषण और आवश्यक जीवन सुविधायें उपलब्ध करा सकें—मानवता की दृष्टि से उनका ही सन्तानोत्पादन उचित और अधिकारिक है। कम जनसंख्या और अधिक उत्पादन ही आज के शक्ति मापदण्ड हैं। २०-२२ करोड़ का अमेरिका ८० करोड़ के चीन से इसीलिए अधिक शक्तिशाली और सम्पन्न है कि अमेरिका में चीन की अपेक्षा जनसंख्या बहुत कम और उत्पादन उसी अनुपात में काफी ज्यादा है। अतः किसी राष्ट्र की शक्ति और समृद्धि का भी यही एकमात्र आधार है। फिर जब समूची मानव-जाति के विनाश की सम्भावना उठ खड़ी हो, सभ्यता के विकास की प्रक्रिया अवरुद्ध होने का खतरा सामने हो तब तो अधिकारी व्यक्तियों को ही सन्तानोत्पादन की सीमित छूट देने के सिद्धान्त में और भी वजन बढ़ जाता है।

व्यभिचार से दूर रहो

स्त्री-पुरुषों की जननेन्द्रियाँ शरीर के अन्य समस्त अंगों की अपेक्षा अधिक चैतन्य, सजीव, कोमल, सूक्ष्म प्राण विद्युत से युक्त होते हैं। मानव शरीर के सूक्ष्म तत्वों को जानने वाले बताते हैं कि स्त्री में ऋण (निगेटिव) और पुरुष में धन (पाजटिव) विद्युत का भण्डार होता है। दर्श स्पर्श से भी यह विद्युत स्त्री-पुरुषों में एक विचित्र कम्पन उत्पन्न करती रहती है। परन्तु शरीर के सजीवतम प्राण केन्द्र गुह्य स्थानों का जब दोनों एकीकरण करते हैं, तब तो एक शरीरव्यापी तूफान उत्पन्न हो जाता है। दोनों के शरीर के विद्युत परिमाण दोनों के अन्दर अत्यन्त वेग और आवेश के साथ प्रवेश करते हैं और दोनों में एक शक्तिशाली अंतरंग सम्बन्ध—प्रेम उत्पन्न करते हैं। एक दूसरे के सूक्ष्म तत्वों का एक-दूसरे में बड़ी तीव्र गति से प्रचुर परिमाण में आदन-प्रदान होता है। यही कारण है कि जिन स्त्री-पुरुषों में यौन सम्बन्ध स्थापित हो जाता है वें एक दूसरे के ऊपर आसक्त हो जाते हैं, उनके बीच एक ऐसा आकर्षण और सामंजस्य स्थापित हो जाता है, जिसे हटाना या तोड़ना असाधारण रूप से कठिन होता है। पाँव दावना, सिर मसलना जैसी शारीरिक सेवाओं में ऐसी कोई हलचल नहीं होती किन्तु यौन सम्बन्ध से दो व्यक्तियों के सूक्ष्म प्राण तत्वों में आवेश पूर्ण आदान-प्रदान होता है। इसलिए शरीर सेवा और यौन सम्बन्ध को समान नहीं कहा जा सकता।

पतिव्रत और पत्नीव्रत का समर्थन शास्त्र ने इसी वैज्ञानिक आधार पर किया है। एक पुरुष का एक स्त्री से सम्पर्क होने पर उन दोनों में प्रेम भाव बढ़ता है। एक की शक्ति निश्चित मार्ग से दूसरे को प्राप्त होती है। गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से एक दूसरे के निकट आते हैं और एक प्राण दो शरीर बन जाते हैं। यौन सम्बन्ध के द्वारा दोनों के रक्त में सजीव संमिश्रण होता है, किसी बीमारी में किसी रोगी को रक्त का इंजेक्शन देना होता है तो डाक्टर लोग पति-पत्नी के जोड़े में से ही रक्त लेने को महत्व देते हैं। क्योंकि दम्पत्ति के रक्त में सहवास के कारण एक समान तत्व उत्पन्न हो जाते हैं।

पति-पत्नी के बीच सच्चा प्रेम, वफादारी, सेवा, आत्मीयता, विश्वास तभी रह सकता है, जब उनमें 'एकनिष्ठा' का व्रत हो। यदि कोई स्त्री अनेक पुरुषों से या कोई पुरुष अनेक स्त्रियों से गुप्त सम्बन्ध स्थापित करता है तो उसके शरीर में, रक्त में, मन में, मस्तिष्क में अनेकों तत्व मिल जाने के कारण अस्थिरता, खींचतान, आकर्षण-विकर्षण के दौर चलने लगते हैं। ऐसी अवस्था में सच्चा प्रेम, वफादारी एवं आत्मीयता असंभव है। व्यभिचारी स्त्री-पुरुषों का दम्पत्य जीवन कपट, धूर्तता, मायाचार और छल से भरा हुआ होता है। वे अवसर पड़ने पर अपने साथी को धोखा दे सकते हैं।

व्यभिचार चोरी, भय, लज्जा और पाप की झिझक के साथ किया जाता है, उसे छिपाने का प्रयत्न किया जाता है। उपयुक्त अवसर ढूँढ़ने के प्रपंच उनके मन में उठा करते हैं। यह पापवृत्तियों कुछ समय लगातार अभ्यास में आते रहने पर मनुष्य के मन में वे गहरी उतर जाती हैं और जड़ जमा लेती हैं। फिर उसके स्वभाव में वे बातें शामिल हो जाती हैं और जीवन के विविध क्षेत्रों में वे प्रकटित होती रहती हैं यही कारण है कि व्यभिचारी व्यक्ति अक्सर चोर, निर्लज्ज, दुस्साहसी, कायर, झूठे और ठग होते हैं। वे अपने व्यापार तथा व्यवहार मे समय-समय पर अपनी इस प्रवृत्तियाँ का परिचय देते रहते हैं। उनका विश्वास उठ जाता है, लोगों के मनमें उनके लिए प्रतिष्ठा तथा आदर की भावना नहीं रहती, सच्चा सहयोग भी नहीं मिलता, फलस्वरूप जीवन विकास के महत्वपूर्ण मार्ग बन्द हो जाते हैं। पापवृत्तियों के मन में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जम जाने से अन्तःकरण कलुषित होता है। प्रतिष्ठा एवं विश्वस्तता नष्ट होती है और हर क्षेत्र में सच्ची मैत्री या सहयोग भावना का अभाव मिलता है। यह तीनों ही बातें नरक की दारुण यातना के समान हैं, व्यभिचारी को अपने कुकर्म का दुष्परिणाम इसी जीवन में उपयुक्त तीन प्रकार से नित्य ही भुगतना पड़ता है।

स्त्री पुरुषों के सम्मिलन से एक का प्रभाव दूसरे पर जाता है। एक के दुर्गुण दूसरे में प्रवेश हुए बिना नहीं रहते। काम भोग करने के साथ दूसरा पक्ष अपनी कुवासनाओं की छाप भी छोड़ता है यह परत दिन पर दिन मजबूत होते जाते हैं और वह दिन-दिन अधिक दुर्गुणी बनता जाता है। व्यभिचार स्त्री और पुरुष दोनों के लिए घातक है, पर स्त्रियों के लिए विशेष रूप से घातक है। कारण यह है कि स्त्रियाँ अपने शरीर के सबसे सूक्ष्म, चेतन एवं प्राण युक्त स्थान गुह्येन्द्रियों में पुरुष का वीर्य ग्रहण करती है। वीर्य पानी की बूँद नहीं है वरन् पुरुष के शरीर और मन का सारभूत प्राण सत्व है। उसकी एक-एक बूँद में मनुष्य उत्पन्न करने की प्रचंड शक्ति भरी हुई है। उस प्रचंड, शक्तिशाली प्राण सत्व के साथ पुरुष की गुह्य और प्रकट शक्तियाँ केन्द्रीभूत होती हैं। इस द्रव प्राण सत्व को योनि मार्ग में धारण करना ऐसा ही है मानों किसी के गुण-अवगुणों के सार भाग का इंजेक्शन लेना। यह निश्चित है कि पापी और पतित स्वभाव के व्यक्ति ही व्यभिचारी होते हैं, उनका पाप एवं पतन प्राण सत्व वीर्य के साथ स्त्री के आत्मिक क्षेत्र में व्याप्त हो जाता है और उसमें भी यह दुर्गुण भर देता है।

कितने ही व्यभिचारी पुरुषों के संयोग से उनके अनेकों प्रकार के दोषों को अपने सूक्ष्म शरीर में संचित कर लेने से स्त्री की निर्बल अन्तःचेतना बहुत ही विकृत हो जाती है। एक म्यान में अनेकों तलवार ठूँसने से भयंकर स्थिति उत्पन्न होती है। वैसे ही एक स्त्री के शरीर में नाना प्रकार के गुण, कर्म, स्वभाव एवं प्रभाव प्रवेश कर जाते हैं तो वे आपस में टकराते हैं उसका प्रभाव मनोभूमि को विकृत कर देता है। व्यभिचारिणी स्त्रियाँ सीधे स्वभाव की नहीं रहतीं, उनमें चिड़चिड़ापन झुँझलाहट, घबराहट, आवेश, अस्थिरता, रूठना, असत्य, छल, अतृप्ति आदि दुर्गुणों की मात्रा बढ़ जाती है, सिर दर्द, कब्ज, दर्द, खुश्की, प्यास, अनिद्रा थकावट, दुःस्वप्न, दुर्गन्धि आदि शारीरिक विकार भी बढ़ने लगते हैं। एक शरीर में अनेकों पुरुषों के प्राण का स्थापित होना, इस प्रकार के अनेकों दुखदायी परिणाम उपस्थित करता है। वेश्यावृत्ति करने वाली स्त्रियों का सान्निध्य ऐसा अनिष्टकर होता है कि पुरुष को बड़े तीव्र झटके के साथ नारकीय यातनाओं के कुण्ड में धकेल देता है।

कई प्रकार के वीर्यों को एक स्थान पर एकत्रित होने से विषैले रसायनिक पदार्थों का निर्माण होता है। जैसे घी और शहद अमुक मात्रा में मिला देने से हानिकारक रसायन बन जाती है वैसे ही अनेक व्यक्तियों के शुक्र कीट, योनि मार्ग में एकत्रित होकर विष बन जाता है, यह विष सुजाक, आतिशक जैसे योनि रोग उत्पन्न करता है। वे रोग जब बढ़ते हैं तो उस स्त्री के सम्पर्क में आने वाले पुरुषों को लगते हैं। पुरुषों की छूत अन्य स्त्रियों को लगती है, इस प्रकार व्यभिचार के कारण ये सत्यानाशी रोग उत्पन्न होते और फैलते हैं। जिसके पीछे यह रोग लग जाते हैं, उसका पीछा मुश्किल से छूटता है। यह रोग सड़ा-सड़ा कर, और रुला- रुला कर रोगी को मारते हैं। व्यभिचारिणी स्त्रियों का गर्भाशय दूषित हो जाने के कारण या तो उनके सन्तान होती ही नहीं, होती भी है तो पैतृक रोगों को लेकर होती है। माता-पिता की पापमयी मनोवृत्तियों का प्रभाव सन्तान पर निश्चित रूप से होता है। उस सन्तान में अनेक आसुरी दुर्गुण पाये जाते हैं। व्यभिचार से उत्पन्न हुई सन्तान को 'वर्ण शंकर' के अपमानजनक, घृणास्पद नाम से शास्त्रकारों ने पुकारा है। कारण यह है कि उस सन्तान में माता-पिता की प्रवृत्तियाँ सन्निहित रहती ही हैं। ऐसे बालकों की अभिवृद्धि होना संसार के लिए अभिशाप रूप है। इसलिए व्यभिचार सर्वथा निन्दनीय है। धर्म की दृष्टि से तो स्त्री और पुरुष दोनों के लिए वह एक समान पाप है परन्तु शारीरिक दृष्टि से स्त्रियों के लिए वह और भी बुरा है क्योंकि स्त्रियों के गुह्य अंग में पुरुष के वीर्य की स्थापना होती है, इससे उनके ऊपर अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक प्रभाव विशेष रूप से होते हैं। पुरुष-स्त्री के वीर्य को धारण नहीं करता इसलिए किन्हीं अंशों में उसे शारीरिक हानि कुछ कम होती है।

यदि पति-पत्नी में एक निष्ठा न हो, वे व्यभिचार में प्रवृत्त हों तो घर की आर्थिक दशा ठीक नहीं रह सकती। दोनों का ध्यान अपने तुच्छ स्वार्थ में केन्द्रित रहेगा। यदि पति व्यभिचारी हो तो दूसरी स्त्री को धन देकर अपने आश्रितों को अर्थहीन बनावेगा। यदि स्त्री व्यभिचारिणी हो तो कभी जार पति की आवश्यकता होने पर घर का धन गुप्त रूप से उसे दे देगी। यदि जार पति से लेगी तो उसे गुप्त रूप से रखेगी या फैशन आदि में अपव्यय करेगी। व्यभिचार से प्राप्त हुआ धन मुफ्त का सा लगता है वह बुरी तरह फिजूलखर्ची में जाता है। वेश्याएँ इतना धन कमाती हैं पर यौवन ढलने पर दूसरों की मुहताज होकर रोटी खाती हैं। उनके पास जमा कुछ नहीं हो पाता। फिजूलखर्ची की आदत यदि स्त्री या पुरुष एक को भी हो तो घर की आर्थिक व्यवस्था ठीक नहीं रह सकती। वहाँ दरिद्रता और अभाव का ही सदा बोलबाला रहेगा। पति-पत्नी की एकनिष्ठा और आत्मीयता होने पर थोड़ी आमदनी में भी किफायतशारी और सावधानी बरतने से अधिक कठिनाई नहीं आती, परन्तु दोनों के बीच कपट या शिथिलता होने पर अच्छी आमदनी होते हुए भी अर्थ संकट बना रहता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यभिचारी व्यक्तियों को अपने प्रेमी को स्वेच्छापूर्वक प्राप्त करने की सुविधा नहीं होती, जब अवसर भी मिलता है तो थोड़े समय के लिए। वह भी आशंका, भय और झिझक के साथ। ऐसी स्थिति में तृप्तिदायक संयोग सुख, किसी भी प्रकार नहीं मिल सकता। दाम्पत्ति सुख की यह चिन्ह पूजा दोनों में से किसी को तृप्ति नहीं दे पाती। मनोविज्ञान शास्त्र के अनुसार यह प्रकट है कि—अतृप्त संयोग मस्तिष्क सम्बन्धी विकार और मानसिक दुर्गुण उत्पन्न करता है। इच्छित तृप्ति की सुविधा न होने से व्यभिचारी व्यक्ति अपने प्रिय पात्र के लिए चिन्तित रहते हैं। विरह दुख पाते हैं, अवसर के लिए आतुर रहते हैं, जी की जलन बुझाने और प्रेमी को आकर्षित रखने के लिए उसकी समीपता प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार की चेष्टाओं में उनका सारा ध्यान उलझा रहता है। हर घड़ी वही फितूर सवार रहता है, समय का अधिकांश भाग उन्हीं बातों में खर्च हो जाता है, फलस्वरूप जीवन के अन्य आवश्यक एवं महत्वपूर्ण काम बिगड़ते हैं, अधूरे पड़े रहते हैं, छूट जाते हैं। इस मानसिक उद्वेग में शरीर दिन-दिन घुलता जाता है। ऐसे लोग बीमारी और कमजोरी से ग्रसित होकर अल्पायु में ही काल-कवलित हो जाते हैं। असंयम के कारण अधिक वीर्यपात होता है, इस प्राण सत्व के अधिक व्यय के कारण अनेकों नवयुवक तपैदिक के शिकार होकर जीवन लीला समाप्त करते देख गये हैं।

एकनिष्ठा का बंधन शिथिल हो जाने से समाज का संगठन बिल्कुल नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। स्त्री, बच्चे, माता-पिता आदि के सम्बन्ध एक क्षणिक ठेकेदारी मात्रा रह जावेंगे। स्वस्थता, सुन्दरता, स्वभाव या धन की अधिक मात्रा का जहाँ अवसर मिलेगा, वहाँ पहले सम्बन्ध को छोड़कर लोग दूसरे नये सम्बन्ध की स्थापना किया करेंगे। तब किसी भी स्त्री-पुरुष को अपने साथी पर विश्वास न रहेगा। सदा यही भय लगा रहेगा कि अधिक अच्छा अवसर मिला कि साथी पल्ला छोड़ कर भागा। ऐसी आशंका के बीच किसी सुदृढ़ परिवार की स्थापना किस प्रकार हो सकती है ? सुदृढ़ परिवार की, आधारशिला स्त्री-पुरुष के बीच सच्ची मित्रता, एकता और आत्मीयता ही है और वह तभी हो सकती है जब एक-दूसरे के प्रति वफादार हों, उसके लिए कुछ त्याग करें। इस त्याग और वफादारी की प्राथमिक परीक्षा-एकनिष्ठा, व्यभिचार से बचना ही है। जहाँ एकनिष्ठा न होगी—उन पति-पत्नी के बीच सच्ची आत्मीयता का होना असंभव है। अस्थिर, संशकित और प्रेमरहित परिवारों का समाज संसार के सारे सौन्दर्य का और मानव जाति की महत्ता का नाश ही कर देगा। यदि व्यभिचार पर प्रतिबन्ध न होगा तो एक व्यक्ति दूसरे के और दूसरा तीसरे के घर को ताकेगा और सर्वत्र अशान्ति, अस्थिरता एवं अविश्वास का वातावरण व्याप्त हो जायगा। स्त्री या पुरुष किसी को सच्चा साथी न मिल सकेगा।

इन सब बातों पर विचार करने से पतिव्रत और पत्नीव्रत की महत्ता स्पष्ट हो जाती है। कामसेवन एक मनोरंजक खेल मात्र नहीं है। यह प्राण विनिमय की वैज्ञानिक प्रक्रिया है। यह वह महान रसायनिक क्रिया है जिसके द्वारा दो प्राणों का एकीकरण होता है और उस संयोग से नये प्राणों की बालकों की उत्पत्ति होती है। भावी संतति की पवित्रता, सार्वजनिक स्वास्थ्य, समाज की स्थिरता, परिवार की निश्चिन्तता आदि जीवन की महत्वपूर्ण समस्याओं का सदाचार से अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। इसमें शिथिलता आते ही इतनी दुखदायी उलझनें उत्पन्न हो जाती हैं, जिनके सामने कामसेवन का इन्द्रिय सुख बिल्कुल तुच्छ और उपेक्षणीय है। मनुष्य समाज का सामूहिक हित जिन कामों में निहित है, वे धर्म हैं, जिन कार्यों से सामूहिक अहित होता है, वे पाप हैं। चूँकि व्यभिचार से मनुष्य जाति को सामूहिक हानि है इसलिए वह त्याज्य है एवं अधर्म है। पाठकों को व्यभिचार से दूर रहने का प्रयत्न करना चाहिए।

वरदायी आविष्कार

मातृत्व एक वरदान है पर उस गरीब महिला के लिए एक अभिशाप बन चुका था। सात दशक पूर्व वह अमरीका के एक अस्पताल में चौथी बार प्रसव वेदना से छटपटा रही थी। वह एक ट्रक ड्राइवर की पत्नी थी, नाम था उसका—सैंडी सैम्स। ट्रक चालक पति की कमाई इतनी नहीं थी कि अच्छी प्रकार परिवार का निर्वाह हो सके। तीन बच्चों तथा पत्नी के लिए भोजन, वस्त्र जुटा पाना ही कठिन पड़ रहा था। ऊपर से बच्चों की अतिरिक्त संख्या अलग बढ़ती जा रही थी। बिन चाहे बच्चों का आगमन रोक पाना उनके लिए सम्भव न था। वह मनःस्थिति भी न थी कि गृहस्थ जीवन में ब्रह्मचर्य का कड़ाई से पालन कर सकें।

चौथी बार वह मरणांत्तक पीड़ा से अस्पताल में कराह रही थी। किसी तरह प्राण बच जायँ, इसके लिए मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना कर रही थी। चौथे बच्चे ने जन्म लिया, उसे प्रसव पीड़ा से छुटकारा मिला। सेवा में लगी नर्स से बोली "सिस्टर क्या कोई उपाय है कि मैं बच्चों के झंझट से सदा के लिए छुटकारा पा जाऊँ ?" नर्स स्वयं तीन बच्चों की माँ थी। कष्टकारक प्रसव वेदना से वह भलीभाँति परिचित थी। सैंडी से उसने कहा "मैं इसका हल ढूँढ़ने की कोशिश करूँगी।"

एक वर्ष का समय बीता। नर्स को वह बात याद न रही। स्मृति ताजी तब हुयी जब पुनः सैंडी पाँचवे बच्चे को जन्म देने पुनः उसी अस्पताल में उसी के वार्ड में पहुँची। नरकंकाल सी उसकी स्थिति हो रही थी। शरीर पीला पड़ गया था। असह्य वेदना के चिन्ह उसके चेहरे पर स्पष्ट दिखायी पड़ रहे थे। अस्पताल में वह भर्ती तो हुई पर बच्चा जनने के तुरन्त बाद चल बसी। सहसा नर्स

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मार्गरेट के सामने से वे सारे दृश्य गुजर गये, जिनमें वेदना से कराहते-कराहते सैंडी चल बसी।

उसने नर्स की पोशाक उतारकर तथा नौकरी छोड़कर अवांछित मातृत्व की पीड़ा से नारी जाति को छुटकारा दिलाने का संकल्प लिया। उस संकल्प को पूरा करने के लिए वह तन-मन से लग गयी। अनेकों वैज्ञानिकों, चिकित्साशास्त्रियों से परामर्श के लिए सम्पर्क किया। उन दिनों ऐसे प्रयास को असामाजिक तथा अनैतिक भी समझा जाता था। अधिकांश ने उसे निराश किया।

उसके पास धन एवं आविष्कार के लिए आवश्यक साधनों का भारी अभाव था पर उन प्रतिकूलाताओं से जूझते हुए वह अपने निश्चय पर अडिग रही और तब तक खोज करती रही जब तब कि वर्थ कंट्रोल का सूत्र हाथ न लग गया।

पर चर्चों, कानून तथा समाज सभी ने उसकी खोज को अनैतिक बताते हुए विरोध किया। फैमिली प्लानिंग नामक पुस्तक लिखने के जुर्म में उस पर मुकदमा चला पर कुछ ही समय बाद वह उससे बरी हो गयी। सन् १९१६ में जब उसने विश्व का पहला वर्थ कंट्रोल क्लीनिक खोला तो पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया। पादरियों ने उसे भ्रष्टा, चुड़ैल, जातिद्रोही की उपाधियाँ दीं। पर उसे विश्वास था कि वह जो कुछ भी कर रही है नारी समाज के हित के लिए ही कर रही है। समाज आज नहीं तो कल उसकी कल्याणकारी खोज को मान्यता देगा। बिना विचलित हुए जेल से छूटने पर वह परिवार नियोजन क्लीनिक चलाती रही तथा लोगों को संतति नियोजन पर परामर्श देती रही।

उसकी आशा सच निकली। अब विश्व के लगभग अधिकांश देशों एवं समाजों ने आधुनिक परिवेश को देखते हुए संतति निरोध के विभिन्न उपायों को मान्यता दे दी है। सरकारों ने स्वयं परिवार कल्याण नियोजन का कार्य अपने हाथों में ले लिया है, जिससे करोड़ों नारियों को अवांछित मातृत्व से छुटकारा मिला है पर इस सफलता का श्रेय उस नारी को है जिसने प्रतिकूलताओं का सामना करते हुए भी इस प्रणाली का आविष्कार किया।

संतति नियमन के कुछ सुलभ उपाय

जनसंख्या पर नियन्त्रण पाने के लिए संसार के अनेक देश प्रयत्न कर रहे हैं। इनमें अमेरिका, फ्रांस, चीन आदि भी सम्मिलित हैं। भारतवर्ष में पिछले आयोजनों में लगभग १ अरब रुपया खर्च हो चुका है। इस योजनाकाल में भी ६० करोड़ रुपये खर्च का अनुमान है।

डॉ. मेरी स्कारलेब, सर रावर्टस आर्म्सस्ट्रांग जोन्स, डा. हेक्टर तथा डा. मैकन आदि विद्वानों को यह कृत्रिम उपकरणों से संतति निरोध पसन्द नहीं। वे इससे उच्छृंखलता एवं अनैतिकता बढ़ने का खतरा देखते हैं और उसके दुष्परिणामों से चिन्तित हैं। सामाजिक जीवन में 'काम' जैसे सर्वथा गोपनीय विषय को इस प्रकार सार्वजनिक चर्चा का विषय बनाना उनकी दृष्टि से उचित नहीं है। इससे मनुष्य का मन सम्भवत: कामेन्द्रियों की ओर आकर्षित होता है, फलस्वरूप संयमी व्यक्तियों का मनोबल भी दुर्बल पड़ जाता है और वे भी कामुकता के शिकार हो जाते हैं।

मातृत्व की विडम्बना—सन्त विनोबा का कथन है—"परिवार नियोजन के कृत्रिम उपकरणों से मैं देश का कल्याण नहीं देखता वरन् इसमें आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों की हार है। परिवार नियोजन में मैं मातृत्व की खुली विडम्बना मानता हूँ। इसके अनुकूल सोचने पर भी मेरी राय बनी है कि यह चीज चार आश्रम की हमारी प्रतिष्ठा को उखाड़ेगी और मैं चार आश्रम स्थापना की आशा छोड़ नहीं बैठा हूँ।"

आर्ष-मर्यादा के अनुसार सन्तति निग्रह का आधार सर्वथा नैतिक और सांस्कृतिक है। सन्तान नियोजन की बात करते हुए हमारा लक्ष्य शरीर, आत्मा, मन और अन्त: को बलिष्ठ बनाना होना चाहिये। यह बात वैयक्तिक आचरण और समाज के स्वस्थ रीति-रिवाजों एवं परम्पराओं से ही सिद्ध होनी चाहिए। यह तभी सम्भव है जब मातृत्व को परिपूर्ण सम्मान मिले, इन्हें भोग और प्रजनन की सामग्री मात्र न समझा जाये। हमारी दृष्टि में कामवासना की सन्तुष्टि गौण और सन्तानोत्पति मुख्य होनी चाहिए।

मरणं बिन्दु पातेन—हमारे पूर्वजों ने बहुत पहले यह चेतावनी दी थी—"**मरणं बिन्दु पातेन जीवनम् बिन्दु धारणात्**"—"ऐ मनुष्यों वीर्य नाश करोगे तो तुम्हारी मृत्यु हो जायगी। जीवित रहने के लिए वीर्यवान् बनना, संयमी बनना।"

परिवार नियोजन का सच्चा स्वरूप यही है, इसी में मनुष्य जीवन की सद्गति एवम् सामाजिक जीवन की सुव्यवस्था सन्निहित है। सुसंतति भी केवल वे ही प्राप्त कर सकते हैं, जो काम-वासना को नियन्त्रण में रखकर सन्तानोत्पति करते हैं। इस सम्बन्ध में महात्मा गाँधी कहा करते थे—

"हमारे उपनिषदों में कहा है कि जहाँ पति-पत्नी संगम हुआ, वहाँ उस वीर्य के साथ एक जीवात्मा ने अपने जन्म का रास्ता खोजा। ऐसी स्थिति में यदि सम्भोग हो तो उससे एक जीवात्मा को मूर्तिमान होने का अवसर मिलना ही चाहिए। यदि वह वीर्य व्यर्थ चला जाता है, तो यही कहना होगा कि एक जीवात्मा की हत्या कर दी गई।"

'कीथ' नामक एक पाश्चात्य विद्वान् ने वीर्य रक्षा के सम्बन्ध मे लिखा है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

''यह वीर्य तुम्हारी हड्डियों का सत्व, तुम्हारे मस्तिष्क का भोजन, तुम्हारे जोड़ों के लिए तेल और तुम्हारे स्वाँस का मिठास है। यदि तुम मनुष्य हो तो तुम्हें ३० वर्ष की आयु से पूर्व उसकी एक बूँद भी नष्ट न होने देनी चाहिए।''

हम संयमी बनें—ब्रह्मचर्य की हमारे शास्त्रों में बड़ी महत्ता बताई गई है। वीर्य रक्षा से अकथनीय सुख मिलते हैं ऐसा वर्णन मिलता है। पर गृहस्थ जीवन में पूर्ण ब्रह्मचर्य सम्भव नहीं। सन्तान के लिए रति का विधान शास्त्र विहित है पर उसे केवल गर्भाधान के लिये ही सीमित रखा गया है।

'भाव-प्रकाश' एवं संस्कार विधि में बताया गया है कि जब स्त्री रजोदर्शन से शुद्ध हो जाय तब केवल सन्तान की कामना से पुरुष को समागम करना चाहिए और इसके बाद उसे सन्तान काफी बड़ी हो जाने तक पूर्णतया संयम धारण कर रहना चाहिए। जिन लोगों की ऐसी धारणा है कि पूर्ण संयम अनिष्टकारी होता है, उनकी धारणा भ्रान्त और काल्पनिक है। रायल कालेज लन्दन के प्रो. सर लीने वीले ने लिखा है—

''आचार-शास्त्र एवं शरीर विज्ञान के नियमों से संयम् और विशुद्ध पवित्रता की पूर्णतया सिद्धि होती है। यदि लोगों की इच्छा-शक्ति दृढ़ हो और वे अपनी जीवन शैली पर पर्याप्त ध्यान रखें तो कठिन से कठिन वासना पर भी नियन्त्रण किया जा सकता है। काम संयम् से, चाहे वह विवशता से किया गया हो अथवा स्वेच्छा से, कंभी किसी को हानि नहीं पहुँची।''

संयम में ब्रह्मचर्य की बात गाँठ बाँध रखने की है। शक्तियों का कोटा सीमित है। उसे बहुत ही सोच-समझ कर खर्च करना चाहिये। आमदनी कम और खर्च अधिक करने वाले दिवालिया बनते हैं। ऐसा न हो कि हम अति उत्साह में असंयम की दिशा में दौड़ पड़ें। इन्द्रिय वासनाओ की अग्नि में अपने बहुमूल्य जीवन तत्वों को जलाने लगें। विशेषतया कामेन्द्रिय और सम्बन्धित मनोविकारों पर तो कड़ाई का अंकुश रखना चाहिए। आहार की तरह विहार पर भी यदि सचमुच ध्यान रखा जा सके तो निःसंदेह हम संतति नियमन के साथ ही शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी बहुत हद तक सफल हो सकते हैं।

संयमित जीवन गृहस्थ के लिये प्रत्येक सुख-सुविधा का साधन है। काम की उच्छृंखल प्रवृत्ति से बचने के लिए इस विज्ञान की जानकारी भी होनी चाहिए। यह अनभिज्ञता भी बहुत-सी बुराइयों और त्रुटियों का कारण बन जाती है। पर यह ज्ञान पूर्ण व्यावहारिक तथा समय के नियन्त्रण मे ही रहना चाहिए।

शुद्ध आहार सात्विक विचार—संयम के लिए या ब्रह्मचर्य के लिए एक बार संकल्प ले लेना ही पर्याप्त नहीं है। यदि लोगों के विचार शुद्ध न रहें तो यह सम्भव नहीं कि लोग देर तक संकल्प साध सकें। इसका मुख्य कारण आहार की असावधानी है। मिर्च, मसाले, गरिष्ठ पदार्थ, बासी भोजन, खटाई तथा उत्तेजक पदार्थों का अमर्यादित एवम् अनियमित स्तेमाल बहुत हानिकारक समझा गया है। चाय, काफी, शराब, माँस, अण्डे, भाँग, चरस तथा तम्बाकू आदि मादक पदार्थ कामुकता को बहुत बढ़ाते हैं। व्यसन और वासना का जोड़ा बताया गया है। जनसंख्या विशेषज्ञों का मत है कि जिन परिवारों में अधिक सन्तानें होती हैं, उनमें पुरुषों में अधिकांश नशेबाज होते हैं। यह कथन अक्षरशः सत्य है।

इस प्रकार का दूषित भोजन शरीर की नस-नाड़ियों में उत्तेजना पैदा करता है। फलस्वरूप वासना की ओर अनायास ध्यान खिंच जाता है और धीरे-धीरे वह एक आम-प्रवृत्ति बन जाती है। इसलिए उत्तेजक, तामसिक पदार्थों से जितना बचा जा सके अच्छा है। सात्विक भोजन से जिसमें दाल, रोटी, चावल, दूध, घी, कम मिर्च-मसालों वाली सादी शाक-सब्जी आदि हो, शरीर भी पुष्ट होता है और मानसिक उत्तेजना से भी बचना हो जाता है।

दाम्पत्य जीवन में पवित्रता अनिवार्य—विवाह को जो लोग वासना की पूर्ति का साधन और स्त्री को क्रीत-दासी समझते हैं। उनसे बढ़कर और नीच कोई नहीं हो सकता। भारतीय संस्कृति में स्त्री को पुरुष की अर्द्धांगिनी माना गया है। उसकी सब प्रकार से रक्षा करने की शिक्षा दी गई है। सुन्दर, स्वस्थ और सद्गुणी सन्तान के लिए बहुत आवश्यक है कि स्त्री पुरुष के सम्बन्ध बहुत पवित्र रहें। उन्हें शारीरिक प्रेम की अपेक्षा आत्मिक प्रेम पर अधिक विश्वास होना चाहिए। सन्तति-नियमन का लाभ तो इस तरह एक प्रकार से गौण हो जाता है। पारिवारिक जीवन की पवित्रता अन्य असंख्य सुख-समृद्धियाँ प्रदान करती हैं। ऐसे परिवार सांसारिक दृष्टि से भी खूब समृद्ध होते हैं।

जिनके लड़कियाँ हों उन्हें लड़कों की हठ छोड़ देनी चाहिए। लड़कों से ही वंश चलते हों, ऐसी बात नहीं। न तो उनसे स्वर्ग और मुक्ति की आशा की जा सकती है और न नाम की। सब मनुष्य अपने गुण, कर्मों के अनुसार यश, कीर्ति एवम् मोक्ष का अधिकार प्राप्त करते हैं, इसलिए सन्तान को लड़के-लड़की की भेद दृष्टि से देखना उचित नहीं। लड़कियों का पालन-पोषण भी बच्चों के समान ही करना और उससे आत्मिक सुख अनुभव करना चाहिए। इस प्रकार का कारण बनाकर दूसरा विवाह कभी नहीं करना चाहिए।

सन्तति निरोध का सर्वोत्तम तरीका ब्रह्मचर्य है। इससे अनावश्यक बच्चों की बाढ़ से होने वाले दुष्परिणामों से ही बचा नहीं जाता वरन् शरीरिक और मानसिक स्वास्थ्य सम्बर्धन का लाभ होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर जिन्हें, इतना आत्म-संयम न हो और जो अपने को इसमें असमर्थ मानते हों, वे कृत्रिम उपकरणों का भी प्रयोग कर सकते हैं। दो बुराइयों में से एक चुननी ही पड़े तो बड़ी की अपेक्षा छोटी बुराई अपनाने में भी बुद्धिमानी है, अधिक सन्तान का खतरा उठाना बहुत बड़ी बुराई है। इसकी तुलना में कृत्रिम उपकरणों के माध्यम से उसकी रोकथाम करना हल्की बुराई है। जिनको अपने मन पर काबू नहीं, वे कम से कम इतना तो करें ही। प्रजनन बढ़ाकर अपनी स्त्री का स्वास्थ्य, बालकों के शिक्षण, पोषण की असहनीयता और समाज संकट को बचाने के लिए कृत्रिम उपकरणों का सहारा लेना भी एक सीमा तक उचित ही कहा जायगा। अधिक बच्चे पैदा करने की बुराई को पहाड़ माना जाय तो सन्तति निरोध के भौतिक साधन उनकी तुलना में एक रेत के टीले की तरह ही बुरे कहे जायेंगे।

जहाँ तक हो सके ब्रह्मचर्य को ही प्रधानता देनी चाहिए पर देर तक ब्रह्मचर्य रहने पर भी यदा-कदा प्रतिबन्ध तोड़ने पर भी सन्तान उत्पन्न होने का खतरा बना ही रहता है। इसलिए कृत्रिम साधनों का भी उपयोग कभी करना पड़े तो उसे एक हल्की बुराई के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

संतान की संख्या बढ़ाना आज की परिस्थिति में अपने व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन में विपत्तियों को सीधा आमन्त्रण देना है। महँगाई और अपर्याप्त जीविका के कारण बच्चों के निवास, खेल-कूद के लिए स्थान कम मिलता है उन्हें पौष्टिक भोजन नहीं मिल पाता। महँगी शिक्षा और चिकित्सा के कारण न उनकी समय के अनुरूप ऊँची पढ़ाई की व्यवस्था बन पाती है और न चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध होता है। ऐसी दशा में कौन आशा करेगा कि इन ढेरों बच्चों का समुचित विकास एवं पोषण एक औसत दर्जे का आदमी कर सकता है। उँगलियों पर गिने जाने वाले अमीरों की बात दूसरी है, सर्वसाधारण के लिए तो यह भार जितना बढ़ेगा, उतना ही असह्य बनेगा। समय कम और बच्चे अधिक होने पर उनकी ओर समुचित ध्यान भी तो नहीं दिया जा सकता। उनका स्वभाव, संस्कार, स्वास्थ्य सुविकसित करने के लिए अभिभावकों को पूरा ध्यान देना, समय और श्रम लगाना तथा पर्याप्त खर्च करना चाहिये। पर यह अधिक बालकों में सम्भव नहीं। इसलिये वे बेचारे जंगली घास-फूँस की तरह बढ़ते, अपनी मौत मरते-जीते और संस्कारी, कुसंस्कारी बनते रहते हैं। ऐसे बालक सारे परिवार के लिए—समस्त समाज के लिए एक सिरदर्द ही रहते हैं। कुमार्गगामी या अस्वस्थ हो गए, तब तो उन्हें एक विपत्ति एवं अभिशाप ही कहा जायगा।

काम उतना ही हाथ में लेना चाहिए, जो ठीक तरह निवाहा जा सके। बच्चे उत्पन्न करना क्रीड़ा-विनोद मात्र नहीं है। उसके पीछे भारी उत्तरदायित्व लदे हैं। जो उसे ठीक तरह वहन कर सकने में समर्थ हैं, उन्हें ही यह बोझ उठाने का साहस करना चाहिए। अन्यथा बिना आगे-पीछे सोचे सन्तान बढ़ाते जाना, अपने लिए, बच्चों के लिए और समस्त समाज के लिए संकट प्रस्तुत करने का अपराध ही माना जायगा।

व्यक्तिगत रूप से इस उत्तरदायित्व का पालन तो हम करें ही साथ ही, समाज को भी इस प्रकार की प्रेरणा देने का कार्य हम अवश्य करें। युग निर्माण योजना की क्रियाशील शाखाओं को सामूहिक रूप से समाज को इस सम्बन्ध में नैतिक प्रशिक्षण देने के पुनीत कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। हमारे देश के बच्चे स्वस्थ, शिक्षित और सद्गुणी हों इसके लिए परिवार नियोजन के नैतिक आदर्श और सिद्धान्तों पर प्रचार व प्रसार हम कर सकें तो यह हमारी उत्कृष्ट समाज-सेवा होगी। उसका प्रतिफल आत्म सन्तोष के रूप में हमें मिलेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

असह्य भार, बड़ा परिवार, सीमित सन्तान—सदा बलवान्

अमरीका में ओपोसम नाम का एक बिल्ली की तरह का जीव पाया जाता है। इसके पेट में थैली होती है, जिसमें वह अपने बच्चों को रखती है पर वह काओला और कंगारुओं से भिन्न जाति का जीव है।

लम्बे परिवार की दुर्गति देखनी हो तो इस 'ओपोसम' के पास रह कर कुछ समय बिताना चाहिये। तथाकथित धार्मिक व्यक्ति आजकल साम्प्रदायिक विद्वेष के कारण यह कहा करते हैं कि हिन्दू जाति को सन्तान सीमाबन्ध के लिये बाध्य किया गया तो उनकी संख्या कम रह जायेगी। यदि यह लोग ओपोसम की जीवन पद्धति देख लें तो पता चल जायेगा कि संसार में शासन और प्रभाव उन लोगों का रहता है जो शक्तिशाली और बलवान होते हैं, भले ही उनकी संख्या न्यूनतम क्यों न हो। इसके विपरीत जनसंख्या की वृद्धि एक भार है, जो कि परिवार, समाज, राष्ट्र और जातियों की गरिमा को नष्ट-भ्रष्ट कर डालता है।

ओपोसम एक साथ ग्यारह-बारह बच्चे देती है। अँगूठे-अँगूठे भर के कमजोर बच्चों को थैली में शरण मिलती है। "कमजोरों को सौ फजीते" वाली कहावत—बेचारे बाहर निकलें तो चील, कौवे, बाज चाहे जिसके शिकार बनें। निर्बलता के शिकार बच्चे थोड़ा बड़े भी हो जाते हैं तो भी बेचारी मादा से ही चिपके रहते हैं। कामुक नर तो कहीं अन्यत्र उच्छृंखलता बरत रहा होता है। मादा की पीठ में नहीं समाते तो कोई पूँछ में लटका रहता है, कोई गर्दन में सबके सब अपने दाँतों से माँ के बाल पकड़े रहते हैं। माँ भी सोचती है क्या मुसीबत पाली-बच्चे हुए या आफत। सारे जिस्म को नोंचते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहते हैं। बड़े हो जाते हैं तो भी पिण्ड नहीं छोड़ते और इसी बीच ११-१२ बच्चों की एक नई टोली पेट में से आ जाती है। यह भी थैली में घुसने लगते हैं सो जैसे तमाम भाइयों में जमीन, जायदाद के बँटवारों में झगड़ा होता है ऐसे ही यह भाई भी आपस में लड़ने लगते हैं। ओपोसम खीझ जाती है तब पहले वालों को पकड़-पकड़ कर भगा देती है पर तब तक दूसरी टोली तंग करने लगती है। बेचारी का जीवन इसी संकट में बीत जाता है और वह थोड़े ही दिन में मर जाती है।

मनुष्यों के परिवारों में भी अधिक सन्तान के यही परिणाम होते हैं पर समझदार होते हुये भी सन्तति निग्रह की ओर ध्यान नहीं दिया। इसे दुर्भाग्य नहीं तो क्या कहा जा सकता है।

धर्मनिष्ठ, नेक और ईमानदार होना ही काफी नहीं अपना प्रभाव, वर्चस्व और अस्तित्व तक बनाये रखने के लिये शक्तिशाली होना उससे भी अधिक आवश्यक है। प्रकृति के छोटे से छोटे कण भी यही बोलते हैं। मिट्टी के अन्दर अनेक सूक्ष्म जीवाणु होते हैं इनमें से कुछ अच्छे जीवाणु (वैक्टीरिया) होते हैं, जो नम्र भी होते हैं, और फसलों के लिये उपयोगी भी पर इनकी संख्या में असाधारण वृद्धि ही इनके सर्वनाश का कारण बनती है। प्रोटोजोआ, अमीवा, मिक्सो-बैक्टीरिया और मिक्सोमाइसिटीज इन जीवाणुओं को खा जाते हैं। उनके एक कोष-विभाजन के लिये ही ४०००० सत्-जीवाणु मार दिये जाते हैं। यदि अपने गुणों के साथ-साथ उनमें शक्ति भी रही होती तो वे क्योंकर इस तरह ताकतवरों के शिकार होते ?

आज भारतवर्ष की स्थिति कुछ ऐसी ही है। यहाँ की आबादी इन दिनों ९० करोड़ है, जो समूचे संसार की आबादी का लगभग २० प्रतिशत है। उधर भूमि की दृष्टि से शेष विश्व की तुलना में हमारा प्रतिशत कुल २.४ ही है। जमीन थोड़ी खाने वाले बहुत तब यदि ओपोसम और वैक्टीरिया की सी स्थिति यहाँ की भी हो जाये तो आश्चर्य क्या ? यहाँ प्रति सेकेण्ड एक बच्चा पैदा हो जाता है। प्रति वर्ष २ करोड़ नये बच्चे जन्म ले लेते हैं। इनमें से ८० लाख तो अच्छी परवरिश के अभाव में ही मर जाते हैं जो रहते भी हैं वे स्वास्थ्य, खाद्य समस्या, शिक्षा, रोजगार और सामाजिक व्यवस्था की दृष्टि से भार ही होते हैं। यदि यह बाढ़ रोकी न गई तो अगले १० वर्षों में भारतवर्ष की आबादी १ अरब हो जायेगी जबकि खाद्य-उत्पादन की स्थिति वहीं की वहीं रहेगी। उस समय की अवस्था का अनुमान ऊपर के दो उदाहरणों से किया जा सकता है।

इसके विपरीत समर्थता किस प्रकार विजयी होती है उसका सबसे अच्छा उदाहरण इंग्लैण्ड है। इस छोटे से देश का क्षेत्रफल कुल ९४५११ वर्गमील है, इसकी आबादी कुल ५२७००००० है, जबकि अँग्रेज जाति विश्व विजय के लिये निकली तब उसकी संख्या और भी कम रही होगी। अपनी शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक सामर्थ्य के द्वारा इन थोड़े से आदमियों ने संसार में अपनी विजय पताका फहरा कर इस धारणा को निर्मूल सिद्ध कर दिया है कि प्रभुत्व बनाये रखने के लिये जनसंख्या आवश्यक है। यदि ऐसा रहा होता, तो इंग्लैण्ड से भी २९४३६४ वर्ग कि. मी. और २ करोड़ अधिक ७४००००० आबादी वाला उत्तरप्रदेश ही इंगलैण्ड से कहीं बढ़कर काम दिखा सका होता पर उल्टे यह प्रदेश और भी समस्याओं में ग्रस्त पड़ा है।

थोड़े लोगों की परवरिश, शिक्षा-दीक्षा जितनी अच्छी हो सकती है, अधिक लोगों की उतनी अच्छी नहीं, इसीलिये थोड़े लोग बलवान् हो जाते हैं और सैकड़ों कमजोरों को दबाये रखते हैं। शेर और बाघ कम प्रजनन वाले जन्तु हैं इनके बच्चे दो वर्ष तक माँ का दूध पीते हैं। गैंड़ा का बच्चा अपनी माँ के पास ६ वर्ष तक अकेला रहता है और दूध पीकर मोटा-ताजा हो जाता है। उससे लड़ने की हिम्मत शेर-चीते भी नहीं करते। ह्वेल मछली का समुद्र में आतंक रहता है। उसके बच्चे माँ का दूध ६ माह तक पीते हैं। समुद्री वीवर और ओटर को १ वर्ष तक माता का संरक्षण मिलता है, इतना पोषण प्राप्त किये बच्चे ही जब समुद्र में निकलते हैं तो आयु में अधिक किन्तु कमजोर दूसरे जीव उनका आदाब झुकाते और डर कर एक ओर खड़े हो जाते हैं।

यह उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि शक्तिशाली होकर थोड़े होना अच्छा। रोगी, दुर्बल और समस्याग्रस्त लोगों की भीड़ बढ़ाकर एक समर्थ जाति का स्वप्न देखना कोरी मूर्खता है।

संयम बनाम समर्थता बनाम सुनिश्चित जीवन

थोड़ी देर के लिये मनुष्य की बात छोड़ दें और जीव जगत की कल्पना करें तो वहाँ "शक्तिमान के ही जीवित रहने" के अधिकार की पुष्टि होती है। मनुष्य को परमात्मा ने बुद्ध और विवेक के दो विशिष्ट उपहार दिये हैं। इसलिये उसे तो विसंगति श्रेणी में रखना तथा सहयोग और सहकारिता में समृद्धि, सुव्यवस्था का पाठ पढ़ाना पड़ेगा, पर यदि वह अपनी इस ईश्वर प्रदत्त विशेषता का अपने जीवन में उपयोग न कर पशुओं का ही पेट-प्रजनन वाला जीवन जीने लगे तो जो व्यवस्थायें प्रकृति में चल रही हैं, वैसे ही परिणाम से मनुष्य भी बच नहीं सकता।

हाथी संसार का अति सामर्थ्यवान प्राणी है। विश्वास करें या न करें। पर अफ्रीका में मोम्बासा से कीनिया को जो सड़क जाती है उस पर एक प्रवेश द्वार मात्र दो जोड़े हाथी दाँत का बना है। यह दाँत इतने विशाल हैं कि बस और भारी बोझ लदे ट्रक भी उसके नीचे से आसानी से निकल सकते हैं। जिन हाथियों के इतने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विशाल और मजबूत दाँत होंगे, उनके शरीर की सामर्थ्य कितनी होगी उसका अनुमान करना कठिन है। हाथियों में जो सामर्थ्य द्वापर और त्रेता में थी वही आज भी विद्यमान है। इसका कारण प्रकृति का पक्षपात नहीं उसकी अपनी संयम शक्ति है, जिसने इस समूची जाति को युग-युगों तक अपनी सामर्थ्य और अपनी सत्ता बनाये रखने योग्य बना दिया है।

एक हाथी युगल अपने जीवन काल में अधिकतम दो या तीन बच्चों को जन्म देता है। यह उल्लेखनीय है कि प्राकृतिक जीवों में प्राय: एक ही बार के सहजीवन से गर्भाधान की क्रिया सम्पन्न हो जाती है। स्पष्ट है कि उसके सहजीवन की संख्या सारे जीवन में अधिकतम पाँच से अधिक नहीं होती। अपनी इस विशेषता के कारण कहीं भी उनकी जनसंख्या के विस्फोट की समस्या नहीं उठी। इतने जगल कट जाने पर भी उनके लिये कभी खाद्य का अभाव नहीं पैदा हुआ।

यही स्थिति बलशाली दूसरी सभी जातियों की है जिनमें सिंह, चीते, बाघ भी आते हैं। राजहंस पक्षी अपनी इस प्रवृत्ति के कारण कभी भी संख्या के विस्फोट की स्थिति में नहीं पहुँचा, उसे प्रकृति के अत्यन्त प्रिय उपहार के रूप में सम्मानित किया जाता है।

दूसरी ओर जन्मजात तुच्छ कहलाने वाली मक्खी को ही लें। एक मक्खी एक ही ग्रीष्म ऋतु में ४०००००,०००००० (चार नील) मक्खियाँ पैदा कर देती है। रावण की सेना से भी एक लाख गुनी इस सेना का मार्च यदि सूर्य की ओर हो तो २९ करोड़ मील दूर पहली मक्खी सूर्य की २० बार आ जाकर यात्रा पूरी कर लेगी तब आखिरी सिपाही को कहीं पृथ्वी से प्रस्थान का अवसर मिलेगा। समुद्र में पाई जाने वाली मछलियों की प्रजनन क्रिया इतनी तीव्र गति से होती है कि वे यदि सबकी सब जीवित बची रहें तो ६ महीने में समुद्र मछलियों का पहाड़ बन जाये। किन्तु इन असंयमति जीवों पर प्रकृति का क्रूर डंडा इतनी तेजी से फिरता है कि एक ही बार में उनकी करोड़ों की संख्या को मार डालता है, मक्खियों में इतनी भी क्षमता नहीं होती कि मैदानी इलाकों की ही शीत बर्दाश्त कर लें। फलत: उनका बुरी तरह वंश नाश होता रहता है। मछलियाँ तो आत्म-विस्फोट की साक्षात् उदाहरण हैं। बड़ी मछली हर छोटी मछली पर दाँव लगाती और उन्हें चट करती रहती है, उन्हें अपने आप में ही इस तरह द्वन्द्व करते देखकर ही सम्भवत: मनुष्यों ने उन्हें पृथ्वी में अपना जीवन जीने योग्य नहीं समझा और उनका विधिवत् भक्षण करने लगा।

मछली-मछली है मनुष्य-मनुष्य, पर प्रकृति की दृष्टि में दोनों एक हैं। यदि मनुष्य संयमित जीवन जीने के लिये तैयार नही होता तो उसे भी एक दिन ऐसे ही सर्वनाश की तैयारी प्रारम्भ कर देनी होगी। इन दिनों मानवीय सद्भाव में जो व्यापक अभाव दिखाई देने लगा है, उसे विनाश पूर्व की चेतावनी समझा जा सकता है।

सन्तान की संख्या नहीं, उत्कृष्टता बढ़ायें

बालक अपने साथ हमारे लिये अनेक कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व लेकर आते हैं। बालक के पैदा होते ही हम उसकी शिक्षा, दीक्षा, शादी आदि तक की कल्पना करने लगते हैं। सभी अपने बच्चे के लिये बचपन से ही राजा बनने की कामना करते हैं किन्तु फिर भी उसके लिये भोजन, वस्त्र तक की व्यवस्था करके हम अपने फर्ज से उऋण हो जाते हैं और सोचते हैं कि बड़े होने पर उसकी शिक्षा की व्यवस्था करेंगे। किन्तु बालक की शिक्षा उसी दिन से प्रारम्भ हो जाती है। जिस दिन से वह गर्भ में आया था। बालक पर उस वातावरण का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है, जो वातावरण उसे गर्भ की अवस्था में प्राप्त होता है।

हमारे यहाँ उपनयन संस्कार की व्यवस्था में यही मूल उद्देश्य है। कहा जाता है कि अभिमन्यु ने अपनी माँ सुभद्रा के पेट में ही चक्रव्यूह भेदन की कला सीखी थी।

बुन्देल केसरी महाराज छत्रशाल युद्धभूमि में पैदा हुये थे और तलवारों की झंकारों ने उनका स्वागत किया था। उस वातावरण का उनके जीवन पर जो वीरतापूर्ण प्रभाव पड़ा उसे सभी जानते हैं।

भगवान राम ने गर्भवती होने पर परम प्रिय सीताजी को महर्षि बाल्मीक के आश्रम में भेज दिया था ताकि गर्भस्थ शिशु बाल्मीकि के आश्रम के, तप, त्याग, प्रेम और सहिष्णुता के वातावरण में बढ़ें और संस्कारवान संतति पैदा हो।

अत: हमें बच्चे के गर्भ में आते ही अपने परिवार में हँसी-खुशी व प्रेम का वातावरण पैदा करना चाहिये। यदि हम चाहते हैं कि बच्चे के मस्तिष्क का निर्माण व विकास अच्छी तरह से हो तो उस समय माता को द्वेष, ईर्षा और मस्तिष्क की तनावपूर्ण स्थिति से दूर रहना चाहिये। इसके लिये आवश्यक है कि परिवार में कलह या तनावपूर्ण वातावरण न रहे।

बच्चे के पैदा होते ही उसके भोजन व वस्त्र की व्यवस्था की जाती है। किन्तु बच्चे के शारीरिक विकास के साथ ही साथ उसके मस्तिष्क का भी विकास होता है और इसके लिये उसे शारीरिक आहार के साथ ही मस्तिष्क के विकास के लिये भी आहार की आवश्यकता होती है, जिसे वह अपने आसपास के वातावरण से ग्रहण करता है। वाइविल में लिखा है, बुरे मुहल्ले में बने छोटे घर में कितनी ही सुविधा क्यों न हों, तुम उसमे न रहो, किसी बड़े घर (उच्च घर) की पर छटी (दालान) में पड़े

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहना उससे अच्छा है।' इसका संकेत यही है कि वातावरण का व्यक्तित्व के विकास पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। अत: बचपन से ही हमारी सन्तान, उत्कृष्ट, व सुसंस्कृत बन सके इसके लिये हमें अपने घर में वैसा वातावरण उत्पन्न करना चाहिये।

आज आवश्यकता है बच्चों को सही दिशा देने की। उन्हें नये सबेरे के, नये उजाले के दर्शन कराने की किन्तु बड़ा दु:ख होता है यह देखकर कि हमारे समाज के और देश के तथाकथित कर्णधार, देशभक्त और नेता कहे जाने वाले व्यक्ति उसके अविकसित मस्तिष्क का नायायज लाभ उठाते हैं। दिशा देने की अपेक्षा उन्हें बहकाते हैं। अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये उन्हें भड़का कर तोड़-फोड़ और अन्य असामाजिक कार्य कराते हैं। अपने छोटे-छोटे स्वार्थों की पूर्ति के लिये जन, धन और राष्ट्र का नुकसान तो करते ही हैं पर सबसे अधिक अहित वह उन बच्चों-विद्यार्थियों का ही करते हैं। उन्हें अपने उद्देश्य से विचलित करते हैं और उन्हें उद्दण्ड और उच्छृंखल बनाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बच्चे पर परिवार व समाज के संस्कार किस प्रकार प्रभाव डालते हैं। बच्चे ही हमारे समाज, देश और संस्कृति की भविष्य की तस्वीर हैं। इन्हें बनाने के लिये हमें चरित्र का आदर्श प्रस्तुत करना होगा। उनकी भौतिक उन्नति ही नहीं नैतिक स्तर की उन्नति करना भी आवश्यक है। उन्हें किताबी ज्ञान नहीं जीवन जीने की कला सिखाने की आवश्यकता है जिसे सीखकर हमारे बच्चे नया सबेरा, नया उजाला इस धरती पर लाने में समर्थ हो सकें।

बालकों को जन्म ही न दें—उनका निर्माण भी करें

बालक अपने साथ हमारे लिये अनेक कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व भी लेकर आते हैं और उन्हें पालन करना अभिभावको के लिए आवश्यक होता है। बच्चे की शरीर रक्षा के लिए उसके भोजन-वस्त्र, सफाई, चिकित्सा, विश्रान्ति आदि का प्रबन्ध करना होता है। बड़े होने पर उनकी शिक्षा, शादी, आजीविका आदि आवश्यकताएँ पूरी करने के साधन भी जुटाने होते हैं। इतना ध्यान आमतौर से सब अभिभावकों को रखना होता है और वे अपने-अपने ढंग से उसकी पूर्ति भी करते हैं।

किन्तु बात यहीं तक समाप्त नहीं हो जाती। इससे भी आगे के कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व अभिभावकों के हैं, जिनके न समझने एवं न निवाहने से बच्चे अनेक दोष-दुर्गणों से घिर जाते हैं और अपने लिये—परिवार के लिए, समाज के लिए एक अभिशाप सिद्ध होते हैं। दुर्गुणों से बचाना और सद्गुणों से अभ्यस्त कराना भी अभिभावकों का कर्त्तव्य है यह बात भुला नहीं दी जानी चाहिए।

बच्चा कुछ जन्मजात भले-बुरे संस्कार लेकर अवश्य आता है पर उनका विकसित अथवा नष्ट होना बहुत कुछ परिस्थितियों पर निर्भर रहता है। अभिभावकों की मनोभूमि और घर की परिस्थितियों पर प्राय: बच्चों का मानसिक विकास निर्भर रहता है। कुछ बिरले ही बालक ऐसे अपवाद देखे जाते हैं जो परिवार की परिस्थितियों से भिन्न प्रकार का व्यक्तित्व निर्माण कर सकें हों। व्यवसाय तो बदलते रहते हैं। गरीबी-अमीरी और रंग-रूप भी बदल जाते हैं पर स्वभाव और संस्कार प्राय: आजीवन वैसे ही बने रहते हैं, जैसे बचपन में उपलब्ध हुए थे इसलिए यदि अपने बच्चों को दुर्गुणों से बचाना हो और सद्गुणी बनाना हो तो उनके जन्म से पूर्व ही यह तैयारी करनी चाहिए कि उन्हें सुसंस्कृत वातावरण मिले, जिसमें पलकर वे सज्जन, सुसंस्कृत एवं सद्गुणी बन सकें।

यह एक रहस्यमय तथ्य है बालक गर्भ में आने के दिन से ही सीखना आरम्भ करता है और पाँच वर्ष का होने तक अपनी मनोभूमि के निर्माण का कार्य तीन चौथाई पूरा कर लेता है। इस अवधि में बालक बहुत संवेदनशील रहता है। किशोर एवं युवा होने पर स्कूली पढ़ाई, व्यावसायिक ज्ञान, कला-कौशल, लोक-व्यवहार, खेल-कूद आदि की शिक्षा प्राप्त की जाती है क्योंकि इन कार्यों के उपयुक्त मस्तिष्कीय विकास बड़ी आयु में ही होता है। किन्तु स्वभाव, संस्कार, चरित्र, आस्थाएँ जिस आयु में सीखी जाती हैं, वह गर्भ में प्रवेश करने वाले दिन से लेकर पाँच वर्ष तक की ही है। उस अवधि में अचेतन मस्तिष्क बहुत संवेदनशील रहता है और निकटवर्ती वातावरण से जो कुछ सोचा या किया जाता है उसका बहुत ही स्पष्ट चित्र अपनी अन्त:भूमिका पर उतरता जाता है। यों यह प्रक्रिया जीवन भर चलती रहती है पर उसका बहुत बड़ा अंश शैशवकाल में पूरा हो चुकता है। इसलिये अभिभावकों को यह अपने बच्चे संस्कारवान और सद्गुणी बनाने हों तो वातावरण ऐसा बनाने का पूरा ध्यान देना चाहिए, जिससे उन्हें सुसंस्कृत बनने का उपयुक्त आधार मिल सके।

यह भली-भाँति समझ रखना चाहिए कि व्यक्ति की सुख-शान्ति के लिए स्वास्थ्य, शिक्षा, शादी, आजीविका आदि की आवश्यकता तो है पर काम इतने से ही नहीं चल सकता। आदतें और अभिलाषाएँ यदि घटिया किस्म की हैं, तो व्यक्ति का दृष्टिकोण, स्वभाव एवं व्यवहार ओछे स्तर का होगा फलस्वरूप वह स्वयं विक्षुब्ध रहेगा। परिवार वालों को अपने दुर्व्यवहार से दु:खी करेगा और समाज के लिये ऐसी विकृतियाँ उत्पन्न करेगा, जिससे क्लेश और द्वेष भरी दुष्प्रवृत्तियों की एक लम्बी शृंखला चल पड़े।

यदि हम अपने बालकों को सचमुच प्यार करते हों और वस्तुत: उनका भविष्य उज्ज्वल देखना चाहते हों तो उचित यही है कि उनको संस्कारवान बनाने की तैयारी में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जुट जायँ। सन्तानोत्पादन की क्रिया आरम्भ करने से पूर्व ही पति-पत्नी को अपने दोष-दुर्गुणों का परिष्कार करना चाहिए और सुसंस्कृत एवम् संभ्रान्त सज्जनों की तरह आचरण, व्यवहार एवं संभाषण की समस्त गतिविधियाँ सुधार लेनी चाहिये। जीव में जो प्रकृति होगी वही पौधे में आवेगी। मक्का से मक्का उगेगा और गेहूँ से गेहूँ। बाप का बीज और माता की जमीन दोनों का ही समान महत्व है, सन्तान रूपी उपवन के निर्माण में। इसलिये केवल नर आकृति के ही नहीं मानव प्रकृति के बालक उत्पन्न करना चाहते हों उन्हें विवाह के बाद तुरन्त इस प्रयत्न में जुट जाना चाहिये कि अपने समस्त दोष-दुर्गुणों को जल्दी से जल्दी निकाल बाहर करें और प्रयत्नपूर्वक समस्त सद्गुणों को अपने आचरण में सम्मिलित कर लें। होनहार बालकों की उत्पत्ति का मूल आधार यहीं से प्रारम्भ होता है। गर्भावस्था में सुने हुये ज्ञान के आधार पर अभिमन्यु ने बड़े होकर चक्रव्यूह का वेधन किया था। अपने बालक भी माता के गर्भ में बैठे हुए बहुत कुछ सीखते, समझते और ग्रहण करते रहते हैं। गर्भवती के आस-पास प्रसन्नता, उल्लास, सद्भावना, आदर्शवादिता एवं उत्कृष्टता का वातावरण बना रहना चाहिये। उसे क्रुद्ध, असन्तुष्ट, खिन्न एवं उद्विग्न रहने की स्थिति सहन न करनी पड़े इसका समुचित ध्यान रखा जाय।

शिशु जन्म के बाद माता-पिता की, समस्त परिवार की, घर की ऐसी परिस्थितियाँ बनानी चाहिए जिससे अस्वच्छता, कुढ़न, मनोमालिन्य, उद्दण्डता एवं अनैतिकता के लिये कोई गुंजायश न हो। सब लोग ध्यान रखें कि—बहुत ही कुशल और संवेदनशील गुप्तचर की तरह नवजात बालक हमारे आचरण और व्यवहार से बहुत कुछ सीख रहा है। इन दिनों जो उसे सिखाया जाय उसी के आधार पर प्रकृति बनेगी और बड़े होने पर उसका भविष्य उसी प्रकार का विनिर्मित होगा। इस तथ्य को समझने वाले लोगों का यह एक अनिवार्य कर्त्तव्य हो जाता है कि अपने दुर्गुणों पर नियन्त्रण करे और घर में सज्जनता की सौम्य परिस्थितियाँ बनाये रखने के लिए जो भी त्याग करना पड़े, उसके लिये खुशी-खुशी तैयार हों। माता-पिता को परस्पर लड़ने-झगड़ने से पूरी तरह बचना चाहिये और काम-क्रीड़ा पर अधिक से अधिक नियन्त्रण रखना चाहिये ताकि बच्चों के विचार कुसमय ही भड़कने का दुष्परिणाम सामने न आये।

बच्चे स्कूल-कालेज में तो केवल भाषा, गणित, इतिहास, भूगोल, आदि पढ़ते हैं अब वहाँ प्राचीनकाल के स्कूलों जैसा वातावरण कहाँ है जहाँ बालक सुसंस्कार भी प्राप्त करें। बच्चे का शिक्षण उपदेशों पर नहीं अनुकरण पर निर्भर है। उनका अविकसित मस्तिष्क लम्बे-चौड़े उपदेशों या कठोर निर्देशों के समझने में असमर्थ रहता है पर जो कुछ हो रहा है, उसे समझने और अपनाने में उसका अन्तःकरण पूर्ण समर्थ होता है। इसलिये उन्हें जो कुछ सिखाया जाना हो उसका प्रत्यक्ष रूप सामने प्रस्तुत करना चाहिए। आज के स्कूल अध्यापक बच्चों को एक बहुत छोटी सीमा तक ही सुधार सकते हैं। क्योंकि वहाँ न वातावरण है न चरित्र। बालकों के स्वभाव एवं चरित्र का निर्माण तो घर की पाठशाला से ही सम्भव है। इसलिये प्रयत्नपूर्वक यह चेष्टा की जानी चाहिये कि घर का वातावरण बहुत ही निर्मल, शान्तिमय, सदाचारी एवम् सज्जनतापूर्ण हो। घर के सब लोग परस्पर मधुर संभाषण करें—प्रेमपूर्वक रहें और एक दूसरे की भरपूर सहायता करने, उदारतापूर्वक तत्पर रहें तो बिना किसी प्रशिक्षण उपदेश के ही बालक उन सद्गुणों को ग्रहण करते चले जायेंगे और बड़े होने पर वैसे ही बनेंगे जैसा कि उन्हें बचपन में अभिभावकों द्वारा सिखाया एवम् बनाया गया था।

बच्चे उत्पन्न करना व्यक्तिगत क्रीड़ा-विनोद का विषय नहीं है। एक नये व्यक्ति के जन्म एवं उसके व्यक्तित्व को विनिर्मित करने का यह महान् उत्तरदायित्व है। यदि हम इस कर्त्तव्य को भूलते हैं तो स्वयं उद्विग्न रहने वाले परिवार को दुःखी करने वाले और समाज में दुष्प्रवृत्तियाँ बढ़ाने वाले राक्षसों को उत्पन्न करेंगे और अपने पाप से पाने और सबके लिये नरक का सृजन करेंगे। उचित यही है कि यदि बालक उत्पन्न करने का साहस करते हैं तो उन्हे सुसंस्कृत बनाने का वातावरण भी उत्पन्न करें। तभी विवाह और प्रजनन की सार्थकता है।

सन्तानोत्पादन—भारी दायित्व

जमाने की हवा जिस दिशा में चल रही है, उसे देखते हुए मनुष्य का मन यदि जोड़ी बनाकर रहने और कामुकता का रसास्वादन करते रहने के लिए चले तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। मनोरंजन के माध्यमों में प्रकृति ने जननेन्द्रिय को प्रमुख बनाया है। फिर वातावरण ऐसा बन गया है कि साहित्य, सिनेमा, टेलीविजन, रेडियो, गायन, वादन आदि क्षेत्रों में कामुकता का गहरा प्रवेश हो चला है। अश्लील फिल्मों, चित्रों की कानून का बाँध तोड़ते हुए बाढ़ सी आ गई है। एकान्त की पारस्परिक चर्चाओं में इसी संदर्भ का बाहुल्य रहता है। ऐसी दशा में संयमशील ब्रह्मचारी जीवन जी सकना किसी शूरवीर और मनोजयी का ही काम है। जो बात कभी साधारण थी अब वह अपवाद हो गई है। नर-नारी सभी इस तूफान में तिनके पत्तों की तरह उड़ते चले जा रहे हैं।

ऐसी दशा में गुप्त व्यभिचार या अप्राकृतिक कृत्यों से होने वाली हानि तथा अव्यवस्था, अस्तव्यस्तता से बचने के लिए हमें उन उपायों को अपनाना पड़ेगा जिसमें दुराव-पाखण्ड रचने की अपेक्षा यथार्थता को अपनाया और सामान्य रीति से जिया जा सके।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सभी धर्म सम्प्रदायों में उनका नेतृत्व करने वाले पीर-फकीरों, सन्त, महन्तों का एक बड़ा वर्ग होता है, जो एकाकी रहने का अविवाहित समय गुजारने का दम्भ रचता है। इनमें से उँगलियों पर गिनने जितने ही ऐसे होते हैं जो मन, वचन, कर्म से वास्तविक ब्रह्मचर्य का पालन करें। शेष उसमें कहीं न कहीं के छिद्र ढूँढ़ लेते हैं। भेद प्रकट होने पर निन्दा होती है। चर्चा का विषय बनता है। तब एक घोंसले को खाली करके दूसरे जंगल में दूसरे पेड़ पर दूसरा घोंसला बनाते हैं। ऐसे ही उजड़ते-बिगड़ते खेल चलते रहते हैं और वह प्रसंग गौण हो जाता है जिसके लिए उनने अपने को समर्पित करने की घोषणा की थी।

इस विडम्बना की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि लोकसेवी, धर्मसेवी, नर-नारी कार्य संलग्न तो उसी निश्चय से रहें, पर अपने साथी तलाश कर लें। प्राचीनकाल के प्रायः सभी ऋषि-मुनि जोड़ियों में रहते थे। कबीर ने तत्कालीन पाखण्ड को उखाड़कर अपनी पत्नी तलाश ली थी। रामकृष्ण परमहंस भी विवाहित थे। देवताओं में से प्रायः शत-प्रतिशत गृहस्थ हैं। जापान के गाँधी, कागावा ने लोकसेवा का व्रत लिया था, पर उनकी पत्नी सहेली के रूप में उनके कार्य में निरन्तर हाथ बँटाती रही। जिनमें साहस रहा है। अन्तर और व्यवहार को एकाकार बनाकर जीवनयापन करने की हिम्मत रही है, उनने अपने को विशिष्ट प्रदर्शित करने की अपेक्षा सामान्य रहने में सत्य का निर्वाह अधिक अच्छी तरह होते देखा और जोड़ा बना लिया। यदि धर्माचार्यों के मन को परखा जाय और परम्परा के आडम्बर को महत्वहीन होने का तथ्य समझाया जाय तो अपने जैसी आयु तथा भावना वाले साथी आसानी से ढूँढ़ सकते हैं और अपेक्षाकृत अधिक अच्छा और अधिक मात्रा में काम कर सकते हैं। सिख धर्म में गुरुओं की परम्परा के साथ गृहस्थ जीवन जुड़ा रहा है। अच्छा हो अन्य वर्गों के सन्त भी इसी रीति-नीति को अपनायें और निरर्थक आडम्बर को उतार फेंके। 'संभोग से समाधि' की सरंचना करने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि साथी, सेक्रेटरी आदि जो भी नाम रखें पर दाम्पत्य व्यवस्था बनाकर उन लाभों से लाभान्वित हों जो एक सद्गृहस्थ को सुख-दुःख में साथ देने वाले मित्र के रूप मे मिलते हैं।

कार्य में रुकावट तब पड़ती है जब बाल-बच्चों का दायित्व सिर पर आता है और उसे निबाहने के लिए हजार प्रपंच रचने पड़ते हैं। अब यह पूर्णतया संभव है कि बिना बच्चों का वैवाहिक जीवन चल सके। मनीषियों, लोकसेवियों, समाजसुधारकों, धर्मोपदेशकों को ऐसे ही विवाह करने चाहिए। उन्हे ब्रह्मचर्य की परिभाषा बच्चे न उत्पन्न करने के रूप में करनी चाहिए। पत्नी हाथ बँटाती है, पर बच्चे जनने के उपरान्त वह भी निरर्थक हो जाती है और पति को भी भोंड़े तरह के जंजाल में जकड़ देती है। जिनके सामने कोई उद्देश्य नहीं है उन्हें खाली बैठे रहने की अपेक्षा बच्चे पैदा करने और पालने में लगे रहना भी एक मनोरंजक काम है।

आदर्शवादी उद्देश्यों के लिए लोक-मंगल निरत हल्का-फुल्का जीवनयापन करना ही ब्रह्मचर्य का मूलभूत उद्देश्य है। इसके लिए यदि नर या नारी को अपना साथी चुनने की आवश्यकता अनुभव हो तो फिर इतना और दायित्व ओढ़ना चाहिए कि साथी की प्रकृति तथा क्षमता के अनुकूल-अनुरूप बनाने के लिए निर्धारण से पूर्व ही समुचित प्रयत्न कर लिया जाय। शोभा या शिक्षा से प्रभावित न होकर यह देखना चाहिए कि आदर्शवादी रीति-नीति के निर्वाह में जिस सादगी, सज्जनता, श्रमशीलता, संतोष भावना की अनिवार्य आवश्यकता पड़ती है, उसके बीजांकुर पहले से ही मौजूद हैं या नहीं। गाड़ी के दोनों पहिये एक लाइन पर चलें तो ही गति बनती है। यदि एक अड़ जाय या उलट जाय तो फिर बात पैदल चलने से भी महँगी पड़ती है। साधारण गृहस्थ जीवन में भी समन्वय और सहयोग की आवश्यकता रहती है फिर आदर्शवादी गतिविधियों में तो कर्त्ताओं को सर्वतोभावेन एकीभूत होना चाहिए। ऐसा विवाह करके सन्तानोत्पादन से बचा रहने वाला विवाह वस्तुतः ब्रह्मचर्य पालन की आवश्यकता ही पूरी करता है।

सन्त परम्परा का ब्रह्मचर्य ऐच्छिक है। उसे बीच में तोड़ा या छोड़ा भी जा सकता है। पर कुछ बाधित ब्रह्मचर्य भी है। उनमें समाज परम्परा एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखना पड़ता है। बड़ी उम्र के विधुर जिनके कई बच्चे भी हैं, इसी प्रकार कई सन्तानों वाली विधवायें, परित्यक्तायें भी असमंजस की स्थिति में रहती हैं। उन्हें बच्चों के हित को ध्यान में रखना पड़ता है। प्रथम तो ऐसे जिम्मेदारियों से लदे व्यक्ति के साथ रहने के लिए कोई साथी तैयार ही नहीं होता। दूसरे यदि हो भी जाय और नए साथी से सन्तानें होने लगें तो पिछली और अब की सन्तानों के बीच भेद-भाव चल पड़ता है। पैतृक सम्पत्ति को लेकर बँटवारे के प्रश्न पर कलह खड़ा होता है। यह विग्रह सन्तानों की ही नहीं अपने अभिभावकों को भी लपेट में ले लेता है। बच्चे छोटे रहते हैं तब तक गाड़ी चलती रहती है पर जैसे ही वे बड़े होते हैं अभिभावकों से उलझने लगते हैं और आपस में भी कलह से बढ़कर शत्रुता तक जा पहुँचते हैं। आरम्भ में जिस उत्साह से बच्चों को छोटा समझकर उनके भरण-पोषण के लिए सहायता तलाशने की दृष्टि से विवाह किया था, वह ही कुछ समय उपरान्त पश्चाताप का कारण बनता है। गुत्थी सुलझने की अपेक्षा और अधिक उलझ जाती है।

इस प्रकार के विवाह जहाँ करने ही पड़े वहाँ यह पहले से ही निश्चय कर लेना चाहिए कि दूसरे पति या पत्नी से नई सन्तान न पैदा की जायगी। विधवा और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विधुरों के लिए ब्रह्मचर्य पालन की परम्परा है। यदि व्यक्ति साथ-साथ सहयोगी के रूप में रहें किन्तु सन्तानोत्पादन न करें तो बात निभ सकती है, गाड़ी चलती रह सकती है।

ऐसे विवाह सेवक या सेविका नियुक्ति के रूप में भी हो सकते है। निर्धारित वेतन मिलते रहने पर समयानुसार कुछ पूँजी जमा हो जाती है और उससे उस समय का सहारा हो सकता है जब घर के कलह से दोनों को अलग होना पड़े। अथवा स्वयं ही घर छोड़कर अपना स्वतन्त्र ठिकाना बनाना पड़े। वृद्धावस्था के लिए हर समझदार आदमी को ऐसी व्यवस्था रखनी चाहिए जिससे उन्हें बालकों पर आर्थिक दृष्टि से बोझ बन कर न रहना पड़े। जो लोग हाथ खाली करे पूरी तरह सन्तान पर आश्रित हो जाते हैं उन्हें सन्तान की बेरुखी और उनकी पत्नियों की तानेकशी शूल के समान चुभती हैं। पर मन मसोस कर बैठा रहने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रहता। अच्छा हो कि सामने आने से पहले ही इस कठिनाई से बचे रहने का मार्ग मोड़ लिया जाय।

परित्यक्ताओं और विधवाओं की स्थिति प्राय: समान होती है। बच्चों का प्रश्न उनके भी आड़े आता है। उनके साथ बच्चे भी भगा दिये जाते हैं। कभी-कभी उन्हें छीन लिया जाता है। दोनों ही परिस्थितियों में उनका मन कचोटता रहता है। पाश्चात्य देशों में सरकारी बालगृहों में अनाथ सन्तान के भरण-पोषण की व्यवस्था है, पर भारत में ऐसे कुछ नहीं है। मातायें अपने बलबूते पर उन्हें सुयोग्य, स्वावलम्बी नहीं बना पातीं। ऐसी दशा में उन्हें बाल श्रमिक-बाल अपराधी या आवारा, भिक्षुक बनना पड़ता है।

अच्छा हो जिनकी सन्तानें नहीं है, जो उत्तराधिकार में सम्पदा सौंपने के लिए किसी सम्बन्धी का बच्चा गोद रखना चाहते हैं, वे अपना दृष्टिकोण बदलें और वंश चलाने, बुढ़ापे का सहारा ढूँढ़ने की अपेक्षा किन्हीं अनाश्रित बालकों को स्वावलम्बी, सुशिक्षित बनाने के लिए अपने पास रख लें और परमार्थ भाव से उनका भरण-पोषण करें।

अपने देश में नारी की दयनीय दशा को देखते हुए ऐसी परमार्थिक संस्थाओं की अतीव आवश्यकता है जो अनाश्रित महिलाओं विशेषकर उनके बालकों के भरण-पोषण की व्यवस्था करें। गौशाला चलाने की अपेक्षा यह पुण्य-परमार्थ किसी भी प्रकार कम सहृदयतापूर्ण नहीं है।

जिन विधवाओं या विधुरों की सन्तान नहीं हैं, उनके विवाह तो परस्पर किसी प्रकार हो भी सकते हैं। पर असली कठिनाई उन परित्यक्ताओं, विधवाओं के सामने है जिन्हें अनाथ होते समय कोई पूँजी नहीं मिली। वरन् बच्चों का दायित्व कन्धे पर आया है। उनके लिए ऐसे महिलाश्रयों की उदारचेताओं को व्यवस्था करनी चाहिए, जहाँ रह कर वे कुछ उद्योग कर सकें और अपने बालकों का पाल सकें। जहाँ ऐसी आशंका हो, वहाँ महिलाओं को पहले से ही सतर्क रहना चाहिए कि उन पर कम से कम सन्तान का दायित्व तो न लदे। निर्धन लोगों को जो नित्य कमाते नित्य खाते हैं। सन्तानोत्पादन को एक अपराध मानकर उससे बचना चाहिए।

सुसंतति प्राप्ति के शाश्वत सिद्धान्त

बाल मनोवैज्ञानिक डा. फाउलर अपनी पुस्तक में लिखते हैं—मैं एक दिन टहलने जा रहा था। रास्ते में मुझे दो स्वस्थ, सुन्दर बच्चे दिखायी पड़े। खिलते हुए फूलों जैसी उनके चेहरे पर रौनक थी। दोनों ही प्रकृति की सुन्दरता, प्रात:कालीन पक्षियों की चहचहाहट, भौरों के गुँजन का मन्त्र-मुग्ध बने दर्शन कर रहे थे। निकटवर्ती उद्यान के, सौन्दर्य के खिले रंग-बिरंगे पुष्पों के सौन्दर्यावलोकन में वे इस तरह लीन थे कि आस-पड़ौस तक की भी खबर नहीं थी। दोनों की आयु मात्र १० और १२ के लगभग थी। फूलों की सुन्दरता के दर्शन के साथ-साथ वे प्रकृति विषयों पर आपस में अपने बौद्धिक स्तर के अनुरूप चर्चा भी करते जा रहे थे। जाने क्या विशेषता थी कि मैं भी उन्हें देखते ही आकर्षित होकर उनके पीछे-पीछे चल पड़ा। उनकी चर्चाएँ सुनने का लाभ इसीलिए निकट से मिल रहा था। उनके वार्तालाप में बालसुलभ जिज्ञासा के साथ प्रश्नोत्तरों में तर्क एवं तथ्य का समावेश था। विलक्षण बात यह थी एक प्रश्नोत्तर क्रम में दोनों ही बच्चे परस्पर एक दूसरे के सम्मान का पूरा ध्यान रखते थे। शिष्टता, सौम्यता, सौजन्यता उनके हर क्रिया-कलाप में टपक रही थी। उन बच्चों के विषय में अधिक जानने की मेरी इच्छा बढ़ी। इतने में छोटे ने बड़े बच्चे को याद दिलाया कि 'मौर्निंग वाक' का समय पूरा हुआ। अब वापस घर पहुँचना चाहिए और दोनों ही तुरन्त चल पड़े। मैं भी उनके पीछे चला ताकि यह पता लगा सकूँ कि स्वास्थ्य, प्रतिभा, जीवट एवं सुसंस्कारिता से सुसम्पन्न इन बालकों के अभिभावक कौन हैं ?

उनके माता-पिता से मैंने अनेकों प्रश्न पूछे जो बालकों के विकास से सम्बन्धित थे। उत्तर में यह बात मालूम हुई कि जन्म के बाद बच्चों के स्वास्थ्य, संरक्षण, आयु बढ़ने पर उन्हें समय के सदुपयोग, नियमित दिनचर्या, शिष्टता, शालीनता जैसे सद्गुणों के औपचारिक शिक्षण के अतिरिक्त सबसे महत्वपूर्ण बात माँ के गर्भकाल की मन:स्थिति थी, जो प्रसन्नचित, प्रफुल्लित रहकर तथा मस्तिष्क में अभीष्ट स्तर की सन्तान को जन्म देने की प्रबल इच्छा के कारण अपने लक्ष्य में सफल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हुई। डा. फाउलर लिखते हैं कि बालकों के माता-पिता में अगाध प्रेम एवं सहकार की भावना थी। उनका स्वयं का जीवन इतना पवित्र, संयमित एवं सुसंस्कारी था कि बच्चे को भी उसी के अनुरूप गर्भकाल में संस्कार मिले जो बाद में अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर विकसित होते गये।

डॉ. फाउलर के सम्पर्क में मन:चिकित्सा के लिए एक बालक आया जो अत्यन्त दुर्बल तथा मन्दबुद्धि था। जबकि उसके माता-पिता पूर्णतया स्वस्थ एवं नीरोग तथा मेधावी थे। हर तरह की भौतिक सुविधायें होते हुए भी बच्चे का शारीरिक एवं बौद्धिक विकास समुचित रूप से नहीं हो पा रहा था। डाक्टर ने गर्भकाल की हिस्ट्री मालूम की तो विदित हुआ कि पति-पत्नी के बीच लम्बे समय तक अनबन बनी रही। गर्भिणी की मन:स्थिति उस समय चिन्ता, आशंका, भय, आवेश से बुरी तरह ग्रस्त थी जिसने गर्भस्थ शिशु के कोमल तन्तुओं को असाधारण रूप से दुष्प्रभावित किया। डा. फाउलर ने उपचार के लिए एक ही परामर्श दिया कि दोनों सर्वप्रथम अपने सम्बन्धों को माधुर्यपूर्ण बनायें तथा वह दृश्य सामने न आने दें जो बालक की भावनाओं को ठेस पहुँचाते हों।

भ्रूण शास्त्र के विशेषज्ञ डॉ. डे ने गर्भस्थ शिशु के विकास के लिए आहार-विहार को एक सीमा तक ही महत्व दिया है। वे कहते हैं कि गर्भ में पल रहे शिशु के समुचित विकास के लिए गर्भिणी का खान-पान पौष्टिक, सात्विक होना जितना आवश्यक है उससे भी जरूरी यह है कि उसे अपनी मन:स्थिति सन्तुलित प्रसन्न चित्त एवं उत्कृष्ट स्तर की रखने हेतु अनुकूल वातावरण मिले। वातावरण से उनका अभिप्राय दाम्पत्य जीवन के सम्बन्धो तथा उस परिकर से जिसमें वह रहती है। डॉ. डे. का मत है कि माता-पिता के सम्बन्ध जितने अधिक घनिष्ठ तथा माधुर्य पूर्ण स्नेहसिक्त होंगे, गर्भ में पलने वाला शिशु उतना ही अधिक मनोवैज्ञानिक पोषण प्राप्त करेगा। फलत: जन्म के उपरान्त ऐसे बच्चे उत्साही स्फूर्तिवान और मेधावी होते हैं। यों तो परिवार में अन्य सदस्य भी होते हैं पर पति-पत्नी के आपसी सम्बन्ध एवं उनकी स्थिति सर्वाधिक गर्भ में पल रहे शिशु पर प्रभाव डालते हैं। पति-पत्नी के बीच आकर्षण परिवार के अन्य सदस्यों की तुलना में कहीं अधिक होता है। पत्नी को स्नेह प्यार की अपेक्षा भी पति से ही अधिक रहती है। वह अमृत मिलता रहे तो वह परितृप्त रहती, मानसिक दबावों एवं कुण्ठाओं से बची रहती है। अभावों के बीच रहते हुए भी सन्तुष्ट मन: स्थिति अभीष्ट स्तर की सन्तान जनने में समर्थ है, जबकि हर तरह की भौतिक सुविधाओं के रहते हुए भी, ''माँ की विक्षुब्ध मन:स्थिति के कारण जन्मने वाली सन्तानें कमजोर, रुग्ण, मन्दबुद्धि होती है। गर्भस्थ शिशु माँ के उदर से न केवल शारीरिक पोषण अपने लिए प्राप्त करता है वरन् भावनाओं में घुले विष अथवा अमृत को भी खींचता रहता है। यह विशेष अनुदान नारी को अपने पति से प्राप्त होता है। अस्तु पति से मिलने वाला स्नेह न केवल गर्भिणी की स्वस्थ मन:स्थिति का निर्माण करता है वरन् वह गर्भ में पल रहे शिशु पर भी अनुकूल प्रभाव डालता है।

प्रख्यात मन:शास्त्री डा. बेवर कहते हैं कि दाम्पत्य जीवन की सरसता और सफलता उत्तम, स्वस्थ एवं सुसंस्कारी सन्तति को जन्म देती है। डा. बेवर ने अपने एक सर्वेक्षण के उपरान्त निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि श्रेष्ठ, नीरोग एवं बुद्धिमान सन्तान की आकांक्षा जिन्हें हैं उन्हें सर्वप्रथम अपने दाम्पत्य जीवन को माधुर्यपूर्ण बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। डा. बेवर कहते हैं कि ''मैंने अनेकों परिवारों का अध्ययन गहराई से किया है। उसके आधार पर इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि बच्चे को भला-बुरा बनाने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका माता-पिता की होती है। बनाने-बिगाड़ने की यह भूमिका जन्म के बाद नहीं गर्भकाल से ही आरम्भ हो जाती है। यह अवधि शिशु के विकास की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण है।''

जिन्हें स्वस्थ, श्रेष्ठ एवं सुसंस्कारी सन्तान की आकांक्षा है, उन्हें इसकी पृष्ठभूमि शिशु के जन्म के बाद से नहीं पूर्व से बनानी चाहिए। भारतीय संस्कृति की यह चिरपुरातन मान्यता है कि अभीष्ट स्तर की सन्तति जनने के लिए माता-पिता को उसी स्तर की मनोभूमि बनानी चाहिए तथा तप की प्रक्रिया अपनानी चाहिए। सूक्ष्म संस्कार गर्भ में पल रहे शिशु पर डालने के लिए अनेकों प्रकार के संस्कारों को निर्धारण किया गया था। शिशु निर्माण के वह पुरातन सिद्धान्त आज भी शाश्वत हैं, जिनका अवलम्बन लेकर गर्भस्थ शिशु पर अनुकूल प्रभाव डाला जा सकता है।

उत्तम संतान कैसे प्राप्त हो ?

बालक के शरीर की उत्पत्ति माता-पिता के शरीर से होती है। जैसी खरी-खोटी धातु लगाई जायगी वैसा ही बर्तन बनेगा। जैसे ईंट-चूने का प्रयोग होगा वैसा ही मकान बनेगा। यदि माता-पिता के शरीर स्थूल या सूक्ष्म् रोगों सें ग्रसित हैं तो सन्तान पर भी उसका प्रभाव अवश्य पड़ेगा।

शरीर-शास्त्र के ज्ञाता येह भली-भाँति जानते हैं कि कितने की रोग ऐसे हैं जो पीढ़ियों तक चलते हैं। कुष्ठ, उपदंश, मृगी, उन्माद, अर्श, क्षय आदि के बीजाणु माता-पिता के शरीर में विद्यमान हों तो बहुधा उनका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रभाव सन्तान में भी देखा जाता है। माता-पिता के रंग-रूप की छाया भी बालकों पर रहती है। गोरे या काले माता-पिता की सन्तान प्राय: अपने माता-पिता के रंग की ही होती है। माँ बाप के शरीर की कृशता या स्थूलता भी बालकों पर प्रकट होती देखी गई है।

वेष, भाषा, संस्कृति, रुचि, आहार-विहार आदि बातों में भी बच्चे अपने माँ-बाप का अनुसरण करते हैं। छोटा बालक माँ के उदर में ही उन बातों के बहुत कुछ संस्कार ग्रहण कर लेता है और जन्म धारण के पश्चात् उन बातों को सहज ही अपनाने लगता है। इस प्रकार शारीरिक और मानसिक दृष्टि से बालक सत्तर प्रतिशत अपने जन्मदाता शरीरों की प्रतिमूर्ति होता है। वंश, जातियाँ, नस्ल, वर्ण आदि विभागों के मूल में यही तत्व काम करता है। यदि माता-पिता का प्रभाव सन्तान पर न आता तो इस प्रकार का वर्गीकरण दृष्टिगोचर न होता और नीग्रो, चीनी, पंजाबी, बंगाली, मद्रासी, यूरोपियन आदि जातियों में जो आकृति, रंग, स्वभाव आदि का अन्तर दिखाई पड़ता है वह भी न दीखता।

पिता-माता के शरीर, स्वभाव और प्रवृत्तियों का अनुसरण प्राय: अन्य सभी जीव-जन्तुओं की भाँति मनुष्य जाति में भी होता है। साथ ही मनुष्य के मानसिक और आध्यात्मिक सम्पत्तियों का उत्तराधिकार उसके आत्मजों को मिलता है। हम माता-पिता के धन-सम्पत्ति एवं यश-अपयश के ही नहीं उनकी आंतरिक विशेषताओं, आध्यात्मिक संपदाओं के भी उत्तराधिकारी होते हैं। उत्तम ब्राह्मण कुल में बहुधा सात्विक कुल के बालक जन्मते हैं और बधिक, म्लेच्छ एवं कसाइयों के घरों में वैसी ही प्रकृति के बच्चे जन्मते और बनते हैं।

यों हर जीव अपने पूर्व जन्मों के स्वतन्त्र संस्कार और प्रारब्ध साथ लाता है। इसलिए कभी-कभी सन्तान माता-पिता से भिन्न स्वभाव की होती देखी गई हैं, पर ऐसा होता अपवाद स्वरूप ही है। अधिकांश बच्चे अपने जन्मदाताओं के गुण, कर्म, स्वभाव के होते हैं। भारतीय वर्ण व्यवस्था में इस तत्व को प्रमुख आधार मानकर जन्म एवं वंश को प्रधानता दी गई है। एक शरीर त्याग कर जीव एक दूसरे शरीर में आने को होता है, तो वह अपनी संचित रुचि और प्रवृत्ति के अनुकूल स्थान को ढूँढ़ता है। रेलगाड़ी के फर्स्ट क्लास डिब्बे में यात्रा करने वाले यात्री स्टेशन पर उतर कर फर्स्ट क्लास के यात्रियों के लिए बने हुए विशेष मुसाफिरखाने में चले जाते है और तीसरे दर्जे में यात्रा करने वाले उसी दर्जे के निमित्त बने हुए मुसाफिरखाने में जा बैठते हैं। वैसे ही जीव भी अगले जन्म के लिए अपने उपयुक्त वंश में जा पहुँचता है। आकाश में उड़ते हुए पक्षी तथा कीट-पतंग अपनी रुचिकर वस्तुओं को ढूँढ़ते फिरते हैं और जब अनुकूल-अभीष्ट वस्तु मिल जाती है तब उसे प्राप्त करने के लिए नीचे ऊपर आते हैं। गिद्ध मृत माँस को, कौए विष्ठा को, भौंरा फूलों को, बाज चिड़ियों को ढूँढ़ते फिरते हैं। जहाँ उनकी मनचाही वस्तु दिखाई देती है वहीं उतर पड़ते हैं। जीवों को प्रारब्ध तो अपने कर्मानुसार ही भुगतने पड़ते हैं, जो हर कुल और वंश में भुगते जाने संभव हैं, पर जन्म लेने के लिए वे अपनी पूर्ण संचित रुचि के अनुकूल स्थिति ही ढूँढ़ते हैं और दयामय प्रभु उन्हें इच्छित वातावरण में ही जन्मने का अवसर प्रदान कर देते हैं।

माता-पिता की जैसी आध्यात्मिक भूमिका होती है, उसी के अनुरूप प्रारब्ध संस्कार वाले जीवन उनके शरीर में प्रवेश करके उस वातावरण में जन्म धारण करते हैं। इसलिए यदि अपने घर में उत्तम संतान को जन्म देना है तो उसके लिए अपने आपको उत्तम बनाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। जो लोग स्वयं पतित दशा में हैं, जिनकी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक स्थिति गिरी हुई है, उनकी सन्तान भी दीन-हीन ही रहेगी।

कहा गया है कि संतान के कारण उसके पितरो को नरकगामी होना पड़ता है। कारण स्पष्ट है। संतान को समुचित पूर्ण तैयारी के बिना ही उत्पन्न कर डालना एक भारी पाप है, जिसका दण्ड उसे पारलौकिक जीवन में तो मिलता ही है, लौकिक जीवन में भी उसकी कम दुर्गति नहीं होती। सन्तान की हीनता और नीचता से जो अनुचित कार्य होते हैं, उनसे माता-पिता की भी निन्दा होती है क्योंकि वे सुयोग्य सन्तान उत्पन्न करने का अपना उत्तरदायित्व पूरा करने में सफल न हो सके। जो व्यक्ति अनाधिकार चेष्टा करते हैं। वे निन्दा के पात्र होते हैं। मनुष्योचित गुण जिसमें न हो वह तो पशु ही है। पशुओं की भाँति केवल काम प्रेरणा से गर्भाधान में प्रवृत्त हो जाना और एक असंस्कृत जीवन उत्पन्न कर देना पशु प्रवृत्ति है। यह मनुष्यता के प्रति, देश और जाति के प्रति एक अपराध भी है, क्योंकि उनके पाशविक उद्देश्य के फलस्वरूप जो बालक उपजते हैं, संसार के लिए अहितकर और अवांछनीय कार्य करते हैं। उनसे पृथ्वी का बोझ बढ़ता है और संसार में अनीति तथा अशांति की वृद्धि होती है। इस गड़बड़ी की जिम्मेदारी उन माता-पिता पर है जो संतानोत्पति का महान् उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य करने से पूर्व उसकी भावी संभावनाओ पर विचार नहो करते। ऐसी गैर जिम्मेदारी किसी व्यक्ति की लौकिक और पारलौकिक दुर्गति का ही कारण हो सकती है। ऐसे पिता नरकगामी नहीं होंगे तो क्या स्वर्गगामी होंगे ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आज हमारे परिवार क्लेश और कलह से भर रहे हैं। उनमें प्रधान कारण असंस्कृत संतान है। घर के मुखिया एवं बड़े-बूढ़े, छोटों की उद्दण्डता, उच्छृंखलता, अनुशासनहीनता, चोरी, स्वार्थपरता, अशिष्टता से परेशान देखे जातें हैं। स्कूलों में अध्यापक सिर धुनते हैं, घर में अभिभावकों की आँतें-पीतें जलती हैं। क्या लड़कियाँ क्या लड़के सभी की चाल बेढंगी है। जब तक बचपन रहता है तब तक उद्दण्डता करते हैं, कुछ समझदार होते हैं तो वासना और विलासिता की ओर झुक पड़ते हैं, बड़े होने पर उनकी कार्य-पद्धति स्वार्थपरता से ओत-प्रोत हो जाती है। माता-पिता के लिए, संस्कृति के लिए, मनुष्यता के लिए यह अभिशाप ही सिद्ध होते हैं। हमारी नई पीढ़ियाँ इसी मार्ग का अनुसरण कर रही हैं। कोई बिरले ही भाग्यशाली घर ऐसे होंगे जिनमें कर्तव्य पालन, शिष्टाचार, सद्भावना, सेवा, त्याग, आत्मीयता एवं सदाशयता का अमृत बरसता हो। प्राचीनकाल में जो स्थिति घर-घर थी वह आज कहीं दिखाई नहीं पड़ती, जो बातें पूर्व काल में कहीं नहीं देखी जाती थीं वे घर-घर में मौजूद हैं। परिस्थितियों में इतना भारी परिवर्तन हो जाने के कारणों में सबसे बड़ा कारण माता-पिता की गैर जिम्मेदारी है, जो संतानोत्पति के लिए आवश्यक योग्यता प्राप्त किये बिना इस भारी उत्तरदायित्व को कंधे पर उठाने का दुस्साहस कर बैठते है। इन्हीं भूलों के कारण आज हमारा पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन विषाक्त बनता चला जा रहा है।

हमे नीतिवान् एवं चरित्रवान् होना चाहिए क्योंकि यह जीवन-यापन की सर्वोत्तम नीति है। हमें अपने गुण, कर्म और स्वभाव को उत्तम बनाना चाहिए। क्योंकि यह सफलता, समृद्धि और उन्नति का सुपरिचित मार्ग है। हमारा यह कर्तव्य है कि हम अपनी मनोभूमि को, अपने दृष्टिकोण को, अपनी विचारधारा को, अपनी कार्य पद्धति को उच्चकोटि के आदर्शों से ओत-प्रोत करें, क्योंकि इस मार्ग पर चल कर लोक और परलोक की सुख-शांति संभव है। आज कुपात्र संतान की बाढ़ आई हुई है और सम्पन्न संतति के दर्शन दुर्लभ हो रहे हैं। यदि हम श्रेष्ठ और सुखी परिवारों का निर्माण चाहते हैं तो हमें इस परिस्थिति को बदलना ही पड़ेगा।

अभ्यागत आत्मा के स्वागत की तैयारी

महाभारत में एक कथा आती है कि एक बार कुपित होकर अश्वत्थामा ने उत्तरा के गर्भस्थ शिशु (परीक्षित) पर आग्नेयास्त्र प्रयोग किया। परीक्षित माँ के उदर में ही असह्य पीड़ा से जलने लगा। माँ ने भी उसे जाना। उन्होंने सम्पूर्ण समर्पण भाव से परमात्मा का स्मरण किया तब उस बच्चे की रक्षा हो पाई।

गर्भस्थ शिशु को कोई अस्त्र तब तक नहीं छेद सकता जब तक माँ का शरीर न छिदे। दरअसल आग्नेयास्त्र मन्त्र शक्ति थी, जो संकल्प शक्ति के द्वारा चलाई गई थी। बाहरी व्यक्ति द्वारा दूर से संकल्प प्रहार से यदि गर्भस्थ बच्चा जल और मर सकता है और फिर परमेश्वर के प्रति अटल विश्वास और रक्षा की भावना से उस बच्चे को बचाया जा सकता है तो उसके शरीर और मनोभूमि में भी इच्छानुवर्ती परिवर्तन लाया जा सकता है।

सती मदालसा के बारे में कहा जाता है कि 'वह अपने बच्चे के गुण, कर्म और स्वभाव की पूर्व घोषणा कर देती थीं फिर उसी प्रकार निरन्तर चिन्तन, क्रिया-कलाप, रहन-सहन, आहार-विहार और व्यवहार-बर्ताव अपनाती थीं, जिससे बच्चा उसी मनोभूमि में ढल जाता था, जिसमें वह चाहती थी। इतिहास प्रसिद्ध घटना है कि उनके पले सभी बच्चे ज्ञानी, सन्त और ब्रह्मनिष्ठ होते गये। अजात-शत्रु की प्रार्थना पर उन्होंने अन्तिम गर्भस्थ बच्चे को राजनेता के अनुरूप ढाला। उसी ने पिता का राज्य-सिंहासन सम्भाला और कुशल राजनीतिज्ञ हुआ।

आयुर्वेद के विशेष ग्रन्थ सुश्रुत संहिता में भी आया है—**'पूर्व पश्ये ऋतुस्नना या दर्शं नर मंगला। तादृश्य जनयेत्पुत्र भर्तारं दर्शये तत।'** अर्थात्—ऋतु स्नान के पश्चात् स्त्री जिस प्रथम पुरुष को देखती है, बच्चे का रूप-रंग और मुखाकृति उसी जैसा होता है, इसलिये वह सर्व-प्रथम अपने पति का दर्शन करे।

यह सभी तथ्य भावना विज्ञान से सम्बन्धित है, इस लिये प्रत्यक्ष न दिखाई देने पर भी उनकी सत्यता में कोई सन्देह नहीं है। यह बात अब पाश्चात्य देशों के वैज्ञानिक, डाक्टर और दूसरे प्रबुद्ध व्यक्ति भी मानने लगे हैं। डा. फाउलर ने इस सम्बन्ध में काफी खोज की है, गर्भावस्था में भी गर्भिणी के हाव-भाव का बच्चे के शरीर और मन पर कैसा प्रभाव पड़ता है, इस सम्बन्ध में उनके कई प्रमाण हैं।

प्रत्यक्षदर्शी घटना का वर्णन करते हुए फाउलर लिखते हैं—''एक स्त्री अपने बच्चे को नींद लाने वाली गोली देकर किसी आवश्यक कार्य से बाहर चली गई। लौटने पर वह बच्चा मरा पाया। स्त्री को इससे बहुत दुःख हुआ और वह शोक-मग्न रहने लगी। उसी अवस्था में उसने दूसरी बार गर्भधारण किया। पहले बच्चे के प्रति उसका शोक ज्यों का त्यों बना रहा, इसलिये दूसरा लड़का रोगी हुआ। दूसरे वर्ष ही उसकी मस्तिष्क रोग से मृत्यु हो गई। अब वह और दुखी रहने लगी। इस अवस्था में तीसरा पुत्र हुआ, वह हठी, सुस्त और कमजोर हुआ। दाँत निकलते समय उसकी भी मृत्यु हो गई। चौथा पुत्र भी ऐसे ही गया। किन्तु पाँचवी बार उसकी परिस्थितियों में सुखद परिवर्तन आये, जिससे उस स्त्री की मानसिक प्रसन्नता बढ़ी। वह पहले की तरह हँसने खेलने लगी। इस बार जो बच्चा हुआ वह पूर्ण स्वस्थ, नीरोग और कुशाग्र बुद्धि का हुआ।''

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

डा. फाउलर का मत है कि क्रोध, आश्चर्य, घृणा, अहंकार, गम्भीरता आदि के अवसर पर माता की नासिका मुख और आकृति में जैसे परिवर्तन, उठाव, गिराव होते हैं, वैसे ही बच्चे की नाक, मुँह, माथे आदि अवयवों की शक्ल भी बनती है। गर्भाधान के बाद स्त्री प्रसन्न नहीं रहती, शोक या चिन्ताग्रस्त रहती है, तो बालक के मस्तिष्क में पानी की मात्रा बढ़ जाती है। यदि ४ वर्ष के बच्चे सिर का व्यास बीस इन्च से अधिक हो तो मानना चाहिये कि वह जल-संचय का शिकार हुआ है, उसकी माँ गर्भावस्था में दुखी रही है।

भय, विक्षेप, अशुभ चिन्तन, उत्तेजना से जिस तरह अंगों में भद्दापन, बेडौल और खराब मुखाकृति बनती है, उसी तरह शुभ-संकल्प और प्रसन्नतापूर्ण विचारों से बच्चा स्वस्थ, सुन्दर और चरित्रवान् बनता है। इसीलिये कहा जाता है—गर्भावस्था में माँ के सत्य भाषण, उत्साह, प्रेम, दया, सुशीलता, सौजन्य, धर्माचरण और ईश-भक्ति का अनुगमन करना चाहिए। यह बच्चे होनहार और प्रतापी होते हैं, जबकि क्रोध, ईर्ष्या, भय, उद्विग्नता आदि अधम वृत्तियों के बच्चे भी अधम, उत्पाती और स्वेच्छाचारी होते हैं। गलत खान-पान भी उसमें सम्मिलित है।

इसके अतिरिक्त जो महत्वपूर्ण बातें गर्भस्थ शिशु को प्रभावित करती हैं, उनमें से वातावरण मुख्य है। ध्रुव ऋषि-आश्रम में जन्मे थे। उनकी माँ सुनीति बड़ी नेक स्वभाव और ईश्वरभक्त थीं। ध्रुव के महान तेजस्वी होने में वातावरण भी मुख्य सहायक था, जबकि उत्तानपाद के दूसरे बेटे में वैसी तेजस्विता न उभर सकी।

एक पाश्चात्य डा. ने वातावरण के प्रभाव का अध्ययन इस प्रकार किया—एक बार एक कमरे का फर्श और दीवार सबको नील-पोत कर नीला कर दिया। उस कमरे में श्वेत रंग के खरगोश का एक जोड़ा रखा गया। कुछ समय बाद खरगोश के दो बच्चे हुए, दोनों के बालों में नीले रंग की झलक थी। इससे पता चलता है कि बच्चे के मस्तिष्क में ही नहीं वातावरण का सूक्ष्म प्रभाव स्थूल अंगों पर भी पड़ता है। गर्भवती का निवास ऐसे स्थान पर होना चाहिए, जहाँ चारुता हो, मोहकता और आकर्षण हो। हरे बगीचों, केले, फलों आदि से घिरे स्थान, देवस्थान और विशेष रूप से सजे-सजाये, साफ-सुथरे स्थान गर्भस्थ बच्चों पर सुन्दर प्रभाव डालते हैं।

वातावरण के साथ-साथ गर्भिणी के साथ व्यवहार बर्ताव और बातचीत भी बहुत सौम्य, शिष्ट और उदार होना चाहिये। क्रोध, मारपीट, धमकाना, डाँटना, दबाकर रखना आदि कुटिलताओं का बच्चे पर बुरा प्रभाव पड़ता है। कई बार इस प्रकार के आचरण बहुत ही दु:खदायी और स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। एक बार एक व्यक्ति ने समुद्री यात्रा के दौरान किसी बात से अप्रसन्न होकर अपनी गर्भवती पत्नी को जोर का धक्का मारा। गिरते-गिरते जहाज की जंजीर हाथ में पड़ गई। उससे वह गिरने से संभल गई किन्तु वह व्यक्ति बड़ा क्रूर निकला। उसने छुरे का बार किया, जिससे उस स्त्री की जंजीर पकड़े हुये हाथ की तीन उँगलियाँ कट गईं, वह स्त्री समुद्र में चली गई।

जहाज के चले जाने पर कुछ मल्लाहों ने उसकी रक्षा की। बाद में उस स्त्री को जो सन्तान हुई यह देखकर सब आश्चर्यचकित रह गये कि उसकी तीन उँगलियाँ ही नहीं थीं और वह बालक मानसिक दृष्टि से अपूर्ण, क्रोधी तथा शंकाशील स्वभाव का था।

धमाका पैदा करने वाला ऐसा कोई व्यवहार गर्भवती से नहीं करना चाहिए, जिससे मस्तिष्क में तीव्र आघात लगें। इससे बच्चे के शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है।

बच्चों के मानसिक निर्माण में माता-पिता की घनिष्ठता, प्रगाढ़-प्रेम, परस्पर विश्वास का सबसे सुन्दर प्रभाव पड़ता है। सच बात तो यह है कि माता-पिता का संकल्प बच्चे को उसी प्रकार पकाता है, जिस प्रकार मादा कछुआ पानी में रहकर रेत में रखे अपने अण्डों को पकाती है। दिव्य गुणों का बच्चे में आविर्भाव ही प्रेमपूर्ण भावनाओं से होता है, इसलिये गर्भावस्था में स्त्री पुरुष को अधिकांश समय साथ-साथ बिताना चाहिये। पवित्र आचरण और प्रगाढ़ मैत्री रखनी चाहिए, ऐसे बच्चे शरीर से ही नहीं मिजाज से भी पूर्ण स्वस्थ होते हैं।

अभीष्ट सन्तति कैसे जन्मे

गर्भावस्था की अवधि में एक दिन महारानी मदालसा ने महाराज से पूछा "आपको कैसा पुत्र चाहिए ?" आश्चर्य व्यक्त करते हुए राजा ने कहा प्रजा को इस समय ऐसे संतों की जरूरत है जो उसे धर्माचरण के लिए प्रेरित कर सके, क्या तुम ऐसी सन्तान पैदा कर सकती हो ? रानी मदालसा ने कहा, "राजन ! यह संभव है। केवल संकल्प की दृढ़ता चाहिए, हर क्षण अपनी विचारणा एवं भावना के साथ वह गर्भस्थ शिशु को ऐसी खुराक पहुँचाती रहीं जिससे अभीष्ट साँचे में ढलने में उसे मदद मिल सके।"

गर्भ की अवधि पूरी हुयी। बालक जन्मा दूध पिलाते समय, लोरी सुनाते समय, झूले में झुलाते समय मदालसा मन ही मन यही भाव संप्रेषित करतीं—"पुत्र ! तू शुद्ध बुद्ध है, निरंजन है, शरीर नहीं आत्मा है। संसार माया है। तू सांसारिक आकर्षणों से विरत रहकर अपने जीवन लक्ष्य की प्राप्ति कर !" समझ आते ही बालक में बीजारोपित संस्कार अंकुरित-पल्लवित एवं पुष्पित होने लगे। संत के लक्षण बालक के आचरण में प्रकट होने लगे।

ऐसे चार बच्चे समय के अन्तराल से पैदा हुए। चारों ही संन्यासी बने। निस्पृह, अनासक्त और वैरागी। राज-पाठ की उन्हें कोई चिन्ता नहीं रहती। धर्म-चेतना का अलख जगाने, पीड़ितो को उठाने की मस्ती में ही वे डूबे रहते। तप-तितीक्षा में, साधना और सेवा में उन्हें जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आनन्द आता उसके समक्ष राज्य के वैभव से मिलने वाला सुख तुच्छ जाना पड़ता।

अब महाराज की चिन्ता बढ़ी। अधेड़ आयु हो चली। चारों बच्चे संन्यासी हो गये, राज्य की देखभाल कौन करेगा ? विपुल वैभव को कौन संभालेगा, इस विषय पर वे जितना सोचते चिन्ता उतनी ही बढ़ती जाती। महारानी पाँचवी बार गर्भवती हुयी थी। इस बार भी यदि बालक संत के संस्कार लेकर पैदा होता तो आशा की ज्योति सर्वदा के लिए बुझ जायेगी तथा शासन की बागडोर किसी दूसरे के हाथों में सौंपनी होगी, यह व्यथा वेदना राजा को खाये जा रही थी।

उनकी हालत अधिक समय महारानी से छुपी न रह सकी। एक दिन वे पूछ ही पड़ीं, ''राजन् ! इन दिनों मैं आप को कुछ अधिक ही चिन्तित-व्यथित देख रही हूँ। आपकी चिन्ता को दूर करने में यह अंकिचन क्या कुछ मदद कर सकती है ?'' थोड़ा सकुचाते हुए राजा बोले ''महारानी में यह अच्छी तरह जानता हूँ कि संत किसी देश की आत्मा होते हैं पर शासन की बागडोर संभालने वाला भी तो कोई चाहिए। मेरी चिन्ता इसलिए बढ़ती जा रही है कि भविष्य में इस राज्य का संचालन करने वाले समर्थ हाथ नहीं दिखायी पड़ते।''

अब महारानी ने अपनी विचारणा एवं भावना को नयी दिशा में मोड़ा। गर्भस्थ शिशु को सम्राट बनाने की तैयारी चलने लगी। आहार-विहार से लेकर चिन्तन विचारणा सभी में यह भाव समाया रहता है कि गर्भ में पल रहे शिशु को शासक बनाना है। महारानी स्वयं भी अपना अधिकांश समय ऐसे कार्यों में व्यतीत करती थीं जिससे वीरोचित भावों को पुष्टि मिल सके। घुड़सवारी करना, तीरंदाजी करना, वीरता की गाथाएँ सुनना उनकी दिनचर्या की अंग बन चुकी थी। चिन्तन के एकान्त क्षण ऐसे ही भावों को संप्रेसित करने में व्यतीत होते थे जिससे भीतर पल रहे शिशु को साहस एवं पराक्रम के गुणों का पोषण मिल सके।

निश्चित समय पर शिशु का जन्म हुआ। उसका देदीप्यापन चेहरा ही उसकी तेजस्विता का परिचय दे देता था। बालक बढ़ने लगा। आरोपित संस्कारों को अनुकूल वातावरण में पोषण मिला। प्रशिक्षण की समग्र व्यवस्था बनी। सम्राट के योग्य सभी गुणों को पाकर राजा ने संन्यास ग्रहण कर तप हेतु प्रस्थान कर दिया। सचमुच ही संकल्पनिष्ठ माताएँ मनचाही संतान को जन्म दे सकने में पूरी तरह समर्थ हैं।

मनचाही सन्तान प्राप्त करें

माँ के चिन्तन एवं आचरण का गर्भस्थ शिशु पर गहरा प्रभाव पड़ता है। प्रायः पोषक आहार पर अधिक जोर दिया जाता है। समझा और समझाया यही जाता है कि भ्रूण में पल रहे नवजात शिशु के समुचित पोषण के लिए यह जरूरी है कि माँ को पर्याप्त पोषक तत्व मिलता रहे। यह उचित है और आवश्यक भी। माँ के उदर से भ्रूण अपने योग्य सीधी खुराक प्राप्त करता है। पोषक तत्व उचित परिमाण में मिलते रहने से भ्रूण का विकास समग्र रूप से होता रहता है। अस्तु, आहार मे उन तत्वों का समावेश करना चाहिए। पर इस तथ्य की भी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए कि माँ के उदर में पल रहा शिशु उसकी विचारणा से असाधारण रूप से प्रभावित होता है, भ्रूण की काया जितनी कोमल होती है उतनी ही संवेदनशील भी। गर्भिणी का भला-बुरा चिन्तन शिशु की संवेदनशील स्थिति पर तदनुरूप प्रभाव छोड़ता है। प्रकृति ही नहीं ढल रही आकृति पर भी माँ के मनःस्थिति का, उभरने वाले उतार-चढ़ावों का हर्ष या शोक का, मानसिक संवेगों का असर पड़ते देखा गया है।

नवागन्तुक शिशु के विकास के लिए माँ का अनुकूल आहार-विहार जितना आवश्यक है उतना ही जरूरी यह भी है उसे अभीष्ट स्तर का वातावरण दिया जाय। ऐसा वातावरण जो उसकी मनः स्थिति को सात्विक, पवित्र, प्रसन्नचित्त और प्रफुल्लित रखें। दृश्य, श्रव्य और पठनीय तीनों ही स्रोत श्रेष्ठ हों, जो चिन्तन को श्रेष्ठ अथवा निकृष्ट दिशा देने के लिए जिम्मेदार हैं। सन्तान का निर्माण वस्तुतः उसके पैदा होने के बाद नहीं गर्भकाल से ही आरम्भ हो जाता है और जन्म लेने तक नब्बे प्रतिशत पूरा हो जाता है। यह प्रक्रिया अदृश्य रूप से चलती है। टेपरिकार्डर आवाज को जैसे अंकित कर लेता है ठीक इसी प्रकार गर्भिणी के मन-मस्तिष्क में उठने वाले विचार गर्भस्थ शिशु के संवेदनशील तन्तुओं को झकझोरते रहते हैं। कितनी बार तो मनःसंवेग इतने प्रबल होते हैं कि उनकी गम्भीर प्रतिक्रिया शिशु की काय संरचना पर पड़ती देखी गयी है। वे आवेग स्थायी रूप से शिशु के शरीर पर विभिन्न प्रकार के चिन्हों के रूप में अंकित हो जाते हैं।

आनुवांशिकी के नियमों को झुठलाती हुई एक घटना स्पेन के समाचार पत्रों में बहुचर्चित हुई। स्थायी रूप से स्पेन में निवास करने वाले एक अँग्रेज परिवार में एक स्त्री गर्भवती हुई। वह जिस कमरे में रहती थी उसमें अन्य चित्रों के साथ एक इथोपियन पुरुष का भी चित्र लगा हुआ था। वह चित्र स्त्री को बहुत प्रिय था। इतना सुन्दर और मोहक था कि वह उसे नित्य भावनापूर्वक देखा करती थी। दूसरे काम करते समय भी उसे चित्र का स्मरण बना रहता था। समय पर बच्चा जन्मा। सभी को देखकर भारी अचरज हुआ कि बच्चे की मुखाकृति तथा वर्ण इथोपियन युवक जैसा था। जबकि बच्चे के माता-पिता दोनों ही अँग्रेज थे। मनोवैज्ञानिकों ने अध्ययन के उपरान्त यह बताया कि गर्भवती महिला के निरन्तर के चिन्तन का ही वह परिणाम था जिससे शिशु की आकृति तक बदल गयी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्राजील की एक लड़की का विवाह एक अँग्रेज से हुआ। लड़की का रंग साँवला था पर उसमें मोहकता अधिक थी। पति-पत्नी में घनिष्ठ प्रेम था पर उनकी कोई सन्तान नहीं हुई। कुछ दिनों बाद पत्नी मर गयी। अँग्रेज ने दूसरी शादी कर ली पर उसे पूर्व पत्नी की याद सदा बनी रहती थी। उसकी दूसरी पत्नी गौर वर्ण की थी। नव विवाहिता में भी वह पहली पत्नी की छवि का दर्शन करता था। थोड़े दिनों बाद दूसरी पत्नी से एक कन्या जन्मी जो रूप लावण्य तथा वर्ण तथा मुखाकृति में ठीक पहली ब्राजीली पत्नी जैसी थी। कारणों की गहरी खोज बीन की गयी तो मालूम हुआ कि अँग्रेज के मस्तिष्क में उसकी विचारणा का प्रभाव पड़ा।

अमरीका से हाल में प्रकाशित हुई पुस्तक 'दि वर्ल्ड आफ दी अनबौर्न' में लेखिका लेनी स्वार्टज ने उपरोक्त तथ्यों पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए कहा है कि मनुष्य की जिन्दगी का सबसे महत्वपूर्ण समय उसके जन्म के पूर्व का होता है। शिशु गर्भ में पूर्ण सचेत प्राणी होता है तथा उसका अवचेतन उस अवधि की स्मृतियों को भली-भाँति सँजोये रहता और माँ के संवेगों को तुरन्त अपनी स्मृति रूप में समेट लेता है।

अमरीका के ही ओहियो स्थित फेल्ज रिसर्च इन्स्टीट्यूट में 'सोनाज नामक एक चिकित्साशास्त्री एवं मनःचिकित्सक पिछले बीस वर्षों से मानव की गर्भावस्था से किशोरावस्था के विकास प्रक्रिया पर शोध कर रहे हैं। उनका निष्कर्ष है कि 'गर्भावस्था में जो महिलाएँ चिन्तित अथवा भयभीत रहती हैं वे एक प्रकार से अनजाने में गर्भस्थ शिशु के साथ अन्याय करती हैं। अध्ययन के दौरान उन्होंने पाया कि दुखी और भयभीत महिलाओं के शिशु अन्य सामान्य महिलाओं के गर्भस्थ शिशुओं से अधिक तीव्र हलचल करते हैं। जनने एवं विकसित होने पर प्रायः ऐसे शिशु अधिक असन्तुलित, गुस्सैल एवं आक्रामक देखे गये। मनःचिकित्सक लेस्टर सोनाज का मत है कि अधिक तनाव की स्थिति गर्भस्थ शिशु के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हो सकती है। सम्भावित दुष्प्रभाव का एक उदाहरण उन्होंने प्रस्तुत किया है। एक शरीर से पूर्ण स्वस्थ दीखने वाली अठारह वर्षीय महिला ने एक बच्चे को जन्म दिया: बच्चा दीखने में स्वस्थ लगता था। २४ घण्टे तक शिशु और माँ को चिकित्सकों की विशेष देख-रेख में रखा गया। अचानक बच्चे को खून की तेज उल्टियाँ होने लगीं। थोड़ी ही देर बाद उसने छटपटाते हुए दम तोड़ दिया। कोई कारण इस आकस्मिक घटना के नहीं मालूम पड़ रहे थे। घटना की पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम बच्चे का पोस्टमार्टम कराया गया तो विदित हुआ कि बच्चे की आँत में तीन फोड़े थे। उल्लेखनीय है कि आँत में फोड़े प्रायः वयस्कों को होते हैं। प्रायः उन्हें जो अधिक चिन्तित आवेशग्रस्त रहते हैं। परीक्षणकर्ताओं की रुचि सम्बद्ध कारणों को जानने में और भी बढ़ी। महिला से पूछताछ की गयी तो ज्ञात हुआ कि पति से उसकी अनबन रहती थी। गर्भावस्था अन्तिम छह महीनों में वह अधिक तनाव से ग्रस्त रही। विशेषज्ञों ने निष्कर्ष निकाला कि गर्भावस्था में बेहद मन पर पड़ने वाले दबावों के कारण फोड़ा पैदा करने वाले विजातीय तत्व गर्भनाल से होकर शिशु के भीतर पहुँच गये।

कहना न होगा गर्भावस्था शिशु के विकास की अत्यन्त नाजुक अवधि है। जिसमें गर्भवती को आहार-विहार ही नहीं अभीष्ट प्रकार का वातावरण भी चाहिए। ऐसा वातावरण जो स्नेह, प्यार, सद्भाव, प्रसन्नता प्रफुल्लता उभारने वाले तत्वों से अनुप्राणित हो।

परिष्कृत और समुन्नत पीढ़ियाँ ही नवयुग का आधार बनेंगी

प्रशिक्षण खरादने की तरह है और उत्पादन की मूलभूत सामग्री का मौलिक महत्व है। हीरा असली हो तो खरादने पर उसकी चमक निखरती और कीमत बढ़ती है किन्तु काँच के नग को खराद पर चढ़ाने से कुछ तो शोभा बढ़ेगी ही पर परिश्रम, समय और साधन खर्च करने की तुलना में मिलने वाला लाभ स्वल्प ही रहेगा। कभी-कभी तो दबाव पड़ने पर कच्चे कमजोर काँच के टूटने का भी भय रहता है।

मनुष्य को शिक्षा, आहार, वातावरण आदि के माध्यम से सुयोग्य बनाने का प्रयत्न किया जाता है और उससे कुछ लाभ भी होता है किन्तु देखना यह है कि व्यक्तित्व की दृष्टि से ओछे और मौलिक तत्वों की दृष्टि से घटिया होने पर क्या इन उपचारों का कोई कारगर प्रभाव भी हो सकता है ? देखा यह जाता है कि विकास के नाम पर किए जाने वाले प्रयासों से मात्र चातुर्य बढ़ता है और उस आधार पर व्यवहार कुशलता और धन उपार्जन भर का लाभ मिल पाता है। जबकि आवश्यकता इस बात की अनुभव की जा रही है कि मौलिक दृष्टि से समर्थ और समुन्नत किस्म का मनुष्य समुदाय उत्पन्न हो।

उत्पादन और परिमार्जन का अन्तर समझा जाना चाहिए। सोना असली होने पर ही आभूषणों का मूल्य आँका जाता है। पीतल से बने जेवरों से तो स्वर्णकार का श्रम भी अलाभकर सिद्ध होता और उपहासास्पद बनता है। व्यक्तित्व मौलिक है। प्रशिक्षण उसकी शृंगार सज्जा। इस तथ्य को गहराई से समझने पर अब विज्ञ क्षेत्रो मे यह विचार चल रहा है कि मनुष्य की ऐसी समुन्नत नस्ल पैदा की जाय जो जन्मजात रूप में वैसी विशेषताएँ साथ लाये, जिनकी नये युग के उपयुक्त वातावरण बनाने में सहायता मिल सके।

इसके लिये अब वैज्ञानिकों का ध्यान जीवकोषों के अन्तराल मे पाये जाने वाले इन गुणसूत्रों को परिष्कृत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने पर केन्द्रित हो रहा है, जो व्यक्तित्व में जन्मजात विशेषताएँ भर सकने में समर्थ हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी चली आने वाली विशिष्टताएँ बड़ी हठीली होती हैं और नयी संतति में अपनी भली-बुरी विशेषताओं को उड़ेलती रहती हैं। वंशजों में प्राय: पूर्वजों की अधिकांश विशेषताएँ भरी रहती हैं और वे सुधार शिक्षण के सामान्य प्रयत्नों से भी टस से मस नहीं होतीं।

वंशानुक्रम को बदल सकने में समर्थ गुण सूत्रों का किस प्रकार सुधार किया जाय ? किस प्रकार उन्हें सुयोग्य जोड़ों के माध्यम से उपयोगी उत्पादन में सफल बनाया जाय ? यही हैं वे प्रश्न जो इस क्षेत्र के मूर्धन्य जनों को उपाय खोजने के लिए बाधित कर रहे हैं। इस सन्दर्भ में दो प्रश्न हैं कि कुसंस्कारी जोड़ों द्वारा जन्माये हुए सन्तानों से उत्पन्न होते रहने वाले दुष्परिणामों से कैसे बचा जाय और समुन्नत स्तर के उत्पादन का सिलसिला किस प्रकार चले ? नये उत्पादन से भी अधिक चिन्ता का विषय यह है कि अनेक दोष-दुर्गुणों से युक्त प्रस्तुत-जन समुदाय जिस स्तर की संतति उत्पन्न कर रहे हैं, उसके द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले दुष्परिणामों से बचाव किस प्रकार बन पड़े।

इन दिनों अनगढ़ जनसमुदाय द्वारा घटिया स्तर का प्रजनन बेहिसाब हो रहा है। जनसंख्या वृद्धि दर २ प्रतिशत वार्षिक (१९६०) में घटकर आज १.८ प्रतिशत है। संभावना है सन् २००० तक यह १.६ प्रतिशत होगी। फिर भी इन २० वर्षो मे २ अरब व्यक्ति इस धरती पर और जुड़ जायेंगे। विडम्बना यह है कि इनमें ९० प्रतिशत (१ अरब ८० करोड़) अर्ध विकसित गरीब देशों में आवेंगे। यह अगले दो दशक की सबसे बड़ी समस्या है। इस विशालकाय जनसमूह का पेट भरने के लिए खाद्यान्न उत्पादन की वार्षिक दर में कम से कम ३.७ प्रतिशत की वृद्धि की आवश्यकता होगी।

युनाइटेड नेशन्स की ओर से हाल ही में प्रकाशित की गई एक रिपोर्ट के अनुसार १९८० मे विश्व की जनसंख्या जो ४४३ करोड़ ७० लाख थी वह सन् २००० में ६१० करोड़, २०१० तक ७०० करोड़ और २०२५ तक ८३० करोड़ हो जायेगी। जबकि सन् १९५० में वह मात्र २५० करोड़ थी।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद विकसित देशों की जनसंख्या वृद्धि दर में कमी शुरू हुई। उसका क्रम यथावत् घटोत्तरी की ओर है। विकासशील देशो में अब ऐसे प्रमाण मिलने लगे हैं कि यहाँ भी जनसंख्या वृद्धि दर मे कमी हो रही है। फिर भी विकासशील देशो में प्रतिवर्ष ७ करोड़ जनसंख्या की वृद्धि होती है जो विश्व की प्रतिवर्ष की जनसंख्या वृद्धि का ९० प्रतिशत है।

इस सकट से बचने के लिए जन्मनिरोध के लिए सर्वत्र आन्दोलन चल रहे हैं और कहा जा रहा है कि जिस प्रकार भी संभव हो प्रजनन पर रोकथाम लगाई जाय। यह निर्वाह संकट दूर करने की दृष्टि से किया गया प्रयास प्रतिपादन है। पर बात इतने से ही समाप्त नहीं हो जाती। बड़ा प्रश्न यह रह जाता है कि 'हम दो हमारे दो' का सिद्धान्त अपनाने पर भी जो संतति उत्पन्न होगी उसका स्तर कैसा होगा ? आवश्यक नहीं कि शिक्षित या सम्पन्न व्यक्तियों में समुन्नत स्तर की सन्तान उत्पन्न कर सकने की क्षमता हो ही। सम्पन्नता एक बात है तो गुणसूत्रों में सन्निहित उष्कृष्टता दूसरी। शिक्षितों या समृद्धों के बालक व्यक्तित्व की दृष्टि से भी ऊँचे हों इसकी कोई गारण्टी नहीं।

जो सुयोग्य सन्तान उत्पन्न कर सकने की स्थिति में नहीं हैं। उन नर-नारियों को विनाशकारी प्रजनन बढ़ाकर समाज को क्षत-विक्षत करने से रोका जाना चाहिए। यह विचार अब दिन-दिन जोर पकड़ता जाता है। इस सन्दर्भ में मौलिक अधिकारों की दुहाई भी समूची मानव जाति के अहित को ध्यान में रखते हुए, दर गुजर की जानी चाहिए। अधिक से अधिक प्रेम मिलन या विवाह की छूट हो सकती है और यहाँ तक मौलिक अधिकारों की बात पूरी हुई समझी जानी चाहिए। सन्तानोत्पादन का प्रसंग विशुद्ध रूप से सामाजिक एवं समष्टिगत है। सार्वजनिक हित को ध्यान में रखते हुए यदि अवांछनीय सन्तानोत्पदान रोका जाय तो उसे भी स्वेच्छाचारिता रोकने वाले अन्य प्रयत्नों की तरह ही प्रोत्साहन मिलना चाहिए, भले ही इससे किसी के मौलिक अधिकारों में कटौती होती हो।

हक्सले कहते थे कि इस सन्दर्भ में कड़े नियन्त्रण न लगाये गये तो मनुष्य समाज का व्यापक अहित होगा। सुधार एवं उत्कर्ष के सारे प्रयत्नों को वे अनगढ़ लोग चट कर जायेंगे जिनमें पैतृक कुसंस्कारिता कूट-कूट कर भरी है। सन्तानोत्पादन को विशुद्ध राष्ट्रीय, सार्वभौम एवं सार्वजनीन प्रश्न माना जाना चाहिए और उसका समाधान ऐसे अनगढ़ लोगों के हाथों में नहीं सौंपना चाहिए जो न तो अपनी स्थिति ऊँचा उठाने की बात सोचते हैं और न विश्व व्यवस्था बिगड़ने के सम्बन्ध में कुछ सोच पाते हैं।

पुरातन दार्शनिकों में प्लेटो ने इस तथ्य को समझा था और उन्होंने अपने समय में जनमत के विरोध की परवाह न करते हुए जोर-शोर से यह प्रतिपादन किया था कि अनुपयुक्त जोड़ों को सन्तानोत्पादन की छूट न दी जाय।

अनावश्यक प्रजनन को नष्ट-भ्रष्ट करके रख देने की अपनी निर्दय प्रक्रिया प्रकृति ने पहले से ही सँजोकर रखी है। जिनकी जड़ें गहरी नहीं हैं वे पौधे न तो लम्बे समय का आयुष्य पाते हैं और न प्रतिकूलताओ को देर तक सहन करने में सक्षम होते हैं। उथलेपन की यह दुर्बलता ही उन्हें ले बैठती है। इसके अतिरिक्त सृष्टि संतुलन के कुछ नियम ऐसे हैं जो युद्ध, बीमारी, दुर्भिक्ष, बाढ़, ऋतु असन्तुलन की कुल्हाड़ी चलाकर बढ़े हुए अनावश्यक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सन्तान उत्पादन को तहस-नहस करके रख देते हैं। यदि ऐसा न होता तो संख्या में अधिक और स्तर में घटिया प्रजनन ने अब तक सारे संसार को घेर लिया होता। मक्खी, मछली, दीमक आदि की प्रजनन शक्ति आश्चर्य आश्चर्यजनक है। कुत्ते और सुअर भी इस सम्बन्ध में अग्रणी हैं पर उनकी सन्तानें ऐसे ही जिस-तिस प्रकार ठिकाने लगती रहती हैं और उनकी प्रजनन पुरक अतिवादिता निर्दयतापूर्वक नियन्त्रित होती रहती है। यदि मनुष्य को भी ऐसे दुर्दिन देखने और चीत्कार सुनने हों तो बात दूसरी है अन्यथा समय रहते विवेक का उपयोग करना होगा और देखना होगा कि निर्वाह साधनों की तुलना में अनुपयुक्त सन्तानें तो नहीं सृजी जा रही हैं। यदि ऐसा होगा तो उससे उत्पादितों और उत्पादन कर्ताओं को दुःख, दुर्भाग्य की चक्की में ही पिसना पड़ेगा। यदि भावना और विवेक का राई-रत्ती अस्तित्व रहा होगा तो विचारशीलों को विपत्ति बोने-उगाने की मूर्खता से स्वेच्छापूर्वक ही विरत होना होगा।

यह संख्या की बात हुई। उसके लिए तो प्रकृति प्रकोप से पहले मानवी नियन्त्रण भी काम दे सकते हैं। समाज व्यवस्था और शासन तन्त्र यदि उस सन्दर्भ में कठोरता बरतने पर उतर आये तो अविवेकियों को केवल डंडे के बल पर ही सीधी राह चलने के लिए बाधित किया जा सकता है। यह कार्य उतना कठिन नहीं है। कठिनाई समुन्नत, सद्गुणी, समर्थ और सुसंस्कृत पीढ़ी के उत्पादन की है। उसी के अभाव में साधन-सम्पदा और बुद्धि कौशल के द्वारा उपलब्ध होने वाले लाभों से वंचित ही नहीं होना पड़ रहा वरन् बन्दर के हाथ तलवार पड़ने, साँप को दूध पिलाने जैसी उलटी विपत्ति भी खडी हो रही है। प्रस्तुत विपत्तियों के निराकरण और उज्ज्वल भविष्य के निर्धारण के निमित्त अगले दिनों अधिक उच्चस्तरीय मनुष्यो का उत्पादन करना ही होगा। घटिया समुदाय के रहते तो अगले दिनों क्रमशः अधिकाधिक जटिलताएँ ही पैदा होती चली जायेंगी।

मनीषा इस सन्दर्भ में गम्भीरतापूर्वक किसी निष्कर्ष पर पहुँचने और कारगर कदम उठाने के लिए आतुर है। सोचा यह जा रहा है कि अवांछनीय उत्पादन पर तो रोक लगे ही, साथ ही समुन्नत प्रजनन को न केवल प्रोत्साहन दिया वरन् उसके लिए प्रयत्नपूर्वक साधन भी जुटाये जायें। इस सम्बन्ध में सोचा यह जा रहा है कि ऐसी समाज व्यवस्था बने जिसमें दाम्पत्य प्रेम और प्रजनन के परम्परागत तालमेल को पृथक्-पृथक् कर दिया जाय और दोनों पक्षों की अपनी मर्यादा बाँध दी जाय। कौन नर-नारी किसके साथ रहते हैं यह उनके अपने रुझान और चुनाव पर निर्भर है। पर सन्तानोत्पादन लिए लाइसेन्स दिये जायें और उत्पादनकर्ता नर-नारियों की क्षमता इसके साथ ही जाँच ली जाय। अफीम, शराब, बारूद आदि के उत्पादन पर सरकारी नियन्त्रण है। ठीक इसी प्रकार समाज की प्रजावृद्धि पर समाज का अंकुश भी रहे और प्रोत्साहन भी मिले। इस सन्दर्भ में नर की प्रमुखता मानते हुए भी नारी की क्षमता को भी पूरी तरह ध्यान में रखना होगा। खेत और बीज में से अच्छी फसल उगाने के सम्बन्ध में किसी का भी महत्व कम नहीं है। एक के शारीरिक, मानसिक एवं चारित्रिक स्तर से गया गुजरा होने पर दूसरा अकेले ही कुछ ऐसा न कर सकेगा। जिसे सन्तोषजनक कहा जा सके।

प्राचीनकाल में विवाह जोड़े मिलाते समय आज की तरह रूप-यौवन एवं कौशल भर देखना पर्याप्त नहीं माना जाता था वरन् अच्छे खानदान की बात को अधिक ध्यान में रखा जाता था। खानदान से तात्पर्य जाति-उपजाति की रूढ़िवादिता से उलझना नहीं वरन् यह था कि अमुक समुदाय परिवार के सदस्यों में पाये जाने वाले सुसंस्कारिता को देखा जाय। स्वास्थ्य, स्वभाव, शिक्षा, चरित्र, जीवनचर्या, रीति-नीति परम्परा आदि अनेक विषयों का समावेश विकसित समुदायों में पाया जाता है। इसी को खानदान कहते हैं। अच्छे खानदान के लड़की-लड़के सही रीति से परिवार चलाते और सुयोग्य सन्तानोत्पादन मे समर्थ होते हैं। भले ही वे रंग-रूप में साधारण ही क्यों न हों। आज की चयन पद्धति कामुकता प्रधान हो जाने, दान-दहेज को महत्व मिलने के कारण ऐसे जोड़े बन ही नहीं पा रहे हैं जो महामानव स्तर की सुयोग्य पीढ़ी का सृजन कर सकें।

अगले दिनों विवाह का वर्तमान प्रचलन भी जारी रखा जा सकता है किन्तु समुन्नत संतति का उत्तरदायित्व हर किसी पर छोड़ा न जा सकेगा। इसके लिए न केवल इस प्रयोजन के लिए अपितु हर दृष्टि से समर्थ सुयोग्यों को ही विश्व भविष्य को प्रभावित करने वाले इस अत्यन्त महत्वपूर्ण क्षेत्र में प्रवेश करने की अनुमति मिलेगी। डॉक्टर, इन्जीनियर, प्रशासक, कप्तान आदि की कक्षाओं में प्रवेश पाने के लिए भी तो प्रारम्भिक परीक्षा में उत्तीर्ण होना पड़ता हैं यह प्रश्न भी अब उतना ही महत्वपूर्ण माना जाना चाहिये, जितना विश्व स्तर पर खाद्य एवं निर्वाह की सामग्री जुटाना। धरती पर स्वर्ग का अवतरण एक पौराणिक उपाख्यान अथवा दिवा स्वप्न नहीं वरन् सत्य है। पर उसको साकार तभी किया जा सकेगा, जब समुन्नत पीढ़ी के निर्माण की बात सोची जाय तो अगले दिनों विश्व की बागडोर अपने हाथो लेने वाली है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

दाम्पत्य जीवन का स्वर्ग

मनुष्य अपने आप में अपूर्ण है

प्रत्येक जीव के जीवन में यौवन के उभार के समय एक ऐसा अवसर आता है, जब वह धीरे-धीरे इस बात का अनुभव करने लगता है कि उसके पास कुछ वस्तुओं, गुणों, स्वाभाविक विशेषताओं की कमी है। पुरुष में यौवन उभार आने पर जहाँ उसका पुरुषत्व विकसित होता है, वहाँ उसके अन्तर्मन में कामावेग भी उत्पन्न होता है। वह किसी पर अधिकार करने के लिये प्रेमोपासना करने लगता है, पुरुष स्त्री की ओर सहज भाव से रस लेने लगता है। उसमें उसे कुछ अजीब आकर्षण प्रतीत होने लगता है। उसके हाव-भाव उसे आकर्षक लगते हैं। इसी प्रकार नारी जीवन में भी प्रणय की गुप्त इच्छाएँ धीरे-धीरे विकसित होने लगती हैं। अपनी कोमलता, तितिक्षा, कला, लज्जा इत्यादि के कारण वह मनोभावों के आत्म समर्पण के लिये उन्मुख होती है। वह अपने भेद गुप्त रखने में कुशल होती है किन्तु उसका सहज ज्ञान क्रमशः प्रकट होने लगता है। नर-नारी की ये स्वभावगत विशेषताएँ हैं, जो समाज का निर्माण करती हैं।

पृथक्-पृथक् स्त्री-पुरुष अधूरे और अपूर्ण हैं। यदि स्त्री-पुरुष पृथक रहेंगे, तो वे समाज के लिये उपयोगी, अपरिक्व, अविकसित रहेंगे। स्त्री और पुरुष दोनों के मिलने से नर-नारी की स्वाभाविक अपूर्णता दूर होती है। एक-दूसरे की कमी जीवन सहचर प्राप्त करने से हो पाती है। जैसे धनात्मक और ऋणात्मक तत्वों के मिलने से विश्व बनता है, वैसे ही स्त्री तथा पुरुष के मिलने से 'मनुष्य' बनता है। यही पूरा मनुष्य समाज के उत्तरदायित्वों को पूर्ण करता है।

विवाह की उपयोगिता—आधुनिक मनोविज्ञान इच्छाओं को पार करने का मार्ग दर्शाता है, उनका दमन मानसिक बीमारियाँ उत्पन्न करता है। इसी से अनेक बार मानसिक नपुंसकता उत्पन्न होती है। मनुष्य के अन्तस्थल मे अनेक वासनाएँ दब कर अन्तःप्रदेश में छिप जाती हैं। इनसे समय-समय पर अनेक बेढंगे व्यवहार गाली देने की प्रवृत्ति, कुशब्दों का उच्चारण, आत्महीनता की भावना ग्रन्थि की उत्पत्ति, स्मरण-विस्मरण, पागलपन तथा प्रलाप, हिस्टीरिया इत्यादि अनेक मानसिक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। मानसिक व्यापारों में एक विचित्र प्रकार का संघर्ष चला करता है। मन की अनेक भावनाएँ विकसित नहीं हो पातीं, मनुष्य शिकायत करने की मनोवृत्ति का शिकार बना रहता है। दूसरे के प्रति वह अनुदार रहता है, उसकी कटु आलोचना किया करता है। अधिक उग्र या असन्तोषी, नाराज प्रकृति, तेज स्वभाव का कारण वासनाओं का समुचित विकास एवं परिष्कार न होना ही है। इस प्रकार का जीवन गीता में निंद्य माना गया है।

प्रत्येक स्त्री-पुरुष के जीवन में एक समय ऐसा आता है, जब उसे अपने जीवन साथी की तलाश करनी होती है। आयु, विचार, भावना स्थिति के अनुसार सद्ग्रहस्थ के लिये उचित जीवन साथी की तलाश होनी चाहिये। उचित शिक्षा एवं आध्यात्मिक विकास के पश्चात् किया हुआ विवाह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ठीक है। आजन्म कौमार्य या ब्रह्मचर्य महान है। उनका फल अमित है किन्तु साधारण स्त्री-पुरुषों के लिये यह सम्भव नहीं है। इससे मन की अनेक कोमल भावनाओं का उचित विकास एवं परिष्कार नहीं हो पाता। वासना को उच्च स्तर एवं उन्नत भूमिका में ले जाने के लिये एक-एक सीढ़ी चढ़ कर चलना होता है। एक सीढ़ी को लाँघ कर दूसरी पर कूद जाना कुछ इच्छाओं का दमन अवश्य करेगा, जिसके फलस्वरूप मानसिक व्याधि हो सकती है। अतः प्रत्येक सीढ़ी पर पाँव रख कर उन्नत जीवन पर पहुँचना ही हमारा लक्ष्य होना चाहिये।

एक पिता तथा माता के हृदय में जो नाना प्रकार के स्वर झंकृत होते हैं, उन्हें भुक्त भोगी ही जान सकता है। दो हृदयों के पारस्परिक मिलन से जो मानसिक विकास सम्भव है, वह पुस्तकों के शुष्क अध्ययन से नहीं प्राप्त किया जा सकता। विवाह कामवासना की तृप्ति का साधन मात्र है, ऐसा समझना भयंकर भूल है। वह तो दो आत्माओं के, दो मस्तकों, दो हृदयों और साथ ही साथ दो शरीरों के विकास, एक दूसरे में लय होने का मार्ग है। विवाह का मर्म दो आत्माओं का स्वरैक्य है, हृदयों का अनुष्ठान है, प्रेम, सहानुभूति, कोमलता, पवित्र भावनाओं का विकास है। यदि हम जानते हैं कि पुरुष-प्रकृति तथा स्त्री-प्रकृति का पूरा-पूरा विकास हो, हमारा व्यक्तित्व पूर्ण रूप से खिल सके तो हमें अनुकूल विचार, बुद्धि, शिक्षा एवं धर्म वाली सहधर्मिणी चुननी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाहिये। उचित वय में विवाहित व्यक्ति आगे चलकर प्रायः सुशील, आज्ञाकारी, प्रसन्नचित, सरल, मिलनसार, साफ-सुथरे, शान्तचित्त, वचन के पक्के, सहानुभूतिपूर्ण मधुरभावी, आत्म विश्वासी और दीर्घजीवी पाये जाते हैं।

कुँवारा प्रायः अतृप्त वासना, स्वप्नदोष, लड़कपन, संकोची और संकुचित दृष्टिकोण वाला रहता है, वह जिम्मेदारी नहीं लेना चाहता, सामाजिक कार्यों में दिलचस्पी नहीं रखता, दूसरों के दुर्गुणों तथा न्यूनताओं में आनन्द लेता है। संघर्ष से दूर भागता है, वह विरोधी, वाचाल तथा ईर्ष्या से युक्त होता है, क्रोध, घृणा, भय, वासना और लज्जा से उसकी शान्ति सदैव भंग रहती है। आजन्म कौमार्य देश, धर्म और समाज के लिये हितकर नहीं है।

गृहस्थ धर्म एक योग-साधना

गृहस्थ धर्म एक योग-साधन है, जि. पनुष्य पर पग-पग पर उत्तरदायित्व एवं कर्तव्यों का भार है। यह आश्रम हमें आगे आने वाले कष्टसाध्य जीवन की एक तैयारी कराता है। यदि इसमें रह कर हम इन्द्रिय सुखों की निस्सारता, क्षणभंगुरता एवं नीरसता को न जानें और सीधे वानप्रस्थ या संन्यास आश्रम ग्रहण कर ले, तो हमारी बड़ी साधना में वासनाओं और क्षुद्र इच्छाओं का ताण्डव चलता ही रहेगा।

गृहस्थाश्रम अन्य तीनों आश्रमों की पुष्टि के लिए है। दूसरे शब्दों में यों कहा जाता है कि ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, संन्यास—यह तीनों ही आश्रम गृहस्थाश्रम को व्यवस्थित और सुख-शान्तिमय बनाने के लिए हैं। ब्रह्मचारी इसलिए ब्रह्मचर्य का पालन करता है कि उसका भावी गृहस्थ जीवन शक्तिपूर्ण और समृद्ध हो। वानप्रस्थ और संन्यासी लोग लोकहित की साधना करते है। इहलोक और संसार का सुख प्रकट करने वाला गृहस्थ धर्म ही है। यदि गृहस्थाश्रम की व्यवस्था बिगड़ जाय, तो अन्य तीनों आश्रम ठीक रीति से नहीं चल सकेंगे।

गृहस्थाश्रम से 'अहं' का विस्तार होता है। आत्म-भाव की सीमा बढ़कर उसमें परिवार के अन्य सदस्य भी आते हैं। छोटे-छोटे शिशुओं की सेवा-सुश्रूषा में निःस्वार्थ भाव से संलग्न होना पड़ता है।

स्त्री, पुत्र, सगे-सम्बन्धी, परिवार, पड़ौसी, घर के पशु-पक्षी आदि में आत्मीयता बढ़ जाती है। क्रमशः उन्नति की ओर हम चलते हैं। अन्त में मनुष्य पूर्ण अथवा आत्म-संयमी हो जाता है। दूसरों के लिए अपने को भूल जाता है। खुदी मिटती जाती है और खुदा मिलता जाता है। गृहस्थ-योग की साधना जब अपनी विकसित अवस्था पर पहुँचती है तो आत्मा-परमात्मा में लीन हो जाती है।

गृहस्थ हमें तुच्छता और संकीर्णता से महानता और उदारता की ओर ले जाता है, स्वार्थ का परिशोधन कर परमार्थी बना देता है। यदि हम गृहस्थ-धर्म के सब उत्तरदायित्वों को पूर्ण करते रहें, स्वार्थ हटाकर परमार्थ की साधना करते रहें, तो ब्रह्म-निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं।

आत्मीयता की उन्नति का अभ्यास करने के लिए सबसे उत्तम स्थान अपना घर है। आत्मीयता के साधन में अपना दृष्टिकोण, देने और सेवा करने का बनाना पड़ता है। प्रेम की उदार भावनाओं से अपने अन्तःकरण को परिपूर्ण कर सगे-सम्बन्धियों के लिए त्याग करना पड़ता है। इस आत्मीयता के प्रसार से घर स्वर्ग बन जाता है।

गृहस्थ का सोपान पार करने के पश्चात् जीवन यात्रा का एक नया चरण प्रारम्भ होता है। मनुष्य को प्रतीत होने लगता है कि सांसारिक सुखों के आगे भी कोई चीज है। काम, क्रोध, लोभ, मोह से भरे हुए जीवन से उसे परितोष नहीं हो पाता। वह धीरे-धीरे आत्मा के सुखमय प्रदेश में प्रवेश करता है। आत्मा का प्रदेश वह मंगलमय संसार है जहाँ इन्द्रियों की लोलुपता, आकर्षण और प्रलोभन नहीं है।

गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता महान है

भारतवर्ष मे विवाह-बन्धन अत्यन्त पवित्र धार्मिक कृत्य माना गया है। इसमे अनेक उद्देश्यो की प्रतीति और महान् उत्तरदायित्वों की पूर्ति के साधन समाविष्ट हैं। भारत के प्राचीन मुनियों ने इसमें मानव प्रकृति की उद्दाम प्रवृत्तियों को संयमित करने, प्रकृति द्वारा आयोजित प्रजनन तथा सृष्टि विस्तार, सामाजिक सुव्यवस्था, सुदृढ़ नागरिक निर्माण और अन्त में निवृत्ति की चरम सीमा पर पहुँचने की व्यवस्था की है।

धर्म-शास्त्र का प्रवचन है—

''तथातथैव कार्याणि न कालस्तु विधीयते।

अभिन्नेव प्रयुञ्जानो ह्यस्मिन्नेव प्रलीयते।।''

इस संसार के साथ हमारा संयोग है, इसी संसार में हमारा लय हो जायगा, तब हमें जिस समय जो कर्त्तव्य हो, वही करना अनिवार्य है। व्यक्तिगत सुविधा तथा असुविधा को लेकर कर्त्तव्य के पुण्य पथ से परिभ्रष्ट होना उचित नहीं। इसीलिए धर्म ने गृहस्थाश्रम को तपोभूमि कह कर उसकी महत्ता स्वीकार की है। यहाँ तक कि धर्म की दृष्टि मे गृहस्थाश्रम ही चारों आश्रमो का मुख्य केन्द्र है। इस सम्बन्ध में योगिवर वशिष्ठ का निर्देश देखिए—

''गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः।

चतुर्णामाश्रमाणान्तु गृहस्थस्तु विशिष्यते।।''

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अर्थात्—गृहस्थ ही वास्तविक रूप से यज्ञ करते हैं। गृहस्थ ही वास्तविक तपस्वी हैं—इसलिए चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम ही सबका सिरमौर है।

भारतीय धर्म के अनुसार गृहस्थाश्रम प्रकृत तपोभूमि है। इस काल में दो पवित्र आत्माओं का परस्पर सामंजस्य होता है तथा वे जीवन के युद्ध में प्रविष्ट होते हैं। उन्हें पग-पग पर उत्तरदायित्व, कठिनाइयों, सांसारिक संघर्ष, प्रतियोगिताओं में भाग लेना होता है। दोनों आत्माएँ परस्पर सम्मिलित होकर एक दूसरे की सहायता करते हुए, तपस्या और साधना के मार्ग पर अग्रसर होती हैं।

प्रकृति के प्रजनन-क्रिया की सिद्धि के निमित्त जिस उद्दाम वासना को मानव-हृदय में प्रतिष्ठित किया है, उसकी उच्छृंखलता यौवन में आकर इतनी तीव्र हो उठती है कि सामाजिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से उसका संयम आवश्यक है। भारतीय धर्म ने उस उद्दाम प्रवृत्ति को स्वीकार किया है तथा विश्व की संस्थिति और सम्पूर्णता के लिए मनुष्य के विकास के लिए उसे जरूरी माना है। अतएव प्रत्येक नागरिक को इस महायज्ञ में प्रवृत्त होने का आदेश प्रदान किया है।

गृहस्थाश्रम विषय भोग की सामग्री नहीं है, विलास मन्दिर नहीं, वरन् दो आत्माओं के पारस्परिक सहवास द्वारा शुद्ध आत्म-सुख, प्रेम और पुण्य का पवित्र प्रसाद है, वात्सल्य और त्याग की लीलाभूमि है, निर्वाण प्राप्ति के लिए शान्ति-कुटीर है। विवाह से मनुष्य समाज का एक अंग बनता है, अपूर्णता से पूर्णता प्राप्त करता है, निर्बलता से सबलता की ओर अग्रसर होता है। उसे नये सम्बन्ध प्राप्त होते हैं, नये उत्तरदायित्व और नये आनन्द प्राप्त होते हैं। भारतीय ऋषियों ने गृहस्थाश्रम को अनेक व्रत, नियम, अनुष्ठान, आतिथ्य-सत्कार इत्यादि पुण्य कर्त्तव्यों की लीलाभूमि बनाकर उसकी महिमा को द्विगुणित किया है। उन्होंने पारिवारिक व्यवस्था में प्रेम और वात्सल्य तथा दूसरी ओर अपने से छोटों के लिए उन्हीं के हित में त्याग तथा तपस्या के द्वारा इसे तपोभूमि के समान पवित्र बना दिया है।

स्वामी अभेदानन्द लिखते हैं—"इस तपोभूमि के पुण्य स्वरूप और पुण्य साधना का मधुर रहस्य जानने के लिए हम हिमालय की उस तुषार मण्डित शिला पर चले, जहाँ हिमालय की किशोरी पार्वती तपश्चर्या में निमग्न है। यही भारतीय गृहस्थाश्रम के मंगलमय स्वरूप का प्रथम दर्शन है। गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने से पूर्व रमणी को तपोमयी साधना में प्रवृत्त होना पड़ता, क्योंकि जिस मंगलमय उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह अपने पवित्र सुन्दर जीवन को उत्सर्ग करती है, उसके लिए तपस्या और त्याग की परम आवश्यकता है। कुमार की उत्पत्ति तपस्या की सिद्धि का मधुर फल है, क्योंकि विश्व के परित्राण के लिये, देश के मंगल के लिये, समाज के अभ्युदय के लिये और मनुष्यता की मर्यादा को अक्षुण्ण रखने के लिये ही कुमार के अवतार की आवश्यकता है। पुत्र या कन्या का जन्म भी धार्मिक महत्व रखता है। उसमें रमणी की उत्कृष्ट सिद्धि भी सम्मिलित है।"

भारतीय वैवाहिक जीवन मंगलमय है। उसका प्रत्येक व्रत, नियम, अनुष्ठान, पूजन-चिन्तन इत्यादि विशेष महत्त्व रखता है। सतीत्व तथा एकपत्नीव्रत की पवित्रता से समुज्ज्वल, मातृत्व के मृदुल वात्सल्य से विभूषित, उत्तरदायित्वों के मनोरम भार से परिपूर्ण, प्रेम के प्रवाह से पूर्ण भारतीय विवाहित जीवन त्याग का तेजोमय तीर्थ और पुण्य एवं कर्म की भूमि है। इसी के द्वारा स्त्रियों में स्त्रीत्व तथा पुरुषों में पुरुषत्व का विकास होता है। नर-नारी के मंगलमय चिर सम्मिलिन के समय भारतीय समाज उन दोनों को प्रणय-सूत्र में आबद्ध करने के साथ ही साथ इस जन्म तथा मृत्यु के पश्चात् परलोक में भी परस्पर सहायता, सहानुभूति एवं स्नेहमय व्यापार के प्रतिज्ञासूत्र में आबद्ध करता है।

हमारा हिन्दू धर्म जिस मंगलमयी साधना को लेकर सदा व्यस्त रहता है, वह है "प्रवृत्ति को निवृत्ति के पथ पर परचालित करना।" हमारे यहाँ वासना की प्रवृत्ति को माना है, किन्तु साथ ही साथ इस प्रवृत्ति के परिष्कार, उन्नतिकरण और अन्ततः निवृत्ति में परिणत करना यह फल माना है। वैवाहिक जीवन हमारे जीवन की एक स्टेज है, जो भावी जीवन के निर्माण में सहायक है। हम सदा से यह मानते आये हैं कि असंस्कृत और उच्छृंखल प्रवृत्ति, साधना और तपस्या के द्वारा परम शान्त और त्यागमयी बनाई जा सकती है। विनाश की अपेक्षा वृत्तियों का सही मार्गों में बहाव, स्वार्थ और लालसा से निकल कर प्रेम और त्याग के मार्गों में उनका प्रवाह हमारे लिये विशेष महत्व रखता है।

आदि कवि से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ तक ने अपने साहित्य में गृहस्थाश्रम का मनमोहक रूप प्रतिष्ठित किया है। कौन ऐसा प्रान्त है जिसमें मातृत्व की मंगलमय मूर्ति, सतीत्व का त्याग, सौन्दर्य और वात्सल्य की मन्दाकिनी प्रवाहित न हुई हो ?

गृहस्थ में प्रविष्ट न होने वाला व्यक्ति अनेक प्रकार से मानसिक रोगों का शिकार बनता है। आयु कम रहती है, मानसिक भावनाएँ विकसित नहीं हो पातीं, संसार के महत्त्वपूर्ण कार्यों में जी नहीं लगता, मन पुनः-पुनः सुन्दर स्त्रियों के मानसचित्र बनाता और स्वप्नदोष उत्पन्न करता है। अविवाहित पुरुष की उत्पादन शक्ति क्षीण होती है। विवाह से उसे नया चाव, उत्साह, स्फूर्ति और प्रेरणा प्राप्त होती है। इसी प्रकार अविवाहित स्त्री कुढ़न, अनिद्रा, प्रमाद, चिन्ता, हिस्टीरिया, प्रजनन की गुप्त भावना, अतृप्ति, स्वार्थी और क्रोधी हो जाती है। विवाहित स्त्री का सौन्दर्य बढ़ता है। शरीर के सब अंगों का नवीन ढंग से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विकास होता है। मृदुल भावनाओं—दया, प्रेम, सहानुभूति, वात्सल्य, करुणा की अभिवृद्धि होती है।

डाक्टर जेम्स स्टाक, रजिस्ट्रार जनरल ऑफ स्काटलैण्ड ने अपनी परिगणना द्वारा सिद्ध किया है कि कुँआरेपन से मनुष्य की आयु क्षीण होती है। विवाहित व्यक्तियों में ४० और २० वर्ष के मध्य १४०७ व्यक्ति प्रति वर्ष मरते हैं, किन्तु इसी अवस्था में कुँआरे एक लाख में से १८३५ प्रति वर्ष मरते हैं। २५ से ४० के मध्य में मरने वाले कुँवारों की मृत्यु का अनुपात विवाहितों से दुगुना है। बीमा कम्पनियाँ अविवाहितों की अपेक्षा विवाहितों को पसन्द करती हैं।

विवाह से पूर्णता की प्राप्ति—पृथक्-पृथक् स्त्री और पुरुष अपूर्ण हैं। उनके गुण तथा स्वभाव भी अपने अन्दर एक प्रकार की कमी, हीनता और किसी अदृश्य वस्तु की कामना करते हैं। जो गुण एक में नहीं हैं, दूसरों में उनकी मौजूदगी आकर्षण का विषय बनती है। स्त्री-पुरुष दोनों के स्वभावों का विश्लेषण करना हो, तो निम्न प्रकार से हो सकता है—

स्त्री में लज्जाशीलता, चारुता, सहजज्ञान, पातिव्रत्य, कोमलता, सूक्ष्मता, भावुकता होती है। वे मानसिक संवेगों को तीव्रता से अनुभव करती हैं। वे स्नेह सरोवर की मीन हैं। उन्हें रूप-लावण्य की अनुपम राशि प्रदान की गई है। शान्तिप्रियता, सहनशीलता और धैर्य भी बहुत होता है। वे बातें बहुत कम करती हैं, पर सुनती बहुत अधिक हैं।

पुरुष पाशविक वृत्तियों, शक्ति क्रोध, कार्य-दक्षता तथा अहंवादी है। क्रियाशीलता और प्रभुता प्रदर्शन उसके प्रमुख गुण हैं। पुरुष का मस्तिष्क पाशविक वृत्तियों के क्षेत्र में अत्यधिक बलवान है। प्रेम, क्रोध और प्रतिशोध के समय कुछ काल के निमित्त उद्भ्रान्त-सा हो जाता है। प्रेम में शीघ्रता करता है। वह स्वभावतः मजबूत, निर्णायक, प्रामाणिक, स्वाभिमानी, प्रचण्ड, उग्र, दांता, उदार, कठिन परिश्रमी, बेलगाम, निग्रहहीन और युद्ध करने वाला है। उसका मन अस्थिर, चंचल-बेकाबू और एक विस्फोटक समान है।

दोनों में स्वतन्त्र यौन प्रभेद मिलते हैं। नर प्रेम करने में उन्मत्त, शीघ्र आवेगपूर्ण काम-स्थिति में प्रचण्ड है। वह प्रेम से पूर्व स्त्री को हर प्रकार से अनुगत करने में सचेष्ट रहते हैं। तत्पश्चात् प्रेमाराधना में लापरवाह से हो जाते हैं। पुरुष के प्रेम में प्रचण्डता है, किन्तु वह शीघ्र ही ठण्डा हो जाने वाला ज्वालामुखी है। पुरुष के लिए प्रेम एक प्रकार का खेल है। इसके विपरीत स्त्री का सम्पूर्ण जीवन ही प्रेम से निर्मित हुआ है। वह प्रेम से ही जीती है और उसी से अपना भविष्य बनाती है। उसके आन्तरिक भावों का विकास प्रेम से ही होता है। किसी कवि ने सत्य ही कहा है—"प्रेम स्त्री का सम्पूर्ण अस्तित्व है।"

स्त्री का प्रेम शान्त पर सतत् प्रवाहित होने वाली सरिता की तरह गम्भीर है। वह इन्द्रियों से प्रारम्भ होकर आत्मिक ज्ञान की ओर अभिवृद्धि को प्राप्त होने वाला है। स्त्री एक बार प्रेम-दान देकर पुरुष को अपना सर्वस्व दान देती है। उसमें भक्तिभाव, पातिव्रत्य और आत्मिकज्ञान अपेक्षाकृत अधिक है। स्टीफन ज्विग ने सत्य ही निर्देश किया है—"पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में मनःक्षेत्र अधिक स्थूल और प्रसारित है, परन्तु उनमें वह उतने प्रधान भाव से व्यक्त नहीं होता। पुरुषों में कामवासना की स्वाभाविक प्रवृत्ति, शक्ति का एक अशान्त स्रोत है। वह उछल-उछल कर सब प्रकार की नालियों में बह जाता है।"

स्त्री प्रेम से शासन करना चाहती है। उसका प्रेम विकेन्द्रित होता है, जिसमें उसके बच्चे, पति, भाई-बहिन इत्यादि सम्मिलित हैं। मातृत्व का भार उठाने पर उसका वात्सल्य विकसित होता है, करुणा, सहानुभूति, दया, प्रेम, की नाना धाराओं में बहने लगता है। वह अपने बच्चे पर तो प्रेम न्यौछावर करती ही है, सभी बच्चों, पशु-पक्षियों तक को भावुक दृष्टि से निहारती है। स्त्री की भावनाएँ तीव्र होती हैं। संवेग तथा भावना का उसके हृदय में राज्य है। सोच में डूबे रहना, प्रतीक्षा करना और सहजज्ञान ये स्त्री के सनातन गुण हैं। वे अपने सहजज्ञान से पुरुष की साधारण और मुख्य आवश्यकताओं को पहले से ही भाँप लेती हैं और उसका प्रबन्ध करती हैं। दूसरों के मनोभावों को भाँपने तथा भविष्य में आने वाली विपत्तियों का अनुमान लगाने के लिए उन्हें विशेष गुप्त मनोवैज्ञानिक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं।

मूर्धन्य मनीषी कामू के अनुसार अधिकांश स्त्रियाँ एक तीखी और गहरी दृष्टि से जान लेती हैं कि यह व्यक्ति कैसा है ? धोखेबाज, बदमाश या सज्जन, नैतिक, बुद्धिमान। मूर्ख स्त्रियाँ दुराचारियों के वश में आ सकती हैं किन्तु बुद्धिमती स्त्री बड़ी चतुर होती है। वह उसके चेहरे से अन्दर के मनोभाव पढ़ सकती है। यदि आप अपना दुःख-दर्द स्त्रियों के सामने वर्णन करें तो वे सहानुभूति प्रदर्शित करेंगी। वे पुरुषों की अपेक्षा अधिक भावुक हैं, अधिक प्रकार से मानसिक भावों का प्रकाश और अनुभव करती हैं। धार्मिक विचार में वे पुराने संस्कारों से चिपकी रह जाने वाली हैं। स्त्री पुरुष की अपेक्षा अधिक व्यवहारकुशल हैं, अपने व्यवहार में अधिक उदार होती हैं। पुरुष के प्रेम पर सदा विचार किया करती हैं और उसके प्रशंसायुक्त प्रेम भरे वाक्य सुनने के लिये सदैव लालायित रहा करती हैं। संक्षेप में पुरुष की अपेक्षा वह अधिक सहनशील, शान्त, प्रतिभासम्पन्न उदार एवं सहजज्ञान युक्त होती हैं।

विवाह में स्त्री-पुरुष के उल्टे गुण एक दूसरे से मिलकर पूर्णता की सृष्टि करते हैं। दोनों का संयोग समाज का एक 'यूनिट' बनाता है। यही यूनिट सम्मिलित रूप में समाज को आगे बढ़ाता है। न तो पुरुष स्त्री के बराबर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है, न स्त्री पुरुषों के गुणों का अनुकरण कर अपने अन्दर उन्हें उत्पन्न कर सकती है। सृष्टिकर्त्ता की रचना ऐसी है कि दो विभिन्न गुण वाले प्राणी भाईचारे और पारस्परिक साझेदारी से एक दूसरे के स्वभाव और प्रकृति को समझकर सम्मिलित रूप से आगे बढ़ते हैं। स्त्री तथा पुरुष के गुण-दोष एवं प्रकृति एक स्थान पर मिलने से 'मनुष्य' बनता है। यदि ये दोनों लिंगों के प्राणी एक दूसरे से पृथक् रहेंगे या लैंगिक प्रतियोगिताओं में उलझे रहेंगे, तो गृहस्थों में पारस्परिक कलह की वृद्धि रहेगी, समाज की समस्वरता नष्ट हो जायगी।

मुन्शी प्रेमचन्द ने एक स्थान पर लिखा है—"गृहस्थी एक साझे की दुकान है। इस दुकान के प्रधान साझेदार दो हैं—स्त्री और पुरुष। यह दुकान तभी फलती-फूलती है और लाभप्रद होती है, जब ये दोनों साझेदार एक-दूसरे के स्वाभाव, प्रकृति, गुण, दोष, आवश्यकता और विशेषता को समझते हों। एक दूसरे का सम्पर्क ज्ञात न होने से उनका साझा भली भाँति नहीं चल सकता। विज्ञान ने स्त्री और पुरुष की तुल्यता की घोषणा की है, न कि उनकी समानता की। बात केवल इतनी ही है कि स्त्री और पुरुष दोनों के संयोग से मनुष्य बनता है, ठीक उसी प्रकार जैसे धनात्मक और ऋणात्मक अणुओं के मिलने से विश्व बना है।"

विवाह के पश्चात् पुरुष को स्त्री के सुख के लिये तथा स्त्री को पति के आनन्द के निमित्त कुछ बलिदान करना पड़ता है। दोनों ही एक दूसरे को सुखी देखना चाहते हैं। अपने जीवन-मित्र के लिये अधिक से अधिक त्याग करने को प्रस्तुत रहते हैं। अत: स्वार्थ और संकुचितता नष्ट हो कर उदारता और त्याग की भावनाएँ जाग्रत होती हैं। जीवन का क्रम है "सुख की ओर अग्रसर होना।" इस त्याग का यह फल होता है कि दोनों ही सुखी रहते हैं। एक दूसरे के लिये सुख खोजने की प्रवृत्ति तथा उपकरण प्रस्तुत करने से अपने लिये सुख पाने का राज-पथ तैयार किया जाता है। इस प्रवृत्ति का जनक है कर्तव्यनिष्ठ गृहस्थ-जीवन। गृहस्थ-जीवन एक ऐसी पाठशाला है जिसमे स्त्री-पुरुष के स्वभाव एक होकर एक दूसरे के कमी की पूर्ति करते हुये अधिक से अधिक सुख, समृद्धि और समाज हित के लिये अग्रसर होते हैं।

विवाहित स्त्री-पुरुष त्याग और आत्म-समर्पण की प्रतिमूर्ति हैं। पुरुष सिंह के समान बलशाली, क्रोधी और तीव्र मनोविकारो का लड़ाकू जीव है। लेकिन अपनी पत्नी के समक्ष वह दयालु हो उठता है। जिस नारी को वह एक पराये घर से लाता है, अपने गृह की सम्पूर्ण व्यवस्था, गुप्त बातें उसे सौंप कर ठण्डी साँस लेता है। सब रुपया कमा कर उसी लक्ष्मी को अर्पण करता है। वह स्वयं अपने आप कुछ नहीं खाना चाहता। भूखा रह कर पत्नी के लिये अच्छी-से-अच्छी सामिग्री प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार पत्नी स्वयं दु:ख उठा कर घर के कार्यों में लग कर पति को सुखी देखना चाहती है। वह अपना सुख, खान-पान, पहनावा इत्यादि पति के सुख पर उत्सर्ग कर देती है। यह पारस्परिक आत्म-समर्पण ही गृहस्थ जीवन का निर्माण करता है।

दाम्पत्य जीवन की सफलता

पुरुष का स्वभाव है कि जब तक अपनी प्रेमिका को प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक उसे पाने के लिये अत्यन्त इच्छुक रहता है, प्राणपण से चेष्टा करता है, प्रत्येक प्रकार से प्रेम प्रदर्शन करता है और स्त्री के अतिरिक्त अन्य कुछ भी चीज नहीं प्राप्त करना चाहता है किन्तु एक बार मनचाही पत्नी पाने के पश्चात् क्रमश उसके मन:क्षेत्र में भारी परिवर्तन प्रारम्भ होता है। विवाह के तीन चार मास पश्चात् वह पत्नी की ओर से उदासीन सा होने लगता है। आधी उम्र आने पर अर्थात् ३५, ४० वर्ष का होने पर उसे स्त्री में विशेष आकर्षण नहीं रह जाता। वह उसे अपने विचारों का केन्द्र नहीं मानता। प्रत्युत अन्य सांसारिक कार्यों में प्राणपण से जुट जाता है। स्त्री उसके हृदय के एक कोने में पड़ी रहती है। अधिक आयु होने पर वह स्त्री से चिढ़ने लगता है। कितने ही उनसे डरने लगते हैं। दूसरे उनसे सर्वथा उदासीन होने लगते हैं। कुछेक स्त्री को देख कर डर सकते हैं, उनकी फरमाइश पूरी नहीं करना चाहते।

स्त्री का प्रेम प्रारम्भ में बिल्कुल नहीं रहता किन्तु विवाह के पश्चात् या जान-पहिचान होने के पश्चात् धीरे-धीरे विकसित होता है। तीन मील लम्बे बूँटों की रफ्तार से वह नहीं बढ़ती, जरा-जरा सी आगे चलती है। जब वह एक बार प्रेमी प्राप्त कर लेती है तो स्वभावत: उसे छोड़ना नहीं चाहती। उसमें ममता, अहं, करुणा, सहानुभूति की मात्रा अधिक है। विवाह के पश्चात् उसकी यह आकांक्षा रहती है कि पति के प्रति उसका प्रेम बढ़े। वह उसके हाथ में रहे, उसी से प्रेम करे, अन्य किसी को अपने प्रेम में कोई हिस्सा न दे। स्त्री हर प्रकार—आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक दृष्टि से—उसकी स्वामिनी बनने को लालायित रहती है।

स्त्री का हृदय प्रेम, करुणा, ममता एवं सहानुभूति की रंगभूमि है, वह कोमलता एवं सहनशीलता की कल्पलता है, क्षमा एवं त्याग की तपोभूमि है, वह भिन्न-भिन्न भावनाओं का आश्चर्यजनक सम्मिश्रण है। वह चिर सुन्दर है, चिर कोमल है, वह अपने प्रिय के लिए अपने सर्वस्व का त्याग कर सकती है और अपने मान-अपमान एवं निन्दा-स्तुति की भी चिन्ता नहीं करती। वह बड़े से बड़े अपराधी को भी क्षमा कर सकती है।

दो प्रतिकूल तत्वों का सम्मिश्रण—उक्त दोनों प्रतिकूल तत्वों से ही संसार का निर्माण हुआ है। इसी प्रतिकूलता में संसार का आनन्द अन्तर्निहित है। बिना पुरुष के नारी अभाव का अनुभव करती है, बिना स्त्री के पुरुष

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधूरा ही रहता है। दोनों की न्यूनताएँ दूसरे साथी में पूरी हो जाती हैं।

पुरुष का निर्माण एक युद्ध करने वाले, दृढ़ी, निडर, हृदयहीन सैनिक के समान किया गया है। उसमें जीवन निर्वाह के साधनों को एकत्रित करने का साहस है। दूसरी ओर, स्त्री में लावण्य एवं रूप की अनुपम राशि प्रदान की गई है। यदि पुरुष उद्दण्ड है, तो स्त्री कोमल, सहनशील। पुरुष शक्ति आक्रामक है, तो स्त्री-शक्ति आत्म रक्षक। पुरुष उन्नतिशील होता है, तो स्त्री धैर्यवान। पुरुष अधिकार, शक्ति व दण्ड से शासन करता है, स्त्री अपने प्रेम से, आँसू से और मृदुलता से। यदि पुरुष शब्दों में विनय करता है तो स्त्री दृष्टि की विनम्रता से।

मूर्धन्य नृतत्ववेत्ता एम. मेगरमोंट ने कहा है—"पुरुष वर्तमान में भविष्य को भूल जाता है, स्त्री भविष्य को संभालने व अधिक सुखकर बनाने में सदैव प्रयत्नशील रहना चाहती है। स्त्री के मातृभाव के लिए पूर्ण त्याग व निःस्वार्थ परिश्रम की आवश्यकता है। पुरुष अपने प्रेम को केन्द्रित कर सकता है, परन्तु स्त्री जब मातृत्व का भार ग्रहण कर लेती है तो उसकी प्रेम-धारा सर्वतोमुखी होकर प्रवाहित होती है।"

"पुरुष अग्रगामी है किन्तु स्त्री मार्ग प्रदर्शक। पुरुष शीघ्रता से प्यार करता है परन्तु स्त्री का प्रेम इतना प्रबल होता है कि वह अपने प्रेमी के दुर्गुण भी नहीं देखना चाहती। पुरुष प्रेम के प्रमाण नहीं चाहता, स्त्री का आत्म समर्पण ही उसके लिये यथेष्ट प्रमाण है पर स्त्री पुरुष के प्रेम पर हमेशा सोचा-विचारा करती है।"

"पुरुष के जीवन में प्रेम एक छोटा-सा हिस्सा है, वह शीघ्रता से प्यार करता है, जैसे भागता सा हो। किन्तु स्त्री पग-पग पर रुकती है, सोचती है, तब अपना हृदय देती है। वह अपने प्रेमी के प्रेम का सबूत दिन में कई बार उसके मुख से, वाणी से एवं नेत्रों से चाहती है। उसका संसार मोहब्बत से सराबोर है, अन्य बातें उसमें गौण महत्व रखती हैं। स्त्री जीवन प्रेम पर ही अवलम्बित है। प्रेम की प्यासी स्त्री को ठुकरा कर भारी शत्रुता खड़ी की जा सकती है। पुरुष आखिर निश्चयी, मजबूत एवं स्फूर्तिमान होता है, स्त्री अधिक सहनशील प्रेमी, उदार। पुरुष चीर-फाड़ करने वाला निर्दय सर्जन बन सकता है तो सेवा-शुश्रूषा के लिये कोमल हृदय स्त्री की आवश्यकता पड़ती है।"

सफल दाम्पत्य जीवन का रहस्य—दाम्पत्य जीवन का समस्त सुख केवल एक बात में है पति-पत्नी एक दूसरे के मनोभावों को समझ लें। अपने साथी की इच्छाओं, आकांक्षाओं, मनोभावनाओं का विश्लेषण करें। एक-दूसरे के दृष्टिकोण को सहानुभूतिपूर्वक देखें, समझें और एक-दूसरे के सम्मुख सदा सिर झुकाने को तैयार रहें तो उनका जीवन स्वर्गीय प्रकाश से परिपूर्ण हो सकता है। एक-दूसरे के मनोभावों के अनुसार चलने से उनके जीवन में प्रेम की सुखद निर्झरिणी शत-शत धाराओं में बह सकती है। स्मरण रखिये जहाँ पुरुष दुर्बल है वहाँ स्त्री की शक्ति प्रकट होती है। पुरुष सर्वस्व प्राप्त कर सकता है और स्त्री सर्वस्व दान दे सकती है। स्त्री और पुरुष दोनों ही सृष्टि की महान् शक्तियाँ हैं किन्तु पूर्ण होने के लिये दोनों का सहयोग चाहिये। पुरुष एवं स्त्री का पारस्परिक सम्मिलन आत्मा का सम्मिलन है।

स्त्री कल्पलता है। जब पुरुष अकिंचन हो जाता है तो स्त्री की छत्र-छाया में रह कर वह पुनः शान्ति प्राप्त कर सकता है।

विवाह के प्रारम्भ में आप खूब देख-भाल कर पत्नी चुन सकते हैं। खूब टीका-टिप्पणी कर सकते हैं किन्तु विवाह के पश्चात् एक दूसरे के दुर्गुणों को आँख मीच कर टाल देने में ही लाभ है। आपस की आलोचना डराने-धमकाने, मारने-पीटने से गृह कलह बढ़ता है क्योंकि हमारे 'अहं' भाव को भारी धक्का पहुँचता है।

पति को वश में करने का उपाय—जो पत्नी अपने पति का स्थायी प्रेम चाहती है उसे अपने पति के स्वभाव, प्रकृति, विचार, मनोभाव, संवेदनाओं का गहन अध्ययन करना चाहिए। पुरुष पर शासन करने के लिये यह मालूम करना चाहिये कि वह पत्नी से क्या-क्या आशाएँ रखता है ? उसे किस काम में पत्नी की सहायता चाहिये। वह उसे किस रूप में—सहायक, मित्र, प्रेमिका, गृहणी, सेविका—देखना अधिक पसन्द करता है ? किन-किन गुणों, कलाओं को चाहता है ? साथ ही पत्नी को यह भी मालूम करना चाहिए कि पति में कौन-कौन-से दुर्गुण हैं ? क्या-क्या कमजोरियाँ हैं ? क्या-क्या दूसरों की कुसंगति से लग गई हैं ?

पुरुष बल-पराक्रम का पुतला है और किसी न किसी पर शासन करने में आनन्द लेता है अतः उसे अपने ऊपर शासन करने देकर पत्नी उसके 'अहं' को उत्तेजित कर सकती है। पत्नी उसकी प्रेमिका होती है अतः वह उस पर पूरा-पूरा अधिकार रखना चाहता है। अतः उसे अनुशासन का अवसर दीजिये। विवाहित जीवन में छोटी-छोटी बातों पर खड़े होने वाले मतभेदों, गलतफहमियों, झगड़ों से सतर्क रहिये। यदि कोई मतभेद आये तो भी तो अपने साथी के दृष्टिकोण को सहानुभूति पूर्वक समझिये।

पति अपनी पत्नी के मुख से वचन सुनने को लालायित रहता है, जिनसे उसकी श्रद्धा और अगाध विश्वास प्रकट हो। अतः ऐसे वचन कहने में कंजूसी नहीं करना चाहिए। अपने स्वाभाविक गुणों की वृद्धि करें। कोमलता, मधुरता, सौन्दर्य बढ़ायें। पुरुष इन गुणों से अधिक आकर्षित होता है क्योंकि ये उसमें नहीं हैं। स्त्री के लिए हँसमुखी और रसिक होना सुन्दर होने से अधिक आवश्यक है। पुरुष स्त्री की रसिकता, हँसी, बाँकी चितवन पर अधिक आकर्षित होता है। स्त्री का जीवन छोटी-छोटी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

झंझटों से मुक्त होता है। यदि वह उन्हें हँस कर न टाल सके, तो पागलखानों या तपेदिक के अस्पतालों की ही शोभा बढ़ा सकती है। पति को दास वे ही बना सकती हैं, जो उसके दोषों या विशेषताओं पर चिढ़ने के स्थान पर हँस कर टाल देती हैं।

प्रियतमा को जीतने के मनोवैज्ञानिक सूत्र—हम में जो गुण नहीं हैं उनसे युक्त व्यक्तियों के प्रति हम स्वत: आकर्षित होते हैं। अत: प्रियतमा को जीतने के लिये अपने पुरुषोचित गुणों बल, वीर्य, पराक्रम, साहस, अनुशासन की अभिवृद्धि कीजिए। कोमल, पतले, दुबले, कमजोर, क्षैण पुरुष स्त्रियों को अच्छे नहीं लगते।

स्त्री जितना वीर पुरुष से प्यार करती है उतना धनियों या पण्डितों को नहीं। स्त्री दास एवं दब्बू पुरुष को भी पसन्द नहीं करतीं।

अपने वस्त्रों और वेश पर सदा ध्यान रखें। स्त्री यदि अपने सौन्दर्य की चिन्ता करती है, यदि तुम्हारी प्रसन्नता के लिए, उसकी अभिवृद्धि के लिए वह निरन्तर चेष्टा करती है तो इसका यह अर्थ है कि वह सौन्दर्य का मूल्य समझती है और तूम्हें भी आकर्षक, साफ-सुथरे रूप में देखना चाहती है।

स्त्री की खूबियों बयान करो, उसका आदर करो, उसके उत्तम कार्यों पर अपनी प्रसन्नता प्रकट करो और इन सबके लिए थोड़ी प्रशंसा भी करो। बार-बार उसे यही भी दर्शाओ कि तुम उसे बहुत प्रेम करते हो। यह समझकर चुप न रह जाओ कि उससे एक बार तो कह ही दिया है। वह आपके मुख से अपने प्रति बार-बार सुनना पसन्द करती है।

दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने वाले स्वर्ण सूत्र

वैवाहिक जीवन में सुख-दु:ख के आर्थिक और सामाजिक कारण अवश्य होते हैं। किन्तु प्रधान कारण मनोवैज्ञानिक होते हैं। पति-पत्नी में अनेक अज्ञात भावनाएँ प्रसुप्त इच्छाएँ, पुराने संस्कार कल्पनाएँ होती हैं। जो अप्रकट रूप से प्रकाशित हो जाती हैं। प्राय: दो प्रेमी प्रसन्नता से वैवाहिक सूत्र में आबद्ध होते हुए देखे गये हैं। किन्तु विवाह के कुछ काल पश्चात् उनका पारस्परिक आकर्षण न्यून होता देखा जाता है। बाद में तो वे परस्पर घृणा तक करने लगते है। इस घृणा के कारण प्राय: आन्तरिक होते हैं। इसका प्रधान कारण मनुष्य की उभयलिंगता है जिसका अभिप्राय यह है कि हर एक पुरुष में स्त्रीत्व का अंश विद्यमान है तथा हर स्त्री में पुरुषत्व का। बड़े होने पर किन तत्वों की प्रधानता हो जायगी, इस मनोवैज्ञानिक आधार पर स्त्री-पुरुष का मेल निर्भर है।

यदि संयोगवश ऐसे दो प्राणी वैवाहिक सूत्र में आबद्ध हो गये हैं, जिनमें एक ही लिंग की प्रधानता है—जैसे स्त्री में पौरुषत्व और पुरुष में भी पुरुषत्व के गुण बढ़े हुए हैं अथवा स्त्री में तो स्त्रीत्व है ही, उसके पति में भी स्त्री-तत्व की प्रधानता है, तो वैवाहिक जोड़े में साम्य, सुख-समृद्धि और आन्तरिक सन्तुलन न रह पायेगा।

वास्तव में दाम्पत्य जीवन का वास्तविक सुख तभी प्राप्त हो सकता है, जब स्त्री में स्त्रीत्व के गुणों का तथा पुरुषों में पुरुषोचित गुणों का स्वाभाविक और अबाध विकास हो। इसका अभिप्राय यह नहीं कि उनमें विपरीत गुण बिलकुल ही न हों। इसका आशय केवल इतना ही है कि पुरुष में पुरुषत्व की प्रधानता हो और स्त्री में स्त्रीत्व की प्रधानता हो। पुरुष में स्त्रीत्व के गुण केवल गौण रूप से और स्त्री में पुरुषत्व के गुण गौण रूप से रह सकते हैं।

पुरुषत्व के गुण—पुरुष का प्रधान गुण है पौरुष अर्थात् शक्ति, साहस, निर्भयता, सक्रियता। उनमें १-शरीर बल २-मानसिक बल ३-चरित्र बल ४-संकल्प बल की प्रधानता है। पुरुष का निर्माण सतत् युद्ध करने वाला, कठोरता, दृढ़ता और पाशविक शक्ति से पूर्ण जीव की भाँति हुआ है। पुरुष अहंकारी, क्रोधी, तामसी, मदोन्मत्त, प्रेमोन्मत्त है। उसे शक्ति का अवतार कहना युक्तिसंगत होगा। आदि प्रकृति का बर्बर जंगली पुरुष आज भी उसमें जाग रहा है। पुरुष स्वभाव से ही उपार्जनशील और रमणशील है। वह अपने अन्दर एक शक्ति का अनुभव करता है और उसी से प्रेरित होकर शीघ्रता और आतुरता में काम करता है।

स्त्रीत्व के गुण—स्त्री कोमलता, मृदुता, सौम्यता एवं सहानुभूति की खान है। उसमें भावनाओं की प्रचुरता है, दयालुता, स्नेह, सौकुमार्य, विवेक है। उसका भाव पक्ष पुरुष की अपेक्षा विशेष उन्नत एवं परिपक्व है। वह गम्भीरता से सोचती है, उसके दृष्टिकोण में विशालता है, उसकी अन्तर्दृष्टि अत्यन्त व्यापक है। स्त्री स्वभाव और शरीर से कोमल है।

स्त्री और पुरुष को अपने अन्दर ही सीमित रहने में सुख का अनुभव नहीं होता, वरन् वे विपरीत सेक्स वाले प्राणी के सहवास में रहकर पूर्णत्व की प्राप्ति के लिए इच्छुक होते हैं। एक दूसरे के प्रत्येक कार्य में सहायता करते हैं और अतृप्त कामनाओं को पूर्ण करते है, पुरुष जब पवित्र त्यागमयी भावनाओं से अपनी पत्नी को अपने समान सीमित कर उच्च आध्यात्मिक भूमि पर लाता है, तो उसे उसके पौरुष में विश्वास होता है। इसी प्रकार स्त्री सहायक, मित्र विपत्तियों में धैर्य प्रदान करने वाली, सहनशील बन कर पुरुष को समुन्नत करती है।

सुखी, सन्तुष्ट, पवित्र भावनाओं वाले, संयमशील और शिक्षित पति-पत्नी के बच्चे प्रारम्भ से ही उच्च संस्कार लेकर जन्मते हैं और पूर्ण गृहस्थ फलता-फूलता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। पति-पत्नी की हिंसात्मक क्रियाओं का स्थान रचनात्मक प्रवृत्तियाँ ले लेती हैं। मनोविश्लेषण की दृष्टि से बाँझ स्त्री तथा वह पुरुष जिसके बच्चे न हों, भयानक विषैली भावना ग्रन्थियों से ग्रसित रहते हैं, हिंसात्मक, घृणास्पद और बेरहमी के कार्य करते हैं। जब स्त्री-पुरुष को अपनी उच्चता, पवित्र आध्यात्मिक गुप्त शक्तियों में विश्वास होने लगता है, तब उनकी दबी हुई प्रवृत्तियों का रुझान रचनात्मक कार्यों की ओर अधिक हो जाता है। घृणा, क्रोध, ईर्ष्या, स्वार्थ नष्ट हो जाते हैं। विवाहित स्त्रियाँ कुँवारियों से अधिक जीती हैं।

गृहस्थ जीवन को सुखी बनाने के स्वर्ण सूत्र—डेलकार्नेगी ने दाम्पत्य मनोविज्ञान का गूढ़ अध्ययन कर जो निष्कर्ष निकाला है, उसे आज पाश्चात्य देशों में क्रांति हो गयी है। इसमें स्त्री-पुरुष के मन की अपेक्षा गुप्त भेदों का ज्ञान भरा पड़ा है। इनमें से कुछ निम्न हैं—

(१) पतियों को तंग मत करो—यह नियम स्त्रियों के लिए है, जो समय-कुसमय अपने पति से उसकी आर्थिक स्थिति को ध्यान में न रख भाँति-भाँति की फरमायश करती हैं। जीभ पर अधिकार न होना, प्रलोभन, सिनेमा देखना, आभूषण अच्छे वस्त्रों की जिद से पति परेशान हो उठता है। विचार तथा स्वभाव के मतभेद होते हैं, फिर बढ़ कर पारिवारिक जीवन को नष्ट करते हैं।

(२) समालोचना मत करो—पति या पत्नी जब एक दूसरे की कमजोरियों, खराबियों पर ध्यान देने लगते हैं, तो फिर प्रेम-डोर टूट जाती है। प्रेम की उच्च भूमिका में आपको एक दूसरे के दुर्गुणों, कमजोरियों को भी सहन करना है। यदि शीघ्र ही एक दूसरे की त्रुटियों पर ध्यान एकाग्र हो जाय तो एकाग्रता के नियमों के अनुसार उन्हीं की अभिवृद्धि होगी।

(३) निष्कपट भाव से प्रशंसा करो—अपने जीवन-साथी को उत्साहित करना, ऊँचा उठाना, शिक्षित, सुसंस्कृत, सभ्य नागरिक बनाना आपका कर्त्तव्य होना चाहिए। प्रत्येक अच्छाई की प्रशंसा कीजिए और दिल खोल कर कीजिए। प्रशंसा से उनके और भी गुण, अच्छा स्वभाव विकसित हो सकेगा। मित्रभाव, सहनशीलता, सहयोग बढ़ेगा। अधिकांश पत्नियाँ अच्छी ही होती हैं, पर पति के उत्साहित न करने से, उनका विकास रुक जाता है। झिड़कने, मारने, पीटने, अशिष्ट व्यवहार करने या निर्दयता का व्यवहार करने से पत्नी का हृदय टूक-टूक हो जाता है। गुप्त विश्वास टूटते ही तलाक की नौबत आती है। अतः पति को सदा सर्वदा पत्नी को उच्च गुणों के सजेशन ही देने चाहिए। निष्कपट भाव से उसके प्रत्येक कार्य, घर की सजावट, रसोई, बनाव-शृंगार, शिशुपालन आर्थिक सहयोग की प्रशंसा करनी चाहिए।

(४) छोटी-छोटी बातों का ध्यान रखो—गृहस्थी छोटी-छोटी बातों से टूटती और बनती है। स्त्रियाँ पति को साफ-सुथरा देखना पसन्द करती हैं, अपनी बाबत अच्छे विचार पुनः-पुनः सुनना चाहती हैं, अपने कपड़ों, घरेलू व्यवस्था, भोजन की प्रशंसा सुनना चाहती हैं। यदि आप उनके किये हुए कार्य में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाते, तो वह क्यों अच्छी बनेगी।

कुछ व्यक्ति रुपया-पैसा अपने हाथ में रखते हैं और पत्नी को दो-दो चार-चार आने माँगने पड़ते हैं। उसके 'अंह' और गर्व को धक्का पहुँचता है। अपने अन्दर वह हीनत्व की भावना का अनुभव करती है, जिससे पारस्परिक प्रेम में दरार पड़ जाती है। अतः पत्नी के प्रति व्यवहार में सावधानी बरतनी चाहिए। उसकी उचित और नैतिक माँगों की पूर्ति में आलस्य करना घर में झगडे का वृक्ष बोना है।

जो युवक-युवती एक-दूसरे पर अंधाधुन्ध आसक्त होकर विवाह करते हैं, वे एक दूसरे के सुख और आनन्द पाने की बड़ी आशाएँ लेकर आते हैं। यदि दोनों एक दूसरे की छोटी-छोटी बातों का ध्यान न रखें तो शीघ्र ही दाम्पत्य जीवन कंटकाकीर्ण हो जाता है। एक दूसरे का मन रखने के लिए पर्याप्त समझ, साहस और कड़े परिश्रम की आवश्यकता है।

पत्नी से कुछ भी मत छिपाइए अन्यथा वह शक करेगी और गुप्त मानसिक व्यथा से दग्ध होती रहेगी। उसे यह बतला दीजिए कि आप क्या कमाते हैं ? कैसे व्यय करते हैं ? कितना बीमा करा रखा है ? किसके नाम वसीयत है ? आय-व्यय कैसे चलता है ? भविष्य में आपकी क्या-क्या योजनाएँ हैं ? कितना रुपया आपने एकत्रित किया है ? इत्यादि-इत्यादि।

पति को निरन्तर कोमलता और निरन्तर पत्नी की देख-रेख द्वारा उसके प्रति अपने प्रेम का प्रकाश करते रहना चाहिए अन्यथा प्यार की भूखी स्त्री जहाँ भी उसे प्रेम मिलेगा, उसी ओर आकर्षित हो जायगी। विवाह के पश्चात् जब तक जीवित रहें, प्रेम दान करते रहना चाहिए। शिष्टाचार की छोटी-मोटी बातों को इज्जत और नये-नये उपहार लाने की बात भूल नहीं जाना चाहिये। क्योंकि स्त्रियाँ इस बात को बहुत महत्त्व देती हैं। स्त्री प्रेम और प्यार के अभाव में साधारण सुख का जीवन भी व्यतीत नहीं कर सकती। प्रेम उसकी आत्मा का भोजन है।

(५) सुशील बनो—आपको ऐसा चुम्बक बनना चाहिए, जिससे आकर्षित होकर स्त्री अथवा पुरुष आपसे कुछ आध्यात्मिक प्रेरणा, उत्साह, शिक्षा, पथप्रदर्शन प्राप्त कर सके। प्रसन्नता, सौम्यता और सुशीलता से आप घर भर में रस संचार कर सकते हैं। ऐसा पति किस अर्थ का जिसके घर में प्रवेश करते ही सब डर जायँ, बच्चे दुबक जायँ, खामोशी और मुर्दानी छा जाय ? विनयशीलता से आप अपनी पत्नी की इच्छाएँ समझ सकेंगे। उसकी अनुचित फरमायशों को तर्क और बुद्धि द्वारा धीरे-धीरे दूर कर सकेंगे। क्रोध, मारपीट, द्वेष या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तलाक द्वारा आप कदापि कुछ न कर सकेंगे। समानता, निष्कपटता, शिष्टता का व्यवहार ही सम्मानीय है।

(६) कामशास्त्र की भिज्ञता की अनिवार्यता—मनुष्य के काम-जीवन का क्या तात्पर्य है ? उसकी निगूढ़तम गुत्थियों का अध्ययन प्रत्येक स्त्री-पुरुष के लिए अतीव उपयोगी है। सस्ती बाजारू अश्लील पुस्तकों से सावधान। यह मार्ग बड़े उत्तरदायित्व और आर्थिक परीक्षा का है। अत: इसकी पुस्तकों के चुनाव विवेकपूर्ण ढंग से होना चाहिए।

दाम्पत्य कलह का एक कारण दाम्पत्ति का, विशेषकर पुरुष का काम विज्ञान से अनभिज्ञ होना है। पुरुष स्वभाव से ही ढीठ और स्त्री शीलवती है। इसके अतिरिक्त वह केवल पतित्व की वेदी पर ही अपने को निछावर करने में आनन्द मानती है, वह पतित्व के साथ ही दाम्पत्य प्रेम भी चाहती है। जो पुरुष प्रथम संयोग में ही स्त्री को अपनी कामना का शिकार बनाने की बर्बरता करता है, वह भयंकर भूल करके दाम्पत्य कलह का बीज बोता है। विषय मानसिक विकार एवं शरीर का मल पदार्थ है। किन्तु पवित्र दाम्पत्य प्रेम को हृदय की उच्चतम अभिव्यक्ति है। हृदय के आदान-प्रदान में पर्याप्त समय लगता है। हृदय ही स्त्री की सम्पत्ति है। वह सहज ही पुरुष को नहीं देती और एक बार देकर फिर वापिस नहीं लेना चाहती। अत: कामविज्ञान के शिक्षण से मनुष्य नारी हृदय की निगूढ़तम गहराइयों की शिक्षा पाकर बर्बरता, निष्ठुरता से बच सकता है।

उपरोक्त नियमों के पालन से बहुत लाभ हो सकता है। स्मरण रखिए गृहस्थाश्रम पति और पत्नी की साधना का आश्रयस्थल है। यहाँ जीवन की, धर्म, अर्थ और काम की साधना की जाती है। पति-पत्नी दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, सहायक हैं, मित्र हैं। दोनों का कार्य एक दूसरे के गुणों की अभिवृद्धि करना है, क्षुद्रताओं का उन्मूलन करना है और परस्पर एक अभिन्नता बनाये रखना है। इसके लिए प्रत्येक को संयम, सहनशीलता एवं स्वार्थ त्याग अपने अन्दर विकसित करना चाहिए।

पति का नाम 'भर्त्ता' अर्थात् भरण और पोषण करने वाला है। पत्नी में उसकी शारीरिक, मानसिक, सांस्कृतिक, सामाजिक जो विभूतियाँ या न्यूनताएँ हैं, उनकी पूर्ति का उत्तरदायित्व भी उसी के ऊपर है। उसकी शक्तियों का विकास करे, पोषण करे, कुत्सित मार्ग से बचावे तथा सदा सर्वदा सन्तुष्ट रखे।

पत्नी साधिका है। जिस प्रकार एक साधक अपने प्रभु की साधना में अपना सर्वस्व समर्पण कर देता है, उसी प्रकार पत्नी अपने मन में द्वेष की भावना न रखकर पति को अपना आराध्य मानकर अपना भला और बुरा सब कुछ सौंप दे। यदि पति कुमार्गगामी हो, तो प्रेम प्रशंसा और युक्ति द्वारा उसका परिष्कार करे। कुमार्गगामिता एक मानसिक रोग है। अशिक्षा और मूढ़ता की निशानी है। इस रोग के उपचार के लिए समझने, तर्क, बुद्धि तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से कुमार्ग की हीनता प्रदर्शित करने की आवश्यकता है। निराश होने के स्थान पर प्रयास-पुरुषार्थ से अधिक लाभ हो सकता है।

पितृ ऋण के उद्धार का एकमात्र साधन दाम्पत्य जीवन की शान्ति है। सन्तान का उत्पादन और सुशिक्षण योग्य दम्पत्ति के बिना कदापि सम्भव नहीं है। योग्य माता-पिता, उचित वातावरण, घरेलू संस्कार, पुस्तकों तथा सत्संग द्वारा योग्य सन्तान उत्पन होती है। योग्य सन्तान के इच्छुकों को सर्वप्रथम स्वयं अपना परिष्कार एवं सुधार करना चाहिए।

दाम्पत्य जीवन का उद्देश्य 'भोग' नहीं उन्नति है। सब प्रकार की उन्नति के लिए दाम्पत्य जीवन आपको अवसर प्रदान करता है। यहाँ पहले शरीर, फिर सामाजिक जीवन, व्यक्तिगत जीवन और आध्यात्मिक जीवन की उन्नति के साधनों को एकत्रित करना चाहिए। उन साधनों को अपनाना चाहिए जिससे परस्पर का द्वैत नष्ट हो और आत्मरति एवं आत्मप्राप्ति की ओर दोनों जीवन-साथी विकासमान हों। जब दोनों एक दूसरे की उन्नति में सहयोग प्रदान करेंगे, तो निश्चय ही अभूतपूर्व गति उत्पन्न होगी।

भोग का शमन भोग से नहीं होता। भोगने से वासनाएँ द्विगुणित होती हैं और अपने चंगुल से मनुष्य की मुक्ति नहीं होने देतीं। एक के पश्चात् दूसरा प्रलोभन मनुष्य को आकर्षित करता है। अत: जितने से शरीर, मन, आत्मा की उन्नति हो, उतने से ही सम्पर्क करना चाहिये। जीवन में फैशनपरस्ती, अभक्ष पदार्थों का उपयोग, नशीली वस्तुओं, रुपया उधार देना या लेना, व्यर्थ के दिखावे बढ़ाने से मनुष्य उनका गुलाम बन जाता है। इनमें व्यवधान उपस्थित होने से कलह बढ़ता है।

स्त्री-पुरुष का दाम्पत्य सम्बन्ध आत्म-यज्ञ के लिये है। यज्ञ में ईश्वरीय शक्तियों का विकास एवं आत्मभाव का विस्तार होता है। उच्च संस्कारों द्वारा मानव जीवन को परिपुष्टि करने के लिए ही यह दाम्पत्य जीवन का निर्माण किया गया है। इसलिये स्त्री-पुरुष को विषय-वासना का गुलाम नहीं बनना चाहिये। भोग से जितनी दूर रहा जाय, उतना ही उत्तम है।

सौन्दर्य की निस्सारता

"आवश्यकता है—एक सुन्दर पढ़ी-लिखी कन्या की, जो सम्पूर्ण गृहकार्यों में निपुण हो तथा सीना-पिरोना इत्यादि जानती हो।" आजकल छपने वाले विवाह सम्बन्धी विज्ञापनों में सौन्दर्य की माँग उत्तरोत्तर अभिवृद्धि पर है। सौन्दर्य के लिये दौड़-धूप बढ़ रही है। रूप-रंग की चिन्ता माता-पिताओं के लिये एक विषम पहेलिका बनी है। युग की इस बढ़ती हुई माँग को देखते हुए अनेक प्रश्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानस जगत् में उठ आते हैं। एक स्त्री के लिये सुन्दरता का क्या स्थान है ? क्या सुन्दर लड़की सीधी-साधी लड़की की अपेक्षा सुगमता के साथ जीवन यात्रा तय कर सकती है। क्या उसका सौन्दर्य उसके मार्ग को साफ करेगा ? क्या सब लोग सौन्दर्य के कारण उससे मित्रता करेंगे ? उसके चरणों पर लोटेंगे ? ये प्रश्न आधुनिक युग में यूरोप तथा अमेरिका के समाजों में वाद-विवाद के विषय बने हैं। सौन्दर्यशास्त्र के विशेषज्ञों में इस विषय पर मतभेद है।

बर्नार्डशा से एक बार पूछा गया कि स्त्री जीवन में सौन्दर्य का क्या मूल्य है ? तो उनने कहा था कि सुन्दर से सुन्दर स्त्री कुछ दिन पश्चात् साधारण सी प्रतीत होने लगती है। पति के लिये सौन्दर्य भी फीका सा लगने लगता है। वह रहते-रहते यह विस्मृत कर देता है कि उसकी पत्नी में सौन्दर्य नाम की कुछ चीज भी है। उसके लिये वह पत्नी साधारण सी हो जाती है। यही हाल मामूली स्त्रियों का है। प्रारम्भ में सम्भव है सौन्दर्य न होने के कारण वे पति प्रेम से वंचित रहें किन्तु कुछ सम्पर्क से अन्य स्त्री सुलभ गुणों का विस्तार होता है, तथा पारस्परिक दाम्पत्य प्रेम निखर आता है।

अभी हाल ही में चार्ल्स ग्रिफिथ का 'ब्यूटी इन दि इस्ट' नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है, उससे इंग्लैण्ड में खलबली मच गई है। उनका कथन है कि सौन्दर्य का स्थान जीवन में अत्यन्त न्यून है। जो स्त्रियाँ रूपवती नहीं थीं, ऐसी अनेकों ने समाज में सफलता एवं आदर दोनों प्रचुर मात्रा में प्राप्त किये हैं। सुन्दरता चाहे और सब कुछ हो, किन्तु वह व्यक्तिगत सफलता के लिये आवश्यक नहीं है। चार्ल्स ग्रिफिथ का कथन है कि सौन्दर्य का प्रत्येक व्यक्ति पर प्रभाव तो पड़ता है किन्तु बुद्धि, शील, चरित्र के अन्य गुणों के बिना वह निरर्थक है।

संसार में शायद ही कभी ऐसा युग आया हो जब सौन्दर्य पर, आकर्षक बनने की विधियों, वस्तुओं तथा साधनों पर इतना रुपया-पैसा लगा हो, जितना इस युग में लग रहा है। आजकल सिनेमा ने तो और भी गजब ढाया है। स्त्रियों को सिनेमा एक्ट्रेस बनने की धुन सवार है। घण्टों सुन्दरता की खोज चलती है। नये-नये वस्त्रों के आविष्कार किये जाते हैं। इसका फल यह है कि आज हमारे ग्रहस्थ जीवन में भयंकर असन्तोष उत्पन्न हो गया है।

स्त्री का स्त्रीत्व ही सबसे सुन्दर है। उसका स्त्री होना, महिलोचित गुणों से सम्पन्न होना उसका प्रधान आभूषण है। उन देशों की महिलाओं को देखिये जो साधारण ही हैं, सुन्दर नहीं, किन्तु जो समाज में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त कर रही हैं। सब कुछ सौन्दर्य पर ही निर्भर नहीं है। सौन्दर्य एक उन्माद है जो मार्ग में रोड़ा अटकाता है। इसके विपरीत जिस गृह में स्नेह, प्रेम, सौहार्द्र, विद्या-प्रेम आदि सद्गुणों का निवास है, उसमें सौन्दर्य आँधी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

आज के पुरुष केवल कोरे सौन्दर्य से ऊबने लगे हैं। उन्हें सौन्दर्य के खोखलेपन का ख्याल हो उठा है। चकाचौंध करने वाली रूप कुमारी के स्थान पर गुणवती कन्या ही श्रेष्ठ है।

वैवाहिक असफलता के कारण

हमारे समाज में नब्बे फीसदी विवाह केवल इस कारण असफल होते हैं कि पति या पत्नी निरन्तर एक दूसरे में कोई न कोई खराबी, कमजोरी या न्यूनता निकाला करते हैं। विवाह के पश्चात् कटुता का यहाँ तक कि तलाक का प्रमुख कारण है—तीखी आलोचना, निर्मम, हृदय-विदारक टीका-टिप्पणी, पति पत्नी में जरा सी कमी पाते ही झल्ला उठता है और बिगड़कर २-४ उलटी-सुलटी, जली-कटी सुना देता है। उधर सम्भ्रान्त पत्नियाँ तक पति की बात पर तुनक उठती हैं, अपनी स्वतन्त्रता में जरा सा फर्क आते देख कर चिल्ला उठती हैं। भाँति-भाँति के भय दिखा कर पति पर आतंक जमाना चाहती हैं। इसके कारण क्या है ?

कारण है मनुष्य का 'अहं'। प्रत्येक स्त्री-पुरुष बड़ी तत्परता से 'अहं' की रक्षा करता है। वह नहीं चाहता है कि कोई तनिक भी हानि उसे पहुँचाये। जरा सी भी आलोचना 'अहं' पर बड़ा प्रभाव डालती है। कुछ व्यक्तियों का स्वभाव तो इतना ग्रहणशील होता है कि साधारण सी आलोचना का बड़ा विषैला प्रभाव उनके अन्तर्मन पर पड़ता है। उनका मानसिक संस्थान एक दम विक्षुब्ध हो उठता है और वह विद्रोह कर बैठते हैं। 'अहं' की रक्षा के लिये मनुष्य कुछ का कुछ करने को तत्पर रहता है। पचास प्रतिशत विवाहों के असफल होने का एकमात्र कारण अपने जीवन साथी के 'अहं' पर हमला करने का है !

पति-पत्नी को इस सम्बन्ध में बड़ा सतर्क रहना चाहिए। यदि आप पति हैं तो भूल कर भी पत्नी के कामों की आलोचना न कीजिए। दोष निकालना, अधिक टीका-टिप्पणी करना, अपने विवाहित जीवन को काले बादलों से आच्छादित कर लेना है। यदि सम्भव हो तो इस अप्रिय कार्य को बिल्कुल ही न करें। यदि जीवन साथिन में कुछ कमजोरियाँ हैं तो उनकी ओर एक हल्का-सा संकेत यथेष्ट होता है। प्रेमपूर्ण सहानुभूति से स्निग्ध स्वर में, जब कभी आपकी सहधर्मिणी अच्छी मुखमुद्रा में हो, सरलता से उनकी कमजोरियो पर प्रकाश डाल दीजिए। आलोचना ऐसे ढंग से की जाय कि उसका प्रभाव सृजनात्मक हो, वह केवल दूसरे को नीचा दिखाने या मजाक बनाने के लिए न हो, उनमे व्यंग्य-वाण न हो, कडुवाहट न हो, शुष्कता न हो। आलोचना ऐसी हो जो अहं को मर्माहित न करे वरन् उसे सहारा देकर ऊपर उठाये, उन्नत एवं परिपुष्ट होने मे सहायता करे। आपकी आलोचना सुनकर आपकी पत्नी आपसे घृणा करने के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्थान पर आपको अपना हितैषी मान कर आपके कथनानुसार कार्य करने में गर्व का अनुभव करे एवं क्रमशः वह अपनी कमजोरियाँ दूर करती जाय।

उदारहणार्थ मान लीजिये, पत्नी ने भोजन अच्छा नहीं बनाया, रोटियाँ जली हुई हैं, दाल में नमक अधिक है और वह कुछ क्रुद्ध भी है। क्रोध की अवस्था में यदि आप आलोचना करने बैठ जायेंगे, तो कदापि उसका अच्छा प्रभाव न पड़ेगा। उल्टी पत्नी और नाराज होगी। जब उनका क्रोध शान्त हो ले, तब आप आलोचना करने बैठें, वह भी इस प्रकार मानो आप कोई सलाह उनके भले के लिये दे रहे हैं। उन्हें यह भ्रम न हो कि आप उन्हें नीचा समझते हैं और कुछ सिखलाना चाहते हैं। आप कहिए, आज आपका भोजन उस उच्च श्रेणी का नहीं बना है, जैसा प्रायः रहता है। आज शायद कुछ और काम बीच में आ पड़ा हो। आप जैसा भोजन अन्यत्र दुष्प्राप्य है, सायं-काल का भोजन बहुत ही उत्तम बनेगा।

व्यक्तिगत आलोचना, चाहे आप किसी की करें, यह ध्यान रखिए कि कहीं वह 'अहं' पर चोट तो नहीं कर रही है। यदि आपकी आलोचना अहं पर प्रभाव डाल रही है, तो इसका प्रत्यक्ष बुरा प्रभाव होगा। हो सकता है कलह बढ़ती जाय या तलाक का अवसर भी आ जाय। प्रायः स्त्रियाँ भावुक होती हैं और उन पर तनिक-सी भी आलोचना का कटु प्रभाव हो सकता है। प्रत्येक पति का कर्त्तव्य है कि वह अपनी पत्नी के गर्व का, उसके अहं का रक्षक बने।

प्रश्न है कि इस अहं की रक्षा क्योंकर की जाय ? आप पत्नी के साधारण कार्यों की तारीफ कीजिए। बढ़ावा दीजिए और कभी-कभी उसे प्रोत्साहन देने के लिए उसकी प्रशंसा कीजिए। तारीफ करना, स्तुति के वाक्य कहना, बढ़ावा देना, खुशामद करना, स्त्री के गर्व की रक्षा के लिए वैसा ही जरूरी है, जैसे जीवन के लिए श्वाँस-प्रश्वाँस। यदि पति इस गर्व की रक्षा का ध्यान रखें तो समाज में फैलने वाले अनेक उपद्रव, तलाक, कलह इत्यादि रुक जायँ।

विवाह विज्ञान के एक आचार्य का मत है—'सफल पति' बनने के लिए स्त्री की खूबियों का बखान करो, उसका आदर करो, अपनी प्रसन्नता प्रकट करो और इन सबके लिए उसकी अकारण प्रशंसा भी करो। यह समझकर चुप रह जाने की भूल न करनी चाहिए कि यह तो उसका कर्त्तव्य ही है। अपने कपड़ों और वेश पर सदा ध्यान रखो। स्त्री यदि अपने सौन्दर्य की चिन्ता करती है, अगर तुम्हारी प्रसन्नता के लिए, उसकी वृद्धि के लिए वह निरन्तर चेष्टा करती है, तो इसका यह अर्थ है कि सौन्दर्य का मूल्य समझती है और दूसरे को भी साफ-सुथरे देखना पसन्द करती है।

यदि पति-पत्नी एक दूसरे के मनोभावों को न कुचलें और उनका समुचित आदर करें तो कोई भी विवाह असफल न हो।

अपनी पत्नी से शिष्ट व्यवहार

अपनी पत्नी से भी सभ्यता का व्यवहार ही रखिये। जो पुरुष-कभी-कभी उन पर हाथ उठा बैठते हैं, अपनी समझ कर तिरस्कार करते हैं, उनकी बेइज्जती करते रहते हैं, वे अशील हैं। गुप्त मन में उनकी स्त्रियाँ उन्हें दुष्ट, राक्षस-तुल्य समझती हैं। ऐसा प्रसंग ही मत आने दीजिए कि नारी को मारने-पीटने का अवसर आये। उसे अपने आचार, व्यवहार, प्रेम भरे सम्बोधन से पूर्ण सन्तुष्ट रखिये।

पत्नी की भावनाओं की रक्षा, उसके गुणों का आदर, उसके शील-लज्जा, व्यवहार की प्रशंसा मधुर सम्बन्धों का मूल रहस्य है। पत्नी आपकी जीवन सहचरी है। अपने सद्व्यवहार से उसे तृप्त रखिये।

पत्नी पति की प्राण है, पुरुष की अर्द्धांगिनी है। पत्नी से बढ़कर कोई दूसरा मित्र नहीं। पत्नी तीनों फलों—धर्म, अर्थ, काम को प्रदान करने वाली है और संसार सागर को पार करने में सबसे बढ़ी सहायिका है। फिर, किस मुँह से आप उसका तिरस्कार करते हैं।

उससे मधुर वाणी में बोलिए। आपके मुँह पर मधुर मुस्कान हो, हृदय में सच्चा निष्कपट प्रेम हो, वचनों में नम्रता, मृदुलता, सरलता, प्यार हो। स्मरण रखिए, स्त्रियों का 'अहं' बड़ा तेज होता है, वे स्वाभिमानी, आत्माभिमानी होती हैं। तनिक-सी अशिष्टता या फूहड़पन से क्रुद्ध होकर आपके सम्बन्ध में घृणित धारणाएँ बना लेती हैं। उनकी छोटी-मोटी माँगों या फरमाइशों की अवहेलना या अवज्ञा न करें। इसमें बड़े सावधान रहें। जो स्त्री एक छोटे से उपहार से प्रसन्न होकर दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने को प्रस्तुत रहती है, उसके लिये सब कुछ करना चाहिये।

दाम्पत्य जीवन का सच्चा सार

संसार में एक दूसरे के अनुकूल स्वभाव वाले हर प्रकार से सन्तुष्ट, सन्तुलित, सुखी विवाहित जोड़े बहुत कम हैं। जो युवक विवाह से पूर्व अपनी धर्मपत्नी के विषय में सिनेमा के रोमानी जगत जैसी सुमधुर कल्पनाएँ बना कर गगन-विहार किया करते हैं, उन्हें प्रायः विवाहित जीवन में भारी निराशा का सामना करना पड़ता है। पाश्चात्य देशों में विवाहों की अपेक्षा तलाकों की संख्या उत्तरोत्तर अभिवृद्धि पर है। इसका कारण विवाहित जीवन में पारस्परिक उत्तरदायित्व की कमी और असन्तोष है।

एक शिक्षित युवक जब विवाह करता है तो उसके मन मे अपनी पत्नी का एक आदर्श रूप उपस्थित रहता है। वह उसे पुष्प सी कोमल, चन्द्रमा सी सुन्दर, विद्या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बुद्धि में चतुर, संगीत-नृत्य विद्याओं में निपुण, हर प्रकार से सरल, साधु, मीठे स्वभाव की कल्पना करता है। वह सिनेमा के चलचित्रों में कार्य करने वाली नर्तकियों को देखते-देखते एक ऐसा आदर्श मन में बसा लेता है जो कभी पूर्ण नहीं हो पाता। यह बड़ी-बड़ी आशाएँ, स्वप्नों के महल, कपोल कल्पनाएँ, रोमांस, मनोरंजन की आशाएँ वैवाहिक जीवन में प्रविष्ट होते ही टूटने लगते हैं। मनोविज्ञान का यह अटूट नियम है कि दूर से स्त्री को पुरुष तथा पुरुष को स्त्री आकर्षक प्रतीत होती है। विवाह के कुछ मास एक प्रकार के उन्माद में व्यतीत होते हैं। तत्पश्चात् मन ऊबने लगता है। पुरुष स्वभाव से नवीनता का उपासक है। समीप रहने वाली वस्तु उसे पुरानी, नीरस, आकर्षणविहीन, फीकी-सी प्रतीत होने लगती है। यही दाम्पत्य जीवन के असन्तोष का कारण है, जिसकी वजह से तलाक जैसी अप्रिय बातें होती हैं। इस वृत्ति से संघर्ष कर उस पर विजय प्राप्त करने की आवश्यकता है।

विवाह से पूर्व स्त्री को पुरुष तथा पुरुष को स्त्री को देख लेने, परखने, उसके विषय में दूसरों से सलाह लेने, यदि सम्भव हो सके तो परीक्षा करने, हर प्रकार की सतर्कता, दूरदर्शिता बरतने की गुंजायश है। वर-वधू को चाहिए झूठी शर्म त्याग कर एक दूसरे के गुण, कर्म, स्वभाव का ज्ञान प्राप्त करें। समस्वभाव के विवाहित जोड़े प्रसन्न रहते हैं। यदि स्वभाव एक जैसा न हो, तो दूसरे साथी को उसका सन्तुलन करना होता है। एक सी रुचि के दो व्यक्ति जीवन में सरलता से जी सकते हैं। एक शिक्षित तथा दूसरा अशिक्षित होने से अनेक बार दृष्टिकोण में विभिन्नता तथा कटुता उत्पन्न होकर दाम्पत्य माधुर्य को नष्ट कर देती है। अतएव वर-वधू को प्रारम्भ में अति सावधानी एवं सतर्कता बरतने की आवश्यकता है।

अपने साथी के शरीर, मस्तिष्क, विचार तथा स्वभाव का ज्ञान प्राप्त कीजिये। वह नीरस प्रकृति है या हँसमुख, मजाकिया ? वह गम्भीर अध्ययनशील है या सदैव जल्दबाजी में रहने वाला, तीव्र भावों में बह जाने वाला ? वह उदार है या संकुचित, जिद्दी, निश्चयी, पुरुषार्थी, मत्त या स्फूर्तिवान ? वह किसी कार्य को लगातार करता है या बीच में ही छोड़ भागने का अभ्यस्त है ? उसकी आर्थिक स्थिति तथा आवश्यकताएँ कैसी हैं ? इन तथा इसी प्रकार के अनेक प्रश्नों पर विवाह से पूर्व ही खूब देखभाल तथा विचार-विनियम करने की आवश्यकता है।

उत्तरदायित्व का निर्वाह—विवाह के पश्चात् आप पर एक बड़ी जिम्मेदारी आ जाती है। पति को पत्नी के स्वास्थ्य, आराम, मानसिक तथा शारीरिक सुख का ध्यान रखना है तथा पत्नी को पति के कार्य, पेशे, भोजन, मनोरंजन, बच्चों की देखभाल, गृहप्रबन्ध इत्यादि में अपने पृथक्-पृथक् उत्तरदायित्व का निर्वाह करना है। पति का कार्यक्षेत्र अधिकतर घर के बाहर संघर्षपूर्ण कार्यस्थल है जहाँ उसे जीविका उपार्जन करने के हेतु कठोर परिश्रम, कार्यदक्षता, कौशल प्रदर्शित करना होता है। उसका उत्तरदायित्व अधिक है, क्योंकि उसे जीविका कमाने का कार्य तत्परता से करना होता है। पत्नी अपने गृहप्रबन्ध, मृदुल, सहानुभूति पूर्ण व्यवहार तथा सौन्दर्य से घर को स्वर्ग बनाती है।

"हमें अपने विवाहित जीवन में अपनी जिम्मेदारी निभानी है, अपने जीवन-साथी की निर्बलताओं को सहानुभूतिपूर्ण ढंग से निकालना है, उसके स्थान पर उत्तम गुणों का समावेश करना है, हम सब तरह के असन्तोषों को दूर करेंगे, परस्पर एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझेंगे, आपसी गलतफहमियों को न बढ़ने देंगे, यह मानकर दाम्पत्य जीवन में प्रविष्ट होना श्रेयस्कर है। यह समझौते की भावना सुखमय दाम्पत्य जीवन का मूल मन्त्र है।

कौन पति-पत्नी नहीं झगड़ते ? विचारों में अन्तर कहाँ नहीं है ? एक से स्वभाव कहाँ मिलते हैं ऐसा कौन है जिसमें कमजोरियाँ, दुर्गुण, शारीरिक या मानसिक दुर्बलताएँ नहीं हैं ? यदि आप एक-दूसरे की दुर्बलताओं पर कलह करेंगे, तो अल्पकाल में असन्तोषदायक महा भयंकर राक्षस आपका विवाहित जीवन कटु बना देगा। आपका सौन्दर्य और प्रेम पिपासु मन एक स्त्री की सुन्दरता छोड़ दूसरी, दूसरी से तीसरी, चौथी न जाने कहाँ-कहाँ मारा-मारा फिरेगा। मन की बागडोर ढीली न कीजिए। अपने जीवन-साथी में ही सरलता, सौन्दर्य, कौशल, चतुरता, माधुर्य खोज निकालिये। उसकी अपूर्णता को पूर्ण बनाइये। अशिक्षित है तो शिक्षित कीजिये, पुस्तकें, समाचार-पत्र, कहानियाँ, उपन्यास पढ़ाइये। यदि स्वास्थ्य खराब है, तो स्वास्थ्य रक्षा, व्यायाम, पौष्टिक भोजन और दुश्चिन्ताओं को दूर कर उसे सुन्दर बनाइये, किन्तु उसे त्यागने का भाव कदापि मन में उदित न होने दीजिये। त्यागने की बात सोचना, एक दूसरे की सहायता न करना, शील-सौन्दर्य की अभिवृद्धि न करना, विद्या प्रदान न करना पति के लिए लज्जा के योग्य है।

दो स्वर्ण-सूत्र

इस स्थिति पर विजय प्राप्त करने के दो मार्ग हैं—प्रथम वह है जो दाम्पत्य जीवन का सच्चा सार है—अर्थात् यह दृढ़ प्रतिज्ञा और उसका निर्वाह कि 'हम दोनों पति-पत्नी एक दूसरे का परित्याग नहीं करेंगे, हम प्रत्येक प्रेम, सहानुभूति, त्याग, शील, आदान-प्रदान, सहायता के टूटे हुए तार को गाँठ लेंगे। हम विश्वास, आशा, सहिष्णुता, अवलम्ब, उपयोगिता की गिरी हुई दीवार के प्रत्येक भाग की निरन्तर प्रयत्न और भक्ति से मरम्मत करेंगे, हम एक दूसरे से माँफी माँगने, सुलह और समझौता करने को सदैव प्रस्तुत रहेंगे।'

दूसरा उपाय है पति-पत्नी की एक दूसरे के प्रति अनन्य भाव। पति-पत्नी एक दूसरे को लीन कर दें, समा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जायँ, लय हो जायँ, आधीनता की भावना छोड़ समभाव की पूजा करें। विवाह का आध्यात्मिक अभिप्राय दो आत्माओं का शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सम्बन्ध है। इसमें दो आत्माएँ ऐसी मिल जाती हैं कि इस पार्थिक जीवन तथा उच्च देवलोक में भी मिली रहती हैं। यह दो मस्तिष्कों, दो हृदयों, आत्माओं तथा साथ ही साथ दो शरीरों का एक-दूसरे में लय हो जाना है। जब तक यह स्वरैक्य नहीं होता। विवाह का आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता। विवाहित जोड़े का परस्पर वह विश्वास और प्रतीत होना आवश्यक है, जो दो हृदयों को जोड़कर एक करता है। जब दो हृदय एक-दूसरे के लिये आत्म समर्पण करते हैं, तो एक-दूसरे का कोई तीसरा व्यक्ति बिगाड़ने नहीं पाता है। केवल इस प्रकार ही वह आध्यात्मिक दाम्पत्य अनुराग सम्भव हो सकता है, जिनका समझना उन व्यक्तियों के लिये कठिन है, जो अपने अनुभव से इस प्रेम और समझौते के, इस पारस्परिक उत्तरदायित्व तथा सम्मान के, आशक्ति और आत्म सन्तोष के मानव तथा दिव्य प्रेरणाओं के विस्मयोत्पादक संयोग को, जिसका नाम सच्चा विवाह है, नहीं जानते।

एक-दूसरे की सहायता करते हुए, कष्टों को दूर करते हुए आर्थिक पूर्णता की ओर चलने से ही पारस्परिक सन्तोष प्राप्त होता है। मनु ने लिखा है कि जिस परिवार में पति और पत्नी सन्तुष्ट रहते हैं, वहाँ नित्य ही कल्याण होता रहता है। जहाँ स्त्रियों की पूजा है वहाँ देवताओं का वास होता है और जहाँ उनका सत्कार नहीं होता वहाँ की प्रत्येक क्रिया निष्फल होती है। जिस कुल की स्त्रियों में शोक होता है अर्थात् जिस कुल में स्त्रियाँ सताई जाती हैं, शोकातुर, दुःखी, संतप्त रहती हैं, वह कुल नष्ट हो जाता है। स्त्रियाँ घर की लक्ष्मी हैं। जहाँ वे प्रसन्न रहती हैं, उस कुल की निरन्तर वृद्धि होती है। पति को पत्नी का तथा पत्नी को पति के सुखवर्द्धन का प्रयत्न करना चाहिये।

झगड़ों का निपटारा शीघ्र करें

पति-पत्नी के झगड़े कभी-कभी थोड़ी-थोड़ी बात में हो जाया करते हैं। छोटे-छोटे झगड़े यदि शान्त न किये जायँ, तो विकट रूप ले लेते हैं। प्रायः पति मन ही मन अपने को बड़ा समझता रहता है। कलह होने पर वह सोचता है कि पत्नी को स्वयं उसे मनाना चाहिए, क्षमा-याचना करनी चाहिए। इसी प्रकार पत्नी का अहं कहता है कि वह पति को प्रेम करती है। पति उसे मनाते, वह क्यों माँफी माँगे—ये दोनों ही दृष्टिकोण व्यर्थ और थोथे हैं। अतएव हर दृष्टि से त्याज्य है।

कभी-कभी पति को पत्नी के, पत्नी को पति के चरित्र पर सन्देह हो जाता है। भ्रम और सन्देह के जड़ पकड़ते ही गलतफहमी बढ़ती है। कालान्तर में वह एक जटिल मानसिक ग्रन्थि बन जाती है। गलतफहमी के कारण अनेक पति पत्नियों की हत्या कर डालते देखे गये हैं। चरित्र पर किया गया सन्देह अनेक बार झूठा सिद्ध होता है। पति-पत्नी को चाहिए कि खुल कर उसका निवारण कर लें। जो दोषी हो दूसरे से माँफी माँग ले। कलह और मनमुटावों को जल्दी से जल्दी तोड़ देने को प्रस्तुत रहना चाहिए। यदि पति-पत्नी में सच्चाई, ईमानदारी, एक दूसरे के प्रति वफादारी का भाव है, तो वे अवश्य अपने झगड़ों का का निवारण कर लेंगे। अपना दृष्टिकोण एक दूसरे के प्रति उदार, सहानुभूतिपूर्ण एवं कोमल रखिए। दूसरे शब्दों में एक दूसरे के लिए त्याग करने के लिए तैयार रहिए। एक दूसरे के सुख-दुःख में साथ देना, झगड़ों को निपटाना, अवगुणों को दूर करना प्रेम का एक आवश्यक अंग है।

स्त्रियों का अहं बड़ी जल्दी घायल होता है। तनिक सी बात उनके मन में लग जाती है। स्वभावतः कोमल, लज्जाशील, सुकुमार होने के कारण वे जरा सी तिरछी बात में बुरा मानने, रूठने और नाराज होने को तैयार रहती हैं। उनकी पसन्द तथा आपकी पसन्द में अन्तर रहता है। संभव है जो बातें आपको प्रिय लगें, जो आपकी दिलचस्पी के विषय हों, उनमें वे तनिक भी दिलचस्पी न लें।

मनोविज्ञान का यह अटल सिद्धान्त है कि बिना चाही हुई राय, आचरण योग्य बातें, शिक्षायें, सम्मतियाँ, योजनाएँ, आलोचनाएँ दूसरा व्यक्ति पसन्द नहीं करता, चाहे वे कितनी ही श्रेष्ठ क्यों न हों। दूसरों की योजना या राय स्वीकार करने में हमारे 'अहं' भाव को चोट लगती है और हम हेठी समझते हैं। अपनी पराजय का भाव किसी को पसन्द नहीं आता।

अतएव कलह दूर करने के लिए आप सावधान रहिये। यदि आप पत्नी के कामों में अधिक हस्तक्षेप करेंगे या पत्नी पति के कार्यों में अनावश्यक टीका-टिप्पणी करेगी, तो उत्तेजना उत्पन्न होगी। तब पति उत्तेजित हो तो पत्नी को और जब पत्नी उग्र हो तो पति को पूर्ण शान्ति, सहानुभूति और सहनशीलता का परिचय देना चाहिए। दो गर्म या तीखी बात आपका जीवन-साथी कह दे तो उसे सहन करने में ही भलाई है। पति-पत्नी के जीवन में सहिष्णुता का मूल्य अत्यधिक है। सहन कीजिए, उखड़िये मत। यदि क्रोध, ईर्ष्या, नाराजगी के भाव को सहन कर कुछ दिन व्यतीत होने दिया जाय, तो समय के प्रभाव पुराने घाव स्वयं अच्छे हो जाते हैं। कटुता घुल जाती है। तनिक सोचकर देखिये, नाराज होने वाली आखिर आपकी पत्नी ही तो है। वह आपको प्रेम करती है, दिन-रात सेवा में जुटी रहती है, आपके बच्चों का पालन-पोषण, शिक्षण इत्यादि करती है यदि वह कुछ कह ही बैठी या उत्तेजना में नाराज हो गई तो लौटकर उसे अपशब्द कहना, मारपीट बैठना, मानहानि करना कैसा अविवेकपूर्ण कार्य है ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसी प्रकार पत्नी को यह स्मरण रखना चाहिए कि पति उसके तथा बाल-बच्चों की उदर पूर्ति के लिये दिन-रात खून-पसीना एक करके कड़ा परिश्रम करता है, संसार के अनेक संघर्षों को झेलता है, दफ्तर में बीस बाबू खरी-खोटी सुनता है, यदि वह नाराज होकर कुछ कह बैठे तो इसमें उलट कर नाराज होने की कौन-सी बात है ? पत्नी का प्रेम, मृदुलता, सौहार्द्र, सहानुभूति, सज्जनता वे गुण हैं, जिनसे उसका क्रोध स्वयं विलुप्त हो जायगा।

पाणिग्रहण के प्रथम मंत्र से ही स्त्रियों को यह उपदेश दिया जाता है कि वह गृहस्थ धर्म को अच्छी तरह प्रतिपालित करे और पाणिग्रहण करने वाले व्यक्ति के साथ इस संसार में सुख-सौभाग्य की वृद्धि करे। दूसरे मन्त्र का तात्पर्य यह होता है कि पति के घर जाकर अपने क्रोध एवं अमर्ष की संचित वासनाओं को जलाकर दूर कर दें, कभी भूलकर भी क्रोध, ईर्ष्या की दृष्टि से पति के प्रति या पति के स्वजनों के प्रति न देखें, प्रतिकूल आचरण न करें। ऐसा व्यवहार करें कि पति, पड़ौसी, सम्बन्धी यहाँ तक कि पशु आदि की भी मंगलकारिणी बने, क्योंकि पशु ही गृहस्थ पति के घर के सौभाग्यवर्द्धक एवं प्रतिष्ठा के सूचक हैं। नवोढ़ा में यही भावना होनी चाहिये। तीसरे मंत्र में पारिवारिक कठिनाइयों पर पति के साथ मनोयोगपूर्वक सहयोग का संकेत है। एक मन्त्र का संक्षेप में तात्पर्य इस प्रकार है—

"प्रियतमे ! तुम्हें मैं केवल अपने सुख भोग और सेवा के लिए नहीं वरण कर रहा हूँ। तुम मेरे पिता की सेवा करना, मेरी माता-बहिन तथा भाइयों की सुख-सुविधा का भी तुम्हें ध्यान रखना होगा।"

पूर्व काल में स्वार्थत्याग और सेवा का भाव कैसा महत्त्वपूर्ण था, यह उपरोक्त मंत्रों से विदित हो जाता है। इस पुनीत कर्त्तव्यक्षेत्र में कलह, क्लेश, ईर्ष्या, द्वेष के लिए स्थान नहीं होना चाहिए।

पत्नी को चाहिए कि प्रेमिका के रूप में पति से व्यवहार करे। आजकल दाम्पत्य जीवन में जो विषमता और असन्तोष दिखाई देता है उसका कारण यही है कि पति-पत्नी के मध्य वैसा निस्वार्थ, सेवामय, त्यागपूर्ण, प्रेम-पूर्ण व्यवहार नहीं होता जो विवाहोपरान्त कुछ वर्ष तक रहता है। स्त्री प्रेम की देवी है। उसका जीवन प्रेम से ही है। पुरुष बाह्य जगत में उलझा रहता है। वह विशुद्ध भाव से अनुरक्त पत्नी के लिए संसार के सब कष्टों को उसके प्रेम के लिए सहन करता है। अतः सब प्रकार के झगड़ो, मनोमालिन्य और कलह से प्रेमपूर्ण सहानुभूति से ही काम लेकर एक दूसरे की गलतफहमी दूर करनी चाहिए।

अपने हृदय को विशाल कीजिए और ईर्ष्या, क्रोध, द्वेष, संदेह से ऊपर उठिये। विवाहित जीवन एक समझौता है। क्रोध और ईर्ष्या से वह संकुचित होता है। अतएव दूसरों की बुराई देखना, चुगली करना, गुप्तरीति से चरित्रहीनता की चर्चा, पतन या गिरावट में प्रसन्नता इत्यादि दुर्गुणों को त्याग दीजिए। पतित व्यक्ति की टीका-टिप्पणी से आपको कोई लाभ नहीं हो सकता, केवल संकीर्णता ही उत्पन्न होती है। अतः परिवार के अन्य व्यक्तियों तक की बातें स्वीकार करते हुए दूसरों के विचारों एवं भावों की रक्षा करते हुए, सहनशीलता का परिचय देना चाहिए। पतियों को सहनशीलता का पालन करना चाहिए। यदि कभी उग्र बातें भी हो जायँ, तो व्यर्थ मानसिक क्लेश बढ़ाने से कोई लाभ नहीं है। छोटे-छोटे झगड़े तो चुप रहने और थोड़े समय के प्रवाह से स्वयं विलुप्त हो जाते हैं।

सास-बहू के झगड़े—बहुसंख्यक परिवारों में सास-बहू के झगड़े चल रहे हैं। इसके अनेक कारण हैं। सास-बहू को अपने नियन्त्रण में रखकर अनुशासन करना चाहती है। अपनी आज्ञानुसार उससे कार्य कराना चाहती है। कभी-कभी वह अपने पुत्र को बहका कर बहू की मरम्मत कराती है। प्रायः देखा गया है कि जहाँ कोई पुरुष स्त्री को कष्ट देता है, तो उसके मध्य में अवश्य कोई स्त्री सास, ननद या जिठानी रहती है। स्त्रियों में ईर्ष्या भाव अत्यधिक होता है। बहू का व्यक्तित्व प्रायः लुप्त हो जाता है तथा उसे रौरव (नर्क) की यन्त्रणाएँ सहन करनी पड़ती हैं।

कहीं पर पति बहू के इंगित पर नृत्य करता है और उसके भड़काने से वृद्धा सास पर अत्याचार करता है। वृद्धा से कठिन कार्य कराया जाता है। वह धुँए में परिवार के निमित्त भोजन व्यवस्था करती है, जबकि बहू सिनेमा देखने या टहलने के लिए जाती है।

ये दोनों ही सीमाएँ निंद्य हैं। सास बहू के सम्बन्ध पवित्र हैं। सास स्वयं बहू को देखने के लिए लालायित रहती है। उसके लिए वह दिन बड़े गौरव का होता है, जब घर बहूरानी के पदार्पण से पवित्र होता है। उसे उदार, स्नेही, बड़प्पन से परिपूर्ण होना चाहिए। बहू की सहायता तथा पथ-प्रदर्शन के लिए कार्य करना चाहिए। छोटी-मोटी भूलों को सहृदयता से माफ कर देना चाहिए। इसी प्रकार बहू को सास में अपनी माता के दर्शन करने चाहिए और उसकी वही प्रतिष्ठा करनी चाहिए, जो वह अपनी माता की करती रही है। यदि पुरुष माता को माता के स्थान पर पूज्य माने और पत्नी को पत्नी के स्थान पर जीवन सहचरी, मिष्ठभाषिणी, प्रियतमा माने तो ऐसे संकुचित झगड़े बहुत कम उत्पन्न होंगे।

ऐसे झगड़ों में पुत्र का कर्त्तव्य बड़ा कठिन है। उसे माता की मान-प्रतिष्ठा का ध्यान रखना और पत्नी के गर्व तथा प्रेम की रक्षा करनी है। अतः उसे पूर्ण शान्ति और सहृदयता से कर्त्तव्य भावना को ऊपर रखकर ऐसे झगड़ो को शान्त करना उचित है। किसी को भी अनुचित रीति स दबा कर मानहानि न करनी चाहिए। यदि पति कठोर,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उग्र, लड़ने वाले स्वभाव का है, तो पारिवारिक शान्ति और समृद्धि भंग हो जायेगी। प्रेम और सहानुभूति से दूसरों के दृष्टिकोण को समझकर बुद्धिमत्ता से अग्रसर होना चाहिए।

ननद-भौजाई के झगड़े—प्राय: देखा जाता है कि जहाँ ननदें अधिक होती हैं या विधवा होने के कारण मायके में रहती हैं, वहाँ बहू पर बहुत अत्याचार होते हैं। ननद-भाभी के विरुद्ध अपनी माता के कान भरती है और भाई को भड़काती है। इसका कारण यह है कि बहिन भाई पर अपना पूर्ण अधिकार समझती है और अपने गर्व, अहं और व्यक्तित्व को अन्यों से ऊपर रखना चाहती है। भाई यदि अदूरदर्शी होता है, तो बहिन की बातों में आ जाता है और बहू अत्याचार का शिकार बनती है।

इन झगडों में पति को चाहिए कि पृथक्-पृथक् अपनी बहिन और पत्नी को समझा दे और दोनों के स्वत्व तथा अहं की पूर्ण रक्षा करे। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से दोनों का अध्ययन कर परस्पर मेल करा देना ही उचित है। मेल कराने के अवसरों की ताक में रहना चाहिए। दोनों को परस्पर मिलने, बैठने, साथ-साथ टहलने जाने, एक-सी दिलचस्पी विकसित करने का अवसर प्रदान करना उचित है। यह नहीं होना चाहिए कि पत्नी ही दोनों समय भोजन बनाती, झूठे बर्तन साफ करती, जिठानी के बच्चों को नहलाती-धुलाती, आटा पीसती, कपड़े धोती, दूध पिलाती या झाड़ू-बुहारी का काम करती रहे। चतुर पति को चाहिए कि काम का बँटवारा कर दे। पत्नी को कम काम मिलना चाहिए क्योंकि उसके पास बच्चे भी पालने के लिए हैं। यदि कोई बीमार पड़ेगा, तो उसे उसका कार्य भी करना होगा।

वृद्धों का चिड़चिड़ापन और परिवार के अन्य व्यक्ति—प्राय: देखा गया है कि आयु वृद्धि के साथ-साथ वृद्ध चिड़चिड़े, नाराज होने वाले, सनकी, क्रोधी और सठिया जाते हैं। वे तनिक-सी असावधानी से नाराज हो जाते हैं और कभी-कभी अपशब्दों का भी उच्चारण कर बैठते हैं। ऐसे वृद्ध क्रोध के नहीं, हमारी दया और सहानुभूति के पात्र हैं और हमें उनके साथ वही आचरण करना उचित है, जैसा बच्चों के साथ। उनकी विवेकशील योजनाओं तथा अनुभव से लाभ उठाना चाहिए और उनकी मूर्खताओं को उदारतापूर्वक क्षमा करना चाहिए।

वृद्धो को परिवार के अन्य व्यक्तियों के प्रेम और सहयोग की आवश्यकता है। हमें उनसे प्रीति करना, जितना हो सके आज्ञा पालन, प्रतिष्ठा, उनके स्वास्थ्य का संरक्षण ही उचित है। खाने के लिए, कपड़ों के लिए तथा थोड़े से आराम के लिए वह परिवार के अन्य व्यक्तियों की सहानुभूति की आकांक्षा करता है। उसने अपने यौवन काल में परिवार के लिए जो श्रम और बलिदान किए हैं, अब उसी त्याग का बदला हमें अधिक से अधिक देना उचित है।

परिवार के संचालन की कुंजी उत्तम संगठन है। प्रत्येक व्यक्ति यदि सामूहिक उन्नति में सहयोग प्रदान करे, अपने श्रम से अर्थ संग्रह करे, दूसरों की उन्नति में सहयोग प्रदान करे, सब के लिए अपने व्यक्तिगत स्वार्थों का बलिदान करता रहे, तो बहुत कार्य हो सकता है।

स्वस्थ दृष्टिकोण—दूसरों के लिए कार्य करना, अपने स्वार्थों को तिलांजिल देकर दूसरों को आराम पहुँचाना सृष्टि का यही नियम है। कृषक हमारे निमित्त अनाज उत्पन्न करता है, जुलाहा वस्त्र बुनता है, दर्जी कपड़े सींता है, राजा हमारी रक्षा करता है। हम अकेले सब काम नहीं कर सकते हैं। मानव-जाति में पुरातन काल से पारस्परिक लेन-देन चला आ रहा है। परिवार में प्रत्येक सदस्य को इस त्याग, प्रेम, सहानुभूति की नितान्त आवश्यकता है। जितने सदस्य हैं सबको आप प्रेम-सूत्र में आबद्ध कर लीजिए। प्रत्येक का सहयोग प्राप्त कीजिए, प्यार से उनका संगठन कीजिए।

इस दृष्टिकोण को अपनाने से छोटे-बड़े सभी झगड़े नष्ट होते हैं। अक्सर छोटे बच्चों की लड़ाई बढ़ते-बढ़ते बड़ों को दो हिस्सों में बाँट देती है। पड़ौसियों में बच्चों की लड़ाइयों के कारण युद्ध ठन उठता है। स्कूल में बच्चों की लड़ाई घरों में घुसती है। कलह बढ़कर मारपीट और मुकदमेबाजी की नौबत आती है। उन सबके मूल में संकुचित वृत्ति, स्वार्थ की कालिमा, व्यर्थ वितंडावाद, दुरभिसन्धि इत्यादि दुर्गुण सम्मिलित हैं।

हम मन में मैल लिए फिरते हैं और इस मानसिक विष को प्रकट करने के लिए अवसरों की प्रतीक्षा में रहते हैं। झगड़ालू व्यक्ति जरा-जरा सी बातों में झगड़ों के लिए अवसर ढूँढ़ा करते हैं। परिवार में कोई न कोई ऐसा झगड़ालू व्यक्ति जिद्दी बच्चा होना साधारण-सी बात है। इन सब को भी विस्तृत और सहानुभूति के दृष्टिकोण से ही निरखना चाहिए।

हमें एक दूसरे के भावों, दिलचस्पी, रुचि, दृष्टिकोण, स्वभाव, आयु का ध्यान रखना अपेक्षित है। किसी को वृथा सताना या उससे अधिक कार्य लेना बुरा है। उद्धत स्वभाव का परित्याग कर प्रेम और सहानुभूति का व्यवहार करना चाहिए। कुटिल व्यवहार के दोषों से जैसे अपना आदमी पराया हो जाता है, अविश्वासी और कठोर बन जाता है, वैसे ही मृदुल व्यवहार से कट्टर शत्रु भी मित्र हो जाता है।

विश्व में साम्यवाद को परिपुष्ट करने के लिए परिवार ही से श्रीगणेश करना उचित है। न्याय से मुखिया को समान व्यवहार करना चाहिए।

परिवार के युवक तथा उनकी समस्याएँ—प्राय: युवक स्वच्छन्द प्रकृति के होते हैं और परिवार के नियन्त्रण में नहीं रहना चाहते। वे उच्छृंखल प्रकृति के पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित, हलके रोमांस के वशीभूत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होकर पारिवारिक संगठन से दूर भागना चाहते हैं। यह बड़े परिताप का विषय है।

युवकों के झगड़ों के कारण हैं—१-अशिक्षा, २-कमाई का अभाव, ३-प्रेम सम्बन्धी अड़चनें-घर के सदस्यों की रूढ़िवादिता और युवकों की उन्मुक्त प्रकृति, ४-कुसंग, ५-पत्नी का स्वच्छन्दता प्रिय होना तथा पृथक घर में रहने की आकांक्षा, ६-विचार सम्बन्धी पृथकता-पिता का पुरानी धारा के अनुकूल चलना, पुत्र का अपने अधिकारों पर जमे रहना, ७-जायदाद सम्बन्धी बँटवारे से झगड़े। इन पर पृथक-पृथक विचार करना चाहिए।

यदि युवक समझदार और कर्त्तव्यशील है, तो झगड़ों का प्रसंग ही उपस्थिति न होगा। अशिक्षित, अपरिपक्व युवक ही आवेश में आकर बहक जाते हैं और झगड़े कर बैठते हैं। एक पूर्ण शिक्षित युवक कभी पारिवारिक विद्वेष या कलह में भाग न लेगा। उसका विकसित मस्तिष्क इन सबसे ऊँचा उठ जाता है। वह जहाँ अपना अपमान देखता है, वहाँ स्वयं ही हाथ नहीं डालता।

कमाई का अभाव झगड़ों का एक बड़ा कारण है। निखट्टू पुत्र परिवार में सब की आलोचना का शिकार होता है। परिवार के सभी सदस्य उससे यह आशा करते हैं कि वह परिवार की आर्थिक व्यवस्था में अधिक हाथ बँटायेगा। जो युवक किसी पेशे या व्यवसाय के लिए प्रारम्भिक तैयारी नहीं करते, वे समाज में 'फिट' नहीं हो पाते। हमें चाहिए कि प्रारम्भ से ही घर के युवकों के लिए काम तलाश करलें, जिससे बाद में जीवन-प्रवेश करते समय कोई कठिनाई उपस्थित न हो। संसार कर्मक्षेत्र है। यहाँ हम में से प्रत्येक को अपना कार्य समझना तथा उसे पूर्ण करना है। हम में जो प्रतिभा, बुद्धि, अज्ञात शक्तियाँ हैं, उन्हें विकसित कर समाज के लिए उपयोगी बनना चाहिए।

जरमी टेलर कहते हैं—"जीवन एक बाजी के समान है। हार-जीत तो हमारे हाथ में नहीं है, पर बाजी का ठीक तरह से खेलना हमारे हाथ में है। यह बाजी हमें बड़ी समझदारी से, छोटी-छोटी भूलों से बचते हुए निरन्तर आत्म-विकास और मनोवेगों का परिष्कार करते हुए करनी चाहिए।

बट्रैण्ड रसेल ने लिखा है—"इस जगत् में सब से बड़ी तारीफ की बात यह है कि जिन लोगों में स्वाभाविक शक्ति की न्यूनता रहती है, यदि वे उसके लिए सच्चा साधन और अभ्यास करें, तो परमेश्वर उन पर अनुग्रह करता है।" वर्गसां ने भी निर्देश किया है—"युवा पुरुष बहुत से अंशों में जो होना चाहे हो सकते हैं।" मैक्सिम गोर्की ने कहा है—"जीवन में शारीरिक और मानसिक परिश्रम के बिना कोई फल नहीं मिलता। दृढ़ चित्त और महान उद्देश्य वाला मनुष्य जो चाहे कर सकता है।"

प्रतिभा की वृद्धि कीजिए, आपको नौकरी, रुपया, पैसा, प्रतिष्ठा और आत्म सम्मान प्राप्त होगा। उसके अभाव में आप निखट्टू बने रहेंगे। प्रतिभा आपके दीर्घकालीन अभ्यास, सतत् परिश्रम, अध्यवसाय, उत्तम स्वास्थ्य पर निर्भर है। प्रतिभा हम अभ्यास और साधन से प्राप्त करते हैं। मनुष्य की प्रतिभा स्वयं उसी के संचित कर्मों का फल है। अवसर को हाथ से न जाने दें, प्रत्येक अवसर का सुन्दर उपयोग करें और दृढ़ता, आशा और धीरता के साथ उन्नति के पथ पर अग्रसर होते जायँ। स्वसंस्कार का कार्य इसी तरह सम्पन्न होगा।

पिता के प्रति पुत्र के तीन कर्त्तव्य हैं—१-स्नेह, २-सम्मान तथा आज्ञा पालन। जिस युवक ने पिता, प्रत्येक बुजुर्ग का आदर करना सीखा है, वही आत्मिक शान्ति का अनुभव कर सकता है।

परिवार से युवक का मन तोड़ने में विशेष हाथ पत्नी का होता है। उसे अपने 'स्व' का बलिदान कर सम्पूर्ण परिवार की उन्नति का ध्यान रखना चाहिए। समझदार गृहिणी समस्त परिवार को सम्हाल लेती है।

आज के युवक-प्रेम-विवाह से प्रभावित हैं। जिसे प्रेम-विवाह कहा जाता है, वह क्षणिक वासना का तांडव, थोथी समझ की मूर्खता, अदूरदर्शिता है। जिसे ये लोग प्रेम समझते हैं, वह वासना के अलावा और कुछ नहीं होता। उसका उफान शान्त होते ही प्रेम-विवाह टूक-टूक हो जाता है। चुनावों में भारी भूलें मालूम होती हैं। समाज में प्रतिष्ठा का नाश हो जाता है। ऐसे व्यक्ति को सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है।

अनेक पुत्र विचारों में विभिन्नता होने के कारण झगड़ों का कारण बनते हैं। सम्भव है युवक पिता से अधिक शिक्षित हो। किन्तु पिता को अनुभव अपेक्षाकृत अधिक होता है। पुत्र को उदारतापूर्वक अपने विचार पिता के समक्ष रखने चाहिए और उनसे आवश्यक परामर्श करना चाहिए।

दाम्पत्य मनोरंजन

पति-पत्नी का सम्बन्ध केवल शारीरिक ही नहीं, मानसिक भी होता है। मानसिक क्षुधा के निवारण के लिए मनोरंजन की आवश्यकता है। जब आप एकान्त में रहते हैं, तो क्या बातें करते हैं ?

पति को सबसे अधिक आवश्यकता पत्नी के द्वारा किये गये मनोरंजन की होती है। एक अँग्रेज लेखक ने लिखा है कि उसने निश्चय कर रखा था कि मैं तब तक विवाह न करूँगा, जब तक मुझे रसिक पत्नी न मिलेगी। स्त्री के लिए हँसमुख तथा रसिक होना सुन्दर होने की अपेक्षा कई गुना अधिक अच्छा है। जो स्त्री या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुरुष रसिक, आमोदप्रिय, आनन्दी स्वभाव के हैं, वे अपनी गरीबी में भी विवाहित जीवन का आनन्द लूटते हैं।

लड़की के विवाहित जीवन का सुखमय या दु:खमय होना इस तत्व पर निर्भर करता है कि उसमें रसिकता, आमोद-प्रमोद, आशावादिता है या नहीं ? यदि वह अपने पति को एक बहुत ही हँसाने वाले, हँसा-हँसा कर लोट-पोट करने वाले के रूप में देख सकती है, तो समझ लो कि उसका दाम्पत्य जीवन सुखमय होगा। गृहस्थी को नष्ट करने वाली स्त्रियाँ प्राय: वे होती हैं, जो पति की प्रत्येक बात को गम्भीरता से देखती हैं, जो जब कभी भी उनके पति की दृष्टि किसी दूसरी स्त्री पर पड़ जाय या जब वह नियत समय पर घर न पहुँचे तत्काल लड़ना प्रारम्भ कर देती हैं या पति के उनकी कोई चीज लाना भूल जाने पर रोने लगती हैं। इसके विपरीत हँसमुख प्रकृति की स्त्रियाँ वृद्धावस्था तक जीवन का आनन्द लेती हैं।

ऐसे अवसर ढूँढ़िये जिसमें आपको एक दूसरे से मनोरंजन करने का अवसर प्राप्त हो। सायंकाल दोनों हवाखोरी को जाइये और अपने हृदयों के भार को हल्का करते चलिये। भावी जीवन की आनन्ददायक कल्पनाओं में बड़ा रस और आनन्द आता है। यह गम्भीरता का समय नहीं है। अपने दफ्तर की चिन्ताओं को छोड़ कर हँसी-खुशी के दो क्षण व्यतीत कीजिये। उद्यान में, नदी के तट पर प्रात:-सायंकाल टहलने से न केवल स्वास्थ्य ही बनता है प्रत्युत जीवन में रस और ताजगी आती है।

जो दम्पत्ति संगीत में निपुण हैं, उन्हें संगीत द्वारा मन में उल्लास उत्पन्न करना चाहिये। ताश खेलिए, कैरम शुरू कीजिए, चौपड़ या घर के कोई खेल ले सकते हैं। बच्चों में दिलचस्पी लीजिए। अखबार पढ़ कर सुनाइए जिससे एक दूसरे का मनोरंजन हो सके। कहानी, कविता, उपन्यास इत्यादि एक दूसरे को पढ़ कर सुनाइए। कभी-कभी सम्मिलित रूप में सिनेमा भी देखने जा सकते हैं। छोटी-छोटी यात्राएँ मनोरंजन की वृद्धि करती हैं। भोजन पकाने मे दिलचस्पी लेकर आप पत्नी को प्रोत्साहित कर सकते हैं। सम्मिलित चाय मिष्ठान्न या फल खाना सुन्दर है। यथासम्भव एक-दूसरे की आवश्यकताएँ देखकर मनोरंजन की योजना बनानी चाहिए। कला, साहित्य, शिल्प बागवानी, छोटे जानवर पालकर, घर में अच्छी-अच्छी तरकारियाँ, सलाद, मिठाइयाँ बनाकर नए-नए स्थानों की सम्मिलित सैरकर जीवन में सरसता का संचार किया जा सकता है। प्रति वर्ष कुछ धन संचित कर नए-नए स्थानों पर भ्रमण करने की योजना रखनी चाहिए। सप्ताह में इतवार की छुट्टी घर से बाहर किसी सुन्दर प्राकृतिक स्थान पर व्यतीत की जा सकती है।

कुछ व्यक्तियों में यह गलत धारणा बैठ गई है कि काम-सेवन ही दाम्पत्य जीवन का मुख्य मनोरंजन है। विवाह को काम सेवन का पासपोर्ट समझना महा अनर्थकारी विचार है। काम सेवन की मर्यादाएँ निश्चित होनी चाहिए और कम से कम इस ओर प्रवृत्त होना चाहिए।

काम वासना स्त्री-पुरुष के पारस्परिक आकर्षण का एक मनोवैज्ञानिक कारण है। पति-पत्नी जितना कम संभोग करते हैं, उतना ही उनका एक दूसरे के प्रति आकर्षण बना रहता है। प्रतिदिन सम्भोग का आनन्द लूटने वाले उस आकर्षण को नष्ट कर देते हैं, जो नियन्त्रित जीवन द्वारा प्राप्त होता है।

काम वासना की पूर्ति के पश्चात् व्यक्ति को मालूम होता है कि क्षणिक समागम के लिए उसने अपने जीवन का सार तत्व बहुमूल्य वीर्य नष्ट कर दिया है। अधिक वीर्यपात का अर्थ अनेक घृणित रोग होते हैं। ऐसा व्यक्ति वेश्यागामी बन जाता है और नपुसंकता, बहुमूत्र, गर्मी, सुजाक, कब्ज, प्रमाद तथा अन्य गन्दे रोगों का शिकार बन अल्पायु में ही काल-कलवित होता है। इस गन्दे मनोरंजन के प्रति सचेत रहना चाहिए।

भगवान् का भजन, पूजन, कीर्तन, गायन, वादन, कविता पाठ, नृत्य, भ्रमण, घरेलू कार्यों में मनोरंजन के आनन्द लिये जा सकते हैं। अपने बच्चों, भाई-बहिनों के साथ खेल कूदकर मन बहलाव किया जा सकता है।

उपयोगी मनोरंजन

हमारे परिवारों में आमोद-प्रमोद का कोई विशेष ध्यान नहीं रखा जा रहा है, फलत: वह दु:ख से भरे हैं। हम अपने परिवार से अनेक प्रकार के काम तो चाहते हैं, उसके लिए पुन:-पुन: उनसे कहते हैं, किन्तु हम यह नहीं सोचते कि परिवार में मनोरंजन के कितने साधन हमने एकत्र किये हैं। सौ में अस्सी प्रतिशत परिवार अशिक्षा के अन्धकार में डूबे हैं। उनमें आमोद-प्रमोद की आवश्यकता ही अनुभव नहीं की जाती। जिन परिवारों में आमोद-प्रमोद का ध्यान नहीं दिया जाता, वहाँ के व्यक्तियों का जीवन बड़ा शुष्क और व्यस्त रहता है। वहाँ के व्यक्ति अल्पायु होते हैं।

अन्न-जल की तरह प्रफुल्लता-सरसता भी जीवन के सम्यक् संचालन हेतु आवश्यक है। इन्हें भी नियमित आहार जैसा ही अनिवार्य मानना चाहिए। इनके अभाव में जीवन शुष्क और बोझिल बन जाता है। इसलिए प्रत्येक परिवार के प्रधान सदस्यों को परिवारिक आमोद-प्रमोद की व्यवस्था हेतु भी निरन्तर सजग-तत्पर रहना चाहिए।

आज सामान्यत: पारिवारिक मनोरंजन का एकमेव माध्यम सिनेमा रह गया है। किन्तु वस्तुत: सिनेमा स्वस्थ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनोरंजन अभी नहीं बन सका है और वह भौंड़ा, स्तरहीन, आर्थिक दृष्टि से महँगा तथा मानसिक-बौद्धिक दृष्टि से हानिकर व दूषित माध्यम है। हमारी अधिकांश वर्तमान फिल्ममेकर विषाक्त, विसंगत, विकृत एवं विचित्र कथानकों तथा दृश्यों का एक बेतुका संग्रह भर होती हैं। वे दर्शकों के मस्तिष्क पर न केवल उत्तेजक, अवांछित प्रभाव डालती हैं, अपितु ये चिन्तन-शक्ति और विवेक-बुद्धि को भी दुर्बल बनाने वाली प्रेरणाओं से भरी होती हैं किन्तु हमारे परिवारों में आजकल मनोरंजन की व्यवस्था न किये जाने के कारण फिल्में ही आमोद-प्रमोद का सर्वमान्य माध्यम बन चली हैं। जबकि यह मनोरंजन परिवार और समाज को पतन एवं विनाश के ही पथ पर ढकेलता है। अत: परिवार निर्माण के लिए स्वस्थ मनोरंजन की व्यवस्था करने में चूकना न चाहिए।

मनोरंजन के सामान्य सिद्धान्तों को समझ लेना आवश्यक है। शारीरिक श्रम की प्रधानता वाले व्यवसायों में लगे लोगों के लिए आमोद-प्रमोद के साधन मानसिक होने चाहिए, जबकि मानसिक श्रम की प्रधानता वाले लोगों को शारीरिक हलचलों वाले कार्यों खेल-कूद, दौड़-भाग, टहलना आदि को मनोरंजन के लिये अपनाना चाहिए।

दिन भर शरीर-श्रम कर, पसीना बहाकर आजीविका उपार्जन करने वाले मनोरंजन के ऐसे साधन चुनें जिससे उनके थके-माँदे शरीर को अधिक परिश्रम न करना पड़े। सर्वोत्तम तो यह कि ये लोग अवकाश का समय पुस्तकालय में बिताएँ, समाचार-पत्र, साप्ताहिक-मासिक पत्र-पत्रिकायें पढ़ें, नई-नई पुस्तकें पढ़ें तथा मनोरंजन के साथ ज्ञानवृद्धि भी करें।

इन दिनों सरकार प्रौढ़ शिक्षा को उचित महत्व दे रही है। श्रमिक, मिल-कर्मचारी, मिस्त्री, किसान, फुटकर व्यापारी जिन्हें शारीरिक भाग-दौड़ खूब करनी होती है, मनोरंजन के लिये प्रौढ़-शिक्षा योजना का भी लाभ उठायें। जो साक्षर हैं वे इसके द्वारा आगे ज्ञान-विकास करें। दूसरों को पढ़ायें। पढ़ाने के माध्यम इनमें औपचारिक पाठ्य पुस्तकों जैसे नहीं रखे जाते हैं, अपितु मनोरंजक ढंग से ही अनौपचारिक-शिक्षा पाठ्य-क्रम तैयार होता है। अत: उसे भी अपने मनोरंजन तथा विकास का एक साथ साधन बनाया जा सकता है। कविताएँ, गीत, दोहे, चौपाई, लोकगीत आदि सुलभ एवं सात्विक मनोरंजन है।

इनके सरस अंशों का उच्च-स्वर से पाठ करने से थकान और शुष्कता दोनों दूर हो जाते हैं।

लिखा-पढ़ी, क्लर्की, अफसरी करने वाले सायंकाल कुछ न कुछ खेलने की योजना बनायें। हाकी, फुटबाल, टेबिल-टेनिस, बेडमिंटन आदि जो भी रुचि हो, खेलें, टहलने जायें, भागें-दौड़ें, उछलें-कूदें, शारीरिक व्यायाम अवश्य करें।

सामूहिक मनोरंजन के लिए भोजन के उपरान्त रात्रि में पूरा परिवार एक साथ बैठे। एक व्यक्ति किसी स्वस्थ मनोरंजक पुस्तक, समाचार-पत्र, पौराणिक, धार्मिक ग्रन्थ आदि का उच्च स्वर से पाठ करे, अन्य सुनें। यह क्रम बदलता रहे। यदि सामर्थ्य हो, तो धीरे-धीरे करके घर में एक घरेलू पुस्तकालय खोल लिया जाय व अच्छे साहित्य का आनन्द लूटा जाय। उपयोगी पत्र-पत्रिकायें मँगाई जायें।

प्रयास यह रहना चाहिए कि प्रत्येक परिवार में कम से कम, महिला समस्याओं का सुगम संगीत का अभ्यास हो ही। हारमोनियम, सितार, तानपूरा, तबला, ढोलक जो भी वाद्ययन्त्र रुचे और सुलभ हो। उसी पर गाना चाहिए। अच्छी कवितायें गायीं जायँ। संगीत और वादन, मनोरंजन के श्रेष्ठ सात्विक साधन हैं। रेडियो से भी अच्छी धुनें सीखी जाती रह सकती हैं। एक रेडियो खरीद लेने की व्यवस्था करने का आजकल प्राय: प्रत्येक परिवार प्रयास करता है। इस रेडियो का उपयोग पूरी तरह किया जाये। मात्र फिल्मी गाने सुनते रहने से ही समय न खोया जाये। अपितु रेडियो-कार्यक्रमों को भरपूर उपयोग किया जाये, जिनसे कि मनोरंजन एवं जानकारी दोनों प्राप्त होते हैं। रेडियो में विविध शैक्षणिक, सांस्कृतिक कार्यक्रम रखे जाते हैं। महिलाओं और बच्चों के अलग-अलग कार्यक्रम भी होते हैं। इनसे सुरुचिपूर्ण मनोरंजन एवं जानकार की वृद्धि दोनों लाभ हुआ करते हैं।

स्त्रियों का जीवन अधिक बँधा हुआ है। अत: उनके लिए छुट्टियों, पिकनिक, सैर आदि की अत्यन्त आवश्यकता है। छुट्टी का दिन सदैव घर से बाहर बिताने का प्रबन्ध करना चाहिए। भोजन लेकर किसी उद्यान, झील, नदी तट, समीपस्थ जंगल या अन्य रमणीय प्राकृतिक स्थानों में जाया जाये। वन-संचार के सामूहिक कार्यक्रम भी रखे जा सकते हैं। शिविर-जीवन का अभ्यास नितान्त आवश्यक है। ऐसे भ्रमण से शरीर और मन, दोनों में नवीन स्फूर्ति का संचार होता है।कुछ लम्बी छुट्टियों में स्थान-परिवर्तन किया जाये। पर्यटन से स्वास्थ्य सँवरता है। प्रफुल्ल चित्त से घर-परिवार में नई ताजगी का संचार होता है। साप्ताहिक अवकाश के दिन भी भोजन के साथ ही खेलने का सामान साथ ले जाकर दिनभर का स्नान, भोजन, खेल संगीत, भ्रमण का कार्यक्रम रखा जा सकता है।

पर्वों-त्यौहारों का वर्तमान बोझिल रूप तो सर्वथा त्याज्य और परिवार के सदस्यों को उनका यही स्वरूप भी भली-भाँति ज्ञात हो चुका है। वर्षों का उल्लास और प्रेरणा के विशिष्ट अवसरों के रूप में ही मनाया जाना चाहिए, ताकि हृदय में उत्साह और मन में आह्लाद का संचार हो उठे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने मिशन के प्रत्येक सदस्य को विभिन्न संस्कार-आयोजनों तथा पर्वों को सर्वोत्कृष्ट रूप में मनाने की दिशायें प्राप्त हैं और ये आयोजन पारिवारिक एवं सामाजिक मनोरंजन तथा लोकशिक्षण के अनूठे माध्यम हैं। इनका समाज में सर्वत्र प्रचलन हो जाये, तो स्वस्थ्य मांगलिक मनोरंजन का अक्षय स्रोत ही सबके सामने खुल जाये और सिनेमा के विषाक्त मनोरंजन का आकर्षण भी उतना प्रबल तथा प्रभावकारी न रहे।

हर घर में विचार गोष्ठियों और छोटे आयोजनों का प्रचलन विस्तार हो। जन्मदिन, विवाह, पुंसवन, नामकरण अन्नप्राशन, मुण्डन, विद्यारम्भ जैसे परिवारिक संस्कारों का समुचित आयोजन हो, जप, हवन, सहगान, प्रवचन का क्रम चले तो प्रत्येक परिवार में श्रेष्ठ परम्पराओं की स्थापना का प्रकाश और प्रेरणा तो मिलेगी ही, उत्कृष्ट, सात्विक मनोरंजन की आवश्यकता भी पूरी होती चलेगी।

इसी प्रकार दीपावली, बसंतपंचमी, शिवरात्रि, होली, रामनवमी, गायत्री जयन्ती, गंगादशहरा, श्रावणी, कृष्णाष्टमी और विजयादशमी के पर्वों के सामूहिक आयोजन मनोरंजन एवं लोकशिक्षण की नई दिशाएँ उद्घाटित करने वाले सिद्ध होंगे। स्वस्थ, सुरुचिपूर्ण, सात्विक, आमोद-प्रमोद की व्यवस्था के अभाव में हमारा पारिवारिक जीवन शुष्क तथा बोझिल हो चला है। इस स्थिति में हम सबका पारिवारिक एवं सामाजिक भूमिका तथा दायित्व और अधिक महत्त्वपूर्ण हो उठा है। उसका निर्वाह करते हुए हम स्वयं को भी तथा औरो को भी आनन्द तथा नवीन शक्ति से भरते रह सकते हैं।

मित्रता की आवश्यकता एवं उसका निर्वाह

परिवार में अनेक ऐसी अड़चनें आती हैं जिनमें पड़ौसी तथा मित्रों की सहायता के बिना काम नहीं चलता। विवाह, जन्मोत्सव, प्रवास में जाने पर, बीमारी में, मृत्यु के दुःखद प्रसंगों मे, आर्थिक कठिनाइयों के मौकों पर तथा जटिल अवसरों पर राय लेने के लिए मित्रों की अतीव आवश्यकता है।

पर मित्र तथा उत्तम पड़ौसी का चुनाव बड़ा कठिन है। अनेक व्यक्ति आपसे अपना काम निकालने के स्वार्थमय उद्देश्य से मित्रता करने को उतावले रहते हैं किन्तु अपना कार्य निकल जाने पर कोई सहायता नहीं करते। अतः बड़ी सावधानी से व्यक्ति का चरित्र, आदतें, संग, शिक्षा इत्यादि का निश्चय करके मित्र का चुनाव होना चाहिए। आपका मित्र उदार, बुद्धिमान, पुरुषार्थ और सत्यपरायण होना चाहिए। विश्वासपात्र मित्र जीवन की एक औषधि है। हमे अपने मित्रों से यह आशा करनी चाहिए कि वे हमारे उत्तम संकल्पों को दृढ़ करेंगे तथा दोषो एवं त्रुटियों से बचावेंगे, हमारी सत्य, पवित्रता और मर्यादा को पुष्ट करेंगे। यदि हम कुमार्ग पर पाँव रखेंगे, तब हमें सचेत करेंगे। सच्चा मित्र एक पथ-प्रदर्शक, विश्वासपात्र और सच्ची सहानुभूति से पूर्ण होना चाहिए।

पं. रामचन्द्र शुक्ल मित्र का कर्तव्य बताते हुए लिखते हैं—"उच्च और महत्त्वपूर्ण कार्यों में इस प्रकार सहायता देना, मन बढ़ाना और साहस दिखाना कि तुम अपनी निज की सामर्थ्य से बाहर काम कर जाओ। यह कर्त्तव्य उसी से पूर्ण होगा, जो दृढ़ चित्त और और सत्य संकल्प का हो। हमें ऐसे ही मित्रों का पल्ला पकड़ना चाहिए, जिनमें आत्मबल हो, जैसे सुग्रीव ने राम का पल्ला पकड़ा था।"

मित्र हों तो प्रतिष्ठित और शुद्ध हृदय के हो, मृदुल और पुरुषार्थी हों, शिष्ट और सत्यनिष्ठ हों, जिससे हम अपने को उनके भरोसे पर छोड़ सकें और यह विश्वास कर सकें कि किसी प्रकार का धोखा न होगा। मित्रता एक नई शक्ति की योजना है। मार्कट्वेन ने कहा है—"आचरण, दृष्टान्त ही मनुष्य जाति की पाठशाला है, जो कुछ उससे सीख सकता है वह और किसी से नहीं।"

यदि आप किसी के मित्र बनते हैं तो स्मरण रखिये आपके ऊपर यही जिम्मेदारी आ रही है। आपको चाहिए कि अपने मित्र की विवेक-बुद्धि अन्तरात्मा को जाग्रत करें, कर्त्तव्य बुद्धि को उत्तेजना प्रदान करें और उसके लड़खड़ाते पाँवों में दृढ़ता उत्पन्न कर दें।

जीवन के आवश्यक कार्य—हमारे कर्म चार प्रकार के होते हैं।

(१) पशु तुल्य (२) राक्षस तुल्य, (३) सत्पुरुष तुल्य, (४) देव तुल्य। प्रत्येक व्यक्ति को अपने परिवार में कार्य करते समय इन पर दृष्टि डालनी चाहिए।

वे सब कार्य जिनमें बुद्धि का उपयोग न किया जाय, क्षणिक आवेग या प्रकृति के संकेत पर बिना जाने-बूझे कर डाले जायँ पशु तुल्य कार्य हैं। जैसे—भोजन, कामेच्छा की पूर्ति, गुस्से में मार बैठना, प्रसन्नता में वृथा फूल उठना। जीभ तथा वासनाजन्य सुख इसी श्रेणी में आते हैं।

स्वार्थ की पूर्ति के लिए जो कार्य किये जायँ, वे राक्षस जैसे कार्य होते हैं। राक्षस वृत्ति वाले पुरुष साम, दाम, दण्ड, भेद से अपना ही अपना भला चाहते हैं। दूसरों को मार कर स्वयं आनन्द में मस्त रहते हैं। उन्हें किसी के दुःख-तकलीफ, मरने-जीने से कोई सरोकार नहीं है। ऐसे अविवेकी माँस भक्षण, रति-प्रेम, व्यभिचार, चोरी, रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, गुप्त पाप किया करते हैं। 'खाओ-पीओ मौज उड़ाओ' यही उनका आदर्श है। दुर्भोग, व्यभिचार, माँस भक्षण, मद्यपान, भोग उनके आनन्द के ढग है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सत्पुरुष आज की आवश्यकताओं की पूर्ति करता, कल के लिए योजना बनाता, धन, अनाज, वस्त्र इत्यादि का संग्रह करता, अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान रखता, बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य और भावी उन्नति का विचार रखता है। वह पृथ्वी पर ही अपनी सद्भावनाओं तथा सद्इच्छाओं द्वारा स्वर्ग का निर्माण करता है। वह जानता है कि जीवन में धन सफलता की कसौटी नहीं है। धर्म ही वह साधन है जिसके द्वारा पुण्यजीविका एकत्र की जाती है।

वह पाप-जीविका, छल-जीविका, जुआ, सट्टा, भिक्षा, ब्याज से दूर रहता है। वह दूसरे को ठगने का प्रयत्न नहीं करता। उसकी जीविका उपार्जन का कार्य सद्उद्देश्य से होता है। सच्चाई और पुण्य की कमाई से खूब फूलता-फलता है। बुराई से खरीदी हुई प्रतिष्ठा क्षणिक होती है। यथाशक्ति वह दूसरों को दान-पुण्य से सहायता करता है। जीवन निर्वाह के बदले वह उचित सेवा भी करता है।

देव तुल्य जीवन का उद्देश्य त्याग तथा साधना द्वारा जन सेवा के कार्य हैं। यह सेवा शरीर, मन या शुभ विचारों के द्वारा हो सकती है। विश्व कल्याण के लिए जीने वाला व्यक्ति मनुष्य होते हुए भी देवता है। वह अपनी बुद्धि एवं ज्ञान को विश्वहित के लिए बलिदान करता है। ज्ञान चर्चा द्वारा वह दूसरों का मन भी उच्च विषयों की ओर फेरता है। उसकी दिनचर्या में उत्तम प्रवचनों का श्रवण, शंकानिवारण, पठन, चिन्तन, आत्मनिरीक्षण, निर्माण और उपदेश होते हैं। वह संसार की वासनाओं के ऊपर शासन करता है।

दाम्पत्य जीवन का सुख यों प्राप्त करें

दाम्पत्य जीवन में आपसी सम्यक बूझ और स्नेह प्रेम न हुआ, तो पारस्परिक क्लेश-कटुता बढ़ने लगते हैं और जीवन जल्दी ही नरक तुल्य बन जाता है। इस नारकीयता से त्राण पाने के लिए पति-पत्नी तलाक की आवश्यकता महसूस करते हैं और जिस जीवन की शुरूआत सुख-सृष्टि की अनन्त संभावनाओं के साथ हुई थी, वह अन्ततः दारुण दुःख के साथ बिखर जाता है। यहाँ कुछ आवश्यक ज्ञातव्य दिये जा रहे हैं, जिनका यदि दाम्पत्य जीवन में पालन किया गया, तो उनसे पति-पत्नी के बीच वास्तविक स्वर्ग-सृजन में सहायता मिल सकती है।

१. पति-पत्नी एक दूसरे को सच्चे हृदय के गहन तल से प्रेम करें। प्यार का अर्थ है प्रियजनों के दोष और त्रुटियों को क्षमा करते रहना। मत-भेद होने पर समझौता करें और गलतफहमी होने पर जल्दी से जल्दी उसे दूर करें। प्रेम मे अहंभाव को भुला देना चाहिए। क्षमाशीलता से सरसता पुनः आ जाती है।

२. पति-पत्नी परस्पर एक-दूसरे में अविचलित विश्वास रखें। दाम्पत्य जीवन में सन्देह के समान कोई बड़ा शत्रु नहीं है। मन को विषमय बनाने के लिए सन्देह से बढ़कर अन्य भावना नहीं है।

३. साथ-साथ रहें। सुख-दुःख में, संपद्-विपद में, हर्ष और आह्लाद में सदा एक-दूसरे के साथ रहें। जीवन में कष्ट आयें, तो साथ रहें, हर्ष के अवसर आयें, तो साथ ही हर्षित होकर खुशी मनावें। बीमारी में एक दूसरे का पूरा साथ दें। धर्म के सब कार्य हमारे यहाँ सम्मिलित मिलकर मनाने की प्रथा है। सम्मिलित दान, स्नान, यात्रा, कर्म इत्यादि से धर्म की सिद्धि मानी गई हैं। पति-पत्नी को चाहिए कि सब कामों में साथ-साथ रहें।

४. एक दूसरे की निस्वार्थ भाव से सेवा करें और उसके लिए अपने स्वार्थों का परित्याग करें। पत्नी पति के लिए और पति पत्नी के लिए अपने संकुचित स्वार्थ का त्याग करें। इस पारिवारिक त्याग से, आदान-प्रदान की नीति से काम लें। इससे वाणिज्य व्यापार तो चलता ही है, पर गृह संसार में भी यही नीति लाभ देती है।

५. एक दूसरे के आचरण की आलोचना न करें। बुराई किसमें नहीं है ? कमजोरियों से कौन बचा है ? सबसे पहले दम्पत्ति को दोषान्वेषण की आदत छोड़ देनी चाहिए। एक दूसरे के दोष दर्शन से दाम्पत्य जीवन में कटुता उत्पन्न होती है और पारस्परिक विश्वास नष्ट हो जाता है। दोष देखने का अर्थ एक दूसरे को नीचा दिखाना है। इससे घृणा उत्पन्न होती है, यह घृणा बड़े-बड़े राज्यों को समाप्त कर देती है। घृणा से मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं।

६. मैं अपनी पत्नी की अपेक्षा बड़ा हूँ या मैं अपने पति से ऊँची हूँ, यह सब मन में न आने दीजिये। इससे अहंभाव उत्पन्न होता है, स्वेच्छाचारिता बढ़ जाती है और स्वार्थ की इस खींचा-तानी में दाम्पत्य जीवन की डोर टूट जाती है। दाम्पत्य जीवन में तो दोनों को सदा समानता का ही भाव मन और कर्म में रखना चाहिए।

७. विवाह किया है, इसलिए हमारा दूसरे के ऊपर पूरा-पूरा हर प्रकार का अधिकार है। हम अपने साथी से सब प्रकार की आशा कर सकते हैं—ऐसा कभी भी न सोचें। मनुष्य आखिर मनुष्य ही है, देवता नही है। मनुष्य में चाहे योग्यता और शक्ति कितनी ही बड़ी क्यो न हो, किन्तु दुर्बलता आखिर सब में है—इस बात का स्मरण रखिए। हो सकता है कि अपनी पत्नी से या पति से कोई दुर्बलता सूचक कार्य हो जाय, यदि ऐसा हो तो उदारतापूर्वक उसे क्षमा कर देने में ही दोनों की भलाई है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

८. सदा गम्भीर मत बने रहिए, इससे जीवन नीरस हो जाता है। दोनों मिल-जुलकर हँसी-खुशी के लिए भी समय रखिये, हँसना, बोलना, मनोरंजन करना भोजन से भी अधिक उपयोगी है। हँसमुख आदमी कभी अस्वस्थ नहीं रहता। हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ व्यक्ति ही प्रसन्नचित होते हैं। मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि हँसने से शरीर का रक्त उष्ण होता है और नाड़ी की स्पन्दन क्रिया नियमित होती है। हँसने से शरीर में बल और साहस की वृद्धि होती है। हँसना जीवन की शक्ति को बढ़ाता है, प्रसन्नता और आनन्दी स्वभाव चेतना-शक्ति बढ़ाते हैं। मृदुल हास से स्वभाव, शरीर और आत्मा दृढ़ होते हैं। हास-परिहास, दाम्पत्य जीवन के लिए बहुत आवश्यक है, स्वास्थ्य और सुख का आधार है। हँसते हुए जीवन बिताना एक प्रकार से मानसिक और शारीरिक शक्ति बढ़ाने की चिकित्सा है।

९. पहले प्रियजन बाद में मैं—पहले उसका सुख, इस बात को स्मरण रखते हुए अपने सुख को पीछे रखिये।

१०. पति पत्नी से और पत्नी पति से पूरे शिष्टाचार का पालन करें। अभ्यागत के प्रति भी ऐसा ही व्यवहार उचित है। अशिष्ट व्यवहार दाम्पत्य जीवन में भी सर्वथा निन्दनीय और त्याज्य है।

हमारे उत्सव तथा त्यौहार

वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना का उदय—सुखद पारिवारिक जीवन के लिए उत्सव तथा त्यौहार बड़े उपयोगी हैं। इनके द्वारा अनेक लाभ हैं। (१) अच्छा मनोरंजन होता है। इसमें सामूहिक रूप से समस्त परिवार के व्यक्ति सम्मिलित हो सकते हैं। अभिनय, गान, कीर्तन, पठन-पाठन, स्वाध्याय इत्यादि साथ-साथ करने में सबमें भ्रातृ–भाव का संचार होता है। (२) समता का प्रचार त्यौहारों में हो सकता है। प्रत्येक व्यक्ति सामूहिक रूप से उन्हें सफल बनाने का उद्योग करता है। (३) पुराने सांसारिक एवं आध्यात्मिक गौरव की स्मृति पुनः हरी हो जाती है। यदि हम गहराई से विचार करें, तो हमें प्रतीत होगा कि प्रत्येक त्यौहार का कुछ गुप्त आध्यात्मिक अर्थ है। हिन्दू उत्सव एवं त्यौहारों में समता, सहानुभूति तथा पारस्परिक संगठन की पवित्र भावना निहित है। इन गुणों का विकास होता है। (४) आध्यात्मिक उन्नति का अवसर हमें इन्हीं त्यौहारों द्वारा प्राप्त होता है। हमारे प्रत्येक उपवास, मौनव्रत, समारोह का अभिप्राय सब परिवार में प्रेम, ईमानदारी, सत्यता, उदारता, दया, श्रद्धा, भक्ति और उत्साह के भाव उत्पन्न करना होता है। ये सब आत्मा के स्वाभाविक गुण हैं। यही मनुष्य की स्थायी शक्तियाँ हैं।

ये उत्सव तथा त्यौहार केवल रस्म अदायगी, बाह्य प्रदर्शन या झूठा दिखावा मात्र न बनें, प्रत्युत पारिवारिक भावना, संगठन, एकता, समता और प्रेम की भावना के विकास में सहायक हों। पारिवारिक जीवन का विकास करने के लिए हमें कटुता और विषमता की भावना त्यागनी होगी, स्नेह सरिता प्रवाहित करनी होगी और सहानुभूति का सूर्य उदय करना होगा।

उत्सव तथा त्यौहारों में हम सबको एक ही स्थान पर एकत्रित होने का अवसर प्राप्त हो जाता है, हम मिल-जुल कर परस्पर विचार-विनिमय कर सकते हैं, एक ही विषय पर सोच-विचार कर अपनी समस्याओं का हल सोच सकते हैं। परस्पर साथ रहने से हम एक-दूसरे के गुण-दोषों की ओर भी संकेत कर सकते हैं। ये वे अवसर हैं जो पारिवारिक भेद-भाव भुला कर पुनः स्नेह, सहानुभूति में आबद्ध करते हैं। बड़े उत्साह से हमें इन्हें मनाना चाहिए।

मूर्खतापूर्ण आदतें—वे आदतें कौन सी हैं, जिनसे परिवार का सर्वनाश होता है ? प्रथम तो स्वार्थमय दृष्टिकोण है, जिसकी संकुचित परिधि में केवल मुखिया ही रहता है। जो मुखिया अपने आप अच्छी से अच्छी चीजें खाता, सुन्दर वस्त्र पहिनता, अपने आराम का ध्यान रखता है और परिवार के अन्य सदस्यों को दुःखी रखता है, वह दुर्मति ग्रस्त है। इसी प्रकार अत्यधिक क्रोधी, कामी, अस्थिर चित्त, मारने-पीटने वाला, वेश्यागामी व्यक्ति परिवार के लिए अभिशाप है।

अनेक परिवार अभक्ष्य पदार्थ के उपयोग के कारण नष्ट हुए हैं। शराब ने अनेक परिवारों को नष्ट किया है। इसी प्रकार सिगरेट, पान, तम्बाकू, बीड़ी, गाँजा, भाँग, चरस, चाय इत्यादि वस्तुओं में सबसे अधिक धन स्वाहा होता आया है। इन चीजों से जब खर्चा बढ़ता जाता है तो उसकी पूर्ति जुआ, सट्टा, चोरी, रिश्वत, भ्रष्टाचार से की जाती है। जो व्यक्ति संयमी नहीं हैं, उससे उच्च आध्यात्मिक जीवन की कैसे आशा की जा सकती है ? नशे में मनुष्य अपव्यय करता है और परिवार तथा समाज के उत्तरदायित्व को पूर्ण नहीं कर पाता। विवेकहीन होने के कारण वह दूसरों का अपमान कर डालता है, व्यर्थ सताता है, मुकदमेबाजी चलाता है। समय और धन नष्ट हो जाता है। शराबी लोगों के गृह नष्ट हो जाते हैं। प्रतिष्ठा की हानि होती है। बच्चों और पत्नी की दुर्दशा हो जाती है। जो लोग भाँग, अफीम इत्यादि का नशा करते हैं वे भी एक प्रकार के मद्यपी ही परिगणित किये जायेंगे।

माँस भक्षण भी एक ऐसा ही दुष्कर्म है, जिससे प्राणी मात्र को हानि होती है। इससे हिंसा, प्राणीवध, भाँति-भाँति के जटिल रोग उत्पन्न होते हैं। पशु प्रकृति जाग्रत होती है। अधिक मिठाइयाँ या चाट-पकौड़ी खाना भी उचित नहीं है।

कर्जा लेने की आदत अनेक परिवारों को नष्ट करती है। विवाह, जन्मोत्सव, यात्रा, आमोद-प्रमोद में अधिक व्यय करने के आदी अविवेकी व्यक्ति अनाप-शनाप व्यय करते हैं। कर्जा लेते हैं और बाद में रोते हैं। एक बार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का लिया हुआ कर्ज कभी नहीं उतरता। सामान और घर तक बिक जाते हैं। आभूषण बेचने तक की नौबत आती है। इसी श्रेणी में मुकदमेबाजी आती है। यथाशक्ति आपस में मेल-मिलाप कर लेना ही उचित है। मुकदमे के चक्र में समय और धन दोनों की बरबादी होती है।

व्यभिचार सम्बन्धी आदतें समाज में पाप और छल की वृद्धि करती हैं। विवाहित जीवन में जब पुरुष अन्य स्त्रियों के सम्पर्क में आते हैं, तो समाज में पाप फैलता है। कुटुम्ब का प्रेम, समस्वरता, संगठन नष्ट हो जाता है। गृह-पत्नी से विश्वासघात होने से सम्पूर्ण घर का वातावरण दूषित और विषैला हो उठता है। शोक है कि इस पाप से हम सैकड़ों परिवारों को नष्ट होते देखते हैं और फिर भी ऐसी मूर्खतापूर्ण आदतें डाल लेते हैं। आज के समाज में प्रेयसी, सखी, फ्रेन्ड के रूप में खुला आदान-प्रदान चलता है। इसके बड़े भयंकर दुष्परिणाम होते हैं।

बचे हुए समय का उपयोग कैसे होना चाहिए ?

परिवार के स्त्री-पुरुष दोनों को कुछ-न-कुछ फालतू समय मिलता है। जिसका उपयोग आलस्य, हँसी-ठट्ठा या चुगली, गप-शप में किया जाता है। हमारे परिवारों में समय का मूल्य नहीं समझा जाता है। पुरुष प्राय: आर्थिक समस्याओं में उलझे हुए गृह से बाहर रहते हैं। स्त्रियाँ भोजनोपरान्त या तो सो जाती हैं या घर में बैठ कर व्यर्थ की टीका-टिप्पणी, परछिद्रान्वेषण, लड़ाई-झगड़ों, चौपड़ खेलने में समय नष्ट करती हैं।

आज का युग हमें पुकार-पुकार कर चेतावनी दे रहा है, 'उठो, तन्द्रा छोड़ो, जागो और अपनी उन्नति के लिए प्रत्येक क्षण का समुचित उपयोग करो। देखो प्रत्येक परमाणु आगे बढ़ रहा है, उन्नति करने के लिए उद्योग कर रहा है। व्यर्थ की सुस्ती, आलस्य या व्यर्थ की टीका-टिप्पणी में समय नष्ट करने का किसे अवकाश है ? यहाँ तो प्रत्येक पल उन्नति के लिए लगाना है। अब विश्व का कण-कण प्रगतिशील है, तो क्या आप व्यर्थ ही सोते रहेंगे ? क्या अपना समय हम व्यर्थ नष्ट कर देंगे ?

दैनिक कार्यक्रम:—परिवार के स्त्री वर्ग का उत्तरदायित्व अधिक है। अब युग उन्नति करने का है। प्रत्येक पल का उचित उपयोग कर निरन्तर अग्रसर होने का है। प्रत्येक प्रगतिशील परिवार के स्त्री-पुरुष को चाहिए कि दिन-भर का कार्य-क्रम दिन प्रारम्भ होने से पूर्व तैयार कर ले। यदि दिन प्रारम्भ हो जायेगा, तो इतना अवकाश प्राप्त न होगा कि यह सोचा जा सके कि आज कौन-कौन सा महत्त्वपूर्ण कार्य करना है। चतुर विद्यार्थी, व्यापारी, अध्यापक, इंजीनियर, ठेकेदार रात्रि में दूसरे दिन के लिए कार्यक्रम तैयार करते हैं। स्त्रियों को भोजन बनाना, नित्य-कर्म, घर की सफाई और शिशु पालन का समय निकालकर कुछ फुरसत का अवकाश निकालना चाहिए।

अवकाश का सदुपयोग— सर्वप्रथम प्रत्येक परिवार का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि घर की जितनी नारियाँ निरक्षर हों, उनको साक्षर बनाया जाय। बेपढ़ा-लिखा होना सबसे बड़ा अभिशाप है। यदि पति, भाई या घर का और कोई सदस्य शिक्षित हो, तो उसे घर में विद्यादान का कार्य करना चाहिए। आज के युग में विद्या प्राप्ति के साधन इतने सुलभ और सस्ते हैं, जितने किसी भी युग में न थे। पुस्तकें, मासिक-पत्र, स्टेशनरी, कागज इत्यादि अत्यन्त सस्ते में ही प्राप्त हो जाते हैं। समाचार-पत्रों की सुविधा थोड़े ही पैसों में हो जाती है। मासिक पत्रिकाएँ प्रत्येक स्थान पर सुलभतापूर्वक ली जा सकती हैं। पास-पड़ौस से माँग कर भी इनका उपयोग किया जा सकता है।

परिवार में आने वाले समाचार-पत्रों का, पत्रिकाओं का चुनाव बड़ी सतर्कता से होना चाहिए। आजकल सिनेमा से सम्बन्धित अश्लील, कुरुचिपूर्ण, कामोत्तेजक पुस्तकें और पत्रिकाएँ ढेर की ढेर मिलती हैं। इनके मायाजाल में कदापि न फँसिये। स्त्रियों के लिए कोई भी सद्विचारपूर्ण, शिक्षा प्रदान करने वाली, उत्तम मासिक-पत्रिका चुनी जा सकती है। परिवार में एक छोटा-सा घरेलू, पुस्तकालय अवश्य होना चाहिए, जिसमें मानव-जीवन को ऊँचा उठाने वाले सद्ग्रन्थ रहें।

जो परिवार अच्छी स्थिति में हैं, उनमें घर के लिए एक मास्टर की योजना रह सकती है, जो अशिक्षितों को अक्षर ज्ञान करा कर उच्च स्थिति में पदार्पण कर सके। परिवार स्वयं एक पाठशाला है, जिसमें प्रत्येक सदस्य को प्रेम और उत्तरदायित्व की शिक्षा प्राप्त होती है। फिर क्यों न शिक्षा का विधिवत् पालन किया जाय?

शिक्षा के जिस महान कार्य को आप पूर्ण करना चाहते हैं, उसे छोटे से प्रारम्भ कीजिए। एक छोटे से भाग को हाथ में लीजिए और उस भाग को पूरी सावधानी से, दिलचस्पी और लगन से दृढ़तापूर्वक करने का प्रयत्न कीजिए। जब आप परिवार से शिक्षा की बात कहेंगे, तो वे सम्भव है इसे पहले न पसन्द करें, पर बाधाओं से मत घबराइये। इस पुण्य कार्य को मत त्यागिये वरन् जैसे भी बन पड़े थोड़ा-बहुत समय इस कार्य के निमित्त नित्य लगाते रहिये। नियमित रूप से कुछ पढ़ाने-लिखाने, कविता पाठ कराने, खेल, कहानी, समाचार-पत्र पढ़ाने से साधारण योग्यता अवश्य प्राप्त की जा सकती है। पहले एक सदस्य को, फिर उसकी सहायता से दूसरे-तीसरे और चौथे को शिक्षित कीजिए। जिस आदमी को एक बार अपनी योग्यता पर विश्वास हो गया, वह बड़े कठिन कामों में हाथ डालने लगता है और बड़े से बड़े कार्यों को सुगमता से सम्पन्न कर डालता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विद्या ही आत्मा का भोजन है। फालतू समय का उपयोग सात्विक ज्ञान संचय, पुस्तक पढ़ने, अखबारों से संसार की घटनाओं के विषय में जानने, मासिकपत्रों के अध्ययन में व्यतीत होना चाहिए। पहले पुस्तकें, कहानियाँ, कविताएँ, उपन्यास इत्यादि पढ़ने की अभिरुचि उत्पन्न कीजिए। तत्पश्चात् क्रमशः कठिन और गम्भीर विषयों की ओर अग्रसर हूजिए। अध्यात्म, मनोविज्ञान इत्यादि गम्भीर विषयों का अध्ययन करने से मानव जीवन के ज्ञान का सम्पूर्ण भाग प्राप्त किया जा सकता है।

ज्ञान प्राप्ति के अन्य साधन—स्वाध्याय से ज्ञान बढ़ता है। जो व्यक्ति पुस्तकें पढ़ता है, वह उच्चतम ज्ञान के साथ अटूट सम्बन्ध स्थापित करता है। सुशिक्षा, विद्या, विचारशीलता, समझदारी, सुविस्तृत जानकारी, अध्ययन, चिन्तन, मनन, सत्संग तथा दूसरों के अनुभव द्वारा हम में से प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको सुसंस्कृत बना सकता है। मनुष्य स्वयं अनेक शक्तियों को लेकर भूतल पर अवतरित हुआ है। जन्म से प्रायः हम सब समान ही हैं। अन्तर केवल विकास का ही है। स्वाध्याय द्वारा ही हमारा विकास सम्भव है। स्कूल-कालिज में भी केवल स्वाध्याय करने के उचित साधन उपस्थित किए जाते हैं। स्वाध्याय अर्थात् स्वयं अपने परिवार और उद्योग से शिक्षित होकर संसार में महात्मा, भक्त, ज्ञानी, तपस्वी, त्यागी, गुणी, विद्वान, महापुरुष, नेता, देवदूत, पैगम्बर तथा अवतार हुए हैं। ज्ञान ने ही मनुष्य को तुच्छ पशु से ऊँचा उठाकर एक सुदृढ़ असीम शक्तिपुंज, नाना दैवी सम्पदाओं तथा कृत्रिम साधनों से सम्पन्न अधीश्वर बनाया है। जीवन का सुख इस विद्याबल पर ही बहुत हद तक निर्भर है। ज्ञान प्राप्ति के कुछ उपाय ये हैं—

१. विद्वानों के प्रवचनों को ध्यान से सुनना और उनके अनुसार आचरण करना।

२. उत्तम ग्रन्थों का पठन-पाठन। उन्हें स्मरण रखना, मस्तिष्क का एक भाग बनाना।

३. ज्ञान का विस्तारण। दूसरे को देने से विद्याबल बढ़ता है।

४. स्वयं विचार करना। जगत, संसार, मानव स्वभाव तथा आदतों पर विचार करना।

५. आत्म-निरीक्षण।

६. उपदेश ग्रहण:—किसी के उपदेश की सत्यता की जाँच लोग उनके आचरण से ही करेंगे। इसलिए यदि ज्ञानी पुरुष स्वयं कर्म न करेगा, तो वह सामान्य लोगों को आलसी बनाने का एक बहुत बड़ा कारण बन जायेगा।

शिक्षित स्त्रियाँ पति को आर्थिक सहायता देने के लिए छोटी-मोटी नौकरी भी कर सकती हैं। उनके लिये (१) अध्यापिका, (२) नर्स, (३) डाक्टरनी, (४) सम्पादिका, लेखिका (५) शिशु संस्थाओं की देखभाल, (६) उद्योग मन्दिरों में कार्य सिखलाने का काम उपयुक्त हैं। शिक्षा के क्षेत्र में स्त्रियों की नितान्त आवश्यकता है। कुमारी अध्यापिकाओं से विवाहित अध्यापिकाएँ तथा लेड़ी प्रोफेसर अधिक चतुर और अनुभवी समझी जाती हैं। बाल मन्दिरों में शिशुओं की देखभाल के लिए शिक्षित मनोविज्ञानवेत्ता स्त्रियों की बेहद जरूरत है। स्त्रियों के शफाखानों में, प्रसूति-गृहों में लेडी डाक्टरों की तथा चतुर नर्सों की आवश्यकता है। सरकार के दफ्तरों, पोस्टआफिसों तथा रेलवे में टिकट चेक करने के लिए स्त्रियों की आवश्यकता है। जो बहिनें अपने चरित्र की दृढ़ता में विश्वास करती हैं और साधारण से ऊँची हैं, उन्हें विवेकपूर्ण ढंग से घर को आर्थिक सहायता प्रदान करनी चाहिये।

ऐसे भी अनेक उद्योग-धन्धे हैं, जिन्हें आप अपने पति की सहायता से घर में कर सकती हैं। देशी-विदेशी हर प्रकार के सुगन्धित तथा सादे तेल, इत्र, एसेन्स, वेसलीन, स्नो, क्रीम, हैजलीन, फलों के शर्बत इत्यादि की कुछ शिक्षा प्राप्त कर सकती हैं और छोटे पैमाने पर इन्हें तैयार कर सकती हैं। देशी जड़ी-बूटियों से भिन्न-भिन्न प्रकार के रंग बनाना, कपड़े रंगना, कपड़े सीने का काम, फूल-पत्ती काढ़ना भी चलाये जा सकते हैं। थोड़ी पूँजी से घर में प्रिंटिंग प्रेस चलाया जा सकता है, जिसमें स्त्रियाँ कम्पोजिंग, कटाई, छपाई, जिल्दसाजी, लिफाफे बनाना, लेटरपैड तैयार करने का कार्य कर सकती हैं।

यदि आपके पास थोड़ी-सी भूमि है तो दो पेशे और भी शुरू किये जा सकते हैं। (१) बागवानी-घर के लिए सब्जी उगाना, पुष्प उत्पन्न करना, गमलों में कलम इत्यादि लगाना, छोटे फल उत्पन्न करना बड़ा लाभदायक मनोरंजन है। (२) दूध का व्यवसाय—तीन-चार गाय-भैंस पालकर दूध, घी और मक्खन का काम चलाया जा सकता है। दूध, घी का कार्य तो स्त्रियों के हाथ में सफलता से दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अगरबत्ती बनाना, दियासलाई बनाना इत्यादि के काम भी चलाये जा सकते हैं। दरवाजों तथा खिड़कियों पर लगाने का पेन्ट घर में बनाया जा सकता है। पंजाब में अनेक दुकानें पापड़ का ही व्यवसाय कर हजारों का लाभ उठाती हैं। पापड़ों के साथ वे कुरेरी, बड़ियों तथा अन्य इसी प्रकार की वस्तुएँ घर पर तैयार कर सकती हैं। रंग का काम भी उनके हाथ की बात है। मोमबत्ती का व्यापार थोड़े पैसे से घरों में प्रचलित किया जा सकता है। आतिशबाजी का सामान तैयार करने के लिए थोड़ी-सी सामग्री-शोरा, गन्धक, पोटाश, बारूद इत्यादि की आवश्यकता पड़ती है। इसके अतिरिक्त थोड़े-से परिश्रम से डबल रोटी बनाना सीख सकती हैं। चारपाई बुनना, निवाड़ तैयार करना, चर्खा कातकर सूत तैयार करना, गाले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बुनना, टोकरियाँ तैयार करना, चिकें, दरियाँ इत्यादि तैयार करना-घरों में किए जाने वाले कुछ उद्योग धन्धे हैं।

आजकल पाश्चात्य देशों की महिलाओं के कार्य-कलाप देखकर दंग हो जाना पड़ता है। हम वहाँ की उच्छृंखलता को खतरनाक समझते हैं, किन्तु सदाचार और नैतिकता हमारे चरित्र के अंग हैं। हमें सतर्कता से उनके परिश्रम तथा सात्विक गुणों को अपनाना चाहिये। परिश्रम की दृष्टि से पाश्चात्य देशों की स्त्रियों को कई भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१)—शिक्षालयों की अध्यापिकाएँ २—गृहपरिचारिका ३—अभिनेत्रियाँ ४—कार्यालयों की लेखिकाएँ ५—उच्च गृह की गृहस्वामिनियाँ ६—दाइयाँ और डाक्टरनियाँ इत्यादि। अभिनेत्री का जीवन निंद्य और वासना-जन्य है। प्रत्येक दृष्टि से वह निकृष्ट एवं त्याज्य है। उसे छोड़कर अन्य पेशों के लिए चुनाव किया जा सकता है।

फालतू समय का एक उपयोग मनोरंजन है। सम्पूर्ण दिन कार्य करते-करते महिलाओं का दिल और दिमाग शिथिल हो जाता है। वे घर के कारावास में बन्द रहती हैं। छुट्टी के दिन उन्हें उद्यानों की सैर करनी चाहिए, सहेलियों के यहाँ मिलने जाना चाहिए, सरिताओं के तट पर तथा पर्वत प्रदेशों की यात्राएँ करनी चाहिए। तैरना-खेलना भी है और व्यायाम भी। फोटोग्राफी, लकड़ी का काम, लेख लिखना, कविता करना या अन्य कोई शौक का कार्य किया जा सकता है। अपने बच्चों को पढ़ाने का कार्य बहुत श्रेयस्कर है। राष्ट्रीय कार्यों में अनेक विजयलक्ष्मियों की आवश्यकता है। यदि प्रयत्न करें तो भारत में रचनात्मक योजनाओं के लिए अनेक राष्ट्रीय विचारों वाली विदुषी नारियाँ तैयार की जा सकती हैं। भारत में अभी देवमाता, अदिति, लोपामुद्रा, मैत्रेयी, गार्गी, जैसी महामान्या नारियों को भुलाया नहीं जा सकता। फालतू समय में शास्त्रों का अध्ययन कर भारतीय ललनाएँ वक्ता, लेखिकाएँ, कवयित्री, विदुषी, ब्रह्मवादिनी बन सकती हैं।

शान्तिमय गृहस्थ जीवन

आपका परिवार का एक छोटा-सा स्वर्ग है, जिसका निर्माण आपके हाथ में है। परिवार एक ऐसी लीला भूमि है जिसमें पारिवारिक प्रेम, सहानुभूति, सम्वेदना, मधुरता अपना गुप्त विकास करते हैं। यह एक ऐसी साधना भूमि है, जिसमें मनुष्य को निज कर्त्तव्यों तथा अधिकारों, उत्तरदायित्वों एवं आनन्द का ज्ञान होता है। मनुष्य को इस भूतल पर जो सच्चा और अकृत्रिम सौख्य और दुःख से मुक्त सुख प्राप्त हो सकता है वह कुटुम्ब का ही सुख है।

कुटुम्ब की देवी स्त्री है। चाहे वे माता, भगिनी या पुत्री किसी भी रूप में क्यों न हो। उन्हीं के स्नेह से, हृदय की करुणा, रस स्निग्ध वाणी और सौन्दर्यशील प्रेम से परिवार सुखी बनता है। वह स्त्री जिसका हृदय दया और प्रेम से उछलता है परिवार का सबसे बड़ा सौभाग्य है। उसकी वाणी में सुधा की-सी शीतलता और सेवा में जीवनप्रदायिनी शक्ति है। उसके प्रेम की परिधि का निरन्तर विकास होता है। वह ऐसी शक्ति है, जिसका कभी क्षय नहीं होता और जिसका उत्साह एवं प्रेरणा, परिवार में नित्य नवीन छटाएँ, पूर्णता में नवीनता उत्पन्न कर मन को मोद, बुद्धि को प्रबोध और हृदय को संतोष प्रदान करती है।

हिन्दू परिवार में पुत्र क्षणिक आवेश में आकर स्वच्छन्द विहार के लिये परिवार का तिरस्कार नहीं करता वरन् परिवार के उत्तरदायित्व को और भी दृढ़ता से वहन करता है। हिन्दू जीवन में पति उत्तरदायित्वों से भरा हुआ प्राणी है। अनेक विघ्नों के होते हुए भी उसका विवाहित जीवन मधुर होता है। यहाँ संयम, निष्ठा, आदर, प्रतिष्ठा तथा जीवन-शक्ति को रोक रखने का सर्वत्र विधान रखा गया है। यदि यह संयम न हो तो विवाहित जीवन गरल-मय हो सकता है। हिन्दू, नारी को भोग-विलास की सामग्री नहीं, नियन्त्रण प्रेरणा, साधना, विघ्नबाधाओं के साथ देने वाली जीवन-संगिनी के रूप में देखता है।

इन दैवी गुणों की वृद्धि कीजिए—पारिवारिक जीवन को मधुर बनाने वाला प्रमुख गुण निःस्वार्थ प्रेम है। यदि प्रेम की पवित्र रज्जु से परिवार के समस्त अवयव सुसंगठित रहें, एक दूसरे की मंगल कामना करते रहें, एक-दूसरे को परस्पर सहयोग प्रदान करते रहें, तो सम्पूर्ण सम्मिलित कुटुम्ब सुघड़ता से चलता रहेगा। परिवार एक पाठशाला है, एक शिक्षा संस्था है, जहाँ हम प्रेम का पाठ पढ़ते हैं।

अपने पारिवारिक सुख की वृद्धि के लिये यह स्वर्णसूत्र स्मरण रखिये कि आप अपने स्वार्थों को पूरे परिवार के हित के लिये अर्पित करने को प्रस्तुत रहें। हम अपने सुख की इतनी परवाह न करें, जितनी दूसरों की। हमारे व्यवहार में सर्वत्र शिष्टता रहें। यहाँ तक कि परिवार के साधारण सदस्यों के प्रति भी हमारे व्यवहार शिष्ट रहें। छोटों की प्रतिष्ठा करने वाले, उनका आत्म-सम्मान बढ़ाने वाले, उन्हें परिवार में अच्छा स्थान देकर समाज में प्रविष्ट कराने वाले भी हमी हैं।

छोटे-बड़े, भाई-बहिन, घर के नौकर, पशु-पक्षी सभी से आप उदार रहें। प्रेम से अपना हृदय परिपूर्ण रखें। सबके प्रति स्नेहसिक्त, प्रसन्न रहें। आपको प्रसन्न देखकर घर भर प्रसन्नता से फूल उठेगा, प्रफुल्लता वह गुण है जो थके-हारे सदस्यों तक में नवोत्साह भर देता है।

आप अपने परिवार में खूब हँसिये, खेलिये, क्रीड़ा कीजिये। परिवार में ऐसे रम जाइए कि आपको बाहरीपन मालूम न हो। आत्मा तृप्त हो उठे। चुन-चुन कर अपने परिवार में मनोरंजन के भी नवीन ढंग अपनायें। लेकिन इन सब के मूल में जो वृत्ति है वह हँसी-विनोद और विश्राम की है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मार्टिन लूथर ने कहा है—"विचारपूर्ण विनोद, मर्यादापूर्ण साहस वृद्ध और युवक के लिए उदासी की अच्छी दवा है।"

सरसता का अद्भुत प्रभाव—जिनका स्वभाव रूखा, दार्शनिक, चिन्तित है, उन्हें तुरन्त प्रसन्न करने का उद्योग एवं अभ्यास करना चाहिए। रूखापन जीवन का सबसे बड़ा शत्रु है। कई आदमियों का स्वभाव बड़ा शुष्क, कठोर और अनुदार होता है। उनकी आत्मीयता का दायरा बड़ा संकुचित होता है। उस दायरे में बाहर के व्यक्तियों तथा पदार्थों में उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं होती। पास-पड़ौस के व्यक्तियों तक में उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं। किसी के हानि-लाभ, उन्नति-अवनति, खुशी-रंज, अच्छाई-बुराई, तरक्की से उन्हें कोई मतलब नहीं होता। ऐसे व्यक्ति प्रसन्नता में भी कंजूस ही रहते हैं। अपने रूखेपन के प्रत्युत्तर में दुनिया उन्हें बड़ी रूखी, नीरस, कर्कश, खुदगर्ज, कठोर और कुरूप प्रतीत होती है।

रूखापन परिवार के लिए रेत की तरह बेमजे है। तनिक विचार कीजिए, रूखी में क्या मजा है, रूखे बाल कैसे अस्निग्ध प्रतीत होते हैं, रूखी मशीन कैसी खड़खड़ चलती है, रूखे रेगिस्तान में कौन रहना पसन्द करेगा ?

प्राणी मात्र सरसता के लिए तरस रहा है। वह आपका प्रेम, सहानुभूति, दया, करुणा, प्रशंसा, उत्साह, आह्लाद चाहता है। पारिवारिक सौभाग्य के लिए सरसता और स्निग्धता की आवश्यकता है। मनुष्य का अन्त:करण रसिक है। स्त्रियाँ स्वभाव से ही कवि हैं, भावुक हैं, सौन्दर्य उपासक हैं, कलाप्रिय हैं, प्रेममय हैं। मानव-हृदय का यही गुण है, जो उसे पशु जगत से ऊँचा उठाता है।

सहृदय बनिये। सहृदयता का अभिप्राय कोमलता, मधुरता, आर्द्रता है। सहृदय व्यक्ति सब के दु:ख में हिस्सा बँटाता है। प्रेम तथा उत्साह देकर नीरस हृदय को सींचता है। जिसमें यह गुण नहीं है, उन्हें हृदय होते 'हृदयहीन' कहा जाता है। हृदयहीन का अर्थ है 'जड़ पशुओं से भी नीचा।' नीरस गृहस्वामी पूरे परिवार को दु:खी बना देता है।

जिसने अपनी विचारधारा और भावनाओं को शुष्क, नीरस और कठोर बना रखा है, उसने अपने आनन्द, प्रफुल्लता और प्रसन्नता के भण्डार को बन्द कर रखा है। वह जीवन का सच्चा रस प्राप्त करने से वंचित रहेगा आनन्द का स्रोत सरसता एक अनुभूतियों में है।

परमात्मा को आनन्दमय निर्देश किया गया है। क्यों ? क्योंकि वह कठोर और नियन्त्रणप्रिय होते हुए भी सरस और प्रेममय है। श्रुति कहती है—"**रसोवैस:**" अर्थात् परमात्मा रसमय है। परिवार में उसे प्रतिष्ठित करने के लिए वैसी ही लचीली, कोमल, स्निग्ध और सरस भावनाएँ विकसित करनी पड़ती हैं।

नियन्त्रण आवश्यक है—जब हम आप से सरसता को विकसित करने का आग्रह करते हैं, तो हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि आप नियन्त्रण को भी टूट जाने दें। हम नियन्त्रण के पक्षपाती हैं। नियन्त्रण से आप नियमबद्ध, संयमी, अनुशासनबद्ध, आज्ञाकारी परिवार की उत्पत्ति करते हैं। परिवार के नियन्त्रण में आप दृढ़ रहें, गलतियों पर डाटें-फटकारें, सजाएँ दें और पथभ्रष्ट को सन्मार्ग पर प्रतिष्ठित करें। परिवार की उन्नति के लिए आप कड़ा कदम उठा सकते हैं।

पर एक बात कदापि विस्मृत न कीजिए। आप अन्तत: हृदय को कोमल, द्रवित होने वाला, दयालु, प्रेमी और सरस ही रखिये। संसार में जो सरलता का, सौंदर्य का अपार भण्डार भरा हुआ है उसे प्राप्त करना सीखिये। अपनी भावनाओं को जब आप कोमल बना देते हैं, तो आपके चारों ओर आने वाले हृदयों में अमृत-सा झरता हुआ प्रतीत होता है। भोले-भाले, मीठी-मीठी बातें करते हुए बालक प्रेम की प्रतिमाएँ—माता, भगिनी, पत्नी, अनुभव ज्ञान और शुभ कामनाओं के प्रतीक वृद्धजन—ये सब ईश्वर की ऐसी आनन्दमय विभूतियाँ हैं, जिन्हें देख कर परिवार में मनुष्य का हृदय कमल के पुष्प के समान खिल जाना चाहिये।

परिवार एक पाठशाला है जो हमें आत्मसंयम, स्वसंस्कार, आत्मबल और नि:स्वार्थ सेवा की अनमोल शिक्षाएँ देती है। प्रतिदिन हम परिवार की भलाई के लिए कुछ न कुछ करते रहें, अपना निरीक्षण खुद करें।

परिवार के प्रत्येक समझदार व्यक्ति को चाहिए कि प्रति रात को सावधानी के साथ अपने आप का निरीक्षण करें। यह देखें कि आज मैंने कौन-सा कार्य पशु के समान, कौन-सा असुर के समान, कौन-सा सत्पुरुष के समान और कौन-सा देवता के समान किया है। यदि प्रत्येक व्यक्ति सहयोग और नि:स्वार्थ सेवा की भावना से परिवार की सम्पन्नता में हाथ बँटावें, तो गृहस्थ सुख-धाम बन सकता है।

'हमें अधिकार दीजिये'—एक दूषित भावना—आए दिन इस बात का झगड़ा रहता है कि 'हमें अधिकार दीजिए'। नवयुवक-नवयुवतियाँ तथा अन्य सदस्य अधिकारों की रट लगाये हैं। अधिकार माँगने की प्रवृत्ति दूषित स्वार्थ की भावना पर अवलम्बित है। वे दूसरों को कम देकर उनसे अधिक लेना चाहते हैं। यह स्वार्थमयी भावना जिस दिन अंकुरित होती है, परिवार से सुख और शान्ति की भावना का तो उसी दिन तिरोभाव हो जाता है। प्रत्येक मनुष्य छोटे के साथ अनुचित व्यवहार करता है और कहता है कि हमारा अधिकार है। सास-बहू पर अनुचित अधिकार जमाती है। बड़ा भाई छोटे भाई से दुर्व्यवहार करता है।

'अधिकार' माँगने वाला दूसरे से कुछ चाहता है, परन्तु दूसरे को देने की बात विस्मृत कर बैठता है। उसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह ज्ञान नहीं कि अधिकार और कर्त्तव्य साथ-साथ चलते हैं। इस हाथ दीजिए, उस हाथ ले लीजिए। इस माँग और भूख की लड़ाई में ही गृहस्थ जीवन का सुख विदा होना आरम्भ हो जाता है।

प्रेम, समता, त्याग और समर्पण—ये ऐसी दैवी विभूतियाँ हैं जिनसे गृहस्थ स्वर्ग बनता है। वहाँ अधिकार नामक शब्द का प्रवेश निषेध है। वहाँ तो दूसरा शब्द 'कर्त्तव्य' ही प्रवेश पा सकता है। परिवार के प्रत्येक सदस्य का उत्तर-दायित्व है, कुछ न कुछ कर्त्तव्य है। वह अपना कर्त्तव्य करता चले। जो तुम्हारा अधिकार है वह तुम्हें अनायास ही प्राप्त हो जायेगा। लेकिन कर्त्तव्य की बात भूल कर केवल अधिकार की माँग लगाना नैतिक दृष्टिकोण से गर्हित है। समस्त बखेड़ों की इस जड़ को काट देना चाहिए।

संसार के सम्बन्धों को देखिए। दुनिया का सब कार्य स्वयं ही आदान-प्रदान से चल रहा है। जब कुछ दिया जाता है, तब तुरन्त ही कुछ मिल जाता है। देना बन्द होते ही, मिलना बन्द हो जाता है। अतः लेने की आकांक्षा होने पर देने की भावना पहले बना लेना जरूरी होता है। अधिकार में केवल लेने की ही भावना भरी रहती है, त्याग, बलिदान, सेवा, सहानुभूति की नहीं। इसलिए पारस्परिक प्रेम का क्षय प्रारम्भ होता है। जिस दिन वह अधिकार की लालसा गृहस्थ-जीवन में प्रविष्ट हो जाती है, गृहस्थ कलह का अखाड़ा बन जाता है। आज पढ़े-लिखे, मदान्ध नवयुवक इसी भावना को मन में भरे पृथक कुटुम्बों की आवाज बुलन्द करते हैं। अपने ही हाथों उन्होंने अपने सुख-सुविधा को लात मार दी है।

अधिकार अभिप्राय है—दूसरों को अपने आधीन रखना, अपने सुख का, भोग का यन्त्र बनाना। जब किसी भावना का प्रवाह एक ओर से चलना प्रारम्भ हो जाता है, तो उसकी प्रतिक्रिया दूसरी ओर से भी प्रारम्भ हो जाती है। तब एक दूसरे को भोग का यन्त्र बनाना चाहता है, तो दूसरा भी पहले को यन्त्र बनाने की धुन में लग जाता है।

इस कुचक्र से बचने का उपाय यही है कि परिवार का हर सदस्य अधिकार की अपेक्षा कर्त्तव्य पर अधिक ध्यान दे। लेने की अपेक्षा देने का अधिक ध्यान रखे।

महापुरुषों का दाम्पत्य-जीवन

महापुरुषों के दो प्रकार हैं। एक वे हैं, जिन्हें अपने दाम्पत्य-जीवन में कोई दिलचस्पी नहीं होती, उनका क्षेत्र ही सब कुछ होता है। वे अपना समग्र जीवन उसी में लगा देते हैं। इसलिए 'कोई उनके दाम्पत्य-जीवन को नहीं जानता। कुछ वे हैं, जो बाहर तथा भीतर दोनों ही क्षेत्रों में समान रुचि रखते हैं, पति-पत्नी में सुख-दुःख का पूरा साथ होता है। वे अपनी प्रेमिका या पत्नियों से प्रेरणा पाते हैं, यहाँ उनके जीवन से कुछ प्रेरणादायक एवं ज्ञानवर्द्धक झाँकियाँ दी जा रही हैं।

पत्नी—मेरा मूल्यवान खजाना—इटली का भाग्य-विधाता गेरीबाल्डी अपने क्रान्तिकारी साथियों के साथ साम्राज्यवादी सरकार के विरुद्ध युद्ध कर रहा था। उसका जहाज ब्राजील के सागर तट पर नष्ट हो गया, जिससे उसके साथी मारे गये। इस दुर्घटना के बाद उसने सहसा विवाह कर लिया। इसका कारण डूमास द्वारा सम्पादित, 'गेरीबाल्डी के संस्मरण' पुस्तक में इस प्रकार लिखा है—

"स्वप्न में भी मुझे कभी विवाह का विचार नहीं आया था, परन्तु अपने दूसरे साथियों की मृत्यु के बाद मैं अपने आपको संसार में अकेला अनुभव करने लगा।

मुझे एक ऐसी आत्मा की आवश्यकता का अनुभव होने लगा, जो मुझे प्रेम करती हो; मुझे किसी ऐसे व्यक्ति की जरूरत थी जो मुझसे प्रेम करे। मित्रता तो समय का फल होता है। परन्तु इसके विपरीत प्रेम खुद एक महान संबल है और कभी-कभी इसकी अनिवार्य आवश्यकता अनुभव होती है।

मैं उन मनुष्यों में से एक हूँ, जो जीवन के शान्त कालों में भी तूफानों को अधिक पसन्द करते हैं। मेरे मन को ऐसे ही विचारों ने घेर रखा था। तब मैंने अपनी दृष्टि दौड़ाई, तो मुझे कई सुन्दर लड़कियाँ घर के काम-काज में लगी हुई दिखाई दीं। उनमें से एक ने मेरे मन को सबसे अधिक अपनी ओर खींचा। इसके लिए किनारे पर जाने के सिवा मेरे लिए और कोई उपाय न था। मैं किनारे पर पहुँच कर फौरन उस घर की ओर चल दिया, जिस पर इतनी देर से मेरी दृष्टि टिकी हुई थी। मेरा हृदय व्याकुलता से धड़क रहा था।

परन्तु सारे क्षोभ के रहते भी, मुझे अपना निश्चय पक्का मालूम होता था। एक पुरुष ने मुझे भीतर आमंत्रित किया। मेरी दशा तो ऐसी हो रही थी कि यदि वह मुझे भीतर जाने से मना भी करता तो भी मैं भीतर चला जाता।

मैं केवल बहुत थोड़ी-सी पोर्चुगीज भाषा बोल सकता था। मैंने कुछ थोड़े शब्द इटालियन भाषा में कहे। उन शब्दों से मैंने एक ऐसा सम्बन्ध पैदा कर लिया, जिसे केवल मृत्यु ही तोड़ सकती थी। उस स्त्री को पत्नी के रूप में पाकर मैं बहुत खुश हुआ। वह एनिटा थी, जो मेरे बच्चों की माँ थी, जिसने सुख-दुःख में मेरा साथ दिया था। एनिटा मेरी प्रिय पत्नी थी, जिससे मिलने वाला उत्साह मुझे जीवन में आगे बढ़ाता रहा। उसकी याद मुझे बार-बार आती रही और कठिन क्षणों में प्रेरणा स्रोत बनी।

बहुत कम स्त्रियों को ऐसा पति मिलता है—एण्ड्रयू जेकसन ने अमेरिका के लाल इण्डियनों को छिन-भिन्न कर डाला था। उसने स्पेन तथा ब्रिटिश सेना को बहुत कमजोर किया था और 'न्यू ओर्लियन्स' को बचाया था। वह समृद्ध और चटकीली नगरी उसके चरणों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर झुकती थी। बड़े-बड़े प्रसिद्ध पुरुष उसे प्रणाम करने के लिए एकत्र होते थे। सुन्दर स्त्रियाँ उसकी सेविका होने में अपना सौभाग्य समझती थीं।

उसकी पत्नी का नाम रेचल था। वह कभी सुन्दरी, आनन्दी और तरुणी थी। अब उम्र बढ़ जाने से वह वृद्धा, फूहड़ और मोटी हो गई थी। वह सोचती थी कि उस चटकीली-भड़कीली राजधानी में मैं ऐसे यशस्वी के साथ बैठकर उसके लिए लज्जा का कारण तो नहीं बन जाऊँगी। पति को उसने नगर की रूपसुन्दरियों में देखा वह आने में संकोच कर रही थी, पर किसी प्रकार आई। उन फैशनेबल स्त्रियों में रेचल बिल्कुल जंगली मालूम होती थीं। जब उसका पति बाहर युद्ध पर था, वह श्रम करके अपना पेट पालती थी और रातें चिन्ता में काटती थी। वह न केवल घर का और पशु-पालन का काम करती थी, वरन् कपास के खेतों, अस्तबलों और चरागाहों में जाती थी। उसके हाथ कड़े हो गए थे और उत्तम रूप-कुरूप हो गया था।

परन्तु उसके पति जर्नेल को रेचल में कोई कुरूपता नहीं दीखती थी। न्यू ओर्लियन्स ने अपने परित्राता के सम्मानार्थ एक बड़े नृत्य की आयोजना की, तो वह भी पति के साथ वहाँ गयी।

नाचने वाले युवक जोड़े प्रेम के नशे में मधुर-मधुर मुस्कराते थे, परन्तु पति को कुछ परवाह नहीं थी। रेचल उनको देखकर मुस्करा सकती थी। उसने पति को प्रेम-बन्धन में ऐसा जकड़ा था कि कोई भी चीज उसे उस बन्धन से छुड़ा नहीं सकती थी। तब वे अपनी जन्मभूमि नेशतिल्ली को लौट आए और बड़े आनन्द और शान्ति से दिन बिताने लगे। उसका पति उसकी पूजा करता था। ३५ वर्ष बाद तक पति उसका ऐसा भक्त बना रहा कि बहुत-कम स्त्रियों को ऐसा भक्त पति पाने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

प्रेम-भरी उत्कट भक्ति:—डिजराइली ने ३३ वर्ष की आयु में ४० वर्ष की तुच्छ विधवा के साथ विवाह किया था। उसके लिए यह अनमेल विवाह भी सुख-स्वर्ग और स्थायी कोमलता का आश्रय था। वह विधवा, मेरी एन. निरक्षर थी, परन्तु उसमें उत्तम बुद्धि थी। वह ठीक राजनीतिक परामर्श देती थी और लड़ाइयों में उपयोगी साथी थी। उसकी हल्की बातों से डिजराइली का मनोरंजन होता था और थकावट दूर होती थी।

मेरी एन. वस्तुत: अपने पति का बहुत आदर और सम्मान करती थी। उसने पति को घर की और नौकरों की चिन्ता से बिल्कुल मुक्त कर रखा था। पार्लियामेन्ट में सबेरे के पाँच बजे तक वाद-विवाद के बाद घर आकर डिजराइली देखता था कि उसके स्वागत के लिए मेरी एन. ने बिछौने से उठकर लैम्प जला रखा है और अँगीठी में आग जला रखी है। कभी-कभी वह रात को उसके लिए खाना लिए घण्टों प्रतीक्षा में बैठी रहती थी। उसने भी पत्नी की इस भक्ति का कभी निरादर नहीं किया। इसके लिए वह उस भोज में भी जाने से इन्कार कर देता जो पार्लियामेन्ट में उसकी जीत पर दिया जाता था।

पति-पत्नी का सम्बन्ध अटूट और अविच्छेद है। वे दम्पत्ति धन्य हैं जो एक दूसरे में हार्दिक अनुरक्त रहते हुये जीवन-आदर्श के निकट पहुँचते हैं। संसार के विभिन्न क्षेत्रों में धर्म, समाज, राजनीति के सम्बन्ध में लोकोपकारी कार्य करना महानता का द्योतक है, पर यदि उसी महानता का परिचय हम अपने गृहस्थ-जीवन में भी दे सकें तो यह निस्संदेह हमारे उस गौरव को द्विगुणित करने वाली बात होगी।

परिवार छोटा रहे

दाम्पत्य जीवन की सरसता और सफलता बहुत कुछ इस बात पर भी निर्भर है कि परिवार का विस्तार सीमित हो। बड़े परिवार की समस्याएँ और चिन्ताएँ उतनी बढ़ जाती हैं कि पति-पत्नी को इन्हीं के सुलझाने में निरन्तर व्यस्त और चिन्तित रहना पड़ता है। फलस्वरूप पति-पत्नी आपस में एक दूसरे के लिए न तो कुछ सोच पाते हैं और न कुछ कर पाते हैं। पारिवारिक समस्याओं की कठिनाइयों का दोषारोपण एक दूसरे पर करते हैं और कटुता की अभिवृद्धि होने लगती है। बढ़े हुए परिवार के कारण आर्थिक कठिनाइयाँ बढ़ती हैं। न तो परिवार के अन्य सदस्यों की आवश्यकताएँ पूरी हो पाती हैं और न पति-पत्नी ही अपने शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य को ठीक रख पाते हैं। इसलिए आरम्भ में ही इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि परिवार की अनियन्त्रित वृद्धि न होने पाये। सन्तान की अधिक संख्या का होना, जल्दी-जल्दी प्रसव होना दाम्पत्य जीवन की नीरसता और असफलता का एक प्रधान कारण बन जाता है।

सन्तति-निरोध से व्यक्तियों, कुटुम्बों, समाज और जाति की सभी समस्याएँ हल हो सकती हैं। हमारे परिवारों में जो आर्थिक दैन्य दिखाई देता है, उसका प्रधान कारण यह है कि कमाने वाला एक है, तो खाने वाले आठ या दस हैं। औसत परिवार में बच्चों की संख्या ६-७ है। कहीं-कहीं दस बारह तक होते हैं। भारत में अल्प आयु में विवाह की तौक गले में डाल दी जाती है। अत: अनियन्त्रित सन्तानोत्पति के कारण कुटुम्ब की औसत आय न्यूनातिन्यून होती जा रही है। बेचारा पिता क्षणिक भोग के लालच में फँसकर अपनी वासना को नहीं दबा पाता। फलत: प्रति दूसरे वर्ष एक नवीन व्यक्ति का कुटुम्ब में पदार्पण हो जाता है। वह खाने पहिनने की कमी अनुभव करता है। अपना पेट काट कर अपने बच्चों को खिलाता है। स्वयं अपने आप नंगा भूखा रह कर बच्चों को पहनाता है। पिता की आय भी कम होती जाती है। सबसे अधिक दूषित प्रभाव तो माता पर पड़ता है। सन्तति धारण प्रजनन तथा पालन-पोषण की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिम्मेदारी माता पर अपेक्षाकृत अधिक है। पुरुष को आर्थिक कठिनाइयों का ही अनुभव होता है, किन्तु माता को अपने रक्त और दूध के अतिरिक्त सेवा-ममता और पालन-पोषण रात-रात भर जागना, बीमारी में देख-रेख हजारों छोटी-बड़ी जिम्मेदारियों को सहन करना होता है। उसका स्वास्थ्य क्षिप्रता से गिरने लगता है। अधिक सन्तान उत्पन्न करने वाली नारियाँ यौवन में ही वृद्धावस्था के समीप आ जाती हैं। पुरुष प्राय: स्त्रियों की इच्छा-अनिच्छा, समय-असयम का भी विचार नहीं करते हैं और काम सेवन से विषय-क्षुधा शान्त करने के लिये उन्हें मजबूर करते हैं। फलत: स्त्रियों को अनिच्छापूर्वक मातृत्व प्राप्त होता है। इस प्रकार उत्पन्न बच्चों का मानसिक संस्थापन आरम्भ से ही दुर्बल हो जाता है। वे कमजोर, पागल, अन्धे, लँगड़े-लूले, बदसूरत, बुद्धिहीन होते हैं। जिससे समाज, जाति या राष्ट्र का कोई हित नहीं हो सकता। आजीविका के साधन से जल्दी-जल्दी वृद्धि को प्राप्त नहीं होते, अनावश्यक बच्चों, विशेषत: पुत्रियों की संख्या के साथ दारिद्रय् भी बढ़ता जाता है। दारिद्रय् के साथ-साथ स्त्री-पुरुषों की काम करने और रोजी कमाने की शक्ति भी क्षीण होती है। शक्तिहीनता का प्रभाव सम्पूर्ण परिवार पर है। स्वयं माता-पिता चिड़चिड़े, क्रोधी, निर्बल और निराश हो जाते हैं, पोषक भोजन प्राप्त न होने के कारण चिन्ता रहने लगती है। चिन्ता में न बच्चों का ही लालन-पालन समुचित रीति से हो सकता है, न शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक उन्नति ही सम्भव है। ऐसे समाज की गति शराब, तम्बाकू तथा नशे की ओर जाती है। व्यभिचारजनित गुप्त रोगों से समाज में व्यक्ति अल्पायु होता जाता है।

सन्तति-निग्रह के साधन होते ही समाज उन्नति करेगा। जो थोड़े से बच्चों के पालन पर उत्तरदायित्व एक परिवार पर पड़ेगा। वह सरलता से वहन किया जा सकेगा। न आवश्यकता से अधिक बच्चों की वृद्धि होगी, न परिवारों और समाज का दारिद्रय् बढ़ेगा। खाद्य समस्या हल हो जायगी। न स्त्रियाँ निर्बल, कमजोर, निराशावादी चिन्तित रहेंगी, न मनुष्य शराबी और व्यभिचारी होगा, न उसे तथा स्त्री को गुप्त रोग होंगे, न रोगी, विकलांग, बुद्धिहीन बच्चे ही उत्पन्न होंगे, न गृह-सौख्य नष्ट होगा। हमारे समाज में जो निर्धनता और आर्थिक कठिनाई फैल रही है, वह सरलता से हल हो जायगी। ये सब लाभ हैं ही, इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य-धर्म अध्यात्म राष्ट्रीयता के दृष्टिकोण से भी अनेक लाभ हैं। इससे (१) माता-पिता की शक्ति और तेजस्विता बनी रहेगी, (२) पुरुष इसी शक्ति को अन्य क्षेत्रों (कला, साहित्य, चित्रकारी, काव्य, देश-सेवा, अध्ययन) में परिवर्तित कर अपने देश को अनेक फायदे पहुँचा सकेंगे। (३) यदि संयम धार्मिक होगा तो उसके द्वारा मनुष्य को असाधारण आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है, जो सच्चे सुख और शान्ति का सीधा मार्ग है। (४) जिस देश में स्त्री और पुरुष संचारी होंगे, आत्मविजयी होंगे, उसके लिए सुख और सम्पत्ति साधारण सी बात है। (५) इन मनोविजय के पुरुषों को जो शिक्षा प्राप्त होती है, वह अमूल्य है। (६) आस-पास का वातावरण स्वतन्त्र हो जायगा तथा बच्चों पर उच्च संस्कारों का प्रभाव पड़ेगा। (७) समाज में सन्तोष और भक्ति की वृद्धि हो जायगी क्योंकि ऐसा समय केवल भक्ति की सहायता से ही सुरक्षित रह सकता है।

संक्षेप में संतति निग्रह से माता और बच्चों का स्वास्थ्य सुधर-जायगा, औसत आय, स्वास्थ्य सौन्दर्य की वृद्धि होगी। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उत्तरदायित्व कम रहने से माता-पिता मानसिक स्वतन्त्रता का अनुभव करेंगे। स्वास्थ्य की रक्षा वीर्य की रक्षा के साथ स्वयं ही आ जायगी। आर्थिक दृष्टि से भुखमरी की समस्या हल हो जायगी। कम सन्तानों को कपड़ा और भोजन आसानी से दिया जा सकता है। भारत की जनसंख्या में कमी हो जायगी, नस्ल में सुधार होगा। बच्चे उतने ही होंगे जिनका पालन-पोषण श्रेष्ठ से श्रेष्ठ हो सकता है। जब माता थोड़े से हृष्ट-पुष्ट बच्चों को जन्म देंगी, तो मृत्यु संख्या भी कम हो जायगी। न कमजोर बच्चे उत्पन्न होंगे, न मृत्यु होगी। अत: आज देश में सन्तान निग्रह की नितान्त आवश्यकता है।

संतति निग्रह का सर्वोत्तम उपाय संयम से, ब्रह्मचर्यपूर्वक रहने से ही स्त्री-पुरुष दोनों का स्वास्थ्य और बल बना रहता है, एक दूसरे में आकर्षण रहता है और प्रेम की डोर टूटने नहीं पाती। गृहस्थों का ब्रह्मचारी रहना सरल है। महात्मा गाँधी ने यह उपाय सर्वश्रेष्ठ बताया है गाँधीजी कहते हैं—

"सम्भोग का एकमात्र उद्देश्य प्रजनन है। यह मेरे लिए एक प्रकार से नयी खोज है। इस विषय को मैं जानता तो पहले ही था, लेकिन जितना चाहिए उतना महत्त्व मैंने इसे पहले नहीं दिया था। अभी तक मैं इसे खाली पवित्र इच्छा मात्र समझता था लेकिन अब तो मैं इसे विवाहित जीवन का ऐसा मौलिक विधान मानता हूँ कि यदि इसके महत्त्व को पूरी तरह मान लिया जाय तो इसका पालन कठिन नहीं। मैं यह जानता हूँ कि कृत्रिम संतति निग्रह के साधनों का प्रतिपादन करने वालों में जो सबसे बुद्धिमान हैं, वे उन्हें उन स्त्रियों तक ही सीमित रखना चाहते हैं, जो सन्तानोत्पति से बचते हुए अपनी और अपने पतियों की विषय वासना तृप्त करना चाहती हैं। लेकिन मेरे ख्याल में मानव प्राणियों में यह इच्छा अस्वाभाविक है और उसे तृप्त करना मानव कुटुम्ब की आध्यात्मिक प्रगति के लिए घातक है।"

गाँधीजी की उक्त विचारधारा में गहरा सत्य है। प्रत्येक व्यक्ति को विषय भोग की निस्सारता समझनी चाहिए और अनावश्यक वीर्यनाश से सावधान रहना चाहिए। कामवासना जीवनदायिनी शक्ति है। इस शक्ति का उपयोग अन्य कार्यों में हो सकता है। हमें चाहिए कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ललित कलाओं की साधना में, देशोद्धार समाज सेवा के पवित्र कार्यों में लग कर काम वासना की शक्ति का सदुपयोग करें।

जो व्यक्ति समय और ब्रह्मचर्य के पवित्र साधनों का प्रयोग करेंगे, वे निश्चय ही बड़े भाग्यवान हैं और मानव से बहुत ऊँचे स्तर पर हैं। जो यह पथ अपनाते हैं, वे अपना जीवन दीर्घकाल तक स्थिर रख सकते हैं। उनका तेज, बल, बुद्धि, वीर्य निरन्तर अभिवृद्धि को प्राप्त होता है। आत्म संयम ही विवाह का सच्चा सुख प्राप्त करता है।

जो लोग यह कार्य नहीं कर सकते उन्हें कृत्रिम उपाय काम में लाने चाहिए। ये तीन श्रेणियों में विभाजित हो सकते हैं—(१) यान्त्रिक साधन, (२) रासायनिक उपाय, (३) शल्य क्रिया।

१. यांत्रिक साधन कई प्रकार के होते हैं, जिनका प्रयोग स्त्री-पुरुष दोनों ही कर सकते हैं। इस श्रेणी में रबर की बनी हुई कोमल शीथ इत्यादि आती हैं। जिनका प्रयोग पुरुष करते हैं। स्त्रियों के लिए चैक पेसरी या फीमेंल शीथ है। इनके प्रयोग में सावधानी करनी चाहिए।

२. गर्भ निरोध के रासायनिक उपायों में वे पदार्थ सम्मिलित हैं, जिन्हें नारी की भग में रखा जाता है। इनमें विष मिला रहता है जिससे शुक्रकीट नष्ट हो जाते हैं।

३. शल्य-क्रिया—ऑपरेशन द्वारा संतति निग्रह का कार्य महँगा है किन्तु इससे परेशानी मिट जाती है। पुरुषों में आपरेशन द्वारा वह नलिका जो शुक्राणुओं को वृषण से शिश्न नलिका में ले जाती है, काट दी जाती है। इसी प्रकार स्त्रियों में डिम्ब प्रणाली के एक अंश को शल्य क्रिया द्वारा काट दिया जाता है फलतः गर्भ धारण नहीं होता।

आदर्श सन्तान निग्रह के लिए यह स्मरण रखिए कि रजोदर्शन के पश्चात् दस बारह दिन तक गर्भ धारण की प्रचुर सम्भावना रहती है। अतः प्रारम्भिक दिनों में पूर्ण परहेज करें। जो व्यक्ति प्राकृतिक रीति से सन्तान निग्रह करना चाहते हैं, उन्हें रजोदर्शन का चार्ट रखना चाहिये। और मासिक धर्म के पूर्व सप्ताह में मैथुन कर सकते हैं। जब स्त्रियाँ अधिक कामाशक्त रहती हैं, तभी उनके गर्भ धारण की अधिक सम्भावना होती है। ऐसे अवसरों से बचें। संभोग के पश्चात् तुरन्त ही योनि को जल से धोना चाहिए, जिससे वीर्य गर्भाशय में प्रविष्ट न हो सके। यथासम्भव संयम-पालन करना सर्वोत्तम सन्तान निग्रह का उपाय है।

जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने के लिए, बच्चों तथा माताओं के स्वास्थ्य को सुधार कर उन्हें स्वस्थ और दीर्घजीवी बनाने के लिए, देश से गरीबी और भुखमरी दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक नव दम्पत्ति प्रारम्भ से ही कुटुम्ब नियन्त्रण के महत्त्व को समझें। परिवार नियन्त्रण हमारे सामाजिक एवं आर्थिक जीवन की सुखी व समृद्ध बनाने के लिए आवश्यक है। बरट्रेन्ड रसेल ने कहा है—संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की भाँति हिन्दुस्तान में भी ऐसे पोंगापंथियों की कमी नहीं है जो जन्म-नियन्त्रण की अपेक्षा गरीबी, भुखमरी और युद्ध को बर्दास्त करना पसन्द करते हैं। आज जिन देशों ने बढ़ती हुई जनसंख्या के खतरे को समझ लिया है और जन्म-नियन्त्रण सम्बन्धी नीति अपना ली है, उनके यहाँ की जनता स्वास्थ्य, शिक्षा, चरित्र, सामाजिक और आर्थिक प्रगति की दृष्टि से अधिक ऊँची उठ गई है। क्या हम विचारशील और दूरदर्शी बनेंगे ?

दाम्पत्य स्वास्थ्य

दाम्पत्य जीवन में वासनाजन्य प्रलोभनों से परिपूर्ण होने के कारण स्वास्थ्य-योजना-सौन्दर्य इत्यादि स्थिर रखने का बड़ा महत्त्व है। पति-पत्नी की हार्दिक यही लालसा रहती है कि वह अपने जीवन संगी के सम्मुख अपने सबसे स्वस्थ एवं आकर्षक रूप में उपस्थित होकर उसे मोह ले और स्वयं आकर्षण का सजीव केन्द्र बना रहे।

इसकी साधना के लिए सबसे मूल्यवान मार्ग आत्म संयम एवं नियन्त्रण का ही है। जो पति-पत्नी पुनः सहवास में निरत रहते हैं, उन्हें बाद में अनुभव होता है कि उन्होंने पारस्परिक विद्युत को नष्ट कर दिया है। मनोविज्ञान का सिद्धान्त है कि दूरी में ही आकर्षण एवं आनन्द है। इस विषय का अतिक्रमण समस्त दाम्पत्य आकर्षण को नष्ट कर देता है। वस्तुतः पति-पत्नी यथासम्भव संयम से रहें, कम से कम सहवास में लिप्त हों और अन्य स्वस्थ एवं स्वच्छ उपायों से जीवन का रस एवं आनन्द लूटें, तो स्वास्थ्य सहज ही में स्थिर रह सकता है।

स्मरण रखिए, वासना का उद्दाम वेग शान्त नहीं होगा। विषय वासना की अग्नि उत्तरोत्तर बढ़ती है। अतः उस मार्ग से हट कर शरीर को सुडौल, आकर्षक, प्राणशक्ति से पूर्ण बनाने, व्यायाम करने, टहलने, यात्राओं, भजन-पूजन, कीर्तन, सद्ग्रन्थावलोकन, मनन, लेखन इत्यादि में रुचि बढ़ानी चाहिए। पवित्र कर्मों में मन लगाने से दाम्पत्य स्वास्थ्य की वृद्धि होती है।

व्यायामों में श्वाँस सम्बन्धी कसरतें सरल और सबके उपयोग की हैं। जो पति-पत्नी दूर तक टहलने, लम्बी यात्राओं या तैरने-खेलने इत्यादि का कार्य नहीं कर सकते, उन्हें दीर्घ श्वाँस-प्रश्वाँस की कसरतें करनी चाहिए। नासिका से गहरा श्वाँस लेकर फेफड़ों में रोकना और फिर धीरे-धीरे निकालना पुष्टिकारक है। इस प्रकार के तनाव से शरीर को पर्याप्त ऑक्सीजन प्राप्त हो जाता है। गहरी श्वाँस लीजिये, भरपूर लीजिए और धीरे-धीरे उसका निष्कासन कीजिए।

शरीर की मालिश स्वयं करना एक सरल व्यायाम है, जिसे साधारण सी कसरत के पश्चात् स्त्रियाँ ले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकती हैं। पति-पत्नी भिन्न-भिन्न खेल खेल सकते हैं, प्रतिदिन सायंकाल प्रातः तीव्र गति से टहल कर जीवन-शक्ति की अभिवृद्धि कर सकते हैं। खाद्य पदार्थों के विवेकपूर्ण उपयोग द्वारा भी स्वास्थ्य लाभ किया जा सकता है।

विवाहित जीवन में यदि आपके जीवन-साथी का स्वास्थ्य खराब होता है या कोई रोग आक्रमण करता है तो सर्वप्रथम कर्त्तव्य आपका यह है कि उसे दूर करने में कुछ उठा न रखें। पत्नी को झूठी लज्जा त्याग कर पति के स्वास्थ्य का प्रयत्न करना चाहिए। पति-पत्नी को अनेक गुप्त जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोग रहते हैं या हो जाते हैं। यदि दुर्भाग्यवश ऐसा हो, तो एक-दूसरे को इसकी जानकारी प्रदान कर छूत फैलने से बचाना चाहिए, गर्मी, सुजाक इत्यादि घृणित रोगों से पीड़ित पति जिससे दोनों का तथा बच्चों तक का जीवन नर्कमय हो जाता है। इनसे सावधान रहने की आवश्यकता है।

अपने साथी की सुविधा-सामर्थ्य का ध्यान रखिए

विवाहित जीवन एक ऐसी दुकान है जो उत्तरोत्तर अभिवृद्धि पर रहती है। उत्तरदायित्व एक के पश्चात् एक निरन्तर बढ़ते हैं। यदि घर में माता-पिता, भाई-बहिन हुए तब तो जिम्मेदारी की कुछ न पूछिये। अतः भविष्य में आने वाले उत्तरदायित्व के लिए कुछ अर्थ संग्रह अवश्य रखिये। बच्चों के जन्म, बीमारी, विवाह, उत्सव, मेले, मृत्यु, यात्राएँ—इत्यादि के लिए एक फण्ड पृथक् रखिए, जिससे दैनिक जीवन पर इसका कोई प्रभाव न पड़ सके। भविष्य में आने वाली सामाजिक, कौटुम्बिक, आर्थिक जिम्मेदारी के लिए निरन्तर अपने को शक्ति और ज्ञान से युक्त बनाते चलिये।

कुछ पति-पत्नी में एक बड़ी कमजोरी यह होती है कि वे अपने साथी की सुख-सुविधा, सामर्थ्य-शक्ति, बुद्धि इत्यादि का विचार त्याग ऐसी फरमाइशें कर बैठते हैं जो दूसरा पूर्ण नहीं कर पाता। कल्पना कीजिए कि एक पढ़े-लिखे पतिदेव अपनी साधारण पढ़ी पत्नी से राजनैतिक या साहित्यिक चर्चा की इच्छा करते हैं। जब पत्नी योग नहीं दे पाती, तो क्रुद्ध होते हैं। उधर पत्नी सामाजिक विषय में दिलचस्पी लेती है, जो पति को पसन्द नहीं। ऐसी अनेक छोटी-बड़ी बातें कलह का विकराल रूप धारण कर सकती हैं। अतः अपने साथी की सामर्थ्य का ध्यान रख कर ही फरमाइशें कीजिए और उसी अनुपात में उनकी पूर्णता की आशा भी रखिये। भारत में नारी जाति का बौद्धिक स्तर बहुत नीचा है। अतः उनसे उच्च विषयक चर्चा करना मूर्खता होगा। उन्हीं की रुचि के अनुसार कार्य करने या उन्हीं विषयों की चर्चा उन्हें रुचिकर हो सकती है।

झूठी भावुकता से बचिए—पति-पत्नी के जीवन में प्रायः प्रेम के उफान आते हैं, जब भावना निर्बन्ध होकर बहती है। पति-पत्नी के लिये सब कुछ करने को प्रस्तुत रहता है। अनेक मूर्ख पति भावुकता के शिकार होकर ऐसे ऐसे अदूरदर्शितापूर्ण कृत्यों में फँस जाते हैं, जिनसे जीवनपर्यन्त विक्षुब्ध रहते हैं। पत्नी से झूठे वायदे, जो आप पूर्ण नहीं कर सकते, कभी न करो। कल्पना के लोक में वहीं तक विहार करना ठीक है, जहाँ तक आपके भावी जीवन की हानि न हो या ऋण न चढ़ जाय अथवा किसी की मान-प्रतिष्ठा को हानि न पहुँच जाय।

प्रेमचन्द के 'गबन' उपन्यास में एक मूर्ख पति का वृतान्त है, जिसने झूठी भावुकता का शिकार होकर पत्नी के लिए अनेक बहुमूल्य आभूषण बनवाये, फिर कर्ज की अदायगी के लिए सरकारी पैसे का गबन किया। न पत्नी ही प्रसन्न रह सकी, न मान प्रतिष्ठा ही बन सकी। अतएव अपनी आर्थिक जानकारी से एक दूसरे को पूर्ण परिचित रखिये। कोई ऐसी वस्तु, वस्त्र, मनोरंजन इत्यादि न कीजिए, जो आपकी सामर्थ्य के बाहर की वस्तु हो।

वस्तुवादी बनिये। दुनियादारी से काम लीजिये और संसार में भावी जीवन में आने वाली कठिनाइयों के लिए कुछ धन अवश्य एकत्रित रखिए। भावुकता से जो हानि हैं, वे वस्तुवादी, सांसारिक बनने से दूर हो जाते हैं, जो फरमाइश हो, उसे चटपट पूरी कर देने में व्यय अधिक होने की सम्भावना है। अपनी हैसियत, सामाजिक प्रतिष्ठा, आर्थिक अवस्था देखकर ही आय-व्यय कीजिए।

भावुकता में आकर अपनी स्थिति छिपाने या लीपापोती करने से कार्य नहीं चलेगा। आपको सब कुछ स्थिति समझाकर स्वयं आत्मसंयम से काम लेना होगा तथा जीवन-साथी को भी धीरे-धीरे प्रेम, सहानुभूति से उसी की आदत डालनी होगी। ऋग्वेद का यह वचन स्मरण रखिये।

''समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।''

अर्थात्—पति-पत्नी का आचरण समान हो, उनके हृदय समान हों, उनके मन समान हों और वे एक दूसरे की सहायता को सदैव तत्पर रहें।

यही एकात्म्यता, यही तादात्म्य, यही अभि... जीवन की सुख-समृद्धि, सफलता का मूल मन्त्र है।

दाम्पत्य प्रेम का सन्तान पर प्रभाव

विवाहित जीवन में किसी अन्य व्यक्ति से गुप्त प्रेम सम्बन्ध रखना भयंकर मूर्खता है। पिछले दिनों कलकत्ते में एक मकान की सीढ़ियों पर एक नवयुवक की मृत देह ने अभिनव सनसनी की सृष्टि कर दी थी। एक पक्ष का कहना है कि विवाहित होने पर भी उस नवयुवक ने किसी नवयुवती से गुप्त प्रेम सम्बन्ध बनाये रखा। बार-बार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसे रोका गया, मना किया गया, किन्तु तिस पर भी युवक ने रोमांस में भर कर युवती से मिलना-जुलना जारी रखा। इसलिए उसकी हत्या करवा दी गई। दूसरे पक्ष का कहना है कि विवाहित युवक ने असफल प्रेम से खिन्न होकर आत्महत्या की थी। यह घटना सिनेमा द्वारा फैलाये हुए कुत्सित, अश्लील, गन्दे प्रेम सम्बन्धों द्वारा हमारे समाज में फैलाये हुए विष का नग्न चित्र है। नए पति-पत्नी तनिक से प्रलोभन से पड़ कर नये व्यक्तियों के झूठे आकर्षण में फँस जाते हैं और अपने विवाहित जीवन साथी का परित्याग कर देते हैं अथवा अवहेलना करते हैं। कच्ची उम्र वाले दाम्पत्य प्रेम में गम्भीरता नहीं होती, वह विवेकबुद्धि दूरदर्शिता द्वारा परिचालित नहीं होता अतः ऐसे गन्दे, अनुचित प्रेम सम्बन्ध पनपते हैं। ऐसे मनचले भँवरा वृत्ति के युवक-युवती दाम्पत्य जीवन की शान्ति, सुख, निश्चिन्तता और मानसिक सन्तुलन स्थिर नहीं रख पाते।

जो क्षणिक आकर्षण और मादकता आपको किसी नए युवक-युवती में प्रतीत होती है, वह वासना का मैल है, बुद्धि का विभ्रम है, भावना का उद्वेलन है। दाम्पत्य जीवन के स्वर्ग को विनष्ट करने वाला विषैला मनोविकार है। इस प्रलोभन को जड़ मूल से नष्ट कीजिए।

"मेरी जीवन साथी ही समस्त सौन्दर्य का केन्द्र है। उसका सौन्दर्य बाह्य शरीर में न होकर पवित्र, निर्विकार, निश्छल आत्मा में है। वह मुझे हृदय से प्रेम करता है। दूसरे का प्रेम बाह्यमुखी है। उससे कभी मुझे आन्तरिक शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। वह तो मेरा सामाजिक प्रतिष्ठा नष्ट करने वाला है। मेरा मन मेरे जीवन साथी की शक्ति, सौन्दर्य, बुद्धि, वैभव, कौशल में ही रमण करेगा। मैं जीवनपर्यन्त उसे प्रेम करूँगा। मैं उसके प्रति विश्वासघात नहीं करूँगा"—इन पवित्र संकल्पों में निरन्तर रमण कर मन को इधर-उधर के क्षणिक आकर्षणों से हटाकर अपने जीवन साथी में केन्द्रित करना चाहिये।

दाम्पत्य प्रेम केवल आप दोनों के लिए ही मंगलकारी, सुखशान्तिदायक नहीं है, प्रत्युत इसका प्रभाव आपकी सन्तान पर भी विलक्षण रूप से पड़ता है। पति-पत्नी के पारस्परिक प्रेम का मनोवैज्ञानिक प्रभाव शिशु के स्वास्थ्य, वर्ण एवं संस्कारों पर पड़ता है।

जो पति-पत्नी निश्चल हृदय से एक-दूसरे को प्रेम दान देते हैं तथा सहानुभूति सहयोग और सुविधाओं का ध्यान रखते हैं, उनके अन्तःकरण एवं आत्माएँ पूर्ण रूपेण एक-दूसरे में समा जाते हैं और इस प्रेम के संयोग से उत्पन्न सन्तान में सौन्दर्य, बुद्धि की कुशाग्रता और शारीरिक, मानसिक सुदृढ़ता होती है।

पति-पत्नी के बीच आपसी प्रेम में जितनी अधिक घनिष्ठता होगी, जितना जोश, प्रसन्नता, सौहार्द्र, होगा, उनकी सन्तान उतना ही अधिक उत्साही स्फूर्तिवान और तेजस्वी होगी। कारण यह है कि गर्भ की परिपुष्टि तो माता के उदर में होती है, किन्तु उसका मूल बीज पिता के शरीर से आता है। इसलिए माता के द्वारा प्राप्त होने वाली वस्तुएँ ही उसके लिए पर्याप्त नहीं हैं। मनुष्य स्थूल ही नहीं है। उसका जितना भाग स्थूल दिखाई पड़ता है, उसकी सूक्ष्मता उससे हजार गुनी अधिक है। गुप्त शक्तियाँ सूक्ष्म लोक से प्राप्त होती हैं। चूँकि बालक माता-पिता के बन्धन में होता है, अतः वह अपने योग्य सूक्ष्म तत्व उसी से प्राप्त कर सकता है, जिससे माता-पिता की विद्युत आकर्षण रखती हो। यह आकर्षण आन्तरिक दाम्पत्य प्रेम के द्वारा ही होता है।

स्त्री का यदि अपने पति से पूर्ण प्रेम है तो वह अपनी आकर्षण शक्ति द्वारा पति के सूक्ष्म तत्वों को खींच कर उदरस्थ बालक को देती रहेगी। इसी प्रकार यदि पति का पत्नी से अधिक स्नेह है, तो वह अपने तत्वों को उसकी ओर फेंकता रहेगा।

इस प्रकार के सूक्ष्म आकर्षण द्वारा बालक उन शारीरिक और मानसिक गुणों को प्राप्त कर लेता है, जिनकी उसे आवश्यकता है। स्त्री पुरुष में प्रेम की घनिष्ठता होने पर ही ये अद्भुत गुण सन्तान को प्राप्त हो सकते हैं।

यदि पति-पत्नी में निष्ठा न हों और वे व्यभिचार में प्रवृत्त हों तो सन्तान भी व्यभिचारी बनती देखी जाती है। माता-पिता की पापमयी मनोवृत्तियाँ निश्चित रूप से सन्तान में प्रकट होती हैं। व्यभिचार से उत्पन्न सन्तान को 'वर्णशंकर' के अपमानजनक नाम से पुकारा जाता है। व्यभिचारी पति-पत्नी में चिड़-चिड़ापन, झुंझलाहट, घबराहट, आवेश, अस्थिरता, रूठना, असत्य, छल, अतृप्ति आदि की मात्रा बढ़ जाती है, सिर दर्द, कब्ज, जोड़ों में दर्द, खुश्की, प्यास, अनिद्रा, थकावट, दुःस्वप्न, दुर्गन्धि आदि शारीरिक विकार बढ़ने लगते हैं। ऐसे दम्पत्ति की सन्तान दुर्गुणों से परिपूर्ण, अल्पायु और दरिद्र होती है। मनोविज्ञान के अनुसार अतृप्त व्यभिचारी संयोग मस्तिष्क सम्बन्धी विकार और मानसिक दुर्गुण उत्पन्न करता है। इच्छित तृप्ति की सुविधा न होने के कारण व्यभिचारी व्यक्ति हर घड़ी उद्विग्न रहता है। अतः भावी संतति की पवित्रता, सार्वजनिक स्वास्थ्य की महत्ता, समाज की स्थिरता, परिवार की निश्चिन्तता आदि की दृष्टि से पवित्र दाम्पत्य-प्रेम ही श्लाघनीय है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

गृहस्थ एक तपोवन है

घर-गृहस्थी मायाजाल या साधना भूमि

भारतीय संस्कृति में पारिवारिक जीवन को एक उच्चस्तरीय योगाभ्यास कहा है। योग साधना का अर्थ है, अपने सीमित और संकुचित अहं को असीम और विराट् चेतना से एकाकार कर देना। गृहस्थाश्रम सीमित से असीम की ओर अग्रसर होने के लिये, क्रमशः आगे बढ़ने का अभ्यास करने के लिये ऋषि प्रणीत एक प्रयोगशाला है। प्राचीनकाल में अधिकांश ऋषि विवाहित ही होते थे। आश्रमों में ऋषि-मुनि ऋषिकुमारों को पढ़ाते थे तो उनकी पत्नियाँ ऋषि कन्याओं को शिक्षा देती थीं। हमारी संस्कृति के अनुसार विवाह एक पवित्र बन्धन और प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक धर्मकृत्य है।

इस धर्मकृत्य को सम्पन्न करते हुये ही कोई व्यक्ति अपने 'अहं' का विस्तार आरम्भ करता था और परिवार के अन्य सदस्यों तक अपनी आत्मभावना की परिधि को व्यापक बनाता था। स्वाभाविक ही है कि विवाह के उपरान्त पुरुष या स्त्री की आत्मीयता का क्षेत्र और व्यापक बन जाता है तथा उसमें स्त्री, पति, सन्तान, स्वजन, सगे सम्बन्धी, पड़ौसी और घर के पशु-पक्षी तक सम्मिलित हो जाते हैं। इस प्रकार विवाहित स्त्री या पुरुष यदि विवाह बन्धन के मर्म को समझें तो क्रमशः अपनी उन्नति की ओर बढ़ते चलते हैं। दूसरों के लिये अपने को भूल जाने की, अपने स्वार्थ को कम करने तथा परिवारीजनों की हित चिन्ता को महत्व देने की, अभ्यास साधना से ही गृहस्थ साधक आगे बढ़ सकते हैं और शनैः-शनैः तुच्छता को महानता में, संकीर्णता को उदारता में परिणत करते चल सकते हैं।

भारतीय मनीषियों ने विवाह जैसे पवित्र धर्मकृत्य से और भी कई महान् उद्देश्यों की पूर्ति की कल्पना की थी। मानव प्रकृति की उद्दाम प्रवृत्तियों को संयमित करने, प्रकृति द्वारा आयोजित सृष्टि क्रम के विस्तार को सुव्यवस्थित रूप देने, समाज में स्वस्थ वातावरण बनाने तथा सुयोग्य नागरिकों का निर्माण करने जैसे प्रयोजन भी इस धर्मकृत्य के साथ जोड़ रखे थे। एक कुरूप और बेडौल आकार के पत्थर को मूर्तिकार जिस प्रकार छैनी और हथौड़ी लेकर सुन्दर मूर्ति बनाने में संलग्न होता है और अपने अन्तस् की मूर्ति को पाषाण शिला में साकार कर देता है, उसी स्तर की साधना गृहस्थ धर्म कल्पना करते समय आवश्यकता समझी गई होगी और उस माध्यम से उस साधना को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया होगा। प्रकृति के उद्दाम आवेगों को संयत करने का उपाय भी इसी प्रकार किया गया। जिनका निर्बाध प्रकटीकरण मनुष्य को पशु और असभ्य, जंगली बना सकता है। उन आवेगों के साथ ही परिष्कार और शोधन की छैनी चलाकर मनुष्य की असंस्कृत चेतना को सुन्दर आकार भी देने का सहज क्रम बनाया गया।

अन्य साधनाओं में लगे साधकों में अहंकार का भाव भी जल्दी आ सकता है, परन्तु गृहस्थ एक ऐसा योगाभ्यास है, जिसमें सब कुछ सहज ढंग से चलता रहता है और साधक निरहंकार होकर अपने पत्नी-बच्चों, स्वजन-सम्बन्धियों में अपनी आत्मा का दर्शन करता रहता है। सम्भवतः इसी कारण मनीषियों ने गृहस्थाश्रम को चारों आश्रमों से महत्वपूर्ण और उनका मुख्य केन्द्र बनाया है। आप्त वचन है—गृहस्थ ही वास्तविक रूप से यज्ञ करते हैं। गृहस्थ ही वास्तविक तपस्वी हैं। इसलिए चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम ही सबका शिरमौर है।

आधुनिक विचार के कई व्यक्ति विवाह को मात्र वासनापूर्ति का साधन ही मानते हैं। यह भोग प्रधान मान्यताओं की देन है अन्यथा प्राचीन भारतीय मनीषियों ने इसे भोग नहीं योग प्रधान दृष्टि से ही देखा है और माना है कि यह विषय सामग्री नहीं वरन् दो आत्माओं के पारस्परिक सहवास द्वारा एक-दूसरे के विकास की आध्यात्मिक व्यवस्था है, जिसके अन्तर्गत विशुद्ध आत्मवादी दृष्टिकोण अपनाकर एक-दूसरे में अपनी आत्माओं की ही झाँकी देखकर शुद्ध आत्मसुख की प्राप्ति के लिये साधना की जाती है। मनीषियों ने इसे प्रेम और पुण्य का पवित्र प्रसाद तथा वात्सल्य और त्याग की लीलाभूमि बताया है, इसे आत्मिक उत्कर्ष को प्राप्त करने वाली शान्तिकुटीर निरूपित किया है। सर्वविदित है कि विवाह के उपरान्त मनुष्य समाज का एक सक्रिय अंग बनता है। उसे नये सम्बन्ध प्राप्त होते हैं, नये उत्तरदायित्व मिलते हैं और नये कर्त्तव्यों के परिपालन का आनन्द रसपान करने का सुअवसर प्राप्त होता है।

सांस्कृतिक और धार्मिक आदर्शों की सटीक व्याख्या करने वाले एक लेखक ने गृहस्थाश्रम की महत्ता इन शब्दों में व्यक्त की है—गृहस्थ योग के पुण्यस्वरूप और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसकी पुण्य साधना का रहस्य जानने के लिए हम हिमालय की उस तुषार मण्डित शिला पर चलें जहाँ हिमालय की किशोरी पार्वती उग्र तपश्चर्या में निमग्न है। यही भारतीय गृहस्थाश्रम के मंगलमय स्वरूप का प्रथम दर्शन है। गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने से पूर्व रमणी को तपोमयी साधना में प्रवृत्त होना पड़ता है क्योंकि जिस मंगलमय उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह अपने पवित्र जीवन का उत्सर्ग करती है, उसके लिए तप और त्याग की परम आवश्यकता है। कुमार की उत्पत्ति तपस्या की सिद्धि का मधुर फल है, क्योंकि विश्व के परित्राण के लिये, देश के मंगल के लिए, समाज के अभ्युदय के लिए और मनुष्यता की मर्यादा को अक्षुण्ण रखने के लिए ही कुमार जैसे तेजस्वी और महान् व्यक्तित्व के अवतरण की आवश्यकता है और यह आवश्यकता बिना तप, त्याग के पूरी नहीं की जा सकती।

सन्तानोत्पति तो विवाह का एक छोटा-सा उद्देश्य है। वस्तुत: तो इस योग दीक्षा का लक्ष्य अपने व्यक्तित्व की अपूर्णता को जीवनसाथी के व्यक्तित्व से पूरा करना है। संसार में रहने वाला प्रत्येक मानव अपूर्ण है। किसी व्यक्ति में कोई गुण अधिक है तो किसी गुण का अभाव है। विशेषत: स्त्री और पुरुष के व्यक्तित्व की विशेषतायें तो भिन्न ही हैं और उनमें विशिष्ट गुणों का अभाव भी भिन्न है। जीवन साथी को प्राप्त कर उन गुणों की पूर्ति का प्रयास एक-दूसरे के व्यक्तित्व का सम्मिलन करते हुए सरलतापूर्वक किया जा सकता है। दोनों के स्वाभाविक यदि विश्लेषण किया जाय तो विदित होगा कि स्त्री में लज्जाशीलता, भीरूता, सहज ज्ञान, पातिव्रत्य, मृदुता ऋजुता और भावुकता के गुण विशेष हैं। मानसिक संवेगों को वे तीव्रता से अनुभव करती हैं।

इसी प्रकार पुरुष में शक्ति, शौर्य, दृढ़ता, क्रोध तथा कार्यदक्षता के गुण विशेष रूप से विद्यमान रहते हैं। क्रियाशीलता और प्रभुता प्रदर्शन उसके गुण हैं। वह स्वभावत: मजबूत, निर्णायक, स्वाभिमानी, प्रचण्ड, उग्र कठोर पुरुष अपने स्वभाव के विपरीत गुणों को एक-दूसरे से मिलाकर एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व का सृजन करता है। दोनों का संयोग समाज की इकाई बनना है और वह इकाई ही सम्मिलित रूप से समाज को आगे बढ़ाती है।

यह एक मान्य और स्वयं सिद्ध सिद्धान्त है कि दो भिन्न या विपरीत गुणों वाली वस्तुएँ एक-दूसरे में जल्दी घुल-मिल जाती है और एक सम्पूर्ण इकाई का सृजन करती हैं, शक्ति का उत्पादन करती हैं। विद्युत की दो विपरीत धारायें मिलकर करन्ट पैदा करती हैं। पृथ्वी की आकर्षण शक्ति और वस्तु का आकार दोनों मिलकर चराचर जगत् को स्थिर रखते हैं। आग और पानी का संयोग वाष्पशक्ति उत्पन्न करता है। सृष्टि नियंता की रचना ही ऐसी है कि उसमें दो विपरीत गुणों विभिन्न विशेषताओं में भाई-चारे और साझेदारी के सम्बन्ध शीघ्र ही स्थापित हो जाते हैं। स्त्री और पुरुष की चारित्रिक, स्वभावगत, व्यक्तित्व की और शरीर की भिन्न-भिन्न विशेषतायें एक-दूसरे में आबद्ध होकर सम्पूर्ण मनुष्य की सर्जना करती हैं। यदि व्यक्तित्व के समग्र विकास की उपेक्षा कर दाम्पत्य जीवन को क्षुद्र प्राकृतिक आवेगों तक ही सीमित रहने दिया जाय तो गृहस्थाश्रम की सारी महिमा, गरिमा नष्ट होकर रह जाती है।

लौकिक भाषा में यदि गृहस्थ धर्म का मूल्यांकन किया जाय तो यही प्रतीत होता होगा कि गृहस्थी स्त्री और पुरुष का सम्मिलित साधना क्षेत्र है। कहा भी गया है कि गृहस्थी की तुलना साझे की दुकान से की जाती है। इसके दो साझीदार हैं स्त्री और पुरुष। साझे की दुकान तभी सफल होती है, जबकि साझेदार एक दूसरे के स्वभाव, प्रकृति, गुण-दोष आवश्यकता और विशेषता को समझते हों। एक-दूसरे का सम्पर्क और अपने साथी के स्वभाव से अवगत न होने के कारण साझे की दुकान जिस प्रकार चलना मुश्किल हो जाती है, उसी प्रकार पति-पत्नी एक-दूसरे को समझकर अपने व्यवहार की रीति-नीति निर्धारित न करें तो कलह, विग्रह और क्षति जैसे अनर्थ ही उत्पन्न होंगे।

पारिवारिक समझ और आपसी तालमेल बिठा लेने मात्र से गृहस्थ धर्म का परिपालन नहीं हो जाता बल्कि इस आश्रम की महिमा और गौरव को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए यह भी आवश्यक है कि वे एक-दूसरे के लिए अपनी आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को तिलांजिल देने के लिए तत्पर रहें। सफल दाम्पत्य जीने वाले महापुरुषों के पारिवारिक जीवन का यदि अध्ययन किया जाय तो विदित होगा कि वे अपने जीवन साथी को सुखी और शान्ति देने के लिए अपने स्वार्थ को—अपनी इच्छाओं को बलिदान करने की नीति अपनाते रहे हैं। स्वार्थ, त्याग और जीवन साथी की हित चिन्ता में संलग्न रहते हुए ही औरों के लिए त्याग करने की भावना का विकास होता है। कहना न होगा कि इस दिशा में जो जितना भी प्रगति कर जाता है, वह उतने ही अंशों में महान् बन जाता है। महानता का यही अर्थ है कि अपने संकुचित और क्षुद्र स्वार्थों को महान् बनाना—उनका क्षेत्र व्यापक विस्तृत करना।

गृहस्थ क्षेत्र में विकास की प्रक्रिया अवरुद्ध हो जाती है, इसलिए नहीं कि वह उदारता स्वार्थ त्याग की भावनाओं को नष्ट करता है और मायामोह में बाँध लेता है वरन् महानता की ओर विकास की गति इसलिए अवरुद्ध हो जाती है कि लोग दाम्पत्य जीवन के वास्तविक अर्थ को नहीं समझते हैं और पत्नी बच्चों की सेवा उनके लिए सुख-साधनों की व्यवस्था को ही सद्गृहस्थ होने का लक्षण मान लेते हैं। इस रीति-नीति को अपनाने वाले व्यक्तियों की परिवार के सम्बन्ध में स्पष्ट मान्यता यही होती है कि पति-पत्नी, बच्चे और माता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पिता एक स्थान पर रहें। साथ-साथ खाये पियें और एक दूसरे की सुख-दुःख में मदद करें। परिवार का भरण-पोषण कर लेने भर ही से उनकी दृष्टि में पारिवारिक कर्त्तव्यों का निर्वाह हो जाता है। यह मान्यता पूर्णतया भ्रान्तिपूर्ण है। थोड़े से लोगों के एक साथ रहने साथ-साथ खाने-पीने और आपस में उठने-बैठने से ही परिवार नहीं बन जाता। साथ-साथ रहना ही परिवार कहलाता था तो होटलों और धर्मशालाओं में कई व्यक्ति एक साथ रहते हैं, वहाँ एक साथ एक हाल में खाते हैं। इसलिए होटल और धर्मशालाओं को ईंट-चूने से बने मकान में रहने वाले कुछ व्यक्तियों के परिवार से बढ़िया परिवार कहना चाहिए।

परिवार के सम्बन्ध में अपनी मान्यता यह होनी चाहिए कि घर की ईंट ही परिवार नहीं है। किसी परिवार के आधे लोग भले ही भिन्न-भिन्न देशों में रहें, हम उन्हें एक आदर्श परिवार कह सकते हैं, यदि उनके सदस्यों में परस्पर प्रेम, सहानुभूति और संवेदना के सूत्र सम्बन्ध हों। पारिवारिक जीवन का प्राण ही प्रेम और परस्पर का सद्भाव है। यदि परिवार में सभी सदस्य परस्पर सद्भाव सम्पन्न हो, आपस में एक-दूसरे के प्रति सच्ची-सच्ची सहानुभूति रखते हों सौजन्यता, बलिदान और सेवा की वृत्ति हो तो ही वह परिवार आदर्श हो सकता है। परिवार साम्राज्य में इन आदर्शों की स्थापना पति और पत्नी के सम्मिलित प्रयासों द्वारा ही हो सकती है क्योंकि वे परिवार साम्राज्य के शासक और शासिका हैं। इन आदर्शों की स्थापना, स्वयं अपने जीवन में उनकी स्थापना करते हुए की जाय तो कौन कह सकता है कि घर गृहस्थी माया जाल है। बल्कि वह तो मोक्ष की, आत्मविकास की और आत्म कल्याण का सहज साध्य साधन है। आश्रम व्यवस्था का निर्धारण आत्म विकास की ही दृष्टि से किया गया था और उसमें गृहस्थाश्रम का विशिष्ट स्थान सदा से रहा है।

आश्रम व्यवस्था पर एक दृष्टि

विचारपूर्वक देखा जाय और मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का गहन अध्ययन किया जाय तो मनुष्य की अवस्था चार भागों में विभाजित होती है। (१) जिज्ञासा और विकास की अवस्था (२) उद्योग और उपभोग की अवस्था। (३) ज्ञान और अनुभव में सामंजस्य काल (४) आत्मकल्याण की धारणा। इन्ही चार बातों को लेकर ही यह जीवन पूर्ण होता है। इन अवस्थाओं में नियन्त्रण न रखा जाय तो मनुष्य की स्वाभाविक प्रकृति अधोगामी बन सकती है। इस विचार से ही यहाँ कर्त्तव्यों की सीमा में बाँधने का प्रयत्न किया गया है। ये विभाग वास्तव में मानव की शक्ति और उसके स्वभाव को ही अनुसरण करके बनाये गये हैं। जीवन पद्धति में कहीं कोई विकार नहीं है। मनुष्य इन चारों अवस्थाओं का रसास्वादन करता हुआ कल्याण की स्थिति प्राप्त कर सकता है। यदि इस तरह से भारतीय जीवन को संस्काररयुक्त न किया गया होता तो यहाँ भी अन्य देशों की तरह ही भोगवाद प्रधान रहा होता। जो शुद्धता, पवित्रता, नैतिकता, उत्कृष्टता, आदर्शवादिता, शक्ति और विशेषता यहाँ के जीवन में रही है वह न होती। यहाँ के लोग वह समृद्धि, सुख और आनन्द प्राप्त कर सके होते जिसके लालच में जीवनमुक्त आत्मायें भी यहाँ लौट-लौटकर आई हैं। इस जीवन पद्धति में कोई त्रुटि नहीं, कोई शिकायत नहीं। सम्पूर्ण व्यवस्थित जीवन का नाम है आश्रम-व्यवस्था। यह जीवन पद्धति की उत्कृष्ट कला का विकास है।

हिन्दू धर्म में मनुष्य जीवन को लक्ष्य सिद्धि का परम पुरुषार्थ माना गया है। इस क्रम में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आते हैं। इन चारों अवस्थाओं का क्रमशः लाभ प्राप्त करता हुआ मनुष्य शाश्वत, बन्धन मुक्ति, सिद्धि स्वर्ग या मोक्ष प्राप्त कर ले, इस हिसाब से जीवन को भी चार भागों में विभक्त किया गया है, जो अवस्था और विकास से संयुत और क्रमशः हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन चार उद्देश्यों का विस्तार ही (१) ब्रह्मचर्य (२) गृहस्थ (३) वानप्रस्थ और (४) संन्यास है। नीचे उस अवस्था और स्थिति पर प्रकाश डालेंगे, जिससे यह पता चलेगा कि भारतीय जीवन पद्धति का विकास कितनी बुद्धिमत्ता के साथ हुआ है और आज की अवस्था में उसकी कितनी आवश्यकता है ?

प्रारम्भ काल में बालक की जिज्ञासायें अशान्त होती हैं। वह संसार और यहाँ के अनेक पदार्थों का रहस्य जानने के लिये उत्सुक होता है। साथ ही चूँकि वह प्रकृति के अत्यधिक समीप होता है। अतः उसे भले-बुरे का ज्ञान भी नहीं होता। इन्द्रियाँ भी विकास की ओर उन्मुख होती हैं इसलिये शक्ति संचय और संयम की भी यही अवस्था होती है। जिज्ञासाओं की तृप्ति के लिये साधन, अवस्था, स्वाभाविक प्रवृत्तियों को सुनियोजित और नियन्त्रण रखने के लिये, शक्तियों के संचय के लिये ब्रह्मचर्य की आवश्यकता होती है। ब्रह्मचर्य का अर्थ केवल इन्द्रिय संयम ही नहीं वरन् ब्रह्म प्राप्ति के सम्पूर्ण आचरणों का नाम ब्रह्मचर्य है। यह साधनावस्था है इसलिये गम्भीर देख-रेख तथा पूर्ण नियन्त्रण की आवश्यकता पड़ती है।

प्रारम्भिक, अवस्था में बालक के विचार, संस्कार और संकल्प बहुत कोमल होते हैं, इसलिये उनके पिछले जीवन के कठिन संस्कारों को भी मोह जाना संभव होता है। किन्तु यह संस्कार यदि स्वभाव की गहराई में धँस गये तो उनको उखाड़कर बाहर निकालना कठिन हो जाता है। बालकों में श्रद्धा की मात्रा इतनी पर्याप्त है कि वह संस्कारों के विकास में गुरुओं के कठोर नियन्त्रण में बने रह सकें और आत्मसिद्धि की कठोर साधनाएँ पूर्ण निष्ठा के साथ करते रहें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्रह्मचर्य का दूसरा उद्देश्य है सांसारिक सुखोपभोग के लिये शक्ति संचय। ब्रह्मज्ञान हो जाने पर जो विशुद्ध कर्तव्य पालन शेष रह जाता है, उसे सुविधाजनक स्थिति में चलते रहने देने की दृष्टि से शारीरिक शक्ति अपेक्षित है, जीव की शेष जीवन यात्रा शरीर द्वारा ही पूरी होती है इसलिये उसका सुदृढ़ और मजबूत होना नितान्त आवश्यक है। गुरुकुलों के जीवन में इन्द्रिय असंयम के कोई भी कारण शेष नहीं रहते थे। उन वातावरणों को यज्ञादि से और भी बलप्रदायक बनाया जाता था फलस्वरूप एक निश्चित समय तक वहाँ रहने से ब्रह्मचारी का मन, बुद्धि, शरीर सब पूर्ण पुष्ट और परिपक्व हो जाता था। ज्ञान की दृष्टि से, शारीरिक दृढ़ता की दृष्टि से वह पूर्ण होकर आश्रमों से निकलकर आते थे और एक उत्तरदायी जीवन-गृहस्थ जीवन के लिए सारी तैयारियाँ पूर्ण कर लेते थे।

दूसरा आश्रम गृहस्थ है। वह उद्योग, अर्थोपार्जन और सुखोपभोग का जीवन होता है। सांसारिक सुखों का भी एक निश्चित सीमा में औचित्य है। उसका उपभोग किया जाना भी अधर्म नहीं है। सन्तानोत्पति की दृष्टि से पति-पत्नी का संयोग दोषपूर्ण नहीं हैं। इससे वंश चलते हैं, समाज, राज्य और राष्ट्र का निर्माण होता है। लौकिक जीवन में मनुष्य का सहयोगी भी धर्म है। राष्ट्र को सबल और सुशिक्षित, सुदृढ़ और चरित्रवान नागरिक देने की आध्यात्मिक प्रवृत्तियाँ गृहस्थ जीवन में परिपूर्ण होती हैं। ब्रह्मचर्य काल में व्रतधारी को जो शिक्षायें मिली होती है व्यवहार में उनका अनुभव गृहस्थ में होता है। प्रेम, दया, करुणा, मैत्री, सहानुभूति, संगठन, परोपकार, कर्त्तव्यपालन, त्याग, उदारता, क्षमा, सहिष्णुता, कष्ट परायणता आदि की व्यवहारिक रसानुभूति गृहस्थ जीवन में ही पूरी होती है। स्त्री-पुरुष मिलकर निर्माण कार्यों में सहयोग करते हैं गृहस्थ इस बात का प्रतीक है कि मनुष्य की आध्यात्मिक चेतना जागृत है और कर्त्तव्य पालन के लिए उसमें समुचित साहस है। अपनी भावनाओं का विकास भी इसी क्षेत्र में रहकर होता है। कष्ट और कठिनाइयों में मनुष्य की आत्मा विकसित होती चली जाती है।

बोधायन धर्म सूत्र में गृहस्थाश्रम को अनेक प्रयोजनों को पूरा करने वाला सर्वोच्च आश्रम माना है। इसमें सुखोपभोग के साथ-साथ धर्म का भी समन्वय होने से महर्षि गौतम ने गृहस्थाश्रम को सब आश्रमों का मूल कहा है। जिन लोगों का यह कथन है कि गृहस्थ जीवन जंजाल है, इसमें रहकर ईश्वर उपासना का लाभ नहीं उठाया जा सकता, उन्हें जानना चाहिए कि महर्षि कण्व, जमदग्नि, विश्वामित्र, वशिष्ठ, भारद्वाज, गौतम, शंख, दक्ष आदि अनेक ऋषि गृहस्थ ही थे और गृहस्थी में रहकर ही उन्होंने उज्ज्वल तत्वों की शोध की थी। वस्तुत: मनुष्य के विकास में परिवार पहली और सबसे महत्त्वपूर्ण इकाई है। अनेक कष्ट और कठिनाइयाँ भी गृहस्थ जीवन में हँसी-खुशी के साथ काट ली जाती हैं। दूसरे तीनों आश्रमों के संचालन की व्यवस्था भी इसी से पूरी होती है।

तैरना सीखने की आवश्यकता जल में ही पूरी होती है। जमीन में लेटकर कोई तैरना नहीं जान सकता। जमीन में परोपकार और धर्मपालन की आवश्यकता भी इसी तरह पारिवारिक जीवन के अलग रहकर नहीं की जा सकती। अर्थ का आचरण भी उतना ही आवश्यक है, यदि इसका कोई प्रयोग न किया जाय तो यह जो सांसारिक गतिविधियाँ चल रही हैं वह सब बन्द हो जायें और यह संसार बिल्कुल खुश्क, नीरस और जनहीन हो जाय। तब यह संसार ही जड़वत् दिखाई देने लगे।

वानप्रस्थ-गृहस्थ में रहते हुये एक अवस्था ऐसी आती है जब उसके लिए अपनी आवश्यकता घटने लगती है। गृहस्थी के संचालन का उत्तराधिकार सन्तान ले लेती है। अर्थ और काम प्रयोजनों को पूरा कर लेने से इन्द्रियों के विषय भी काफी तृप्त हो चुके होते हैं। शास्त्रों में यह अवस्था ५० के लगभग मानी जाती है, सब लोगों को अपने कन्धों का भार उतारकर परिवार के ज्येष्ठ प्रतिनिधि को सौंप देना चाहिये और लोक हित के कार्यों में अधिक रुचि लेनी चाहिये। अधिक आयु के पुरुषों तथा युवकों के विचारों में प्राय: साम्य नहीं होता इसलिये पारिवारिक जीवन को अकारण कलह से बचाने के लिये भी यह आवश्यक है कि उतरती उम्र के व्यक्ति अपना जीवन समाज के लिये समर्पित कर दें। उदर-पोषण के लिये या जब तक उत्तराधिकारी पूर्ण रूप से विकसित न हो जाय और उस व्यक्ति के मार्गदर्शन की आवश्यकता बनी रहे, तब तक कोई व्यक्ति पारिवारिक सम्पर्क में बना रह सकता है पर उसे केवल अपने आपको व्यवस्थापक रहकर ही चलना चाहिये और जीवन का अधिकांश भाग आत्म चिन्तन तथा लोकोपकारी साधनाओं में खर्च करना चाहिये। अनावश्यक आसक्ति और मोह के कारण प्राय: लोग परिवार को छोड़ना नहीं चाहते, उसी से चिपटे रहना चाहते हैं। उन्हें यह गलतफहमी होती है कि यदि वे नहीं रहेंगे तो शायद बालकों का जीवित रहना कठिन हो जायगा। यह मोह-बुद्धि परिवारों में अनेक बखेड़ों का कारण बनती है। गृहस्थी का संचालन सुरुचिरूप से चलते रहने देने की दृष्टि से अपना शरीर परिवार से हटा लेना कुछ बुरा नहीं, वरन् यह एक नैतिक धर्म कर्त्तव्य है। नये की स्थापना के लिए पुराने को वहाँ से हट ही जाना चाहिए।

संन्यास—संसार में रहते हुए धर्म, अर्थ, काम के त्रिविध प्रयोजन पूरे हो जाने के बाद आत्म कल्याण की स्थिति आती है। मनुष्य शरीर में जीवात्मा का अवतरण बन्धन से मुक्ति या मोक्ष प्राप्ति के लिए होता है। समाज और संसार में रहते हुए मानसिक उलझनें, उत्तेजनायें आदि रहनी स्वाभाविक थीं। अधर्म की पहिचान होते हुए भी कई बार औरों के हित की दृष्टि से उसे करना पड़

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाता है, इससे अकारण आत्म-वेदना मिलती है। अत: चौथी अवस्था में प्राणी को संसार के शेष बन्धनों को भी त्यागकर अपने आपको पूर्णतया परमात्मा की इच्छा के सहारे छोड़ देना चाहिए। उस समय मनुष्य का ज्ञान पक जाता है। अकारण पैदा होने वाली दुर्भावनायें सामाजिक सम्पर्क से दूर हो जाने से छूट जाती हैं। न कुछ मोह रह जाता है न आसक्ति। किसी तरह का कोई कर्त्तव्य भी शेष नहीं रह जाता। परमात्मा के चिन्तन में विचरण करता हुआ मनुष्य अन्त में संन्यास की स्थिति में प्राण त्यागकर आनन्द की अन्तिम स्थिति में विलीन हो जाता है।

यह आश्रमों की परम्परा जब तक हमारे देश में जीवित रही तब तक यश, श्री और सौभाग्य में यह राष्ट्र सर्वशिरोमणि बना रहा। श्रेय और प्रेय का इतना सुन्दर सामंजस्य किसी अन्य जाति या धर्म में मिलना कठिन है। हमारी कल्पना है कि मनुष्य आनन्द में जन्म लेता है, आनन्द से जीवित रहता है और अन्त में आनन्द में ही विलीन हो जाता है। मनुष्य का लक्ष्य भी यही है। इस आवश्यकता की पूर्ति आश्रम व्यवस्था में ही सन्निहित है। समाज की सुदृढ़ रचना और मनुष्य के जीवन ध्येय की पूर्ति के लिए आश्रम-व्यवस्था का पुनर्जागरण अत्यन्त आवश्यक है और उस व्यवस्था में गृहस्थाश्रम के महत्व को पुन: ठीक से समझने की आवश्यकता है। वह समझा जा सके, तो घर-गृहस्थी में ही स्वर्ग का अवतरण सम्भव है।

ऋषियों की गृहस्थ-साधना-गृहस्थ योग

प्राचीनकाल में भी गृहस्थ संन्यासी-गृह वैरागी होते थे और अब भी वही प्रक्रिया अध्यात्म मार्ग पर द्रुतगति से आगे बढ़ने वाले साधकों के लिए उपयुक्त है।

भिक्षा का अन्न वही ग्राह्य है जो उच्च, संस्कारवान् व्यक्तियों का है और पूर्ण न्याय नीति युक्त कमाया गया है। आज ऐसा अन्न मिलना प्राय: एक प्रकार से असम्भव ही है। अनीति से उपार्जित धान्य को खाकर साधना करने से साधक की बुद्धि भी वैसी ही कुसंस्कारी बनेगी। उसे न एकाग्रता प्राप्त होगी और न शान्ति। भजन का बहाना भले ही करते रहा जाय, न उसमें मन लगेगा और न सफलता मिलेगी। ऐसी दशा में आज की स्थिति में भिक्षा का अन्न मुफ्त का निर्वाह एक प्रकार से सर्वथा अवांछनीय ही है। जंगलों में कन्द-मूल,फल की प्राचीन सुविधा रही नहीं, अब वे वन कहाँ हैं ? जहाँ थोड़ी कृषि, उद्यान, गो-पालन करके निर्वाह की व्यवस्था की जा सके। ऐसी दशा में यही उचित है कि अपने हाथ-पैर के उपार्जन से गुजारा करते हुए साधनात्मक जीवन जिया जाय।

जिसका अन्न खाया जाता है, उसके बदले अपना तप, उपार्जित पुण्य देना पड़ता है। मुफ्त में यहाँ कहीं कुछ मिलने का नियम नहीं है। भौतिक जीवन का क्रम अवरुद्ध करके भजन-साधन किया और जो कमाया वह अन्न, वस्त्र दाता दानी के लिए चला गया। उसमें अपने लिए क्या बचा। इसमें क्या बुद्धिमानी रही ? भले ही थोड़ा भजन या सेवा कार्य किया जाय पर यह स्वावलम्बी होकर करना चाहिए, तभी उसमें कुछ सफलता मिलेगी।

प्राचीनकाल में ऋषि-मुनि आज के साधु, बाबाओं से सर्वथा भिन्न थे। उनमें से अधिकांश गृहस्थ संन्यासी—गृही वैरागी थे। प्रकृति के समीप शुद्ध जलवायु का आश्रय लेकर वे विरल प्रदेशों में रहते थे। गोपालन, फल, शाक उत्पादन आदि निर्वाह की उपयुक्त व्यवस्था वहीं बना लेते थे। आश्रम में स्त्री-बच्चों को समेटे रहते थे। अपने परिवार को भी सुसंस्कारी और लोकोपयोगी बनाते थे। साथ ही गुरुकुल, चिकित्सा, तप, चिन्तन, आगन्तुकों को परामर्श, विभिन्न विषयों के शोध-कार्य प्रवृत्तियाँ वहाँ रहकर चलाते थे और आवश्यकतानुसार भ्रमण करके जन-जागरण की आवश्यकता पूरी करते थे। वही ऋषि जीवन था। संन्यास तो जीवन के अन्तिम एवं अशक्त भाग में लिया जाता था। इससे पूर्व तो वानप्रस्थ की—ऋषि-मुनि की भूमिका ही समस्त आत्म-परायण व्यक्ति निबाहते थे।

आज की युवावस्था में संन्यास परम्परा अवैदिक-अशास्त्रीय है। उसका जन्म बुद्धकाल में हुआ। समय-समय पर उस अवांछनीय उभार का खण्डन भी किया जाता रहा है। निम्न स्तर के व्यक्ति यदि उच्चस्तर का वेश धारण कर लें तो भी वस्तुस्थिति का निर्वाह नहीं हो सकता। कोई छोटा बच्चा, वृद्ध जैसी सफेद दाढ़ी, मूँछ लगा ले, अशिक्षित व्यक्ति विद्वान का वेष धारण कर ले, निर्धन होते हुए भी अमीर का स्वाँग बनाये तो यह सर्वथा उपहासास्पद ही होगा। योग्यता के अभाव में ऊँचे पद के उत्तरदायित्वों का निर्वाह हो नहीं सकेगा। फलत: अवांछनीय परिणाम ही सामने आवेंगे। आज की साधु बाबाओं की भीड़ से केवल गड़बड़ी ही उत्पन्न हो रही है, उस पद के अधिकारी पात्र और उत्तरदायित्व का सही निर्माण करने वाले कोई विरले ही कहीं-कहीं दीखते हैं।

अध्यात्म साधनाओं के पथ पर चलने के लिए साहस करने वाले व्यक्तियों को आज की स्थिति में संन्यासी होने की, कपड़े रंगने की, घर छोड़ने की जरूरत नहीं है। यदि युवावस्था हो तो गृहस्थ आजीविका उपार्जित करते हुए इस मार्ग पर चलने का कार्यक्रम बनाना चाहिए। यदि आयु ढल गई है और बच्चे कमाने योग्य हो गये हैं। छोटे बहिन-भाइयों को सँभाल सकते हैं तो फिर वानप्रस्थ की तरह घर में रहते हुए स्वाध्याय, सेवा, संयम, साधना का क्रम निर्धारित करना चाहिए। घर से कुछ दूर निवास किया जा सकता है। पत्नी को भी साथ रखा जा सकता है। पर आजीविका की दृष्टि से स्वावलम्बी ही होना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संचित आजीविका का प्रबन्ध न हो तो सेवा कार्य के बदले पारिश्रमिक लेकर निर्वाह करना चाहिए पर मुफ्त का भोजन निर्वाह किसी भी दशा में स्वीकार नहीं करना चाहिए। सम्पर्क में कोई उदार दानी हो और सेवा में सहायता करना चाहे तो उस धन को अपने लिए न लेकर लोकमंगल के लिए ही लगा देना चाहिए। प्राचीनकाल में पुरोहित द्वारा जो प्रतिग्रह लिया जाता था वह उनके निजी काम नहीं आता था वरन् सार्वजनिक सत् प्रयोजनों के लिए ही नियोजित होता था। अभी भी उसी परम्परा को अपनाया जाना चाहिए।

ब्रह्मचर्य की मर्यादा जितनी अधिक सम्भव हो उतनी रखी जाय पर दुर्बल मनोभूमि के रहते उस प्रकार की प्रतिज्ञा करना अनिवार्य नहीं। हाँ साधना मार्ग पर चलने वालों को सन्तान की संख्या न्यूनतम रखने का आरम्भ से ही ध्यान रखना चाहिए। ढलती आयु में तो यह सतर्कता अनिवार्य रूप से आवश्यक है। बुढ़ापे में सन्तान पैदा करना अपने साथ और उस सन्तान के साथ एक प्रकार से अत्याचार करना ही है।

प्राचीनकाल में ऋषि-मुनि गृहस्थ जीवन व्यतीत करते थे, उनके स्त्री-बच्चे भी साथ रहते थे उसके कुछ प्रमाण देखिये—

तारावृहस्पतेर्भार्या वशिष्ठस्याप्यरुन्धती।
अहिल्या गौतमस्त्री साप्यनसूयात्रिकामिनी।।
देवहूती कर्दमस्य प्रसूतिर्दक्षकामिनी।
पितृणां मानसी कन्या मेनका साम्बिकाप्रसूः।।
लोपामुद्रा तथाहूती कुबेरकामिनी तथा।
वरुणानी यमस्त्री च बलेर्विन्ध्यावलीति च।।

—ब्रह्मवैवर्त पुराण

सुरगुरु वृहस्पति की भार्या का नाम तारा देवी है। वशिष्ठ की पत्नी अरुन्धती है। गौतम ऋषि की पत्नी का नाम अहिल्या है। अत्रि की पत्नी अनुसूया नाम वाली है देवहूति नाम वाली कर्दम की पत्नी है तथा दक्ष की पत्नी प्रसूति नामधारिणी है, पितृगण की मानसी कन्या मेनका अम्बिका प्रसू है। लोपामुद्रा तथा आहुति कुबेर की कामिनी हैं। यम की वरुणानी है और राजा बली की पत्नी विन्ध्यावली है।

तस्य प्रध्यायमानस्य कश्यपस्य महात्मनः।।
ब्रह्मणोंऽशौ सुतो पश्चात् प्रादुर्भूतौ महौजसौ।।
वात्सारश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ।

—वायु पुराण

महात्मा कश्यप के दो पुत्र उत्पन्न हुए वात्सर और असित। वे दोनों ही ओजस्वी और ब्रह्मवादी थे।

तस्या कन्या त्विडविडा रूपेणाप्रतिमाभवत्
पुलस्त्याय स राजर्षिस्तां कन्यां प्रत्यपादयत्।।
ऋषिरिडविडायान्तु विश्रवाः समपद्यत।

—वायु पुराण

तृतीय त्रेता युग के मध्य में राजा हुआ था। उसकी कन्या इडविडा थी जो कि रूप में अप्रतिम थी। उस राजर्षि ने वह परम सुन्दरी कन्या पुलस्त्य के लिये दे दी थी। ऋषि पुलस्त्य ने इडविडा से विश्रवा को जन्म दिया।

वृहस्पतेर्वृहत्कीर्तिर्देवाधार्यस्य कीर्तितः।
कन्यां तस्योपयेये स नाम्ना वै देव वर्णिनीम्।

—वायु पुराण

देवों के आचार्य बृहस्पति को बृहत्कीर्ति कहा गया है। नाम से देव वर्णिनी उसकी कन्या के साथ उसने विवाह किया था।

शुकस्याऽस्याभवन् पुत्राः पञ्चाऽत्यन्ततपस्विनः।
भूरिश्रवाः प्रभुः शम्भु कृष्णो गौरश्च पंचमः।।
कन्याकीर्तिमतीचैवयोगमातेाधृतव्रता।

—कूर्म पुराण

इन शुकदेव के पाँच अत्यन्त तपस्वी पुत्र हुए थे जिनके नाम भूरिश्रवा, प्रभु, शम्भु, कृष्ण और गौर ये थे। एक कन्या थी जो कीर्तिमति योग माता और धृतवृता थी।

अरुन्धत्यां वशिष्ठस्तु शक्तिमुत्पादयत्सुतम्।
शक्तेः पराशरः श्रीमान् सर्व्वज्ञस्तपतां वरः।।
आराध्य देवदेवेशमीशानंत्रिपुरान्तकम्।
लेभे त्वप्रतिम पुत्र कृष्णद्वैपायनं प्रभुम्।

—कूर्म पुराण

वशिष्ठ ने अरुन्धती पत्नी से शक्तिधारी पुत्र को ही उत्पन्न किया था। शक्ति से श्रीमान् सर्वज्ञ और तपस्वियों में परम श्रेष्ठ पाराशर ने अपना जन्म ग्रहण किया था। उस पाराशर महामुनि ने देवों के भी देवेश्वर त्रिपुरान्तक ईशान की समाराधना करके एक अति अप्रतिम प्रभु श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास जैसा उत्तम पुत्र प्राप्त किया था।

वशिष्ठस्तूपयेयेऽथ भागिनी नारदस्यतु।
अरुन्धतीं वरारोहां तस्यां शक्तिमजीजनत्।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शक्तेः पराशरः पुत्रस्तस्य वंश निबोध मे।
यस्य द्वैपायनः पुत्रः स्वयं विष्णु रजायत।।

—मत्स्य पुराण

वशिष्ठ ने नारद की भगिनी के साथ विवाह किया था, जिस वरारोहा का नाम अरुन्धती था। अरुन्धती में उसने शक्ति को समुत्पन्न किया था। शक्ति का पुत्र पाराशर हुआ था। अब उसका जो भी वंश हुआ, उसे मुझसे समझ लो। जिस पराशर का स्वयं विष्णु द्वैपायन पुत्र उत्पन हुआ था।

अंगारेष्वङ्गिरा जातो ह्यार्चिष्योऽग्निस्तथैव च।
मरीचिष्यो मरीचिस्तु ततो जातो महातपाः।।
केशैस्तु कपिशा जातः पुलस्त्यश्च महातपाः।
केशैप्रलम्बैः पुलहस्ततोजातो महातपाः।।
वसुमध्यात् समुत्पन्नो वसिष्ठस्तु तपोधनः।
भृगुः पुलोम्नस्तुसुतांदिव्यांभार्यामविन्दतः।

—मत्स्य पुराण

अंगरों में अंगिरा उत्पन्न हुये और हुताशन की अर्चियों में अत्रि ऋषि की उत्पत्ति हुई थी और इसके अनन्तर मरीचियों से महान् तपस्वी महर्षि मरीचि उत्पन्न हुए थे। केशों से कपिश और महान तपस्वी पुलस्त्य उत्पन्न हुए। पुलम्ब केशों से फिर महान् तपस्वी समुत्पन्न हुए । वसु के मध्य से तप के ही धन वाले वशिष्ठ ऋषि प्रसूत हुए थे। भृगु महर्षि ने पुलोमा की पुत्री को अपनी दिव्य भार्या बनाया था।

एतानुत्पाद्य पुत्रास्तु प्रजासन्तानकारणात्।
कश्यपः पुत्रकामस्तु चचार सुमहंतपः।।
तस्यैवन्तपतोऽत्यर्थं प्रादुर्भूतौसुताविमौ।
वत्सरश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ।

—कूर्म पुराण

कश्यप ऋषि ने पुत्रों की कामना करते हुए इस प्रकार से प्रजा को सन्तान के कारण सपुत्रों को समुत्पन्न करके फिर सुमहान् तप किया था। उनके इस भाँति तप करने पर ये दो सुत समुत्पन्न हुए थे, जिनमें एक वत्सर और दूसरा असित था। वे दोनों ब्रह्मवादी थे।

पाण्डुश्चैव मृकण्डुश्च ब्रह्मकोशौ सनातनौ।
मनस्विन्यां मृकण्डुश्च मार्कण्डेयो वभूवह।।
प्रजायते पूर्णमासं कन्याश्चेमा निबोधत।
तुष्टिः पुष्टिस्त्विषा चैव तथा चापचितिः शुभा।।
स्मृतिश्चाङ्गिरस पत्नी जज्ञे तावात्मसम्भवौ।
पुत्रौ कन्याश्चतस्रश्च पुण्यास्तस्ता लोकविश्रुताः।।
अनसूयापि जज्ञे तान् पञ्चात्रे यानकल्मषान्।।
कन्याञ्चैव श्रुति नाम माता शंखपादस्य या।
कर्दमस्य तु या पत्नी पुलहस्य प्रजापतेः।।
ऊर्जायान्तु वशिष्ठस्य पुत्रा वै सप्त जज्ञिरे।
ज्यावसी च स्वसा तेषां पुण्डरीका सुमध्यमा।।

—वायु पुराण

पांडु और मृकण्डु ब्रह्मकोश तथा सनातन हुए। मनस्विनी में मृकण्डु से मार्कण्डेय उत्पन्न हुए। मारीचि की पत्नी सम्भूति नाम वाली थी उसने अपत्य पुत्र उत्पन्न किया जो पूर्णमास को उत्पन्न होता है और उसके कन्यायें हुईं उन्हें समझ लो तुष्टि, पुष्टि त्विषा, अत्यचित और शुभा ये कन्याएँ हुईं। अङ्गिरा की पत्नी स्मृति ने दो पुत्र पैदा किए और चार परम पवित्र तथा लोक विश्रुत कन्या उत्पन्न की थी। अनसूया ने भी जिसका नाम श्रुति था और जो शंखपद की माता थी जो प्रजापति पुलह कर्दम की पत्नी थी। ऊर्जा से वशिष्ठ के सात पुत्र उत्पन्न हुए और ज्यायसी (बड़ी) उनकी बहिन सुमध्यमा पुण्डरीका थी।

स्वस्त्यात्रेय इति ख्याता ऋषयो वेदपारगाः
तेषां विख्यातयशसौ ब्रह्मिष्ठौ सुमहौजसौ।।
दत्तात्रेयस्तस्य ज्येष्ठो दुर्वासास्तस्य चानुजः।।

—वायु पुराण

स्वस्त्यात्रेय इस नाम से विख्यात वेद के पारगामी ऋषिगण थे, उनमें विख्यात यश वाले महान् ओज से युक्त परम ब्रह्माष्ठ दो पुत्र थे। उनमें दत्तात्रेय सबसे बड़ा था उसका छोटा भाई दुर्वासा था।

गृहस्थ में रहते हुए—स्वावलम्बी आजीविका उपार्जन करते हुए राजा जनक की तरह जल में कमल पत्रवत् रहना सम्भव है। (१) उच्च मनोभूमि (२) सत्कर्म (३) वाणी का श्रेष्ठतम सदुपयोग करना यह तीन दण्ड हैं। उन्हें धारण करने वाला व्यक्ति बिना वेष धारण किये त्रिदण्डी संन्यासी हो सकता है।

वस्तुतः शारीरिक और मानसिक उत्कृष्टता को धारण करना ही योगी यति होने का वास्तविक आधार है। घर छोड़ देना या वेष धारण करना उसके लिए आवश्यक नहीं। प्राचीन परम्परा ऐसी ही साधना की है, जिसमें मन की क्रिया को निर्मल, उत्कृष्ट बनाने पर ही सारा जोर दिया जाता रहा है। ऋषि मुनि इसी स्तर के होते रहे हैं। इसका उल्लेख शास्त्रों में सर्वत्र उपलब्ध है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एवं निश्चित्य सुधिया गृहस्थोऽपि यदा चरेत्।

तदा सिद्धिमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा।।

—शिव गीता

निश्चय आस्था और निर्मल बुद्धि वाला गृहस्थ भी योग साधना करते निःसन्देह सिद्धि प्राप्त करता है।

गृहस्थश्चाप्यनासक्त स मुक्तो योगसाधनात्।

योगक्रियाधियुक्तानां तस्मात्संयतते गृही।।

गेहे स्थित्वा पुत्रदारादिपूर्णः।

संगत्यक्त्वा धान्तरे योगमार्गे।

सिद्धे चिह्नं वीक्ष्य पश्चाद्गृहस्थः।

क्रीडेत्सो वै सम्पतं साधयित्वा।।

—शिव गीता

योग साधना में संलग्न साधक गृहस्थ रहते हुये भी संयमपूर्वक साधना करने से सिद्धि प्राप्त करता है।

घर में रहकर स्त्री-पुत्र आदि की व्यवस्था अनासक्त भाव से करते हुए योग साधना में सफलता प्राप्त कर सकता है।

वाग्दण्डः कर्मदण्डश्चमनोदण्डश्चतेत्रयः।

यस्यैतेनियतादण्डाः सत्रिदण्डीमहायतिः।।

—मार्कण्डेय पुराण

जिसके पास (१) वाक् दण्ड (२) कर्म दण्ड (३) मनोदण्ड है वही त्रिदण्डी है। वही महा यति है।

इन्द्रियाणि वशीकृत्य एव वसेन्नरः।

तत्र तस्य कुरुक्षेत्र नैमिषं पुष्कराणि च।।

गंगाद्वारंच केदारं सन्निहत्यां तथैव च।

एतानि सर्वतीर्थानि कृत्वा पापैः प्रमुच्यते।

—व्यास स्मृति

अपनी इन्द्रियों को वश में रखने वाला मनुष्य यदि घर में ही रहे तो उसके लिए वह घर ही नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र एवं पुष्कर के समान है। जिसने अपने मन को जीत लिया, उसके लिये गंगा द्वार, केदानाथ आदि सभी तीर्थों का लाभ अपने पास ही मिल जाता है।

प्रपश्चमखिलं यस्तु ज्ञानाग्नौ जुहुताद्यतिः।

आत्मन्यग्नीन्समारोप्य साऽग्निहोत्री महायतिः।।

—संन्यासोपनिषद् २/१/१९

जो अपनी आत्मा में अग्नि को प्रज्ज्वलित करता है वही सच्चा अग्निहोत्री और महायति है।

साधनात्मक पथ पर अग्रसर होते हुए विचारवान् साधकों को सांसारिक और आत्मिक दोनों भूमिकाओं का समन्वयात्मक निर्वाह करना चाहिए, प्राचीनकाल में भी ऋषि-मुनियों की जीवनचर्या यही थी आज की दृष्टि से यही उचित एवं उपयुक्त है।

गृहस्थाश्रम के उत्तरदायित्व साधना से कम नहीं

गृहस्थ जीवन बहुत बड़ी जिम्मेदारी और उत्तरदायित्वों का है। कौटुम्बिक एवं सामाजिक महत्व के कार्यों का प्रारम्भ गृहस्थाश्रम में ही होता है। इसी जीवन में मनुष्य अपने परिवार, पड़ौस, समाज के प्रति कर्त्तव्य-पालन करने की स्थिति में होता है। गृहस्थाश्रम तो मानो एक तपोभूमि है। सहनशीलता, संयम, उदारता, त्याग, आत्मीयता के सद्गुणों की साधना इसी में होती है। जो लोग गृहस्थ जीवना को मौज-मजा उड़ाने, इन्द्रिय-जनित सुखों को भोगने में थोड़ा बहुत धन, प्रतिष्ठा आदि कमा लेने का अवसर समझते हैं वे इसके महत्व को कम करते हैं। इसके प्रति लापरवाही प्रकट करते हैं।

गृहस्थाश्रम केवल पति-पत्नी के लिये ही नहीं है। उसकी तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति अथवा उनके अपने सुखों के लिये यह संस्था नहीं है। मनुष्य की दुर्दम्य, नैसर्गिक इच्छाओं की पूर्ति के लिये भी गृहस्थ-जीवन नहीं, वैसे ये बातें इसमें आ भी जाती हों तो भी यह मानव-जीवन को अधिकाधिक विकसित करने, महानता की ओर अग्रसर होने का राजमार्ग है। गृहस्थ-जीवन में पति-पत्नी एक-दूसरे के सहायक, सहयोगी बनकर सामाजिक कर्त्तव्यों की पूर्ति में लगते हैं। अपने पूर्वजों से प्राप्त विरासत को बढ़ाकर उसे नई पीढ़ी को देने का, अधिक योग्य बनाने का भार गृहस्थी पर ही होता है। विकास की शृंखला में नव-पीढ़ी के नव निर्माण का महान् उत्तरदायित्व गृहस्थाश्रम में ही है। यह मानव-जाति के संस्करणों को क्रमशः उदात्त और मंगलमय स्थिति तक पहुँचाने की सीढ़ी है।

गृहस्थ-जीवन में पति-पत्नी का जीवन एक सूत्र में बँधता है। मानों दो शरीर में से एक ही चैतन्य बहने लगता हो फिर इन दोनों से सम्बन्धित परिवार आत्मीयता के सूत्रों में जुड़ते हैं। फिर उनसे सम्बन्ध रखने वाले अन्य परिवारों तक यह सम्बन्ध-सूत्र फैलने लगते हैं। परस्पर एक-दूसरे को सहयोग, सद्भावनायें मिलने लगती हैं और एक बहुत बड़ा समाज आत्मीय सम्बन्धों में जुड़ जाता है, जिसका प्रत्येक सदस्य एक-दूसरे के प्रति कर्तव्य तथा पारस्परिक अधिकारों से बँधा हुआ सा रहता है। इतने बड़े समाज में गृहस्थाश्रम द्वारा सबकी सेवा-सत्कार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने का धर्म-कर्तव्य हमारे यहाँ माना गया है। गृहस्थाश्रम एवं पंचमहायज्ञ समाज के प्रति इस कर्त्तव्य-पालन करने के लिए ही बनाये गये हैं। जिनमें देवता, पितर, ज्ञानी, मनुष्य यहाँ तक कि जीवमात्र की सेवा आ जाती है। इतना बड़ा है, हमारा गृहस्थ-धर्म।

गृहस्थ की सफलता तीन बातों पर निर्भर करती है। पहला गृहस्थ जीवन के पूर्व की तैयारी, दूसरे पति-पत्नी के दाम्पत्य-जीवन में आने का ध्येय-तीसरा गृहस्थ-जीवन में एक-दूसरे का व्यवहार और उनका कर्त्तव्य-पालन।

ब्रह्मचर्याश्रम गृहस्थ, जीवन में पैर रखने की तैयारी करने का समय है। संसार में आवश्यक और उपयोगी ज्ञान प्राप्त करने के लिये ब्रह्मचर्य की आवश्यकता होती है। इसी समय में मनुष्य अनेक कलायें, ज्ञान, विद्यायें अर्जित करता है। तरह-तरह के अच्छे अनुभव संस्कार अर्जित करता है। यह तैयारी ही गृहस्थ-जीवन की सफलता का आधार होती है। जिनका विवाह के पूर्व का जीवन सफल और उपयोगी होता है, वे गृहस्थ-जीवन को भी अधिक सफल बना सकते हैं। ब्रह्मचर्याश्रम का यद्यपि अब पूर्वस्वरूप तो नहीं रहा फिर भी आज का विद्यार्थी-काल गृहस्थ-जीवन का पूर्व समय ही है। इसे भावी-जीवन को भली प्रकार जीने का उपयोगी आधार बनाया जा सकता है। गृहस्थ-जीवन की बहुत कुछ सफलता इस पर निर्भर करती है कि दाम्पत्य-जीवन में प्रवेश करने से पहले मनुष्य ने उसके लिये क्या तैयारी की ? शारीरिक, मानसिक, आत्मिक दृष्टि से सामर्थ्यवान्, गुणवान् बनकर गृहस्थ-जीवन में प्रविष्ट होने वाले दम्पत्ति अपना जीवन अधिक सफल बना सकते हैं और इसकी तैयार का समय विवाह के पूर्व का समय ही है। जो अयोग्य, असमर्थ, अविकसित रहकर गृहस्थ में प्रवेश करते हैं उनका जीवन काफी पिछड़ा हुआ, कठिनाई और उलझनों से घिरा हुआ, हीन अवस्था में बीतता है। वे गृहस्थाश्रम का कोई विशेष लाभ नहीं उठा पाते।

गृहस्थ-जीवन की सफलताएँ और असफलताएँ विवाह-संस्कार, स्त्री और पुरुष का दाम्पत्य-जीवन में प्रवेश करने के उद्देश्य, आदर्शों पर भी बहुत कुछ निर्भर करती है, जहाँ विवाह केवल शारीरिक सुख अथवा एक-दूसरे के लुभावने आकर्षण या किसी क्षुद्र लोभ के कारण होता है, वहाँ विवाह का आदर्श ही नष्ट हो जाता है और ऐसे वैवाहिक सम्बन्ध अधिकतर असफल ही सिद्ध होते हैं, जिन विवाह सम्बन्धों के पीछे कोई महान् आदर्श, उदात्त ध्येय की भावना न हो तो तो गृहस्थ-जीवन में भी निम्न कोटि के भाव अर्थात् आकर्षण, लोभवृत्ति आदि पर ही चलते हैं और फिर गृहस्थ-जीवन में कटुता, क्लेश, अशान्ति का बोलबाला हो जाता है। जो स्त्री-पुरुष परस्पर के दैहिक आकर्षण से, धन-सम्पत्ति के लोभ से अथवा निरुद्देश्य या उनके अभिभावकों की ऐसी इच्छा से दाम्पत्य-जीवन में घुसते हैं उनके लिये आगे चलकर निर्वाह करना कठिन हो जाता है। तब वे भली प्रकार अपने गृहस्थ-धर्म को नहीं निभा पाते और जहाँ इस तरह के विवाह सम्बन्ध स्थापित होते हैं, वह समाज कभी उन्नत नहीं हो सकता क्योंकि गृहस्थाश्रम ही उसकी रीढ़ होती है। इतना तो स्पष्ट ही है कि धन, सुन्दरता या अन्य किसी आकर्षण के आधार पर स्थापित विवाह सम्बन्ध चाहे वर-वधू की इच्छा से हो या उनके अभिभावकों की इच्छा पर, इनसे गृहस्थाश्रम की सफलता सम्भव नही होती। इस तरह की प्रवृत्तियाँ दम्पत्ति के साथ-साथ समाज और मानवता के लिये हानिकर सिद्ध होती हैं।

गृहस्थ-जीवन का आधार भौतिक लाभ तात्कालिक सुखोपभोग का दृष्टिकोण, दैहिक आकर्षण तो हो ही नहीं सकते। गृहस्थाश्रम जीवन के पवित्र और उदात्त-ध्येय की पूर्ति के लिये है। तात्कालिक लाभ और वैयक्तिक सुख को लक्ष्य रखकर चलना गृहस्थ-जीवन की विडम्बना है। इनका परिणाम अन्ततः दुःख, क्लेश, असन्तोष, परेशानियों में ही प्राप्त होता है। गृहस्थाश्रम में ही समाज-संसार की उन्नति साधन का अवसर है। स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के प्रति-व्रतशील बनकर एक निष्ठा के साथ अपने कर्तव्यों का मिलकर पालन करते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इसमें संयम की उपासना करते हुए चंचलता एवं असंयम का पूर्णतया त्याग करके एक दिन गृहस्थ-जीवन को विशुद्ध बनाने की स्थिति में भी पहुँच जाना ही आवश्यक होता है।

आज गृहस्थाश्रम का कोई पवित्र उद्देश्य हमारे समक्ष नहीं रह गया है। अभिभावकों की इच्छा या दहेज के लोभ अथवा दैहिक वासनात्मक आकर्षण आदि से प्रेरित होकर विवाह सम्बन्ध स्थापित होते हैं। फिर गुजारा करने लायक कोई काम-धन्धा कर लेना, बाल-बच्चों का जैसे-तैसे गुजारा कर लेना, थोड़ा बहुत पैसा या पद प्रतिष्ठा अर्जित कर लेना ही गृहस्थ-जीवन का उद्देश्य रह गया है। इससे परे कोई उच्च उद्देश्य, उच्च-विचार, उत्तम संस्कार, उदात्त भावनाओं का कोई स्थान नहीं होता। अपनी इच्छा, वासना, कामनाओं से प्रेरित होकर आदर्शहीन जीवन बिताने की साधारण-सी जीवन-पद्धति होती है, आज के अधिकांश गृहस्थियों की। लेकिन इससे व्यक्ति और समाज दोनों का कोई हित साधन नहीं होता। हर वर्ष लाखों दम्पत्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं और वे अपने से पहले की पीढ़ी की तरह गलतियों को दुहराकर निरुपयोगी जीवन बिताते हैं। इस गलत परिपाटी को सुधारने की आवश्यकता है। गृहस्थाश्रम को मनुष्य के विकास और उत्कर्ष का आधार बनाने के लिये हमें इसके महत्व को समझना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गृहस्थ धर्म तुच्छ नहीं है

ब्रह्मचर्य का पालन बहुत ही उत्तम, उपयोगी एवं लाभदायक साधना है। यह शारीरिक और मानसिक दोनों ही दृष्टियों से हितकर है। जो जितने अधिक समय तक ब्रह्मचारी रह सके उसके लिए उतना ही अच्छा है। साधारणत: लड़कों को कम से कम २० वर्ष तक और लड़कियों को १८ वर्ष तक तो ब्रह्मचारी अवश्य ही रहना चाहिए। जो अपने मन को वश में रख सके, वे अधिक समय तक रहें।

ब्रह्मचर्य में मानसिक संयम प्रधान है। यदि मन वासनाओं में भटकता रहे और शरीर को हठपूर्वक संयम से रखा जाय तो उससे लाभ की जगह पर हानि ही है। शारीरिक काम सेवन से जितनी हानि है, उससे कई गुनी हानि मानसिक असंयम से है। वीर्यपात की क्षति आसानी से पूरी हो जाती है परन्तु मानसिक विषय चिन्तन से जो उत्तेजना पैदा होती है वह यदि तृप्त न हो तो कुचले हुए सर्प की तरह क्रुद्ध होकर अपने छेड़ने वालों के ऊपर आक्रमण करती है।

मनोविज्ञान शास्त्र के यशस्वी आचार्य डाक्टर फ्रायड, डाक्टर बाईन, डाक्टर बने प्रभृति विद्वानों का मत है कि वासना कुचली जाने पर सुप्त मन के किसी कोने में एक बड़ा घाव लेकर पड़ी रहती हैं और जब अवसर पाती हैं तभी भयानक, शारीरिक या मानसिक रोगों को उत्पन्न करती हैं। उनका कहना है कि पागलपन, मूर्छा, मृगी, उन्माद, नाड़ी-संस्थान का विक्षेप, अनिद्रा, कायरता आदि अनेक रोग वासनाओं के अनुचित रीति से कुचले जाने के कारण उत्पन्न होते हैं। इसलिये ब्रह्मचर्य की पहली शर्त, 'मन की स्थिरता' मानी गई है। जिनका मन किन्हीं उत्तम विचारों में निमग्न रहता है, विषय वृत्तियों की ओर जिसका ध्यान ही नहीं जाता या जाता है तो तुरन्त ही अरुचि और घृणापूर्वक वहाँ से हट जाता है, वे ही ब्रह्मचारी हैं। जिसका मन वासना में भटकता है, चित्त पर जो काबू रख नहीं पाते, उनके शारीरिक ब्रह्मचर्य को विडम्बना ही कहा जा सकता है।

किसी स्रोत में से पानी का प्रवाह जारी हो किन्तु उसके बहाव के मार्ग को रोक दिया जाय तो वह पानी जमा होकर दूसरे मार्ग से फूट निकलेगा। मन से विषय चिन्तन और बाहर से ब्रह्मचर्य यह भी इसी प्रकार का कार्य है। मन में वासना उत्पन्न होने से जो उत्तेजना पैदा होती है, वह फूट निकलने के लिए कोई न कोई मार्ग ढूँढ़ती है। साधारण मार्ग बन्द होता तो कोई और मार्ग बनाकर बह निकलती है। यह नया मार्ग अपेक्षाकृत बहुत खतरनाक और हानिकारक साबित होता है।

संसार भर की जनगणना की रिपोर्टों का अवलोकन करने से यह सच्चाई और भी अधिक स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाती है। विवाहित स्त्री-पुरुषों की प्रतिशत जितनी मृत्यु होती हैं विधवा या विधुरों की मृत्यु का अनुपात प्राय: उससे ड्यौढ़ा रहता है। मोटी दृष्टि से देखने पर विवाहितों की जीवनी शक्ति अधिक और अविवाहितों की कम खर्च होती है इससे विवाहितों की अल्पायु और रोगी रहने की सम्भावना प्रतीत होती है परन्तु होता इसका ठीक उल्टा है। विवाहित लोग संभोगजन्य क्षय, बालकों का भरण-पोषण, अधिक चिन्ता तथा अधिक जिम्मेदारी आदि के भार को खींचते हुए भी जितनी आयु और नीरोगता प्राप्त करते हैं। अविवाहित लोग उतनी नहीं कर पाते। इसका एकमात्र कारण वासना की अतृप्ति से उत्पन्न हुआ मानसिक उद्वेग है, जो बड़ा घातक होता है, उसकी विषाक्त ज्वाला से सारे जीवन तत्व भीतर ही भीतर जल-भुन जाते हैं। चित्त की अस्थिरता और अशान्ति के कारण कोई कहने लायक महान् कार्य भी उनसे सम्पादित नहीं हो पाता, कोई बड़ी सफलता भी नहीं मिल पाती। इस प्रकार विवाहितों की अपेक्षा यह अविवाहित अधिक घाटे में रहते हैं।

पाठकों को हमारा आशय समझने में भूल न करनी चाहिए। हम ब्रह्मचर्य की अपेक्षा विवाहित जीवन को अच्छा बताने का प्रयत्न नहीं कर रहे हैं। ब्रह्मचर्य एक अत्यन्त उपयोगी और हितकारी साधना है। इसके लाभों की कोई गणना नहीं हो सकती, इन पंक्तियों में हम मानसिक असंयम और विवाहित जीवन की तुलना कर रहे हैं, जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य की साधना में अपने को समर्थ न पावें। जो मानसिक वासना पर काबू न रख सकें, उनके लिये यही उचित है कि विवाहित जीवन व्यतीत करें। होता भी ऐसा ही है, सौ में से निन्यानवे आदमी गृहस्थ जीवन बिताते हैं। इस स्वाभाविक प्रक्रिया में कोई अनुचित बात भी नहीं है।

यह सोचना ठीक नहीं कि गृहस्थाश्रम में बँधने से आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती। आत्मा को ऊँचा उठाकर परमात्मा तक ले जाना यह पुनीत आत्मिक साधना अन्त:करण की भीतरी स्थिति से सम्बन्ध रखती है। बाह्य-जीवन से इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। जिस प्रकार ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ व संन्यासी आत्म-साधना द्वारा जीवन लक्ष्य की प्राप्ति कर सकते हैं वैसे ही गृहस्थ भी कर सकते हैं। सदा सनातन काल से ऐसा होता आया है। अध्यात्म साधकों में गृहस्थ ही कम अधिक देखते हैं। प्राचीनकाल के ऋषिगण आज के गैर जिम्मेदारी और अव्यवस्थित बाबाजीओं से सर्वथा भिन्न थे। घनी बस्ती न बसाकर स्वच्छ वायु में दूर-दूर तक घर बनाना, पक्के मकान न बनाकर छोटी झोंपड़ियों में रहना, वस्त्रों से लदे न रहकर शरीर को खुला रखना आदि उस समय की साधारण प्रथायें थीं। उस समय के राजा तथा देवताओं के जो चित्र मिलते हैं। उससे वे सब भी कटि वस्त्र के अतिरिक्त और कोई कपड़ा पहने नहीं दीखते। यह उस समय की परिपाटी थी। आज जिस वेष-भूषा की नकल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करके लोग अपने को साधु मान लेते हैं। वह पहनावा-उढ़ाव, रहन-सहन उस समय में सर्वसाधारण का था।

यह एक बिलकुल ही वे सिर-पैर का विचार है कि पुराने समय में ऋषि लोग अविवाहित ही रहते थे, यह ठीक है कि ऋषि-मुनियों में कुछ ऐसे भी थे, जो बहुत समय तक अथवा आजीवन ब्रह्मचारी रहते थे, पर उनमें से अधिकांश गृहस्थ थे। स्त्री बच्चों के साथ होने से तपश्चर्या में, आत्मोन्नति में उन्हें सहायता मिलती थी। इतिहास-पुराणों में पग-पग पर इस बात की साक्षी है कि भारतीय महर्षिगण, योगी, यती, साधु, तपस्वी, अन्वेषक, चिकित्सक, वक्ता, रचयिता उपदेशक, दार्शनिक, अध्यापक, नेता आदि विविध रूपों में अपना जीवन-यापन करते थे और अपने महान् कार्य में स्त्री-बच्चों को भी भागीदार बनाते थे।

आध्यात्मिक मार्ग पर कदम बढ़ाने वाले साधक के सामने आज अज्ञान और अविवेक भरे मूढ़ विश्वासों ने एक भारी उलझन पैदा कर दी है। आत्म-साधना गृहस्थ से नहीं हो सकती, स्त्री-नरक का द्वार है, कुटुम्ब-परिवार माया का बन्धन है। इनके रहते भजन नहीं हो सकता, परमात्मा नहीं मिल सकता, इस प्रकार की अज्ञानजन्य भ्रमपूर्ण कल्पनायें साधक के मस्तिष्क में चक्कर लगाती हैं। -परिणाम यह होता है कि या तो वह आत्ममार्ग को अपने लिए असम्भव समझकर उसे छोड़ देता है या फिर पारिवारिक महान् उत्तरदायित्व को छोड़कर भीख-टूक माँग खाने के लिए घर से निकल भागता है। यदि बीच में ही लटका रहा तो और भी अधिक दुर्दशा होती है। परिवार उसे गले में बँधे हुए चक्की के पाट की तरह भार रूप प्रतीत होता है। उपेक्षा, लापरवाही, गैर-जिम्मेदारी की दृष्टि से बर्ताव करने के कारण उसके हर व्यवहार में कुरूपता एवं कटुता रहने लगती है। स्त्री बच्चे सोचते हैं कि यह हमारे जीवन को दुःखमय बनाने वाला है, शत्रुता के भाव मन में जगते हैं, प्रतिशोध की वृत्तियाँ पैदा होती हैं। कटुता, कलह, घृणा और तिरस्कार के विषैले वातावरण की सृष्टि होती है। उस वातावरण में रहने वाला कोई भी प्राणी स्वस्थता और प्रसन्नता कायम नहीं रख सकता।

वास्तविक बात यह है कि आत्म-साधक में जो विक्षेप पैदा होता है, उसका कारण अपनी कुवासना, संकीर्णता, तुच्छता, अनुदारता और स्वार्थपरता है। यह दुर्भाव, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यास जिस भी आश्रम में रहेंगे उसे ही पापमय बना देंगे। उसके विपरीत यदि अपने मन में त्याग, सेवा, सत्यता, सज्जनता एवं उदारता की भावनायें विद्यमान हों तो कोई भी आश्रम स्वर्गदायक, मुक्तिप्रद, परम पद देने वाला हो सकता है। आध्यात्मिक साधकों को अपने मन में इस भ्रम को पूर्णतया बहिष्कृत कर देना चाहिये कि गृहस्थाश्रम कोई छोटा या गिराने वाला धर्म है। यदि समुचित रीति से उसका पालन किया जाय तो ब्रह्मचर्य या संन्यास की तरह वह भी सिद्धदाता प्रमाणित हो सकता है।

गृहस्थ धर्म जीवन का एक पुनीत आवश्यक एवं उपयोगी अनुष्ठान है। स्त्री और पुरुष के एकत्रित होने से दो अपूर्ण जीवन एक पूर्ण जीवन का रूप धारण करते हैं। पक्षी के दो पंखों की तरह स्त्री और पुरुष का मिलन एक दृढ़ता एवं स्थिरता की सृष्टि करता है। शारीरिक और मानसिक तत्व के आचार्य जानते हैं कि कुछ तत्वों की पुरुष में न्यूनता और स्त्री में अधिकता होती है। इसी प्रकार कुछ तत्व स्त्री में कम होते हैं। इस अभाव की पूर्ति दोनों के सहचरत्व से होती है। स्त्री-पुरुष में एक दूसरे के प्रति जो असाधारण आकर्षण होता है, उसका कारण वही क्षतिपूर्ति है। मन की सूक्ष्म चेतना अपनी क्षति पूर्ति के उपयुक्त साधनों को प्राप्त करने के लिए विचलित होती है, तब उसे संयोग की अभिलाषा कहा जा सकता है। अन्ध और पंगु मिलकर देखने और चलने के लाभों को प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे ही लाभ एक-दूसरे की सहायता से दम्पत्ति को मिल जाते हैं।

मूलतः न तो पुरुष बुरा है न स्त्री। दोनों ही ईश्वर की पवित्र कृतियाँ हैं। दोनों में ही आत्मा का निर्मल प्रकाश जगमगाता है। पुरुष का कार्यक्षेत्र घर से बाहर रहने के कारण उसकी बाह्य योग्यतायें विकसित हो गई हैं वह बलवान, प्रभावशाली, कमाऊ और चतुर दिखाई देता है, पर इसके साथ-साथ ही आत्मिक सद्गुणों को इस बाह्य संघर्ष के कारण उसने बहुत कुछ खो दिया है। सरलता, सरसता, वफादारी, आत्म-त्याग, दयालुता, प्रेम तथा वात्सल्य की वृत्तियाँ आज भी स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा बहुत अधिक देखी जाती हैं। मुद्दतों से शिक्षा, दीक्षा, अनुभव एवं सामाजिक कार्यक्षेत्र से पृथक् एक छोटे पिंजड़े से घर में जीवन भर बन्द रहने और अपने जैसी अन्य मूर्खाओं की संगति मिलने के कारण व्यवहारिक ज्ञान में बहुत कुछ पिछड़ गई हैं, तो भी उनमें आत्मिक सद्गुणों पुरुषों की अपेक्षा बहुत अधिक विद्यमान है। उनके सान्निध्य से नरक, पतन, माया, बन्धन जैसे किसी संकट के उत्पन्न होने की आशंका नहीं है। सच तो यह है कि उनके पवित्र आँचल की छाया में बैठकर पुरुष अपनी शैतानी आदतों से बहुत कुछ छुटकारा पा सकता है। उनकी स्नेह गंगा के अमृत जल का आचमन करके अपने कलुष-कषायों से, पाप-तापों से छुटकारा पा सकता है।

जिनका अन्तःकरण पवित्र है, वे कोमलता की अधिकता से कारण स्त्री में अधिक सत् तत्व का अनुभव करते हैं। हजरत मुहम्मद साहब कहा करते थे कि 'नारी का महत्व मैं इसलिए नहीं मानता कि विधाता ने उसे सुन्दर बनाया है, न उससे इसलिए प्रेम करता हूँ कि वह प्रेम के लिए उत्पन्न हो गई है। मैं तो उसे इसलिए पूज्य मानता हूँ कि मनुष्य का मनुष्यत्व केवल उसी में जीवित है।' दिव्यदर्शी टेलर ने अपनी अनुभूति प्रकाशित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की थी कि—'स्त्री की सृष्टि में ईश्वरीय प्रकाश है। वह एक मधुर सरिता है, जहाँ मनुष्य अपनी चिन्ताओं और दुःखों से त्राण पाता है।' दार्शनिक प्लेटो ने कहा है—'सृष्टि के आदि में मनुष्य अपंग था, वह पृथ्वी के एक कोने में पड़ा सिसक रहा था। स्त्री ने ही उसे उठाया और पालकर बड़ा किया । आज वही कृतघ्न उन स्त्रियों को पैर की जूती समझता है।' कवि हालग्रच की अनभूति है कि 'स्त्रियाँ भूलोक की कविता हैं। पुरुष के भाग्य का विस्तार उन्हीं के हाथ में है।' कार्लाइल कहा करते थे—'यदि तुम प्रेम के साक्षात् दर्शन करना चाहते हो तो माता के गद्‌गद् नेत्रों को देखो।' सृष्टि के आरम्भ काल का दिग्दर्शन कराते हुए सन्त केववैल ने कहा कि 'जब तक आदमी अकेला था तब तक उसे स्वर्ग भी कण्टकाकीर्ण था। देवताओं के गीत शीतल, समीर और ललित वाटिकायें उसके लिए सभी व्यर्थ थीं, यह सब होते हुये भी उदास रहता था और आहें भारता था, परन्तु जब उसे हब्बा मिल गई तो सारा दुःख दूर हो गया। काँटे फूलों में बदल गये।

जिन सन्तों ने अपने पवित्र नेत्रों से नारी को देखा है, उन्हें उसमें ईश्वर की सजीव कविता मूर्तिमान दिखाई दी है। जिनकी आँखों में पाप है उनके लिए बहिन, बेटी और माता की समीपता में ही नहीं, प्रत्येक जड़ चेतन की समीपता में खतरा है। जिनके आँचल में आग बँधी हुई है। उसके लिए सर्वत्र अग्निकाण्ड का खतरा है, जिसकी आँखों पर हरा ठण्डा चश्मा है, उसके लिए कड़ी धूप भी शीतल है। पाठकों ! अपना दृष्टिकोण पवित्र बनाओ। विश्वास रखो, राजा जनक की भाँति आप भी गृहस्थ में रहते हुये सच्चे महात्मा बन सकते हैं।

धन्यो गृहस्थाश्रमः

गृहस्थ-धर्म अन्य सभी धर्मों से अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। महर्षि व्यास के शब्दों में **'गृहस्थ्येमेव हि धर्माणां सर्वेषां मूल-मुच्यते'** गृहस्थाश्रम ही सभी धर्मों का आधार है। **'धन्यो गृहस्थाश्रमः** चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम धन्य है। 'जिस तरह समस्त प्राणी माता का आश्रय पाकर जीवित रहते हैं, उसी तरह सभी आश्रम गृहस्थाश्रम पर आधारित हैं।'

परिवार-संस्था सहजीवन के व्यावहारिक शिक्षण की प्रयोगशाला है। इसीलिये कुटुम्ब समाज संस्था की इकाई माना जाता है। गृहस्थ में बिना किसी संविधान, दण्ड-विधान, सैनिक शक्ति के ही सब सदस्य परस्पर सहयोगी सहजीवन बिताते हैं, माता, पिता पुत्र, पति-पत्नी, नाते-रिश्तों के सम्बन्ध किसी दण्ड के भय अथवा कानून की प्रेरणा पर कायम नहीं होते, वरन् वे स्वेच्छा से कुल कर्म, परम्परा, आनुवंशिक संस्कारों पर निर्भर करते हैं। प्रत्येक सदस्य अपनी-अपनी मर्यादाओं का पालन करने में अपनी प्रतिष्ठा, कल्याण गौरव की भावना रखकर खुशी-खुशी उन्हें निभाने का प्रयत्न करता है कुटुम्ब के साथ सहजीवन में आवश्यकता पड़ने पर प्रत्येक सदस्य अपने व्यक्तिगत सुख-स्वार्थों का त्याग करने में भी प्रसन्नता अनुभव करता है। यही सहजीवन की सर्वोपरि आवश्यकता होती है। बिना अपने स्वार्थों का त्याग किये, कष्ट सहन किये सहजीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती और उसमें भी विशेषता यह है कि यह त्याग-सहिष्णुता-स्वेच्छा से खुशी के साथ वहन की जाती है। सह-जीवन के लिए ऐसा शिक्षण और कहाँ मिल सकता है ?

कुटुम्ब के निर्माण के लिए फिर किसी कृत्रिम उपाय, संकल्प विधान की आवश्यकता नहीं होती। परिवार अपने आप में 'स्वयं-सिद्ध' संस्था है। माता-पिता, भाई-बहिन, चाचा-ताऊ, पुत्र आदि के चुनाव करने की आवश्यकता नहीं होती। जहाँ गृहस्थ है, वहाँ ये सब तो हैं ही और इन सम्बन्धों को स्थिर रखने के लिए किसी कृत्रिम उपाय की भी आवश्यकता नहीं होती। कुटुम्ब तो सहज आत्मीयता पर चलते हैं।

कहावत है—''पानी की अपेक्षा खून अधिक गाढ़ा होता है, इसीलिये एक ही जलाशय के पास बसने वालों की अपेक्षा एक कुटुम्ब में बँधे लोगों के सम्बन्ध अधिक प्रगाढ़ आत्मीय, अभेद्य होते हैं।'' कितना ही बैर क्यों न पैदा हो जाय लेकिन खून का असर आदमी के दिल और दिमाग से हट नहीं सकता। एक खून का व्यक्ति अपने साथी से स्वयं लड़ लेगा लेकिन दूसरे का आक्रमण बर्दाश्त नहीं करता। दुनिया में सब सम्बन्ध परिस्थितिवश टूट सकते हैं लेकिन खून का नहीं। कोई पुत्र अपने पिता से यह नहीं कह सकता कि मैं तुम्हारा बेटा नहीं। कोई भाई अपनी बहिन से यह सिद्ध नहीं कर सकता कि मैं तुम्हारा भाई नहीं।'' खून का सम्बन्ध स्वयं सिद्ध है। एक माता-पिता अपने पुत्र के लिए जितना सोच सकते हैं, उतना हृदयपूर्वक अन्य नहीं सोच सकता। इसमें कोई सन्देह नहीं कि एक ही खून से सींची हुई कुटुम्ब संस्था गृहस्थ जीवन का अलौकिक चमत्कार है।

गृहस्थ का आधार है, वैवाहिक जीवन। स्त्री और पुरुष विवाह संस्कार के द्वारा गृहस्थ जीवन में प्रवेश करते हैं। जब वे गृहस्थाश्रमी कहलाते हैं। स्मरण रहे विवाह संस्कार का अर्थ दो शरीरों का मिलन नहीं होता। हमारे यहाँ विवाह स्थूल नहीं, वरन् हृदय की, आत्मा की, मन की एकता का संस्कार है। जो विवाह को शारीरिक निर्बाध कामोपभोग का सामाजिक स्वीकृति-पत्र समझते हैं, वे भूल करते हैं। वे अज्ञान में हैं। विवाह का यह प्रयोजन कदापि नहीं है। भारतीय जीवन पद्धति में उसका उद्देश्य बहुत बड़ा है, दिव्य है, पवित्र है। विवाह के समय वर कहता है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

''द्यौरहं पृथ्वी त्वं सामाहमृक्त्वम्।

सम्प्रिदौ रोचिष्णु सुमनस्यमानौजीवेम शरदः शतम्।।

''मैं आकाश हूँ, तू पृथ्वी है। मैं सामवेद हूँ, तू ऋग्वेद है। हम एक-दूसरे पर प्रेम करें। एक-दूसरे को सुशोभित करें। एक-दूसरे के प्रिय बनें। एक-दूसरे के साथ निष्कपट व्यवहार करके सौ वर्ष तक जियें।

यह कहीं नहीं कहा गया है कि पति और पत्नी दो शरीर हैं। उन दोनों शरीरों का मिलन ही विवाह है अथवा भोगासक्त जीवन बिताकर अल्पमृत्यु प्राप्त करना ही विवाह है।

आकाश और पृथ्वी का सहज मिलन, पति-पत्नी के सम्बन्धों का अपूर्व आदर्श है। विवाह ज्ञान और कला का संगम है। प्रेम के लिए एक-दूसरे को अर्पण कर देने का विधान है, दो हृदयों को निष्कपट—खुले व्यवहार सूत्र में पिरोने का विधान है। विवाह संयमपूर्वक लेकिन आनन्दमय जीवन बिताकर पूर्ण आयु प्राप्त करने का सहज मार्ग है।

गृहस्थ का उद्देश्य स्त्री-पुरुष एवं अन्य सदस्यों का ऐसा संयुक्त जीवन है, जो उन्हें शारीरिक सीमाओं से ऊपर उठाकर एक-दूसरे के प्रति निष्ठा, आत्मीयता, एकात्मता की डोर में बाँध देता है। यह डोर जितनी प्रगाढ़-पुष्ट होती जाती है, उतनी ही शारीरिकता गौण होती जाती है। ऐसी परिस्थिति में शरीर भले ही रोगी, कुरूप हो जाय लेकिन पारस्परिक निष्ठा कम नहीं होती।

एक स्त्री ही संसार में सबसे सुन्दर गुणवती नहीं होती, लेकिन पति के लिए सृष्टि में उसके समान कोई नहीं। संसार में सभी माँ एक-सी नहीं होती लेकिन प्रत्येक माँ अपने बच्चे के लिए मानों वात्सल्य की साकार प्रतिमा है। एक गरीब कंजर अशिक्षित माँ के अंग में बालक को जो कुछ मिल सकता है, वह किसी दूसरे स्त्री के पास नहीं मिल सकता। प्रत्येक बालक के लिए माँ उसकी जननी ही हो सकती है और काना, कुरूप, गन्दा अविकसित बालक भी माँ के लिए सबसे अधिक प्रिय होता है। धर्म की बहिन कितनी ही बना ली जायें लेकिन भाई के लिए जो उमड़ता-घुमड़ता हृदय एक सहोदर बहिन में हो सकता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इस तरह हम देखते हैं कि गृहस्थाश्रम शारीरिक सम्बन्धों पर टिका हुआ है अपितु स्नेहमय, दिव्य, सूक्ष्म आधार स्तम्भों पर इस पुण्य भवन का निर्माण होता है। पारिवारिक जीवन में परस्पर सम्बन्धों की यह दिव्यता ही गृहस्थ जीवन की आत्मा है।

गृहस्थाश्रम वृत्तियों का शोधन करने, जीवन की साधना करने की एक रचनात्मक प्रयोगशाला है। मनुष्य की काम वासना को पति-पत्नी में एक-दूसरे के प्रति कर्तव्य निष्ठा, प्रेम में परिवर्तित करके कामोपभोग को एक सांस्कृतिक संस्कार बनाकर सामाजिक मूल्य में बदल देना गृहस्थाश्रम की ही देन है। स्मरण रहे गृहस्थाश्रमी शरीरनिष्ठा अथवा रूपनिष्ठ नहीं होता। कर्तव्य, उत्तरदायित्व, प्रेम की निष्ठा ज्यों-त्यों बढ़ती है, शारीरिकता नष्ट होने लगती है और क्रमशः पूर्णरूपेण शारीरिकता का अन्त होकर उक्त दिव्य आधार मुख्य हो जाते हैं। कामुकता भी नष्ट हो जाती है। इसलिए गृहस्थाश्रम कामोपभोग का प्रमाण पत्र नहीं, अपितु संयम-ब्रह्मचर्य मूलक है। संयम का एक क्रमिक लेकिन व्यावहारिक साधना स्थल है। सेवा-सुश्रूषा, पालन-पोषण, शिक्षण तक दूसरे के प्रति प्रेम, त्याग, सहिष्णुता के माध्यम से मनुष्य की काम शक्ति संस्कारित, निर्मल होकर मनुष्य को व्यवस्थित, संयत, दिव्य बनाने का आधार बन जाती है।

गृहस्थ तप और त्याग का जीवन है। गृहस्थ के निर्वाह पालन के लिए किये जाने वाला प्रयत्न किसी तप से कम नहीं है। कुटुम्ब् का भार वहन करना परिवार के सदस्यों को सुविधापूर्ण जीवन के साधन जुटाना, स्त्री, बच्चे, माता-पिता अन्य परिजनों की सेवा करना बहुत कठिन तपस्या है। गृहस्थ में स्वयंमेव मनुष्य को अपनी अनेकों प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाना पड़ता है। कोई भी गृहस्थ स्वयं का कम खा लेता है, पुराना कपड़ा पहन लेता है, लेकिन परिवार के सदस्यों की चिकित्सा, वस्त्र, भोजन, बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के लिए सब प्रबन्ध करता है। पेट काटकर भी माँ-बाप बच्चों को पढ़ाते हैं। फटा कपड़ा स्वयं पहनकर बच्चों को अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनाते हैं। गृहस्थ में जिम्मेदार व्यक्ति के सामने अन्य सदस्यों को सुखी-सन्तुष्ट रखने का ध्यान प्रमुख होता है, स्वयं का गौण। उधर गृहिणी सबसे पीछे जो बच जाता है वह खा लेती है। सबकी सेवा में दिन-रात लगी रहती है। बिना किसी प्राप्ति के इच्छा से सहज रूपेण। सचमुच गृहस्थाश्रम एक यज्ञ है—तप और त्याग का। प्रत्येक सदस्य उदारतापूर्वक सहज ही एक-दूसरे के लिए कष्ट सहता है, एक-दूसरे के लिए त्याग करता है।

गृहस्थाश्रम समाज को सुनागरिक देने की खान है। भक्त, ज्ञानी, सन्त, महात्मा, महापुरुष, विद्वान, पण्डित गृहस्थाश्रम से ही निकलकर आते हैं। उनके जन्म से लेकर शिक्षा-दीक्षा, पालन-पोषण, ज्ञान-वर्धन गृहस्थाश्रम के बीच ही होता है। परिवार के बीच ही मनुष्य की सर्वोपरि शिक्षा होती है।

गृहस्थाश्रम की सर्वोपरि उपलब्धि है उसका आतिथ्य धर्म। कितना बड़ा सामाजिक मूल्य है जिसे कहीं भोजन न मिले, जो संयोग से ही पहुँच जाये उसे भोजन कराये बगैर गृहस्थी भोजन नहीं करता। गाँव में, पास पड़ौस में, कोई भूखा न रह जाय, इसके लिए प्रतिदिन नियमपूर्वक किसी अतिथि को भोजन कराये बिना कुछ भी न खाना, हमारे यहाँ गृहस्थाश्रम की परम्परा है। अन्य उच्च कार्यों में लगे त्यागी, तपस्वी, संन्यासी, सेवकों का जीवन गृहस्थाश्रम से ही होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गृहस्थाश्रम समाज के संगठन, मानवीय मूल्यों की स्थापना, समाज निष्ठा, भौतिक विकास के साथ-साथ मनुष्य के आध्यात्मिक—मानसिक विकास का क्षेत्र है। गृहस्थाश्रम ही समाज के व्यवस्थित स्वरूप का मूलाधार है।

ब्रह्मचर्य और निरालस्य का व्रत धारण

मानव तुच्छ नहीं महान् है। वह महान तत्त्व से अवतरित होता है, महान् लक्ष्य लेकर इस पृथ्वी पर आता है और महानता की शानदार जिन्दगी जीते हुए, महान् आदर्श उपस्थित करते हुए महान् तत्व को उपलब्ध करने के लिए ही उसकी जीवन यात्रा चलती है। इस राजमार्ग पर वह चलता रहे तो उसे पग-पग पर आनन्द, सन्तोष और उल्लास भरी परिस्थिति अनुभव होगी। अपने परिवार का सारा वातावरण उसे सज्जनता और सौम्यता से ओत-प्रोत दिखाई देगा। जहाँ बदमाशी और गन्दगी है, वहाँ उसे हटाने और मिटाने को एक परीक्षा या कसौटी की तरह समझकर सुलझे हुए दृष्टिकोण का व्यक्ति खिन्न होने की अपेक्षा कठोर कर्तव्य पालन को एक चुनौती के रूप में स्वीकार करेगा।

महानता के इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये हमें छोटी बातों से अपना प्रयत्न आरम्भ करना पड़ता है, उनके मिलने से सर्वांगपूर्ण महानता विकसित होती है। छोटे-छोटे पिण्डों से मिलकर यह विशाल ब्रह्माण्ड बना है और हर पिण्ड सूक्ष्म अण्डों का, अणुओं का समूह मात्र है। इसी प्रकार छोटी-छोटी अच्छी आदतें, अच्छी भावना, अच्छी मान्यता, अच्छी श्रद्धा, अच्छी प्रवृत्ति, अच्छी आकांक्षा मिलकर एक सर्वतोमुखी श्रेष्ठता विकसित होती है। कोई महापुरुष सन्त या ऋषि और कुछ नहीं, केवल छोटी-छोटी अच्छाइयों का एक समूह है। यह छोटी अच्छाइयाँ यदि समाप्त हो जायँ तो उसका सारा वैभव, बुद्धिबल और पुरुषार्थ, मिलकर भी महानता की रक्षा न कर सकेगा, वह फिर तुच्छ का तुच्छ बन जावेगा। छोटी अच्छाइयाँ देखने में तुच्छ लगती हैं। पर वस्तुतः इन्हीं ईंटों को चुनकर महानता का विशाल भवन खड़ा किया जाता है।

छोटी-छोटी अच्छी या बुरी आदतें विकसित होने पर मनुष्य के जीवन को बनाने और बिगाड़ने में भारी योगदान करती हैं चोरी, जुआ, नशा व्यभिचार, आलस आदि की बुरी आदतें आरम्भ में बहुत छोटे रूप में ही उत्पन्न होती हैं पर जब मनुष्य के मस्तिष्क पर पूरी तरह छा जाती और उसे अपना गुलाम बना लेती हैं तो फिर वह बेचारा ऐसा वेवश हो जाता है कि इन घृणित बातों से ऊपर उठ ही नहीं पाता। अपने सर्वस्व को इन्हीं दुष्प्रवृत्तियों की वेदी पर बलिदान कर देता है।

जिस प्रकार छोटी बुराइयाँ आरम्भ होकर भयंकर रूप धारण करती हैं, उसी प्रकार अच्छाइयों का छोटा आरम्भ यदि क्रमबद्ध रूप से अग्रसर होता रहे तो उसका अन्तिम परिणाम ऐसा महान् हो सकता है जिस पर गर्व और सन्तोष व्यक्त किया जा सके। वासना पर नियन्त्रण होते चलने से गृहस्थ की श्रेष्ठता बढ़ाने के लिये बहुत ही सहायक हो सकते हैं। वासना और तृष्णा की डाकिनों में से एक को, वासना को यदि कुछ काबू में रखा जा सके तो निःसंदेह इस संसार की आधी विपत्ति हल हो सकती है। मानवीय शरीर और मन का सत्यानाश करने वाली डाकिन वासना है, जिससे समाज में अगणित प्रकार के पाप, द्वेष, अनाचार, अत्याचार, उत्पन्न होते हैं। इन दोनों को सीमित किये बिना आत्मिक सद्गुणों का असीम विस्तार हो सकना सम्भव नहीं। इसलिये अध्यात्म विद्या के आचार्य विविध साधनाएँ बताकर मानव अन्तःकरणों को इन कषाय-कल्मषों से विमुक्त करने का प्रयत्न किया करते हैं। यह दो प्रयत्न भी इस दिशा में उठाये गये आरम्भिक कदम हैं, जिनका सत्परिणाम, सादगी, सन्तोष, सौम्यता और सज्जनता के रूप में कुछ ही समय में प्रस्फुटित हुआ देखा जा सकता है।

गृहस्थ जीवन में जड़ जमाने, बुराइयों से लड़ने के लिए कष्टसाध्य प्रयास साधक को करना पड़ता है, उसे तप कहते हैं। इसे आहार की तपश्चर्या और विहार की तपश्चर्या दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। आहार की तपश्चर्या को अस्वादव्रत और पदार्थ सीमाबंध के रूप में प्रस्तुत कर चुके हैं। विहार की तपश्चर्या में (१) ब्रह्मचर्य और (२) निरालस्य इन दो बातों को रखा गया है। काम सेवन की समस्या व्यक्तिगत मानी जाती है पर वस्तुतः वह पूर्णतया सामाजिक है। व्यक्तियों के स्वास्थ्य से उसका सीधा सम्बन्ध है और सन्तान की दुर्बलता से हमारी भावी पीढ़ियों का सत्यानाश होना भी एक ऐसी महत्त्वपूर्ण बात है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। व्यक्तिगत जीवन में शरीर का खोखलापन, दुर्बलताजन्य कायाकष्ट, मूत्ररोग, जननेन्द्रिय सम्बन्धी बीमारियाँ, अल्पायु, जवानी में बुढ़ापा, औषधियों का खर्च, उपार्जन में अशक्तता, चित्त में खिन्नता, पीड़ा, घर वालों की परेशानी, स्वजनों की घृणा और झुंझलाहट, दीनता, चिड़चिड़ापन, विचार शक्ति का अभाव, चंचलता आदि अगणित व्यथाएँ ऐसी हैं, जो अव्यवस्थित, अनियंत्रित काम सेवन करने वालों के पीछे लग जाती हैं और जीवन के रस से ही उन्हें हाथ धोकर निराशा और उदासीनता भरा निकृष्ट जीवयापन करने के लिये विवश होना पड़ता है।

ब्रह्मचर्य की महत्ता का आरोग्यशास्त्र और अध्यात्मशास्त्र एक स्वर से गुणगान करते हैं। दोनों ही यह मानते हैं कि व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिये ब्रह्मचर्य को अमृत ही मानना चाहिए। **'मरणं विन्दुपातेन, जीवनं विन्दु धारणात्।''** की उक्ति में ऋषि ने यही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहा है कि ब्रह्मचर्य को ही जीवन और उसके नाश को ही मरण मानना चाहिये। जिन्हें जिन्दगी से प्यार नहीं, जो मौत के मुँह में जाने के लिये आतुर हैं, उन्हें अनियन्त्रित काम सेवन का रास्ता अपना लेना चाहिये। सर्वनाश कुछ ही समय में उनके सामने आ खड़ा होगा। महापुरुषों में, महानता में सदा से ब्रह्मचर्य का बड़ा योग रहा है।

हनुमान, भीष्म, शंकराचार्य, दयानन्द आदि में ब्रह्मचर्य का तेज किस प्रकार प्रस्फुटित हुआ था यह सर्व विदित है। पहलवानों को इस सम्बन्ध में काफी सावधानी बरतनी पड़ती है। बुद्धिजीवी लोगों में से जो उत्कृष्ट श्रेणी के हैं वे ऊर्ध्वरिता रहकर ही देर तक अपनी बौद्धिक प्रतिभा को स्थिर रख पाते हैं। काम वासना में नष्ट होने से जो शक्ति बचा ली जाती है वह ओज, तेज, सौन्दर्य-उल्लास, शौर्य, साहस, स्फूर्ति आदि महत्वपूर्ण तत्वों में परिणत होकर शरीर में छलकने लगती है, तो मानव शरीर की शोभा और स्थिरता पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ जाती है। रोगों को मुकाबिला करने वाली जीवनी शक्ति उन्हीं शरीरों में रह पाती है, जो अपना सार निचोड़ते रहने में सावधानी बरतते हैं। भजन, ध्यान श्रद्धा, भक्ति और ईश्वर प्राप्ति के योग्य मनोभूमि बनाने वालों को वासना की ओर से अपना मुँह मोड़ना ही पड़ता है, जिसे इन्द्रिय लोलुपता घेरे रहती है, उसके लिए उच्च श्रेणी के व्यक्तियों में अपनी गणना करा सकना कठिन है।

अविवाहित-अखण्ड ब्रह्मचारी रहना सब के बस की बात नहीं है। कोई विशिष्ट व्यक्ति उस आदर्श का पालन करें तो उनकी प्रशंसा करनी चाहिए पर सर्व साधारण के लिए विवाहित जीवन सरल, सुविधाजनक और सुव्यवस्थित प्रगति की दृष्टि से उचित ही है। चार वर्णाश्रमों की पद्धति वैज्ञानिक भी है और व्यावहारिक भी। नर और नारी में जो अपूर्णता है वह एक-दूसरे के साथ एकात्म होकर पूर्ण करें यह उचित है और आवश्यक भी। किन्तु विवाह होने का मतलब यह नहीं है कि दोनों सर्वनाश के खड्डे में औंधे मुँह गिरने के लिए अन्धी दौड़ लगाने लगें। महात्मा गाँधी ने 'अनीति की राह पर' नामक अपनी पुस्तक में विवाहित जीवन में रहते हुए अधिकाधिक ब्रह्मचर्य पालन करने पर बहुत जोर दिया है। वे स्वयं ३६ वर्ष की आयु से अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करने लगे थे। पति-पत्नी की आत्मीयता, प्रेम भावना और प्रसन्नता बढ़ाने में अन्धी वासना सहायक नहीं वरन् हानिकारक ही सिद्ध होती है। सुसन्तति की प्राप्ति और सौन्दर्य की रक्षा की दृष्टि से तो यह और भी अधिक आवश्यक है कि दाम्पत्य जीवन में ब्रह्मचर्य को समुचित स्थान मिले। यह भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि महानता के ऊँचे मार्ग पर चढ़ने के लिए जिस पेट्रोल की आवश्यकता है वह इन्द्रिय संयम के द्वारा बचाकर ही एकत्रित किया जा सकता है। जिनका जीवन रस इन घृणित छिद्रों में होकर अमर्यादित रूप से टपकता रहेगा उनके पास वह पूँजी बच न सकेगी जिसके मूल्य पर महानता को उपलब्ध कर सकना सम्भव होता है।

अपने दाम्पत्य जीवन से बाहर की वासना के बारे में कल्पना करना, सोचना, उत्पन्न होना, उसके लिये कदम उठाना तो नियत काम सेवन की अपेक्षा अनेकों गुना अधिक हानिकारक है। शास्त्रों में मानसिक और शारीरिक व्यभिचार को पाप और पतन का कारण एवं नरक में ले जाने वाला अपराध बताया गया है। नैतिकता और कानून की दृष्टि से भी वह हेय है। आरोग्य, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र एवं अध्यात्म की दृष्टि से विचार किया जाये तब तो व्यभिचार एक बहुत ही भयानक कुकर्म सिद्ध होता है। अनेकों प्रकार की अशान्तियाँ उत्पन्न करना इस हेय कर्म का प्रत्यक्ष फल सर्वत्र देखा जा सकता है।

गायत्री उपासना की उच्चस्तरीय साधना का क्रम ब्रह्मचर्य की उपेक्षा करके आगे नहीं बढ़ सकता। पाठक जानते हैं कि गायत्री के छोटे-बड़े अनुष्ठानों के समय ब्रह्मचर्य का अनिवार्य रूप से पालन करना पड़ता है। अन्नमय कोश की साधना सारे जीवन चलने वाली है इसलिए वैसा निषेधात्मक प्रतिबन्ध तो इसमें नहीं है पर इतना प्रत्येक साधक को मानकर चलना पड़ेगा कि वह अपनी काम सेवन सम्बन्धी गतिविधियों पर आगे क्रमशः अधिक ध्यान देगा और उसे अधिक सीमाबद्ध करेगा। सृष्टि के सभी जीव-जन्तु सन्तानोत्पादन की प्रचण्ड स्फुरणा होने पर ही नियत समय पर एक बार काम सेवन करते हैं और जब तक दूसरे बच्चे की आवश्यकता न हो नर-मादा का संयोग नहीं होता। मादा की प्रेरणा पर ही नर उत्तेजित होता है अपनी ओर से वह कभी मादा से छेड़छाड़ नहीं करता। मनुष्य को पशु-पक्षियों से अधिक विवेकवान और संयमी होना चाहिए न कि अधिक मूर्ख और अधिक असंयमी।

इस सम्बन्ध में आज की जो स्थिति है, उसे सुनने समझने से हर विचारशील व्यक्ति की आँखें बरसने लगती हैं। वासना का मन्द बिष खाकर लोग किस प्रकार आत्मघात करते चले जा रहे हैं, यह करुण कथा सब प्रकार चिन्ताजनक है ? इस दिशा में नियन्त्रण न रखा जा सका तो उसका परिणाम व्यक्ति और समाज के लिये सब प्रकार घातक ही होने वाला है। जन-साधारण को इस दुष्प्रवृत्ति से बचना ही चाहिए पर गायत्री उपासकों के लिये तो यह आत्मिक प्रगति का प्रधान आधार ही माना है। गृहस्थ योग के साधकों को वासना पर नियन्त्रण कायम करने के लिये बड़े और साहसपूर्ण कदम उठाने चाहिये। सप्ताह में एक बार से गिरी हुई मर्यादा तो किसी की भी न रहे। इस स्तर से भी नीचे उतर पड़ना आत्मिक प्रगति के लिये ही नहीं शारीरिक सुरक्षा और मानसिक स्थिरता के लिये भी घातक है। यह न्यूनतम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अवधि इस गये गुजरे जमाने और लोगों के दुर्बल मानसिक स्तर को देखते हुये ही मानी जा सकती है। वस्तुतः इससे अधिक बड़ी मर्यादायें ही बनाना किसी विचारशील या आध्यात्मवादी सद्गृहस्थों के लिए सन्तोष की बात हो सकती है। जिनका विवाह नहीं हुआ है, जोड़ा बिछुड़ चुका है या दूर देश में रहने के कारण संयोग का अवसर नहीं है, उन्हें तो अपने ऊपर पूर्ण नियन्त्रण रखते हुए शक्ति संचय के लिए ही तत्पर रहना चाहिये।

हर व्यक्ति यह पसन्द करता है कि उसे सुसंतति प्राप्त हो। पूर्वकाल में तो इसके लिये कितनों ने ही कठिन तपस्या की थी और देवताओं से सन्तान का वरदान पाया था। सचमुच जिनके घर में स्वस्थ, सुन्दर, दीर्घजीवी, बुद्धिमान, होनहार, सदाचारी बालक जन्मते हैं वे सब प्रकार धन्य हैं। ऐसी बाल-विभूतियों की उपलब्धि में जहाँ माता-पिता की शिक्षा-दीक्षा, सुसंस्कार, स्वभाव, बुद्धिमता, आर्थिक स्थिति आदि कारण हैं, यहाँ सबसे बड़ा कारण उनका ब्रह्मचर्य है। शरीर की अन्तिम सार धातु परिपक्व और परिपुष्ट होने पर ही इस योग्य होती है कि उससे उत्कृष्ट कोटि का प्रजनन हो सके। बालकों में ओज, तेज, साहस, पुरुषार्थ, शौर्य, धैर्य, आदर्शवाद उच्चगुणों का सीधा सम्बन्ध माता-पिता के ब्रह्मचर्य से है। कामवासना के कीड़े अपना शरीर और मनोबल तो खोते ही हैं। सन्तान भी दुर्बल, रोगी, अल्पायु, मन्दबुद्धि, आलसी, कायर और ऐसे ही अन्य दुर्गुणों से ग्रसित उत्पन्न होती है। अपराधी मनोवृत्ति के बालक आमतौर से असंयमी और दुराचारी माता-पिता की सन्तान होते हैं।

सन्तान के लिये लोग इच्छुक तो बहुत रहते हैं, उनके लिये खर्च भी खूब करते हैं और उत्तराधिकार में छोड़ भी बहुत जाते हैं पर वे श्रेष्ठ सद्गुणों से सम्पन्न होकर जन्में इनके लिए तप-त्याग कुछ भी नहीं करते। ब्रह्मचर्य का अधिकाधिक पालन करना अपनी भावी सन्तान की सबसे बड़ी सेवा है। पोशाक, जेवर, दहेज, शिक्षा, भोजना, जायदाद देकर हम बच्चों का उतना भला नहीं कर सकते जितना उन्हें सुदृढ़ जीवनतत्व और सद्गुणों का आत्मिक उपहार देकर सुखी और समृद्ध बना सकते हैं। बच्चों के लिये माता-पिता बहुत कष्ट सहते हैं और त्याग भी करते हैं। क्या ही अच्छा होता यदि उतने ब्रह्मचर्य की साधना करके उनके लिये सर्वश्रेष्ठ तप त्याग किया होता। हर तपस्या का एक श्रेष्ठ वरदान मिलता है, ब्रह्मचर्य की तपस्या से शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक उन्नति के अनेकों लाभ, वरदानों के साथ एक ईश्वरीय उपहार यह भी है कि ऐसी होनहार संतान मिले जो पिता-माता के गौरव एवं यश को बढ़ाकर सच्चे अर्थों में वंश चलाने वाली सिद्ध हो।

दूसरा व्रत निरालस्य का है। आलस में पड़े-पड़े हम अपना बहुमूल्य बहुत-सा समय आये दिन नष्ट करते रहते हैं। मन्द गति से, हल्का-हल्का बेमन काम करने से समय पूरा नष्ट हो जाता है पर काम एक चौथाई भी दिखाई नहीं देता, जो होता है वह भी फूहड़पन से भरा हुआ, अधूरा आदि अनुपयुक्त ऐसे कामों को समय और श्रम की बर्बादी ही कहा जा सकता है। लोग समझते हैं। हम दिन भर काम करते हैं और फुरसत नहीं पाते। आलस और ढीलेपन की प्रवृत्ति बहुत ही बुरी है। ईश्वर से समय रूप सम्पत्ति प्रचुर मात्रा में देकर ही मनुष्य को उसके मूल्य पर चाहे जो विभूति उपलब्ध कर सकने की सुविधा दी है पर जो लोग समय का मूल्य ही नहीं समझते और जिन्दगी के दिन ज्यों-त्यों काटते रहते हैं उन्हें निम्न कोटि का असफल और अभावग्रस्त जीवन व्यतीत करने के लिये ही विवश होना पड़ता है।

समय रूपी दैवी सम्पत्ति को आलस्य से बर्बाद करना ऐसा ही है जैसे परसी हुई थाली में लात मारकर छितरा देना। आलसी मनुष्य अपने आपका सबसे बड़ा शत्रु है। शरीर के भीतर प्रत्येक अंग-प्रत्यंग अपनी नियत क्रियाशीलता में अहिर्निश कार्यरत रहता है फिर बाहर की देह को ही क्यों आलसी होना चाहिये ? क्यों काम से घृणा करनी चाहिए ? क्यों परिश्रम से जी चुराना चाहिए। आलस और दरिद्रता एक ही वस्तु के दो पहलू हैं। लक्ष्मी सदा उत्साही, उद्योगी और पुरुषार्थी लोगों का आश्रय ढूँढ़ती है। आलसी तो अनायास प्राप्त हुई पैतृक सम्पत्ति तक को सुरक्षित नहीं रख सकते। अध्यात्म का अर्थ है प्रबल पुरुषार्थ।

सबेरे जल्दी उठने की आदत निरालस्यता का पहला चिन्ह है। जिन्हें रात की कोई खास ड्यूटी करनी पड़ती है उनकी बात दूसरी है। इन अपवादों को छोड़कर हममें से प्रत्येक को सूर्योदय से कम से कम एक घण्टा पूर्व तो उठ ही बैठना चाहिए। नित्य-कर्म से निवृत्त होकर अपने उस कार्य में लग जाना चाहिए, जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होता है प्रातःकाल की परिस्थिति और मनःस्थिति ऐसी होती है कि उसमें जो भी काम किया जाय वह सफल होता चला जायगा।

जल्दी उठने के लिये जल्दी सोना आवश्यक है। अपना कार्य-क्रम ऐसा बनाना चाहिए कि सूर्य अस्त होने से तीन-चार घण्टे के भीतर सोने की व्यवस्था बन जाय। यह कहावत ही नहीं तथ्य भी है कि जल्दी सोना और जल्दी उठना मनुष्य को स्वस्थ, बुद्धिमान और सम्पत्तिवान बनाता है। जिनका ब्राह्ममूहूर्त सोते रहने और सुस्ती में पड़े ऐंड़ते रहने में बीतता है उन अभागों का आधा जीवन व्यर्थ ही बर्बाद हो जाता है। सबेरे के दो-तीन घण्टे इतने मूल्यवान होते हैं कि उनकी तुलना में पूरे दिन भर के सारे घण्टे मिलकर भी कम सिद्ध होते हैं। लेखकों, कवियों, वैज्ञानिकों, विद्यार्थियों, बुद्धजीवियों, साधकों और सत्पुरुषों को प्रातः-काल का समय प्राणप्रिय होता है। वे उसे किसी भी मूल्य पर खोने और गँवाने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को तैयार नहीं होते। समय का ठीक तरह विभाजन करके उस कार्यक्रम पर चलते हुए मनुष्य आसानी से दूना काम कर सकता है। हममें से प्रत्येक को अपनी दिनचर्या बनाते रहना चाहिये और कठोरतापूर्वक उसे पालन करते हुए अपने जीवन को क्रमबद्ध बनाना चहिये।

अध्यात्म की एक पुण्य परम्परा

प्राचीनकाल के सभी ऋषि-महर्षि अपने समय का एक-एक क्षण क्रिया संलग्न रखते थे और अपने शिष्यों को, छात्रों को और जनसाधारण को ऐसी ही प्रेरणा देते थे कि वे समय रूपी ईश्वरीय अमूल्य उपहार का एक क्षण भी आलस और प्रमाद में नष्ट न करें। क्रम-बद्ध, व्यवस्थित और प्रोग्राम बनाकर समय का विभाजन करते हुए नियत समय पर नियत कार्य पूरे मनोयोग और दिलचस्पी से करना ही श्रम और समय का सदुपयोग कहा जाता है। हममें से प्रत्येक को अपनी गतिविधियाँ इसी प्रकार नियमित करनी चाहिए। एक क्षण भी बिना आलस में बिताये रोटी कमाना, शरीर व्यवस्था, मनोरंजन, परिवार निर्माण, लोकसेवा, ईश्वर उपासना आदि आवश्यक कार्यों में हमारा समय बँटा हुआ हो और जब भी जो भी काम करें पूरे उत्साह, पूरे मनोयोग, पूरे परिश्रम और पूरी दिलचस्पी के साथ एक खेल समझ कर पूरा करें। इस प्रक्रिया से कार्य की उत्कृष्टता बढ़ती है और थकान पास भी नहीं फटकने पाती।

श्रम और समय को जो लोग प्यार करते हैं वस्तुत: वे ही उसका लाभ उठा पाते हैं। गृहस्थ जीवन के पथिकों को, असंयम से लड़ना चाहिए और आलस से भी। इस मोर्चे को फतह करके ही आगे की प्रगति के द्वार खुलते हैं।

गृहस्थ की समुन्नति के लिए समय का सदुपयोग

धन गृहस्थ जीवन की एक अनिवार्य आवश्यकता है। परिजनों की योग्यता बढ़ाने के लिये, उन्हें खुशहाल रखने, अच्छा खाने और अच्छा पहनने का एकमात्र साधन धन है। धन के अभाव में गृहस्थी की अनेकों आवश्यकतायें अधूरी रह जाती हैं। अविकसित परिवार में किसी तरह की चेतना नहीं होती, किसी तरह का आनन्द नहीं होता। पारिवारिक प्रसन्नता के लिए भी धन की अत्यन्त आवश्यकता है, इसकी कमाई की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिये।

निर्धारित व्यवसाय से कई बार मध्यम श्रेणी के लोगों की आवश्यकतायें पूरी नही हो पातीं। किसान, मिलों में काम करने वाले मजदूर, कारीगर, कार्यालय में काम करने वाले कर्मचारियों की आय इतनी नहीं होती कि जीवनयापन की आवश्यक वस्तुओं से कुछ आगे बढ़कर अपनी योग्यता का विकास करने की सुविधायें प्राप्त कर सकें। कई बार तो यहाँ तक होता है कि भोजन, निवास की समस्या ही कठिनाई से सुलझ पाती है। ऐसी अवस्था में न तो बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था बन पाती है, न लोगों के रहन-सहन का स्तर ही ऊँचा उठ पाता है।

इस देश में कुटीर-उद्योग धन्धों का भी विकास नहीं हो पाया। फलस्वरूप कोई सहायक धन्धा न होने के कारण लोगों का दैनिक व्यवसाय के अतिरिक्त अधिकांश समय बेकार चला जाता है। इस प्रकार समय में लोगों में फालतू झगड़े-फिसाद, मारपीट, दंगे आदि की शिकायतें बढ़ जाती हैं जिससे मुकदमेबाजी बढ़ती है। लोग ऋणी हो जाते हैं। वैसे ही निर्धनता थी, कार्य क्षमता भी घट गई, कर्जदार भी हो गये। सारी कमाई ब्याज के रूप में सेठ, साहूकारों के हाथों लुट जाती है। औसत दर्जे का परिवार इन्हीं कठिनाइयों से घिरा रहता है।

अनिवार्य दिनचर्या के अतिरिक्त पुरुषों के पास कम से कम दो घण्टे और स्त्रियों के पास आठ घण्टे फुरसत के बच जाते हैं। पुरुष इस समय को मटरगश्ती, ताश, चौपड़ आदि में गँवा देते हैं, स्त्रियाँ बेकार की गपशप, सोने और बच्चों की देख-रेख में इस समय को बर्बाद करती रहती हैं। आर्थिक कठिनाई के इस युग में समय की बरबादी नितान्त अविवेकपूर्ण है। इस समय का सदुपयोग किया ही जाना चाहिए।

इन आठ और नौ-दस घण्टों से कोई पूरक धन्धा चलाने में प्रत्येक परिवार को सुविधा मिल सकती है। इसके लिये अपनी दिनचर्या को कार्यक्रमबद्ध बनाना चाहिये। अपने जीवन की एक निश्चित रूपरेखा बनाकर चलने में इस समय का सुन्दर उपभोग हो सकता है और स्वजनों की योग्यता बढ़ाने का अवसर प्राप्त किया जा सकता है। यह चुनाव अपनी परिस्थितियों के अनुरूप सभी को कर लेना चाहिये।

इस समय का पहला सदुपयोग प्रौढ़ प्रशिक्षण हो सकता है। घर में जितने लोग निरक्षर हैं उनको साक्षर बनाने के लिये कुछ समय नियत कर दिया जाय। घर के जो व्यक्ति पढ़े-लिखे हों उन्हें चाहिए कि नियमित रूप से प्रतिदिन उतने समय घर के सभी अशिक्षित स्त्री-पुरुषों की पाठशाला चलाया करें। धीरे-धीरे इनमें मनोरंजक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं किन्तु पहला काम साक्षरता का भी होना चाहिये। जो लोग बुड्ढे हों और शिक्षा को अपने लिये अनावश्यक बताते हों उन्हें भी समझना चाहिये कि शिक्षा का प्रभाव संस्कार रूप में दूसरे जन्मों में भी साथ रहता है इसलिये यह कार्यक्रम तो सभी को अपनाना ही चाहिए। घर-घर ऐसी पाठशालायें चलने लगें तो अविद्या का अन्धकार दूर होते देर न लगे।

जो लोग पढ़ने से आनाकानी करें उनके लिए भी इतना तो होना ही चाहिये कि किसी विचारपूर्ण पुस्तक का कुछ अंश प्रतिदिन पढ़कर सुनाया जाया करे। मनोरंजक,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिक्षाप्रद कहानियाँ, रामायण आदि का स्वरमय पाठ भी होता रहे। इन कृत्यों को सामूहिक धर्मानुष्ठान का रूप भी दे सकते हैं। शिक्षा के साथ सामूहिक प्रार्थना, पूजा और उपासना के कार्यक्रम भी चलते रहें तो स्नेह-बन्धनों को मजबूत बनाने में तथा आत्मिक परिष्कार में सुविधा ही मिलेगी।

पठन-पाठन की सामग्री का चयन धार्मिकता पर आधारित हो तो अधिक अच्छा है पर ध्यान बना रहे कि सिनमा जैसे गन्दे साहित्य का समावेश कदापि न होने पावे। जो शिक्षा उच्छृखंल प्रवृत्ति जगाती हो उसे छुपाकर ही रखना श्रेयस्कर हो सकता है। समाचार-पत्र माँगकर भी लोगों का ज्ञान बढ़ाया जा सकता है।

जो भी काम करें उसे मात्र खिलबाड़ समझकर न करें। पूरी दिलचस्पी और लगन के साथ। यदि एक व्यक्ति को साक्षर बनाया जा सके तो श्रम को सार्थक ही कहेंगे। किन्तु "काम बहुत किया हासिल कुछ न हुआ" वाली कहावत हुई तो यह भी समय का अपव्यय ही रहा। सम्पन्न परिवार के व्यक्ति बाहर से भी अध्यापक की व्यवस्था कर लें तो इससे यह काम जिम्मेदारी का बन जायगा और फिर आनाकानी करने या उपेक्षा दिखाने का कोई कारण ही शेष न रहेगा। जैसे भी बने इस समय का उपयोग यदि साक्षरता बढ़ाने में कर सकें तो इसे बुद्धिमत्ता का कार्य माना जायगा।

दूसरी तरह से समय का सदुपयोग सहायक धन्धे चलाकर किया जा सकता है। ग्रामीण-क्षेत्रों में रहने वाले पशु-पालन तथा सनकी रस्सी बनाने का धन्धा चला सकते हैं, इससे खेती के अतिरिक्त थोड़ी और भी आय हो जाती है। स्त्रियाँ चरखा चलाकर सूत निकालने का काम कर सकती हैं। इसमें सरकारी सुविधायें भी हैं। अम्बर चर्खे के द्वारा चार घण्टा, पाँच घण्टा प्रतिदिन काम करके स्त्रियाँ साठ रुपया मासिक तक की आमदनी कर लेती हैं। जो रुपया न लेना चाहें वे घर भर के लिये शुद्ध कपड़ा ही तैयार कर सकती हैं और दुकानों में जाने वाले पैसे को बचा सकती हैं।

पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ दस्तकारी सीखें। हाथ की मशीन कोई भी गृहिणी चलाकर थोड़ी-सी पूरक आय भी कमा सकती है। घर के कपड़ों की सिलाई इसमें बचती है और फटे कपड़ों की मरम्मत करके उन्हें कुछ दिन और उपयोग में लाने योग्य बना सकते हैं।

पढ़े-लिखे लोग फुरसत के समय लेखन सम्पादन का काम करके अपनी योग्यता भी बढ़ा सकते हैं और सहायक पूँजी भी कमा सकते हैं। जिनमें इतनी योग्यता हो कि पुस्तकें लिख सकें वे ऐसा भी कर सकते हैं। अपनी सामर्थ्य और योग्यतानुसार कोई न कोई काम जरूर चला सकते हैं।

एक किसान के बेटे के पास कुल पाँच बीघे जमीन थी, इससे उसके परिवार का किसी तरह गुजारा न चलता था। बालक ने एक युक्ति निकाली। एक बीघे खेत में बाग लगाना शुरू कर दिया। किनारे-किनारे पपीते और केले के पौधे रोप दिये और बीच में नीबू, नारंगी, मुसम्मी, अमरूद आदि के पेड़ लगा दिये। इससे एक बीघा खेती तो कम हो गई पर पपीते आदि के कुछ पौधे दूसरे ही वर्ष से फल देने लगे और उनकी काफी आमदनी होने लगी। बाग लगाने का काम वह हमेशा किसानी से बचे हुए समय में करता था। जब भी थोड़ा समय मिलता उस बगीचे को सींचने, खाद देने, काँटे लगाने का काम करने लगता। इस समय उस बगीचे से किसान को इतनी आमदनी है जितनी उन चार बीघे-खेतों से भी नही हो पाती। फुरसत के समय का यह भी सदुपयोग हो सकता है।

जिन्हें कुछ भी काम न मिले वे संगीत का अभ्यास, स्वास्थ्य सुधार के लिये मालिश, प्राणायाम, आसन तथा घूमने, टहलने का ही कार्यक्रम बना सकते हैं। कथा-प्रवचन द्वारा भी फालतू समय में ज्ञानदान की परम्परा चला सकते हैं।

अपनी इच्छा, योग्यता और परिस्थितियों के अनुरूप किसी भी पूरक व्यवसाय का चुनाव हर दृष्टि से लाभदायक ही रहेगा। सम्पन्न व्यक्तियों के लिये समय श्रेष्ठ संस्कार पैदा करने, सांस्कृतिक मनोरंजन प्राप्त करने के भी काम आ सकता है। इस तरह निर्धन परिवार अपनी आजीविका बढ़ाकर, धनी परिवार अपनी योग्यता बढ़ाकर अपने गृहस्थी को सुव्यवस्थित रखने में सहयोग दे सकते हैं। इन रचनात्मक प्रवृत्तियों को हमें अपने जीवन में कोई न कोई स्थान देना ही होगा।

सद्गृहस्थ और असद्गृहस्थ में अन्तर

अधिकांश लोग गृहस्थ ही होते हैं। साधु, संन्यासी तथा त्यागी-विरागी तो विरले ही हो पाते हैं। गृहस्थ होना जहाँ अपने लिये एक सुख-सुविधा की बात है, वहाँ सृष्टि का यह चक्र भी गृहस्थ जीवन पर चलता है। समाज की रचना और सभ्यताओं का उदय भी गृहस्थ जीवन पर निर्भर है। भारतीय संस्कृति में जिन चार आश्रमों की व्यवस्था की गई है, उनमें गृहस्थ जीवन को न केवल सर्वोपरि बतलाया है बल्कि अन्य तीन आश्रमों का आधार भी घोषित किया गया है। सदाचारी गृहस्थ को तपस्वी के समान आदरणीय माना जाता रहा है।

इसका कारण भी कोई बड़ा रहस्य नहीं है। सीधी सी बात है कि गृही व्यक्ति परिवार बसाता है। विवाह करता और सन्तानों की सृष्टि कर प्रजा की वृद्धि करता, और साथ ही उनके विकास तथा भरण-पोषण के लिये कठोर से कठोर श्रम रूपी तपस्या किया करता है। सच्चा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गृही, कर्त्तव्य निष्ठा से एक नारी को शिरोधार्य करता, उसे फलवती बनाता और आजीवन उसका तथा उसकी प्रजा का साथ देता, उनको जीवन यात्रा में सहयोग करता है। यदि कोई बुद्धिमान गृहस्थ इस दायित्व को निस्पृह भाव से ग्रहण कर ईश्वरीय आज्ञा की तरह पालन करता है तो निश्चय ही वह गृहवासी होते हुए भी संन्यासी और भोगी होते हुए भी योगी है। गृही और गृहस्थाश्रम की बड़ी महिमा है।

जीवन-यापन की विशेष पद्धति, की जिसे सभ्यता, संस्कृति भी कह सकते हैं, आवश्यकता भी गृहस्थ को अधिक होती है। वह ही इसको स्थिर भी करता है और रक्षा भी। गृहस्थों की दशा से ही किसी देश अथवा समाज की दशा का अनुमान लगता है। यह अधिकतर गृहस्थ ही होते हैं, जो व्यापार, व्यवसाय एवं उद्योग को प्रश्रय देकर समाज का आर्थिक ढाँचा तैयार करते हैं। गृहस्थ ही अपने तथा अपने परिवार के रहने के बहाने आवासीय व्यवस्था का विकास अग्रसर करते हैं। संसार का शिल्प, साहित्य, कला तथा कौशल आदि सारा वैभव गृहस्थ के कारण और अधिकतर उन्हीं के लिये होता है। समाज का विकास और संसार की शोभा गृहस्थ पर ही अवलम्बित है। हम में से अधिकतर गृहस्थ हैं और उसकी गरिमा, गौरव के अधिकारी भी हैं।

"गृहस्थेव हि धर्माणांसर्वेषांमूलमुच्यते" तथा **"धन्यो गृहस्थाश्रम:"**—कहकर ऋषियों ने गृहस्थ जीवन की गरिमा स्थापित की है। किन्तु उन्होंने यह व्यवस्था दी उन्हें गृहस्थों के लिये है जो सदाचारपूर्वक इसे धर्म, कर्त्तव्य समझकर पालन किया करते हैं। असद्गृहस्थों के लिये इस प्रकार व्यवस्था दी भी कैसे जा सकती है ? असद्गृही तो समाज का शत्रु माना गया है। समाज में जो भी अशान्ति, असन्तोष तथा संघर्ष दिखाई देता है उसका मूल कारण असद्गृहस्थ ही हुआ करते हैं।

विवाह सद्गृहस्थ भी करता है और असद्गृहस्थ भी। अन्तर यह है कि जहाँ सद्गृहस्थ के दाम्पत्य सूत्र का उद्देश्य सृष्टि-संचालन तथा प्रजा-पालन होता है, वहाँ असद्गृहस्थ का उद्देश्य इंद्रिय भोग रहता है। जहाँ सद्गृहस्थ अपने परिवार की सहायता से परमार्थरत होकर अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष के लिये प्रयत्नशील होता है वहाँ असद्गृहस्थ परिवार और बाल-बच्चों के बहाने स्वार्थरत होकर लोक-परलोक का पतन किया करता है। सद्गृहस्थ की सन्तानें स्वभावत: शिष्ट एवं शालीन होकर समाज में सुख-शान्ति की वृद्धि का कारण ही सिद्ध होती हैं। इसका कारण यह है। यह यों ही निसंग-भाव से नहीं हो जाता। सद्गृहस्थ सन्तानोत्पति का प्रयोजन जानता है। वह नैतिक एवं आध्यात्मिक उद्देश्य से प्रेरित होकर समाज को एक सुन्दर तथा हितकारी सदस्य सन्तान रूप में उपहार देने के विचार से गृहस्थ जीवन में प्रवृत्त होता है। विवाह उसके लिये काम-क्रीड़ा अथवा इन्द्रिय भोग का साधन न होकर एक धार्मिक कर्त्तव्य होता है। वह उसकी पवित्रता तथा गरिमा को काम कौतुक की प्रणालियों में यों ही व्यर्थ बहा देता।

गृहस्थ जीवन का पुण्य तथा उसकी महिमा तभी है जब सद्गृहस्थ बन कर अपने कर्त्तव्य का सर्वतोमुखी पालन किया जाये अन्यथा गृहस्थ जीवन से अधिक कष्टदायक, लोक-परलोक को नष्ट करने वाली अन्य कोई स्थिति नहीं होती। सद्गृहस्थ ही वास्तव में गृहस्थ और समाज का हितैषी होता है, बाकी के सारे पारिवारिक अपने नरक के शिल्पी हुआ करते हैं, जो परिजनों की सहायता से उसका निर्माण करने में लगे रहते हैं। इसलिये हर गृही का कर्त्तव्य है कि वह सद्गृहस्थ बने, उसके सारे सात्विक सुख भोगे और परिणामस्वरूप परलोक एवं परमगति का अधिकारी बने। वह अपना जीवन इस प्रकार पवित्रतापूर्वक यापन करे जिससे कि वह अपने गृहस्थ और गृहस्थ उसके लिये वरदान रूप सिद्ध होकर सार्थक बने।

सद्गृहस्थ का पहला कर्त्तव्य तो यह है कि वह अपने परिवार में कलह का प्रवेश न होने दे। इस बुराई का प्रवेश तब ही होता है, जब घर के सारे सदस्यों के बीच पारिवारिकता तथा परस्परता का अभाव रहता है। हर व्यक्ति निरंकुश रूप से, मनमाने ढंग से रहना और मनमाने ढंग से बर्ताव करना चाहता है। यह अप्रिय स्थिति तब उत्पन्न होती है, जब परिजनों के बीच स्वार्थ भाव की प्रधानता हो जाती है। स्वार्थपरता के दो-तीन मुख्य कारण होते हैं। एक तो स्पष्ट अभाव, दूसरा अधिक सम्पन्नता और तीसरा विषम व्यवहार। जो गृहस्थ आलसी, अकर्मण्य तथा कामचोर होते हैं, वे निश्चित ही उतना उपार्जन नहीं कर पाते जितने की आवश्यकता होती है। फल यह होता है कि जो कुछ थोड़ा-बहुत घर में आ पाता है, उसमें से अपनी आवश्यकता पूर्ति करने के लिये हर सदस्य अधिक से अधिक चाहने और पाने का प्रयत्न किया करता है। इस छीना-झपटी में स्वार्थपरता को प्रश्रय मिलना स्वाभाविक ही है। इसको किसी प्रकार भी नहीं रोका जा सकता।

अधिक सम्पन्नता होने अथवा आवश्यकता से अधिक आय की स्थिति में भी सदस्य स्वार्थ परायण हो जाते हैं। अधिकता के कारण हर सदस्य अपने लिए मनमाना भोग चाहने लगता है। विलासिता, व्यसन तथा फैशनपरस्ती बढ़ जाती है। आलस्य, अहंकार तथा अकर्मण्यता घर बना लेती है। सब कोई एक-दूसरे पर हुक्म चलाने और अपनी प्रधानता के लिये प्रयत्नशील हो उठता है। एक-दूसरे की हिर्स तथा स्पर्धा उनका स्वभाव बन जाता है। ऐसी अस्त-व्यस्त तथा अव्यवस्थित दशा मे स्वार्थपरता तथा कलह-परायणता की वृद्धि हो जानी स्वाभाविक ही है।

परिवार में एक-दूसरे सदस्यों द्वारा और विशेषतया परिवार प्रमुख द्वारा किसी एक सदस्य को मुख्यता देना,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उस पर अधिक व्यय करना अथवा अधिक स्नेह रखना, और दूसरों के प्रति उदासीनता अथवा उपेक्षा का भाव रखना उनमें ईर्ष्या-द्वेष की वृद्धि करने लगता है। ऊपर से भले ही सारे सदस्य एक सूत्र में आबद्ध दीखते रहें किन्तु अन्दर ही अन्दर वे विशृंखल होकर एक-दूसरे से फूट जाते हैं। इस प्रकार की विशृंखल स्थिति में पारिवारिक शान्ति तथा प्रसन्ता का रह सकना कठिन है।

इस सत्य को दृष्टिगत रखते हुए सद्गृहस्थ आलस्य अथवा अकर्मण्यता को कभी प्रश्रय नहीं देते। वे परिवार को अभाव के प्रभाव से बचाये रखने के लिये अधिक से अधिक परिश्रम करते और पसीना बहाते हैं। वे परिवार का अभाव दूर करने के लिये अपनी सीमा में कोई भी प्रयत्न उठा नहीं रखते।

परिश्रमी गृहस्थों के पास आवश्यकता से कुछ अधिक पैसा हो जाना कोई आश्चर्य नहीं। ऐसी स्थिति में वे सबका सब सदस्यों के सम्मुख लूटने-उड़ाने के लिये ढेर नहीं लगा देते। वे उनको उतना ही देते हैं, जिससे उनकी आवश्यकता सरलतापूर्वक पूरी हो सके और वे अभाव की अनुभूति कर सकें। शेष आय उनके आगे के लिये, भविष्य के लिये सुरक्षित रखते अथवा ऐसे उद्योगों में लगा देते हैं, जिससे पूँजी सुरक्षित भी रहे और कुछ लोगों की आजीविका का साधन भी बन जाये, साथ ही वे अपनी बचत का कुछ भाग धार्मिक तथा सामाजिक सेवा में भी व्यय करते हैं, जिससे परिवार के सदस्यों पर शुभ संस्कार पड़े, लोगों की दृष्टि में उनका सम्मान बढ़े और इस प्रकार परिवार के सदस्य गरिमा के भाव से बुराइयों तथा अनुत्तरदायित्व पूर्ण कामों से बचे रहें।

सद्-गृहस्थ अपने परिवार के सदस्यों के बीच असमानता का व्यवहार नहीं करते। एक तो गुणी होने से उनमें समभाव यों भी बना रहता है दूसरे पारिवारिक शान्ति के लिये वे वैसा करने से यों बचते भी रहते हैं। वे पहनाने, खिलाने तथा अन्य सुविधा-साधन देने में न्यायनिष्ठ ही रहा करते हैं। जिसकी जो आवश्यकता तथा स्थिति होती है, उसी के अनुसार उस पर खर्च करते और ध्यान देते हैं। किन्तु भोजन एवं वस्त्र के विषय में वे सब को एक बराबर ही रखते हैं। वे वस्त्रों तथा भोजन का ऐसा माध्यमिक स्तर स्थिर कर देते हैं, जो उपयोगी, भद्र तथा सदा निभ सकने वाला हो। इसके लिये न तो वे स्वयं फैशनेबुल बनते हैं और न किसी दूसरे सदस्य को इसकी छूट देते हैं। वे अपने एम. ए. में पढ़ने वाले लड़के के लिये उसके कालिज व्यय के अनुसार दूसरों की अपेक्षा अधिक खर्च तो कर सकते हैं किन्तु खाने-पीने के सम्बन्ध में उसका स्तर अनावश्यक रूप में बढ़ने नहीं देते। इस प्रकार वे समभाव तथा नियमन के आधार पर अपने परिवार को कलह-क्लेश के नारकीय वातावरण से सुरक्षित किये रहते हैं।

सद्गृहस्थ शिष्टाचार को बहुत महत्व देते हैं। वे न तो स्वयं घर में अथवा बाहर किसी से अशिष्ट व्यवहार करते हैं और न अपने परिजनों को ऐसा करने देते हैं। वे स्वयं अनुशासित रहकर दूसरों को भी मर्यादित रहने के लिये विवश करते हैं। शिष्टाचार को सभ्यता का लक्षण मानने वाले सद्गृहस्थ बच्चों तक से, मधुर तथा आदरपूर्ण भंगिमा तथा भाषा में बोलते, बात करते हैं तब दाम्पत्य मर्यादा का उनसे उल्लघंन हो ही किस प्रकार सकता है ? शील, संकोच, शालीनता तथा शीलता उनके स्वभाव के अलंकार हुआ करते हैं।

सद्-गृहस्थ शिक्षा को जीवन में सर्वोपरि स्थान देते हैं। वे अच्छी तरह जानते हैं कि यदि उनका परिवार अशिक्षा के अन्धकार में पड़ा रहा तो लाख प्रयत्न करने पर भी सदस्यों में सद्गुणों का विकास नहीं किया जा सकता। अशिक्षित तथा अपढ़ व्यक्तियों पर सदाशयता के सारे प्रयत्न विफल चले जाते हैं। इसलिये वे हर मूल्य पर बच्चों तथा यथासम्भव प्रौढ़ सदस्यों को शिक्षित एवं साक्षर बनाने के प्रयत्न से कभी विरत नहीं होते। यदि वे सबके लिये पाठशाला का प्रबन्ध नहीं कर सकते तो शेष सदस्यों को नित्य की पारिवारिक गोष्ठी में सद्शिक्षा एवं सद्ग्रन्थों द्वारा बौद्धिक शिक्षण दिया करते हैं। यदि वे उन्हें साक्षर नहीं बना पाते तो विचारवान् तो बना ही देते हैं।

सद्गृहस्थ नियोजित परिवार में अखण्ड विश्वास रखते हैं। वे अपनी, समाज की तथा राष्ट्र की स्थिति के अनुसार उतने बच्चों में ही सन्तुष्ट हो जाते हैं, जिनको शिक्षित, दीक्षित करके सभ्य तथा सफल नागरिक बना सकें। आवारा, निकम्मे, अपढ़ तथा अपराधी बच्चों की शृंखला बढ़ाकर अपराध नहीं करते। स्थिति के अनुसार दो या तीन बच्चों के बाद विराम लगाकर शेष जीवन संयम तथा ब्रह्मचर्यपूर्वक बच्चों को समुचित विकास करने तथा आत्मोद्धार के लिये लगाकर सदा-सर्वदा के लिये सुखी तथा सन्तुष्ट हो जाया करते हैं। वे अच्छी तरह जानते हैं कि अधिक सन्तानों में अधिकांश अविकसित, अशिक्षित तथा असभ्य ही रह जाती हैं, ऐसी सन्तानें जीवन के लिये कितना बड़ा अभिशाप सिद्ध होती हैं, इसका प्रमाण अनियन्त्रित एवम् असद्गृहस्थों की दशा देखकर पाया जा सकता है।

गृहस्थ जीवन सर्वोपरि जीवन है, किन्तु कब तक ? जब तक सद्गृहस्थ बनकर पारिवारिक शान्ति, शिष्टाचार, शिक्षित परिवार नियोजन तथा बाल विकास की शर्तों को पूरा करते हुए पारमार्थिक जीवन-यापन किय जाये और दाम्पत्य जीवन को भोग का माध्यम नहीं एक धार्मिक तथा आध्यात्मिक कर्त्ता समझकर निभाया जाये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गृहस्थ में वैराग्य

गृहस्थ आश्रम की निन्दा करते हुए कोई-कोई सज्जन ऐसा कहते हुए सुने जाते हैं कि—''घर गृहस्थी में पड़ना माया के बन्धन में फँसना है।'' उनकी दृष्टि में घर गृहस्थी माया का पिटारा है और बिना गृहस्थी रहना स्वर्ग की निशानी है। परन्तु विचार करने पर प्रतीत होता है कि उपरोक्त कथन का कुछ विशेष अर्थ नहीं है। कारण यह है कि माया का बन्धन बाहरी वस्तुओं या बाहरी मनुष्यों में नहीं वरन् अपनी मनोवृत्तियों में है। यदि मन अपवित्र है, काम, क्रोध, लोभ से भरा हुआ है तो जो बातें गृहस्थ में होती हैं वही संन्यास से बाहर भी हो सकती हैं। हमने देखा है कि बहुत से बाबाजी कहलाने वाले महाराज भिक्षा-माँग-माँगकर धन जोड़ते हैं, मरने पर उनके पास प्रचुर धनराशि निकलती है। हमने देखा है कि गृह-विहीन लोगों की इन्द्रियाँ भी लोलुप होती हैं शब्द, रस, रूप, गन्ध, स्पर्श में वे लोलुप रुचि प्रकट करते हैं, उनके आकर्षण से आकर्षित होते हैं। अपनी वस्तुओं से कुटी, वस्त्र, पुस्तक, पात्र, शिष्य, साथी आदि से ममता रखते हैं। यही सब बातें ही दूसरे रूप में गृहस्थ में होती हैं।

वैराग्य, त्याग, विरक्ति इन महातत्वों का सीधा सम्बन्ध अपने मनोभावों से है। यदि भावनायें संकीर्ण हों, कलुषित हों, स्वार्थमयी हों तो चाहे जैसी उत्तम सात्विक स्थिति में मनुष्य क्यों न रहे, मन का विकार वहाँ भी पाप की दुराचार की सृष्टि करेगा। यदि भावनायें उदार एवं उत्तम हैं तो अनगिन और अनिष्टकारक स्थिति में भी मनुष्य पुण्य एवं पवित्रता उत्पन्न करेगा। महात्मा इमर्सन कहा करते थे कि ''मुझे नरक में भेज दिया जाय तो भी मैं वहाँ अपने लिए स्वर्ग बना लूँगा।'' वास्तविक सत्य यही है, हर आदमी अपनी भीतरी स्थिति का प्रतिबिम्ब दुनिया के दर्पण में देखता है। यदि उनके मन में माया है, तो घर-बाहर, वन, आरण्यक, मन्दिर, स्वर्ग सब जगह माया है, माया के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। यदि मन साफ है, पवित्रता, प्रेम और परमार्थ की दृष्टि है तो घर का एक कोना पुनीत तपोवन से किसी भी प्रकार कम न रहेगा। राजा जनक प्रभृति अनेकों ऋषि हुए हैं, जिन्होंने गृहस्थ में रहने की साधना की और परम पद पाया।

वीरता भागने में नहीं, वरन् लड़ने में है। यदि गृहस्थाश्रम में अधिक कठिनाइयाँ हैं तो उनसे डरकर दूर रहना उचित नहीं। पानी में घुसे बिना तैरना कैसे सीखा जायेगा ? कोई व्यक्ति यह कहे कि मैं अखाड़े में जाकर व्यायाम करने की कठिनाई में पड़ना नहीं चाहता। परन्तु पहलवान बनना चाहता हूँ, तो उसकी यह बात बालकों जैसी अनगढ़ होगी। काम, क्रोध, लोभ मोह के दाव-घातों को देखना, उनसे परिचित होना, उनसे लड़कर, विजय प्राप्त करना, इन्हीं सब अभ्यासों के लिए वर्णाश्रम धर्म-तत्वदर्शी, आचार्य गृहस्थाश्रम को सर्वश्रेष्ठ सर्वोपरि आश्रम बताते हैं। सम्पूर्ण देवर्षि इसी महान गुफा में से उत्पन्न और विकसित हुए हैं। जरा कल्पना तो कीजिए—यदि गृहस्थ धर्म जिससे निर्बुद्धि लोग माया या बन्धन तक कह बैठते हैं न होता तो राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, गाँधी कहाँ से आते हैं ? सीता, सावित्री, अनुसूया, मदालसा, दमयन्ती, पार्वती आदि सतियों का चरित्र कहाँ से सुन पड़ता ? इतिहास के पृष्ठों पर जगमगाते हुए उज्ज्वल हीरे किस प्रकार दिखाई देते ? अन्य तीनों आश्रम बच्चे हैं गृहस्थ उनका पिता है। पिता को बन्धन कहना, नरक बताना, त्याज्य ठहराना एक प्रकार की विवेकहीनता है।

उत्तरदायित्वों का भार पड़े बिना कोई व्यक्ति वास्तविक गम्भीर, जिम्मेदार और भारी भरकम नहीं होता। अल्हड़ बछड़े बहुत कूदते-फाँदते और दुलत्तियाँ उड़ाते हैं परन्तु जब कन्धे पर भार पड़ता है तो सावधानी से एक-एक कदम रखना पड़ता है। हाथी जब गहरे पानी में धँसता है तो अपना एक पैर भली प्रकार जमा लेता है तब दूसरे को आगे रखता है। उसकी सारी सावधानी और होशियारी उस समय एक स्थान पर केन्द्रीभूत हो जाती है। जिस चित्तवृति निरोध को, एकाग्रता को पातंजलि ने योग बताया है वह एकाग्रता कोरी बातूनी जमाबन्दी से नहीं आती, उसके लिए एक प्रेरणा जिम्मेदारी चाहिए। गृहस्थाश्रम का बोझ पड़ने पर मनुष्य जिम्मेदारी की ओर कदम बढ़ाता है। अपना और अपने परिवार का बोझ पीठ पर लादकर उसे चलना पड़ता है इसलिए उच्छृंखलता को छोड़कर वह जिम्मेदारी अनुभव करता है। यह जिम्मेदारी ही आगे चलकर विवेकशीलता में परिणत हो जाती है। राजा को एक साम्राज्य के संचालन की बागडोर हाथ में लेकर जैसे संभल-संभलकर चलना पड़ता है वैसे ही एक सद्गृहस्थ को पूरी दूरदर्शिता, विचारशीलता, धैर्य सहनशीलता और आत्म संयम के साथ अपना हर एक कदम उठाना पड़ता है। चाबुक सवार जैसे घोड़े को अच्छी चाल चलना सिखाकर उसे हमेशा के लिये बढ़िया घोड़ा बना देता है, वैसे ही गृहस्थ धर्म भी ठोक-पीटकर कड़ुवे मीठे अनुभव कराकर एक मनुष्य को आत्म-संयमी, दूरदर्शी, गम्भीर एवं स्थिरचित्त बना देता है, यह सब योग के लक्षण हैं। जैसे फल पककर समयानुसार डाली से स्वयं अलग हो जाता है वैसे ही गृहस्थ की डाल से चिपका हुआ मनुष्य धीरे-धीरे आत्म निग्रह और आत्म त्याग की शिक्षा पाता रहता है अन्ततः एक प्रकार का योगी हो जाता है।

लिप्सा, लालसा, तृष्णा, लोलुपता, मदान्धता, अविवेक आदि बातें त्याज्य हैं, यह बुरी बातें गृहस्थ आश्रम में भी हो सकती हैं और अन्य आश्रमों में भी। इसीलिये गृहस्थ आश्रम त्यागने योग्य नहीं वरन् अपनी कुवासनाएँ ही त्यागने योग्य हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दृष्टिकोण का परिवर्तन

इस बात को भली प्रकार समझ रखना चाहिए कि योग का अर्थ अपनी तुच्छता, संकीर्णता को महानता, उदारता और विश्व-बन्धुत्व में जोड़ देना है अर्थात् स्वार्थ को परिशोधन करके उसे परमार्थ बना लेना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये असंख्य प्रकार के योगों की साधनायें की जाती हैं, उन्हीं में से एक गृहस्थ योग की साधना है। अन्य साधनाओं की अपेक्षा यह अधिक सुखद और स्वाभाविक है। इसलिये आचार्यों ने गृहस्थ योग का दूसरा नाम सहज योग भी रखा है। महात्मा कबीर ने अपने पदों में सहज योग की बहुत चर्चा और प्रशंसा की है।

किसी वस्तु को समुचित रीति से उपयोग करने पर वह साधारण होते हुए भी बहुत बड़ा लाभ दिखा देती है और कोई वस्तु उत्तम होते हुए भी यदि उसका दुरुपयोग किया जाय तो वह हानिकारक हो जाती है। दूध जैसे उत्तम पौष्टिक पदार्थ को भी यदि अविधिपूर्वक सेवन किया जाय तो वह रोग और मृत्यु का कारण बन सकता है। इसके विपरीत यदि जहर को भी उचित रीति से शोधन मारण करके काम में लाया जाय तो वह अमृत के समान रसायन का काम देता है। गृहस्थाश्रम के सम्बन्ध में भी यही बात है। यदि उचित दृष्टिकोण के साथ आचरण किया तो गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी ब्रह्म निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है जैसा कि अनेक ऋषि, महात्मा, योगी और तपस्वी पूर्वकाल में प्राप्त कर चुके हैं। आजकल गृहस्थों को दुःख, चिन्ता, रोग, शोक, आधि व्याधि-पाप-ताप में ग्रसित अधिक देखा जाता है, इससे ऐसा अनुमान न लगाना चाहिए कि इसका कारण गृहस्थाश्रम है, यह तो मानसिक विकारों का कुविचार और कुसंस्कारो का फल है। दूषित मनोवृत्तियों के कारण हर एक आश्रम में, हर एक वर्ण में, हर एक देश में ऐसे ही संकट, दुःख उपस्थित होंगे। इसके लिये बेचारे गृहस्थाश्रम को दोष देना बेकार है। यदि वह वास्तव में ही दूषित त्याज्य या तुच्छ होता तो संसार के महापुरुषों, अवतारों और युग निर्माताओं ने इससे अपने को अलग रखा होता, किन्तु हम देखते हैं विश्व की महानता का करीब-करीब, समस्त इतिहास गृहस्थाश्रम की धुरी पर केन्द्रीभूत हो रहा है।

आत्मीयता की उन्नति के लिए अभ्यास करने का सबसे अच्छा स्थान अपना घर है। नट अपने घर के आँगन में कला खेलना सीखता है। बालक अपने घर में खड़ा होना और चलना-फिरना सीखता है। योग की साधना भी घर से ही आरम्भ होनी चाहिए। प्रेम, त्याग और सेवा का, अभ्यास करने के लिये अपने घर का क्षेत्र सबसे अच्छा है। इन तत्वों का प्रकाश जिस स्थान पर पड़ता है वही चमकने लगता है। जब तक आत्मीयता के भावों की कमी रहती है तब तक औरों के प्रति दुर्भाव, घृणा, क्रोध, उपेक्षा के भाव रहते हैं किन्तु जब अपनेपन के विचार बढ़ते हैं तो हल्के दर्जे की चीजें भी बहुत सुन्दर दिखाई पड़ने लगती हैं। माता अपने बच्चे के प्रति आत्म भाव रखती है इसलिये यदि वह लाभदायक न हो तो भी उसे भरपूर स्नेह करती है, पतिव्रता पत्नियों को अपने काले कलूटे और दुर्गुणी पति भी इन्द्र जैसे सुन्दर और वृहस्पति जैसे गुणवान लगते हैं।

दुनिया में सारे झगड़ों की जड़ यह है कि हम देते कम हैं और माँगते ज्यादा हैं। हमें चाहिए कि दें बहुत और बदला बिलकुल न माँगें या बहुत कम पाने की आशा रखें। इस नीति को ग्रहण करते ही हमारे आस-पास के सारे झगड़े मिट जाते हैं। आत्मीयता की महान् साधना में प्रवृत्त होने वाले को अपना दृष्टिकोण देने का, त्याग और सेवा का बनाना पड़ता है। आप प्रेम की उदार भावनाओं से अपने अन्तःकरण को परिपूर्ण कर लीजिए और सगे-सम्बन्धियों के साथ त्याग एवं सेवा का व्यवहार करना आरम्भ कर दीजिए। कुछ ही क्षणों के उपरान्त एक चमत्कार हुआ दिखाई देने लगेगा। अपना छोटा-सा परिवार जो शायद बहुत दिनों से कलह और क्लेशों का घर बना हुआ है—सुख-शान्ति का स्वर्ग दीखने लगेगा। अपनी आत्मीयता की प्रेम भावनाएँ परिवार के आस-पास के लोगों से टकराकर अपने पास वापिस लौट जाती हैं और वे आनन्द की भीनी सुगन्धित फुहार से छिड़ककर मुरझाये हुए अन्तःकरण को हरा कर देती हैं।

माली अपने ऊपर जिस बगीची की जिम्मेदारी लेता है, उसे हरा-भरा बनाने, सरसब्ज रखने का जी जान से प्रयत्न करता है। वही दृष्टिकोण एक सद्गृहस्थ का होना चाहिये। उसे अनुभव करना चाहिये कि परमात्मा ने इस थोड़े से पेड़ों को सींचने, खाद देने सँभालने और रखवाली करने का भार विशेष रूप से मुझे दिया है। यों तो समस्त समाज और समस्त जाति के प्रति हमारे बहुत से कर्त्तव्य हैं, परन्तु इस छोटी बगीची का भार तो विशेषरूप से अपने ऊपर रखा हुआ है। अपने परिवार के हर एक व्यक्ति को स्वस्थ रखने, शिक्षित बनाने, सद्गुणी सदाचारी और चतुर बनने की पूरी-पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर समझते हुए इसे ईश्वर की आज्ञा का पालन मानते हुए अपना उत्तरदायित्व पूरा करने का प्रयत्न करना चाहिए। अपने परिवार के सदस्यों की सेवा भी परमार्थ, पुण्य, लोक सेवा, ईश्वर पूजा से किसी प्रकार कम नहीं है।

स्वार्थ और परमार्थ का मूल बीज अपने मनोभाव, दृष्टिकोण के ऊपर निर्भर है। यदि पत्नी के प्रति उसे अपनी नौकरानी, दासी, सम्पत्ति, भोग सामग्री समझ कर अपना मतलब गाँठने, सेवाएँ लेने, शासन करने का भाव हो तो यह भाव ही स्वार्थ, नरक, कलह, भार, दुःख की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ओर ले जाने वाला है। यदि उसे अपने उपवन का एक सुरम्य, सरस वृक्ष समझकर उसके प्रति सात्विक त्यागमय सेवा का पुनीत उदारतामय प्रेम का भाव हो, अपने स्वार्थ की अपेक्षा उसके स्वार्थ को महत्व देने का भाव हो तो यह भाव दाम्पत्य जीवन को, पत्नी सान्निध्य को परमार्थ स्वर्ग, स्नेह और आनन्द का घर बनाया जा सकता है। देना कम और लेना ज्यादा यह नीति झगड़े की, पाप की कटुता की, नरक की जड़ है। "देना ज्यादा और लेना कम से कम" यह नीति-प्रेम, सहयोग, पुण्य और स्वर्ग की जननी है। बदला चाहने, लेने, स्वार्थ साधने, सेवा कराने की स्वार्थ दृष्टि से यदि पत्नी, पुत्र, पिता, भाई, माता, बुआ, बहिन, को देखा जाय तो यह सभी बड़े स्वार्थी, खुदगर्ज, बुरे, रूखे, उपेक्षा करने वाले उद्दण्ड दिखाई देंगे, उनमें एक से-एक बड़ी बुराई दिखाई पड़ेगी और ऐसा लगेगा मानो गृहस्थ ही सारे दुखों, स्वार्थों और पापों का केन्द्र है। कई व्यक्ति गृहस्थी पर ऐसा ही दोष लगाते हुए कुढ़ते रहते हैं, खिन्न रहते हैं एवं घर छोड़कर भाग खड़े होते हैं असल में यह दोष परिवार वालों का नहीं वरन्, उनके अपने दृष्टिकोण का दोष है, पीला चश्मा पहनने वाले को हर एक वस्तु पीली ही दिखाई पड़ती है।

प्रत्येक मनुष्य अपूर्ण है। वह अपूर्णता में पूर्ण की ओर यात्रा कर रहा है। ऐसी दशा में यह आशा नहीं रखनी चाहिए कि हमारे परिवार के सब सदस्य स्वर्ग के देवता, हमारे पूर्ण आज्ञानुवर्ती होंगे। जीव अपने साथ जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों को साथ लाता है, यह संस्कार धीरे-धीरे, बड़े प्रयत्नपूर्वक बदले जाते हैं। एक दिन में उन सबका परिवर्तन नहीं हो सकता, इसलिये यह आशा रखना अनुचित है कि परिवार वाले पूर्णतया हमारे अज्ञानुवर्ती ही होंगे। उनकी त्रुटियों को सुधारने में, उन्हें आगे बढ़ाने में, उन्हें सुखी बनाने में सन्तोष प्राप्त करने का अभ्यास डालना चाहिए। अपनी इच्छाओं की पूर्ति से सुखी होने की आशा करना इस संसार से एक असंभव माँग करना है। दूसरे लोग हमारे लिये यह करें, परिवार वाले इस प्रकार का हमसे व्यवहार करें, इस बात के ऊपर अपनी प्रसन्नता को केन्द्रित करना एक बड़ी भूल है, ऐसी भूल को जो लोग करते हैं, उन्हें गृहस्थ के आनन्द से प्राय: पूर्णतया वंचित रहना पड़ता है।

स्मरण रखिये गृहस्थ का पालन करना एक प्रकार के योग की साधना करना है। इसमें परमार्थ, सेवा, प्रेम, सहायता, त्याग, उदारता और बदला पाने की इच्छा से विमुखता-यही दृष्टिकोण प्रधान है। जो इसको धारण किये हुए हैं वही ब्राह्मी स्थिति में है। वह घर में रहते हुए भी संन्यासी है।

भोग से योग तक

पुण्य और पाप किसी कार्य के बाह्य रूप के ऊपर नहीं वरन् उस काम को करने वाले की भावना के ऊपर निर्भर हैं। किसी कार्य का बाहरी रूप कितना ही अच्छा, ऊँचा या उत्तम क्यों न हो परन्तु यदि करने वाले की भीतरी भावनायें बुरी हैं तो ईश्वर के दरबार में वह कार्य पाप में शुमार होगा। लोगों को धोखा दिया जा सकता है, दुनिया को भ्रम या भुलावे में डाला जा सकता है। परन्तु परमात्मा को धोखा देना असम्भव है। ईश्वर के दरबार में काम के बाहरी रूप को देखकर नहीं वरन् करने वाले की भावनाओं को परखकर धर्म-अधर्म की नाप-तौल की जाती है।

आज हम ऐसे अनेक धूर्तों को अपने आस-पास देखते हैं जो कहने को तो बड़े-बड़े अच्छे काम करते हैं पर उनका भीतरी उद्देश्य बड़ा दूषित होता है। अनाथालय, विधवाश्रम, गौशाला आदि पवित्र संस्थाओं की आड़ में भी बहुत से बदमाश आदमी अपना उल्लू सीधा करते हैं। योगी, महात्मा, साधु, संन्यासियों का बाना पहने अनेक चोर, डाकू, लुच्चे, लफंगे घूमते रहते हैं। यज्ञ करने के नाम पर, पैसा बटोरकर कई आदमी अपना घर भर लेते हैं। बाहरी दृष्टि से देखने पर अनाथालय, विधवाश्रम गौशाला चलाना, साधु, संन्यासी, महात्मा, उपदेशक बनना यज्ञ, कुआँ, मन्दिर बनवाना आदि अच्छे कार्य हैं। इनके करने वालों को पुण्यफल मिलना चाहिए, परन्तु वास्तविक बात यह है कि यदि करने वाले की भावनायें विकृत हैं तो यह अच्छे काम भी उसकी मुख्य सम्पदा में कुछ वृद्धि न कर सकेंगे। वह व्यक्ति अपने पापमय विचारों के कारण पापी ही बनेगा, पाप का नरकमय दण्ड ही उसे प्राप्त होगा।

यदि कोई आदमी साधारण काम करता है। मामूली व्यक्तियों की तरह जीवनयापन करता है, किन्तु उन साधारण कार्यों में भी उद्देश्य, मनोभाव और विचार ऊँचे रखता है तो वह साधारण काम भी तपस्या जैसा पुण्य फलदायक हो जाता है। यहीं तक नहीं बल्कि यहाँ तक भी होता है कि बाहर से दीखने अधर्म युक्त कार्य भी यदि सद्भावना से किये जाते हैं तो वे भी धर्म बन जाते हैं। जैसे हिंसा करना, किसी के प्राण लेना, हत्या या रक्तपात करना प्रत्यक्ष पाप है। परन्तु आततायी, दुष्ट और दुरात्माओं से संसार की रक्षा करने की सद्भावना से यदि दुष्टों को मारा जाता है तो वह पाप नहीं वरन् पुण्य बन जाता है। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध के लिए प्रोत्साहित करके हजारों मुनष्यों को मरवा डाला पर इससे अर्जुन या कृष्ण को कुछ पाप नहीं लगा। राम-रावण युद्ध में बड़ा भारी जन संहार हुआ परन्तु उन दुष्टों को मारने वाले पापी या हत्यारे नहीं कहलाये। यहाँ हिंसा प्रत्यक्ष है तो भी हिंसा करने वाले सद्भावना युक्त थे इसलिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनके कार्य पुण्यमय ही हुए। इसी प्रकार झूठ, चोरी, छल आदि भी समयानुसार—सद्उद्देश्य से किये जाने पर धर्ममय ही होते हैं। उन्हें करने वाले को पाप नहीं लगता वरन् पुण्य फल ही प्राप्त होता है।

उपरोक्त पंक्तियों को पढ़कर पाठकों को किसी भ्रम में न पड़ना चाहिए। हम सत्कर्मों की निन्दा या असत् कार्यों की प्रशंसा नहीं कर रहे हैं। हमारा तात्पर्य तो केवल यह कहने का है कि काम का बाहरी रूप कैसा है, इससे दुनिया की स्थूल दृष्टि ही कुछ समय के लिए चकाचौंध में पड़ सकती है। पर परमात्मा प्रसन्न नहीं हो सकता। आत्मा और परमात्मा के समक्ष तो भावना प्रधान है। संसार के लोगों की सूक्ष्म बुद्धि भी भावना को महत्व देती है। यदि किसी ने अपने किसी स्वार्थ साधन के लिए कोई प्रीतिभोज दिया हो या और कोई ऐसा काम किया हो तो जब लोगों को असली बात का पता चलता है तो लोग उसकी चालाकी के लिए मन ही मन मुस्कराते हैं, कनखियाँ लेते हैं और मसखरी उड़ाते हैं, धर्मात्मा की बजाय उसे चालाक ही समझा जाता है। अब दूसरी ओर चलिये किसी आदमी द्वारा भूल से, मजबूरी से या गैर जानकारी से कोई अनुचित बात हो जाती है और जानकारी होने पर पता चलता है तो उसे अनुचित बात के लिए भी क्षमा कर दिया जाता है। अदालतें भी अपराधी की नीयत पर मुख्यतया ध्यान रखती हैं। यदि अपराधी की नीयत बुरी न साबित हो तो अपराधी को कठोर दण्ड का भागी नहीं बनना पड़ता।

जीवन के हर काम की अच्छाई, बुराई कर्ता की भावना के अनुरूप होती है। जीवन भले ही सादा हो पर यदि विचार उच्च है तो जीवन भी उच्च माना ही जायेगा। रुपये-पैसे या काम के बड़े आडम्बर से पुण्यफल या विशेष सम्बन्ध नहीं है। एक अमीर आदमी रुपये के बल से बड़े-बड़े ब्रह्म-भोज, पूजा, पाठ, तीर्थयात्रा, कथा-पुराण, मन्दिर मठ, कुआ-बावड़ी, सदावर्त यज्ञ-हवन आदि की व्यवस्था आसानी से कर सकता है। दस लाख रुपया अनुचित रीति से कमाकर दस हजार रुपया इस प्रकार के कार्यों में लगाकर धर्मात्मा बनता है। दूसरी ओर गरीब आदमी जो ईमानदारी की मेहनत-मजदूरी करता है, वह थोड़े-से पैसे कमाता है, जिससे कुटुम्ब का भरण-पोषण कठिनाई से हो पाता है बचता कुछ नहीं, ऐसी दशा में वह बेचारा भला ब्रह्मभोज, तीर्थ यात्रा, यज्ञ-अनुष्ठान आदि की व्यवस्था किस प्रकार कर पावेगा ? यदि वह नहीं कर पाता है तो क्या वह धर्महीन ही रह जायेगा ? क्या-दुनिया की भौतिक चीजों की भाँति ही पुण्यफल भी रुपयों से ही खरीदा जाता है ?

इन प्रश्नों की मीमांसा करते हुए पाठकों को यह बात भली प्रकार हृदयंगम कर लेनी चाहिए कि पुण्य का पैसे से कोई सम्बन्ध नहीं है। पुण्य तो भावना से खरीदा जाता है। आध्यात्मिक क्षेत्र में रुपये की तूती नहीं बोलती वहाँ तो भावना की प्रधानता है। दम्भ, अहंकार, नामबरी, बाहवाही, पूजा-प्रतिष्ठा के प्रदर्शन के लिए धर्म के नाम पर करोड़ रुपये खर्च करने पर भी उतना पुण्यफल नहीं मिल सकता जितना कि आत्म-त्याग, श्रद्धा एवं सच्चे अन्तःकरण से रोटी का टुकड़ा देने पर प्राप्त होता है। स्मरण रखिये—सोने की सुनहरी चमक और चाँदी की मधुर चमचमाहट आत्मा को ऊँची उठाने में कुछ विशेष सहायक नहीं होती। आत्मिक क्षेत्र में गरीब और अमीर का दर्जा बिलकुल बराबर है, वहाँ सबके पास समान वस्तु है—समान साधन हैं। भावना हर गरीब-अमीर को प्राप्त है, उसी की अच्छाई-बुराई के ऊपर पुण्य-पाप की सारी दारोमदार है। घटनाओं का घटाटोप, चौंधिया देने वाला प्रदर्शन बड़े-बड़े कार्यों के विराट आयोजन, रंगीन बादलों से बने हुए आकाश चित्रों की भाँति मनोरंजक तो हैं पर उनका अस्तित्व कुछ नहीं। सच्चे हृदय से किये हुए एक अत्यन्त छोटे और तुच्छ दीखने वाले कार्य का जितना महत्व है उतना दम्भपूर्वक किये हुए बड़े भारी आयोजन का किसी प्रकार नहीं हो सकता। भावना को सच्चाई और सात्विकता के साथ आत्म त्याग और कर्त्तव्य पालन यही धर्म का पैमाना है। इस भावना से प्रेरित होकर काम करना ही पुण्य है। सद्भावना जितनी ही प्रबल होगी आत्म-त्याग उतना बड़ा होगा। पैसे वाला अपने पैसे को जी खोलकर सत्कार्य में लगावेगा, उसी प्रकार गरीब के पास जो साधन है, उनको वह ईमानदारी के साथ खर्च करेगा।

लोग ऐसा समझते हैं कि धर्म-भावना के लिए, पुण्यफल प्राप्त करने के लिए, आत्मोन्नति के लिए, ईश्वर प्राप्ति के लिए स्वर्ग या मुक्ति की उपलब्धि के लिए, किन्हीं विशिष्ट, विचित्र या असाधारण कार्यों का आयोजन करने की आवश्यकता होती है। अमुक प्रकार की वेश-भूषा, अमुक प्रकार का रहन-सहन, अमुक प्रकार साधन भक्तिप्रद है, यह मानना बिलकुल गलत है। वेश-भूषा, रहन-सहन, साधक की सुविधा के लिए हैं, उसे जिससे आसानी रहे, इनके द्वारा सिद्ध किसी को नहीं मिलती। यदि वेष या रहन-सहन से ही सिद्ध मिलती होती तो आज जो साधु नामधारी लाखों कर्महीन भिखमंगे इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं, मुफ्त के अधिकारी हो गए होते। अनेक प्रकार की आत्मिक साधनायें, अनेक प्रकार के मानसिक व्यायाम हैं जिनके द्वारा मनोभूमि को, भावना क्षेत्र को निर्मल, पवित्र एवं सात्विक बनाया जाता है। आत्मोन्नति की असंख्यों साधनायें हैं सभी लाभप्रद हैं, क्योंकि किसी भी रास्ते से सही भावना को उच्च बनाना है, यदि मनोभूमि उच्च न बने तो साधना निरर्थक है। साधना एक औजार मात्र है। उसको विवेकपूर्वक काम में लाने से इच्छित वस्तु का निर्माण हो सकता है। पर यदि विवेकपूर्वक न किया हो तो साधना निरर्थक है। अमुक पुस्तक का पाठ करने, मन्त्र जपने या अभ्यास करने से यदि मनोभूमि निर्मल बनती हो तो आत्मोन्नति होगी पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रूढ़ि की तरह अन्ध-विश्वासपूर्वक अविवेक के साथ किसी मन्त्र या पुस्तक को रटते रहा जाय। अमुक प्रकार से काया कष्ट सहते रहा जाय तो उससे कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। जीवन लक्ष्य को प्राप्त करना आत्मिक पवित्रता द्वारा ही सम्भव है। उस पवित्रता के लिए अनेकों, असंख्यों साधन हैं। जिनमें से देश, काल, पात्र को देखते हुए बुद्धिमान व्यक्ति अपने लिए उपयुक्त वस्तु चुन लिया करते हैं। जैसे एक ही कसरत सबके लिए अनिवार्य नहीं है, उसी प्रकार एक ही साधन हर मुमुक्षु के लिए आवश्यक नहीं है। शरीर, ऋतु, खुराक, पेशा आदि को देखकर ही चतुर व्यायाम विशारद अपने शिष्यों को भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यायाम कराते हैं। उसी प्रकार आत्म-तत्वदर्शी आचार्य भी असंख्यों योगों में से उपयुक्त योग का अपने अनुयायियों के लिए चुनाव करते हैं।

कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को छोड़कर साधारण श्रेणी के सभी लोगों के लिए गृहस्थ योग की साधना को बहुत ही उपयुक्त, उचित, सुलभ एवं सुखसाध्य समझते हैं। गृहस्थ योग की साधना भी राजयोग, लययोग आदि की ही श्रेणी में आती है। उचित रीति से इस महान् व्रत का अनुष्ठान करने पर मनुष्य जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है और घर के वातावरण में स्वर्ग का अवतरण कर स्वयं उल्लसित आनन्दित रह सकता है तथा दूसरों को प्रसन्नता एवं हर्ष प्रदान कर सकता है।

गृहस्थ योग के कुछ मन्त्र

पिछले पृष्ठों पर बताया जा चुका है कि परमार्थ और स्वार्थ, पुण्य और पाप, धर्म और अधर्म यह किसी कार्य विशेष पर निर्भर नहीं, वरन् दृष्टिकोण पर अवलम्बित है। दुनिया का, स्थूल बुद्धि-कार्यों का रूप देखकर उसकी अच्छाई-बुराई का निर्णय करती है परन्तु परमात्मा के दरबार में काम के बाहरी रूप का कुछ महत्व नहीं वहाँ तो भावना ही प्रधान है। भावना का आरोपण मनुष्य की आन्तरिक पवित्रता से सम्बन्धित है। बनावट, धोखेबाजी और प्रवंचना बाहर तो चल सकती है पर अपनी आत्मा के सामने नहीं चल सकती। अन्तःकरण स्वयमेव जान लेता है कि अमुक कार्य किस दृष्टिकोण से किया जा रहा है, वहाँ कोई छिपाव या दुराव काम नहीं दे सकता। वरन् जो बात सत्य है वह ही मनोभूमि में, स्वच्छ पट्टिका पर स्पष्ट रूप से अंकित होती है। जिस कार्य प्रणाली के द्वारा अन्तःकरण में आत्म त्याग, सेवा, प्रेम एवं सद्भाव का संचार होता हो वह कार्य सच्चा और पक्का परमार्थ है। वह कार्य निस्संदेह स्वर्ग और मुक्ति की ओर ले जाने वाला होगा, चाहे उस कार्य का बाह्य रूप कैसा ही साधारण या असाधारण, सीधा या विचित्र, छोटा या बड़ा क्यों न हो ?

गृहस्थ संचालन के सम्बन्ध में भी दो दृष्टिकोण हैं। एक तो ममता, मालिकी, अहंकार और स्वार्थ का। दूसरा आत्म-त्याग, सेवा, प्रेम और परमार्थ का। पहला दृष्टिकोण बन्धन, पतन, पाप और नरक की ओर ले जाने वाला है। दूसरा दृष्टिकोण मुक्ति, उत्थान, पुण्य और स्वर्ग को प्रदान करता है। शास्त्रकारों ने, सन्त पुरुषों ने, जिस गृहस्थ की निन्दा की है, बन्धन बताया है और छोड़ देने का आदेश दिया है वह आदेश स्वर्गमय दृष्टिकोण के सम्बन्ध में है। परमार्थमय दृष्टिकोण का गृहस्थ तो अत्यन्त उच्चकोटि का आध्यात्मिक साधना है। उसे तो प्रायः सभी ऋषि, मुनि, महात्मा, योगी, यती तथा देवताओं ने अपनाया है और उसकी सहायता से आत्मोन्नति का मार्ग प्रशस्त किया है। इस मार्ग को अपनाने से उनमें से न तो किसी को बन्धन में पड़ना पड़ा और न नरक को जाना पड़ा। यदि गृहस्थ बन्धन कारक, नरकमय होता तो उससे पैदा होने वाले बालक पुण्यमय कैसे होते। बड़े-बड़े योगी यती इस मार्ग को क्यों अपनाते ? निश्चय ही गृहस्थ धर्म एक परम पवित्र, आत्मोन्नति कारक, जीवन को विकसित करने वाला, धार्मिक अनुष्ठान है, एक सत् समन्वित आध्यात्मिक साधना है। गृहस्थ का पालन करने वाले व्यक्ति को ऐसी हीन भावना मन में लाने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है कि वह अपेक्षाकृत नीचे स्तर पर है या आत्मिक क्षेत्र में पिछड़ा हुआ है या कमजोर है। अविवाहित जीवन और विवाहित जीवन में वस्तुतः कोई अन्तर नहीं है। यह अपनी-अपनी सुविधा, रुचि और कार्य प्रणाली की बात है, जिसे जिसमे सुविधा पड़ती हो वह वैसा करे। जिसका कार्यक्रम देशाटन का हो उन्हें स्त्री-बच्चों का झंझट पालने की आवश्यकता नहीं परन्तु जिन्हें एक स्थान पर रहना हो उसके लिये विवाहित होने ही में सुविधा है। इसमें पिछड़े हुए और बढ़े हुए की कुछ चीज नहीं, दोनों का दर्जा बिल्कुल बराबर है। मानसिक स्थिति और कार्य प्रणाली के आधार पर तुच्छता और महानता होती है। जहाँ भी ऊँचा दृष्टिकोण होगा वहाँ ही महानता होगी।

जीवन का परम लक्ष्य आत्मा को परमात्मा में मिला देना है, व्यक्तिगत स्वार्थ को प्रधानता न देते हुए लोकहित की भावना से काम करना, यही आध्यात्मिक साधना है। इस साधना को क्रियात्मक जीवन में लाने के लिये भिन्न-भिन्न तरीके हो सकते हैं। उन तरीकों में से एक तरीका गृहस्थ योग भी है। बालक घर में से ही प्रारम्भिक क्रियायें सीखता है। जीवन के लिये जितने काम चलाऊ ज्ञान की आवश्यकता है, उनका आधे से अधिक भाग घर में ही प्राप्त होता है। हमारी आत्मिक साधना भी घर से आरम्भ होनी चाहिये। जीवन को उच्च, उन्नत, संस्कृत, संयमित, सात्विक सेवामय एवं परमार्थपूर्ण बनाने की सबसे अच्छी प्रयोगशाला अपना घर ही हो सकता है। स्वाभाविक प्रेम, उत्तरदायित्व, कर्त्तव्य पालन, परस्पर अवलम्बन, आश्रय स्थान, स्थिर क्षेत्र, लोक लाज आदि अनेक कारणों से यह क्षेत्र ऐसा सुविधाजनक हो जाता है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि आत्मत्याग और सेवामय दृष्टिकोण के साथ काम करना इस क्षेत्र में अपेक्षाकृत अधिक सरल होता है।

गृहस्थ योग के साधक के मन में यह विचारधारा चलती रहनी चाहिए कि "यह परिवार मेरा साधन क्षेत्र है। इस वाटिका को सब प्रकार सुन्दर, सुरभित और पल्लिवत बनाने के लिये सच्चे हृदय से सदा शक्ति भर प्रयत्न करते रहना मेरा कर्मकाण्ड है। भगवान ने जिस वाटिका को सींचने का भार मुझे दिया है, उसे ठीक तरह सींचते रहना मेरी ईश्वर परायणता है। घर का कोई भी सदस्य ऐसा हीन दर्जे का नहीं है, जिसे मैं तुच्छ समझूँ, उपेक्षा करूँ या सेवा से जी चुराऊँ, मैं मालिक, नेता, मुखिया या कमाऊ होने का अहंकार नहीं करता, यह मेरा आत्म-निग्रह है। हर एक सदस्य के विकास में अपनी सेवायें लगाते रहना मेरा परमार्थ है। बदले की जरा-सी भी इच्छा न रखकर विशुद्ध कर्त्तव्य भाव से सेवा में तत्पर रहना मेरा आत्म-त्याग है। अपनी सुख-सुविधाओं की परवाह न करते हुए औरों को सुख-सुविधा बढ़ाने को प्रयत्न करना मेरा तप है। घर के हर सदस्य को सद्गुणी, सत् स्वभाव का, सदाचारी एवं धर्म परायण बनाकर विश्व की सुख शान्ति में वृद्धि करना मेरा यज्ञ है। सबके हृदयों पर जिसका मौन उपदेश हो, अनुकरण से सुसंस्कार बनें, अपना आचरण ऐसा पवित्र एवं आदर्शमय रखना मेरा व्रत है। धर्म उपार्जित अन्न से जीवन निर्वाह करना और कराना यह मेरा संयम है। प्रेम, उदारता, सहानुभूति की भावना से ओत-प्रोत रहना और रखना, प्रसन्नता, आनन्द और एकता की वृद्धि करना मेरी आराधना है। मैं अपने गृह-मन्दिर में भगवान की चलती-फिरती प्रतिमाओं के प्रति अगाध भक्ति-भावना रखता हूँ। सद्गुण, सत् स्वभाव और सत् आचरण के दिव्य शृंगार से इन प्रतिमाओं को सुसज्जित करने का प्रयत्न ही मेरा पूजा है। मेरा साधन सच्चा है, साधना के प्रति मेरी भावना सच्ची है, अपनी आत्मा के सम्मुख मैं सच्चा हूँ। सफलता-असफलता की जरा भी परवाह न करके सच्चे निष्काम कर्मयोगी की भाँति मैं अपने प्रयत्न की सच्चाई में सन्तोष अनुभव करता हूँ। मैं सत्य हूँ, मेरी साधना सत्य है। मैंने सत्य का आश्रय ग्रहण किया है, उसे सत्यतापूर्वक निवाहने का प्रयत्न करूँगा।"

उपरोक्त मन्त्र हर गृहस्थ योगी को भली प्रकार हृदयंगम कर लेना चाहिए। दिन में कई बार इस मन्त्र को दुहराना चाहिए। एक छोटे कार्ड पर सुन्दर अक्षरों में लिखकर इस मन्त्र को अपने पास रख लेना चाहिए और जब भी अवकाश मिले एक-एक शब्द का मनन करते हुए इस मन्त्र को पढ़ना चाहिए। हो सके तो अक्षरों में लिखकर सुन्दर चित्र की भाँति इसे अपने कमरें में लगा लेना चाहिए। प्रातः निद्रा त्यागने पर पलंग पर पड़े-पड़े ही कई बार इस मन्त्र को मन ही मन दुहराना चाहिए और निश्चय करना चाहिए कि आज दिन भर इन भावनाओं को अधिक से अधिक मात्रा में कार्यरूप में परिणित करने का प्रयत्न करूँगा। परिवार वालों के साथ व्यवहार करते समय मन्त्र की भावना का सतर्कतापूर्वक ध्यान रखूँगा। इस निश्चय के साथ शैय्या त्याग करने का असर दिन भर रहता है। प्रातःकाल जो आदेश अन्तर्मन को दिये हैं अधिक गहरे उतर जाते हैं, वे जल्दी विस्मरण नहीं होते और यथा अवसर वे ठीक समय पर स्मरण हो आते हैं। इसलिए प्रातःकाल इस मन्त्र को नियमित रूप से अवश्य ही दुहराना चाहिए—

"मैं गृहस्थ योगी हूँ। मेरा जीवन साधनामय है। दूसरे कैसे हैं, क्या करते हैं, क्या सोचते हैं, क्या कहते हैं ? इसकी मैं तनिक-सी परवाह नहीं करता। अपने आप में सन्तुष्ट रहता हूँ, मेरी कर्त्तव्य पालन की सच्ची साधना इतनी महान है, इतनी शान्तिदायिनी, इतनी तृप्तिकारक है कि उसमें मेरी आत्मा आनन्द में सराबोर हो जाती है। मैं अपनी आनन्दमयी साधना को निरन्तर जारी रखूँगा, गृह क्षेत्र में परमार्थ भावनाओं के साथ ही काम करूँगा।" यह संकल्प दृढ़तापूर्वक मन में जमा रहना चाहिए। जब भी मन विचलित होने लगे, जब भी पैर पीछे डिगने की संभावना प्रतीत हो तभी इस संकल्प को मनोयोगपूर्वक दृढ़ करना चाहिए।

रात्रि को सोने से पूर्व दिन भर के कार्यों पर विचार करना चाहिए। (१) आज परिवार से सम्बन्ध रखने वाले क्या क्या कार्य किये ? (२) उसमें क्या भूल हुई ? (३) स्वार्थ से प्रेरित होकर क्या अनुचित कार्य किया ? (४) भूल के कारण क्या अनुचित काम हुआ ? (५) क्या-क्या कार्य अच्छे, उचित और गृहस्थ योग की मान्यता के अनुरूप हुए ? इन पाँच प्रश्नों के अनुसार दिन भर के पारिवारिक कार्यों का विभाजन करना चाहिए और आगे से त्रुटियों के सुधार का उपाय सोचना चाहिए। (१) भूल की तलाश करना, (२) उसे स्वीकार करना, (३) गलती के लिए लज्जित होना और (४) उसे सुधारने का सच्चे मन से प्रयत्न करना यह चार बातें जिसे पसन्द हैं, जो इस मार्ग पर चलता है, उसकी गलतियाँ दिन-दिन कम होती जाती हैं और वह शीघ्र ही दोषों से छुटकारा पा लेता है।

गृहस्थ योग की साधना के मार्ग पर चलते हुए साधक के मार्ग में नित नई कठिनाइयाँ आती रहती हैं। कभी अपनी भूल से, कभी दूसरों की भूल से ऐसी घटनाएँ घटित हो जाती हैं जिनका नियत सिद्धान्त से मेल नहीं खाता। इच्छा रहती है कि अपना हर एक आचरण ठीक रहे, हर एक क्रिया सिद्धान्तानुकूल हो, परन्तु अक्सर भूलें होती रहती हैं, साधक कुछ दिन तक सोचता है कि दस-बीस दिन में या महीने में यह दूर हो जायगी और मेरी सम्पूर्ण क्रियाएँ सिद्धान्तानुकूल होने लगेंगी, पर जब काफी समय बीत जाता है और तब भी भूलें समाप्त नहीं होतीं तो चिन्ता, निराशा और पराजय की भावनाएँ मन में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घूमने लगती हैं। साधक सोचता है, इतने दिन से प्रयत्न कर रहा हूँ, पर स्वभाव पर विजय नहीं मिलती, नित्य गलतियाँ होती हैं, ऐसी दशा में साधना चल नहीं सकती। कभी सोचता है हमारे घर वाले उजड्ड, गँवार, मूर्ख और कृतघ्न हैं यह लोग मुझे परेशान एवं उत्तेजित करते हैं और मेरे जीवन को साधन की नियत दिशा में नहीं चलने देते तो साधन व्यर्थ हैं, इस प्रकार निराशाजनक विचारों से प्रेरित होकर वह अपने व्रत को छोड़ देता है।

उपरोक्त कठिनाई से हर साधक को आगाह हो जाना चाहिए। मनुष्य स्वभाव में त्रुटियाँ और कमजोरियाँ रहना निश्चित है। जिस दिन मनुष्य पूर्णरूपेण त्रुटियों से परे हो जायेगा उसी दिन वह परम पद को प्राप्त कर लेगा, जीवन मुक्त हो जायगा। जब तक उस मंजिल तक नहीं पहुँच जाता, जब तक मनुष्य योनि में है, देव योनि से पीछे है, तब तक यही मानना पड़ेगा कि मनुष्य त्रुटिपूर्ण है। जहाँ कई ऐसे व्यक्तियों का सम्मिलन है, जिसमें कोई तो आत्मिक भूमिका में बहुत आगे, कोई बहुत पीछे हैं ऐसे क्षेत्र में नित नई त्रुटियों का, कठिनाइयों का सामने आना स्वाभाविक है। इनमें से कुछ अपनी गलती के कारण उत्पन्न हुई होंगी कुछ अन्यों की गलती से। यह क्रम धीरे-धीरे दूर होता जाता है पर यह कठिन है कि अपना परिवार पूर्णरूपेण देव परिवार हो जाय, इसके लिये बहुत कठिनाई से डरने घबराने या विचलित होने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। साधना का अर्थ ही—"त्रुटियों के सुधार का अभ्यास" है। अभ्यास को निरन्तर जारी रखना चाहिए। योगीजन नित्य प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा-ध्यान आदि की साधना करते हैं, क्योंकि उनकी मनोभूमि अभी दोषपूर्ण है, जिस दिन उनके दोष सर्वथा समाप्त हो जायेंगे उसी दिन उसी क्षण वे ब्रह्म निर्वाण को प्राप्त कर लेंगे। दोषों का सर्वथा अभाव, यह अन्तिम सीढ़ी का, सिद्ध अवस्था का लक्षण है। वहाँ तक पहुँच जाने पर तो कुछ करना ही बाकी नहीं रह जाता। साधकों को यह आशा न करनी चाहिये कि थोड़े ही समय में इच्छित भावनाएँ पूर्ण रूप से क्रिया में आ जायेंगी। विचार क्षण भर में बन जाता है पर उसे संस्कार का रूप धारण करने में बहुत समय लगता है। हथेली पर सरसों नहीं जमती। पत्थर पर निशान करने के लिए रस्सी की रगड़ बहुत समय तक जारी रहनी चाहिए। स्मरण राखिए दोषों से सर्वथा मुक्ति-लक्ष्य है, ध्येय है, सिद्ध अवस्था है। साधक का आरम्भिक लक्षण यह नहीं है। आम का पौधा उगते ही यदि मीठे आम तोड़ने के लिए उसके पत्तों को टटोलेंगे तो मनोकामना पूर्ण न होगी।

गृहस्थ योग की अपनी साधना आरम्भ करते हुए आप इस बात के लिए कमर कसकर तैयार हो जाइए कि भूलों, त्रुटियों, कठिनाइयों और असफलताओं को आपको नित्य सामना करना पड़ेगा, नित्य उनसे लड़ना पड़ेगा, नित्य उनका संशोधन और परिमार्जन करना होगा, और अन्त में एक न एक दिन सारी कठिनाइयों को परास्त कर देना होगा। जैसे भूख, निद्रा, मल त्याग आदि नित्य कर्मों को रोज करते हैं तो भी दूसरे दिन फिर उनकी जरूरत पड़ती है। इस रोज-रोज के झमेले से कोई निराशा या अनुत्साहित नहीं होता वरन् धैर्यपूर्वक नित्य ही उसकी व्यवस्था की जाती है। इसी प्रकार गृहस्थ योग की साधना में अपनी या दूसरों की कमजोरी से जो भूलें हों उनसे डरना या निराश न होना चाहिए वरन् अधिक दृढ़ता एवं उत्साह से परिमार्जन का धैर्यपूर्वक प्रयत्न करते रहना चाहिए।

पूर्ण रूप से सुधार हुआ है या नहीं यह देखने की अपेक्षा यह देखना चाहिए कि पहले की अपेक्षा सात्विकता में कुछ वृद्धि हुई है या नहीं ? यदि थोड़ी बहुत भी बढ़ोत्तरी हुई हो तो यह आशा, उत्साह प्रसन्नता और सफलता की बात है। बूँद-बूँद से घड़ा भर जाता है, कन-कन-जोड़ने से मन जमा हो जाता है, राई-राई इकट्ठा करने से पर्वत बन जाता है, यदि प्रति दिन थोड़ी थोड़ी सफलता भी मिले तो हमारे शेष जीवन के असंख्य दिनों में वह सफलता बड़ी भारी मात्रा में जमा हो सकती है। यह सम्पत्ति किसी प्रकार नष्ट होने वाली नहीं है। यह जमा होने का क्रम अगले जन्म में भी जारी रहेगा और लक्ष्य तक एक न एक दिन पहुँच ही जाया जायगा, धीरे धीरे सफलता मिले तो अधिक उत्साह से काम करना चाहिए। निराश होकर छोड़ बैठने की कोई आवश्यकता नहीं है।

आप जब आत्म निरीक्षण द्वारा अपनी भूलों को देखें तो देखकर निराश न हों वरन् इस भावना को मन: क्षेत्र में स्थान दें—"वीर योद्धा की तरह मैं जीवन युद्ध में रत हूँ। चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते समय के जो बुरे संस्कार अभी हम लोगों में लगे हुए शेष रह गये हैं, वे बार-बार मार्ग में विघ्न उपस्थित करते हैं, गलती कर बैठता हूँ, कभी दूसरे गलती कर देते हैं, आये दिन ऐसे विघ्न सामने आते रहते हैं, परन्तु मैं उससे जरा भी विचलित नहीं होता, मैं नित्य इन कठिनाइयों से लड़ूँ। ठोंकर या चोट खाकर भी चुप न बैठूँगा। गिर पड़ने पर फिर उठूँगा और धूलि झाड़कर फिर युद्ध करूँगा। लड़ने वाला ही गिरता और घायल होता है, कुसंस्कार यदि मुझे गिरा देते हैं तो भी मुझे उनके विरुद्ध युद्ध जारी ही रखना चाहिए। मैं सत्य मार्ग का पथिक हूँ, सच्चिदानन्द आत्मा हूँ, अपने और दूसरों के कुसंस्कारों से निरन्तर युद्ध जारी रखना और उन्हें परास्त कर देने तक दम न लेना ही मेरा कर्त्तव्य है। मैं अपने संकल्प, व्रत, साधन और उद्देश्य के प्रति सच्चा हूँ। अपनी सच्चाई की रक्षा करूँगा और इन कठिनाइयो पर विजय प्राप्त करके रहूँगा। भूलों को नित्य परखने, पकड़ने और उन्हें हटाने का कार्य मैं सदा एक रस उत्साह के साथ जारी रखूँगा।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपरोक्त मन्त्र को सफलता के निरीक्षण के साथ मनन करना चाहिए। इससे निराशा नहीं आने पाती। गृहस्थ योग के मूलभूत सिद्धान्तों का बीज मन्त्र, दृढ़ता का संकल्प और त्रुटियों से धर्म युद्ध जारी रखने की प्रतिज्ञा यह तीनों ही महामन्त्र साधक की मनोभूमि में खूब गूँजने चाहिये। अधिक से अधिक समय इन विचारधाराओं में ओत-प्रोत रहना चाहिये।

गृहस्थ योग से परम पद

'योग' का अर्थ है—जोड़ना-मिलना। मनुष्य की साधारण स्थिति ऐसी होती है, जिसमें वह अपूर्ण होता है। इस अपूर्णता को मिटाने के लिए वह किसी दूसरी शक्ति के साथ अपने आपको जोड़कर अधिक शक्ति का संचय करता है, अपनी सामर्थ्य बढ़ाता है और उस सामर्थ्य के बल से अपूर्णता को दूर कर पूर्णता की ओर तीव्र गति से बढ़ता जाता है, यही योग का उद्देश्य है इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हठयोग, राजयोग, जपयोग, लययोग, तन्त्रयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, स्वरयोग, ऋजुयोग, महायोग, कुर्डलिनीयोग, बुद्धियोग, समत्वयोग, प्राणयोग, ध्यानयोग, सांख्ययोग, जड़योग, सूर्ययोग, चन्द्रयोग, सहजयोग, प्रणवयोग, नित्ययोग आदि ८४ प्रसिद्ध योग और ७०० अप्रसिद्ध योग हैं। इन विभिन्न योगों की कार्यप्रणाली, विधि व्यवस्था और साधना पद्धति एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न है तो भी इन सबकी जड़ में एक ही तथ्य काम कर रहा है। माध्यम सबके अलग-अलग हैं पर उन सभी माध्यमों द्वारा एक ही तत्व ग्रहण किया जाता है—तुच्छता से महानता की ओर, अपूर्णता से पूर्णता की ओर, असत् से सत् की ओर, तम से प्रकाश की ओर मृत्यु से अमृत की ओर, जो प्रगति होती है उसी का नाम योग है। अणु आत्मा को परम आत्मा बनाने का प्रयत्न ही योग है। यह प्रयत्न जिन-जिन मार्गों से होता है, उन्हें योग मार्ग कहते हैं।

एक स्थान तक पहुँचने के लिए विभिन्न दिशाओं से विभिन्न मार्ग होते हैं, आत्मविस्तार के भी अनेक मार्ग हैं। इन मार्गों में स्थूल दृष्टि से भिन्नता होते हुए भी सूक्ष्म दृष्टि से पूर्णरूपेण एकता है। जैसे भूख बुझाने के लिए कोई रोटी, कोई चावल, कोई दलिया, कोई मिठाई, कोई फल कोई माँस खाता है। यह सब चीजें एक दूसरे से बिलकुल प्रथक् प्रकार की हैं तो भी इन सबसे 'भूख मिटाना' यह एक ही उद्देश्य पूर्ण होता है। इसी प्रकार योग के नाना रूपों का एक ही प्रयोजन है—आत्म भाव को विस्तृत करना तुच्छता को महानता की पूँछ के साथ बाँध देना।

अनेक प्रकार के योगों में एक 'गृहस्थ योग' भी है। गम्भीरतापूर्वक इसके ऊपर जितना ही विचार किया जाता है। यह उतना ही अधिक महत्वपूर्ण, सर्वसुलभ तथा स्वल्प श्रमसाध्य है। इतना होते हुए भी इससे प्राप्त होने वाली जो सिद्धि है, वह अन्य किसी भी योग से कम नहीं वरन् अधिक ही है। गृहस्थाश्रम अन्य तीनों आश्रमों की पुष्टि और वृद्धि करने वाला है, दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास यह तीनों ही आम गृहस्थाश्रम को व्यवस्थित और सुख-शान्तिमय बनाने के लिए हैं। ब्रह्मचारी इसलिए ब्रह्मचर्य का पालन करता है कि उसका भावी गृहस्थ जीवन शक्तिपूर्ण और समृद्ध हो। वानप्रस्थ और संन्यासी लोग लोक हित की साधना करते हैं, संसार को अधिक सुख-शान्तिमय बनाने का प्रयत्न करते हैं। यह 'लोक' और संसार क्या है ? दूसरे शब्दों में गृहस्थाश्रम ही है। तीनों आश्रम एक ओर और गृहस्थाश्रम दूसरी ओर। यह दोनों पलड़े बराबर हैं। यदि गृहस्थाश्रम की व्यवस्था बिगड़ जाय तो अन्य तीनों आश्रमों की मृत्यु ही समझिये।

गृहस्थ धर्म का पालन करना धर्मशास्त्रियों के अनुसार मनुष्य का आवश्यक कर्त्तव्य है। लिखा है—सन्तान के बिना पितर नरक को जाते हैं, उनकी सद्गति नहीं होती। लिखा है कि सन्तान उत्पन्न किये बिना पितृ ऋण से छुटकारा नहीं मिलता। कहते हैं कि जिसके संतति न हो उनका प्रातःकाल मुख देखने से पाप लगता है। इस प्रकार के और भी अनेक मन्तव्य हिन्दू धर्म में प्रचलित हैं जिनका तात्पर्य यह है कि गृहस्थ धर्म का पालन करना आवश्यक है कि इतना जोर क्यों दिया गया है ? इस बात पर जब तात्विक दृष्टि से गम्भीर विवेचना की जाती है, तब प्रकट होता है कि गृहस्थ धर्म एक प्रकार की योग साधना है जिससे आत्मिक उन्नति होती है, स्वर्ग मिलता है, मुक्ति प्राप्त होती है और ब्रह्म निर्माण की सिद्धि मिलती है। प्राचीन समय में अधिकांश ऋषि गृहस्थ थे। वशिष्ठजी के सौ पुत्र थे, अत्रिजी की स्त्री अनसूया थीं, गौतम की पत्नी अहिल्या थी, जमदग्नि के पुत्र परशुराम थे, च्यवन की स्त्री सुकन्या थी, याज्ञवल्क्य की दो स्त्री गार्गी और मैत्रेयी थीं, लोमश के पुत्र शृंगी ऋषि थे। वृद्धावस्था में संन्यास लिया हो यह बात दूसरी है परन्तु प्राचीनकाल में जितने भी ऋषि हुए हैं। वे प्रायः सभी गृहस्थ रहे हैं। गृहस्थ में ही उन्होंने तप किये हैं और ब्रह्म निर्माण पाया है। योगिराज कृष्ण और योगेश्वर शंकर दोनों को ही हम गृहस्थ रूप में देखते हैं। प्राचीनकाल में बाल रखने, नंगे बदन रहने, खड़ाऊ पहनने, मृगछाला बिछाने का आम रिवाज था। घनी आबादी होने के कारण छोटे गाँव और छोटी कुटियाँ होती थीं। इन चिन्हों के आधार पर गृहस्थ ऋषियों को गृहत्यागी मानना अपने अज्ञान का प्रदर्शन करना है।

आत्मोन्नति करने के लिए गृहस्थधर्म एक प्राकृतिक, स्वाभाविक, आवश्यक और सर्वसुलभ योग है। जब तक लड़का अकेला रहता है, तब उसकी आत्म भावना का दायरा छोटा रहता है। वह अपने ही खाने, पहिनने, पढ़ने, खेलने तथा प्रसन्न रहने की सोचता है। उसका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कार्य क्षेत्र अपने आप तक ही सीमित रहता है। जब विवाह हो जाता है तो यह दायरा बढ़ता है, वह अपनी पत्नी की सुख-सुविधाओं के बारे में सोचने लगता है अपने सुख और मर्जी पर प्रतिबन्ध लगाकर पत्नी की आवश्यकतायें पूरा करता है। उसकी सेवा सहायता और प्रसन्नता में अपनी शक्तियों को खर्च करता है। कहने का तात्पर्य यह कि आत्म भाव की सीमा बढ़ती है, एक से बढ़कर दो तक आत्मीयता फैलती है। इसके बाद एक छोटे शिशु का जन्म होता है। इस बालक की सेवा-शुश्रूषा और पालन-पोषण में निःस्वार्थ भाव में इतना मनोयोग लगाता है कि अपनी निज सुख-सुविधाओं का ध्यान मनुष्य भूल जाता है और बच्चे की सुविधा का ध्यान रखता है। इस प्रकार यह सीमा दो से बढ़कर तीन होती है। क्रमशः यह मर्यादा बढ़ती है पिता कोई मधुर मिष्ठान्न लाता है तो उसे खुद नहीं खाता वरन् बच्चों को बाँट देता है, खुद कठिनाई में रहकर भी बालकों की तन्दुरुस्ती, शिक्षा और प्रसन्नता का ध्यान रखता है। दिन-दिन खुदगर्जी के ऊपर अंकुश लगता जाता है—आत्म संयम सीखता जाता है और स्त्री, पुत्र, सम्बन्धी, परिजन आदि में अपनी आत्मीयता बढ़ाता जाता है। क्रमशः आत्मोन्नति की ओर चलता है।

भगवान् मनु का कथन है—"पुरुष उसकी पत्नी और सन्तान मिलाकर ही एक 'पूरा मनुष्य' होता है। जब तक यह सब नहीं होता तब तक वह अधकचरा, अधूरा और खण्डित मनुष्य है। जैसे प्रवेशिका परीक्षा पास किये बिना कालेज में प्रवेश नहीं हो सकता, उसी प्रकार गृहस्थ की शिक्षा पाये बिना वानप्रस्थ, संन्यास आदि में प्रवेश करना कठिन है। आत्मीयता का दायरा क्रमशः ही बढ़ता है। अकेले से, पत्नी-पति दो में, फिर बालक के साथ तीन में, सम्बन्धियों में, पड़ौसियों में गाँव, प्रान्त, प्रदेश, राष्ट्र, विश्व में यह आत्मीयता क्रमशः बढ़ती है। आगे चलकर सारी मनुष्य जाति में आत्म भाव फैलता है फिर पशु-पक्षियों में, कीट-पतंगों में, जड़ चैतन्य में यह आत्मभाव विकसित हो जाता है। जो प्रगति एक से बढ़कर दो में, दो से तीन में हुई थी, वही उन्नति धीरे-धीरे आगे बढ़ती जाती है और मनुष्य सम्पूर्ण चर-अचर में आत्म सत्ता को ही समाया देखता है, उसे परमात्मा की दिव्य ज्योति सर्वत्र जगमगाती दीखती है। एक अपने मन को जितने अंशों में फैलाया जाता है, उतने अंशों में अपनी खुदगर्जी पर संयम होता है। बाल-बच्चों के होने पर यह आत्म संयम और अधिक बढ़ता है, अन्त में जीव पूर्णतया आत्म संयमी हो जाता है। दूसरे के लिए अपने आप को भूलने का अभ्यास क्रमशः इतना अधिक पुष्ट हो जाता है कि अपना कुछ रहता ही नहीं, सब कुछ बिराना हो जाता है। 'मेरा मुझको कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर' की ध्वनि उसके अन्दर से निकलने लगती है। खुदी मिटती जाती है और खुदा मिलता जाता है। 'मैं' का अन्त होने से 'तू' ही शेष रहता है। गृहस्थ योग की छोटी-सी सर्वसुलभ साधना जब अपनी विकसित अवस्था तक पहुँचती है तो आत्मा, परमात्मा बन जाती है। अपूर्णता से छूटती है और पूर्णता उपलब्ध करती है और योग का वास्तविक उद्देश्य पूरा हो जाता है।

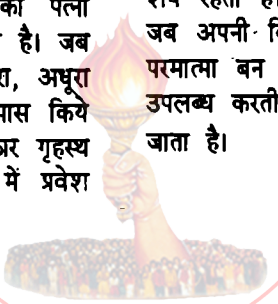

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँच स्थापनाएँ

युगदृष्टा के स्तर की अवतारी सत्ता के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने अपने अस्सी वर्ष के जीवनकाल में जितना भी कुछ किया, उसकी मिसाल कहीं देखने को नहीं मिलती। करोड़ों व्यक्तियों के मनों का निर्माण, उनके सोचने के तरीके में बदलाव एवं युग निर्माण की पृष्ठभूमि बनाकर रख देने का कार्य इन्हीं के स्तर की सत्ता कर सकती थी, जो लाखों वर्षों में कभी-कभी धरती पर आती है। उनके द्वारा की गयी स्थापनाओं का जब प्रसंग आता है तब ईंट-गारे-चूने-सीमेंट से बने भवनों से पहले उनकी स्नेह-संवेदना से सिक्त हुए, ममत्व में स्नानकर उनके अपने हो गये लाखों व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं, जिनने उनके एक इशारे पर अपना सब कुछ उनको अर्पित कर दिया। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में कभी ऐसा ही वातावरण भारत के कोने-कोने में दिखाई देता था, जब हर घर से सत्याग्रही निकलकर आ रहे थे। भावनाओं का आवेग चिरस्थायी नहीं रहता। वे ही लोग जो कभी राष्ट्र निर्माण के लिए अपना सब कुछ छोड़, पढ़ना-लिखना छोड़ देश को आजाद बनाने के लिए कूद पड़े थे, कभी गड़बड़ाने न पाएँ, उसी के लिए बापू ने आजादी के बाद काँग्रेस भंग कर देने व सभी को एक आदर्श स्वयं-सेवक की तरह दरिद्र नारायण का उत्थान कर राष्ट्र निर्माण में लग जाने की सलाह दी थी।

सभी इस तथ्य को जानते हैं कि ऐसा नहीं हुआ, राष्ट्र का कीर्ति-स्तम्भ रूपी वह महापुरुष भी एक वर्ष के अंदर ही शहादत को प्राप्त हो चला गया। गिने-चुने उनके आदर्शों पर चलने वाले रह गये, अवसरवादियों को राजनेतृत्व भाने लगा एवं राष्ट्र आजाद होकर भी उनके हाथ में आ गया जो ब्रिटिश तो नहीं थे किन्तु, उसी रंग में रँगे सत्ता के उन्माद में काम करने वाले शासक थे- सृजेता नहीं। जिंदा रहा तो मात्र बापू का दर्शन बुनियादी आधार पर टिका- मानव को बनाने का तंत्र-आश्रम तंत्र जो सेवाग्राम-साबरमती आश्रम के रूप में कार्य करता रहा और वह भी शीर्ष-पुरुष के न रहने, बिनोवाजी के चले जाने के बाद अस्तित्व व महत्व की दृष्टि से गौण हो गया। परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी दिव्य-दृष्टि से यह सब पूर्व में ही देख लिया था कि कोई भी भव्य निर्माण, आश्रम या तंत्र बनाने से पूर्व राष्ट्र को सांस्कृतिक, भौतिक, आध्यात्मिक आजादी दिलाने वाले अगणित व्यक्ति तैयार करने पड़ेंगे। १९११ में आज से ८४ वर्ष पूर्व वि.संवत् २०८६ में जन्मे, राष्ट्र की आजादी में उन्मत्त बने श्रीराममत्त कहलाने वाले, आचार्यश्री ने पहले स्वयं को तपाया, वैचारिक क्रान्ति के निर्माण का आधारभूत तंत्र स्वयं व परमवंदनीया माताजी के रूप में खड़ा किया, 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका अपनी लेखनी से लिखी, ममत्व भरी चिट्ठियों व छोटी-छोटी एक आने की किताबों से जन-जन के मन को छुआ, तब जाकर अपने एक लक्ष के २४ गायत्री महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर उन्होंने गायत्री तपोभूमि, मथुरा की स्थापना की बात १९५२-५३ में सोची। सबसे पहली मंत्र दीक्षा वहीं पर १९५३ में दी व यह मानते हुए कि बिना आध्यात्मिक आधार बनाये, मनोभूमि में, भावनाओं के स्तर पर बदलाव लाये कोई क्रान्ति सफल नहीं हो सकती, धीमी खुराक देते हुए हर व्यक्ति को गायत्री व यज्ञ के तत्त्वदर्शन से जोड़ते हुए चले गये। गायत्री परिवार रूपी विराट वृक्ष का मूल आधार वह स्थापना है जो जन-जन के मनों में पहले हुई- उनकी भाव संवेदनाओं के उदात्तीकरण के रूप में सम्पन्न हुई व उनके अंदर अपनी गुरुसत्ता को त्याग करने की, यज्ञीय जीवन अपनाने की प्रेरणा बलवती होने लगी। उन्होंने सर्वमेध के रूप में अपना सर्वस्व बलिदान एवं नरमेध के रूप में अपने आप को समाज के हित न्यौछावर करने की भावना से दो यज्ञ किये। अपनी जमींदारी के बाण्ड बेचकर एवं परमवंदनीया माताजी के कीमती सोने के जेवर (ढाई सौ तोले) बेचकर जो स्वेच्छा से सम्पन्न हुआ, एक स्थापना भवन के रूप में जो हुई- वह थी **गायत्री तपोभूमि, मथुरा** जो वृन्दावन रोड पर ऋषि दुर्वासा की जन्मस्थली पर बनी आज से ४२ वर्ष पूर्व १९५३ में। प्रारंभिक स्थापना यों अखण्ड ज्योति संस्थान को माना जा सकता है जहाँ अखण्ड दीपक अपनी जन्मभूमि आँवलखेड़ा से जो वहाँ से मात्र ४० मील दूर थी, स्थापित किया गया था एवं प्रारंभिक तप-तितिक्षा वहीं पर १९४१ से, तपोभूमि की स्थापना से भी १२ वर्ष पूर्व आरम्भ हो गयी थी। इस प्रकार जन-जन के मनों का निर्माण उनके अंतःस्थल में प्रवेश कर उनके अंदर देवत्व के जागरण की ललक पैदा करने वाली पृष्ठभूमि पर स्थापनाओं का क्रम बना। किराये की ऐसी हवेली जिसे भुतहा हवेली कहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जाता था, में अखण्ड दीपक की स्थापना, उसके समक्ष तप, **अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा** के रूप में विकसित हुआ एवं एक और दूसरा निर्माण मथुरा में ही गायत्री तपोभूमि के रूप में हुआ जो कि ३ मील दूर वृन्दावन रोड पर १९५३ में बनाई गई। १९५३ में क्रमशः सुसंगठित गायत्री परिवार के बनने की प्रक्रिया चल पड़ी।

इस प्रारंभिक भूमिका को समझने के बाद ही परमपूज्य गुरुदेव की पाँच मूल स्थापनाओं एवं बाद में देश के कोने-कोने में बनी भव्य इमारतों के रूप में शक्तिपीठों, प्रज्ञा संस्थानों, भारत व विश्वभर में घर-घर में स्थापित स्वाध्याय मण्डलों व गायत्री परिवार की शाखाओं, प्रज्ञापीठों, चरणपीठों का महत्त्व समझा जा सकता है। नहीं तो जैसे अन्यान्य आश्रम-संस्थान बनते हैं, ऐसे इनका भी वर्णन किया जा सकता था व यह कहा जा सकता था कि यह वैभवपूर्ण स्थापनाएँ पूज्यवर ने कीं। उनमें यदि प्राण फूँके गये हों, प्राणवान व्यक्ति वहाँ रहते हों व उस शक्ति के महा-अवसान के बाद भी वे सतत् उसी दिशा में चल रहे हों तो माना जाना चाहिए कि प्रारंभिक पुरुषार्थ जो किया गया, वह औचित्यपूर्ण था।

परमपूज्य गुरुदेव की महत्त्वपूर्ण पाँच स्थापनाएँ इस प्रकार हैं–

(१) युगतीर्थ आँवलखेड़ा (२) अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा (३) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (४) शान्तिकुंज, गायत्री तीर्थ, सप्तसरोवर, हरिद्वार तथा (५) ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, सप्तसरोवर, हरिद्वार ।

युगतीर्थ आँवलखेड़ा का नाम सबसे पहले इसलिए लिखा कि यहीं पर वह युगपुरुष संवत् १९६८ की आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि के दिन, ब्राह्ममुहूर्त में, जो अँग्रेजी तारीख से २० सितम्बर, १९११ के दिन आती थी, में जन्मा। एक श्रीमंत ब्राह्मण परिवार में, जहाँ धन की कोई कमी नहीं थी, पूरा परिवार संस्कारों से अनुप्राणित, पिता भागवत के प्रकाण्ड पंडित, बहुत बड़ी जागीर के मालिक। आज जहाँ पूज्यवर की स्मृति में एक विराट स्तंभ की, एक चबूतरे की तथा उनके कर्तृत्व रूपी शिलालेखों की स्थापना हुई है- वहीं पूज्यवर ने शरीर से जन्म लिया था। समीप बनी दो कोठरियाँ जो काल प्रवाह के क्रम में गिर सी गयी थीं, जीर्णोद्धार कर वैसी ही निर्मित कर दी गयी हैं- जैसी उनके समय में थीं। जन्मभूमि का कण-कण उस दैवीसत्ता की चेतना से अनुप्राणित है। उनके हाथ से खोदा कुँआ जिसे पूरे गाँव का एकमात्र मीठे जल वाला कुँआ माना गया- वह अभी भी है, उनके हाथ से रोपा नीम का पेड़ एवं वह बैठक जहाँ स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सब बैठकर चर्चा करते थे, आज भी उन दिनों की याद दिलाते हैं। पास में ही दो कोठरियाँ हैं जिनमें से एक कक्ष में वह स्थान है जहाँ दीपक के प्रकाश में से सूक्ष्म शरीरधारी गुरुसत्ता प्रकट हुई थी तथा जिसने उनके जीवन की दिशाधारा का १९२६ के बाद के क्रम का निर्धारण कर दिया था। यह सब देखकर मस्तिष्क-पटल पर वह दृश्य उभर आता था, जिसे गुरुसत्ता ने कभी देखा था व जो गायत्री परिवार की स्थापना का मूल आधार बना। आँवलखेड़ा में ही उनकी माताजी की स्मृति में स्थापित माता दानकुँवरि इण्टर कालेज है जो उनके द्वारा दान दी गयी जमीन में प्रदत्त धनराशि द्वारा विनिर्मित है। १९६३ से चल रहे इस इंटर कालेज से कई मेधावी छात्र निकल कर आत्म-निर्भर बने हैं व उच्च पदों पर पहुँचे हैं।

१९७९-८० में गायत्री शक्तिपीठ एवं कन्या इंटर कॉलेज की स्थापना का ताना-बाना बुना जाने लगा जो एक विशाल शक्तिपीठ तथा आसपास के दो सौ ग्रामों की बालिकाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था करने वाले, उन्हें सुशिक्षित, संस्कारवान, आत्मावलम्बी बनाने वाले कन्या महाविद्यालय का अब रूप ले चुका है। प्रथम पूर्णाहुति हेतु इसी भूमि को जो शक्तिपीठ-जन्मभूमि-ग्रामीण क्षेत्र के चारों ओर है, इसीलिए चुना गया कि यहाँ से उद्भूत प्राण ऊर्जा से यहाँ आने वाला हर संकल्पित साधक अनुप्राणित होकर जाए व राष्ट्र के नव-निर्माण की सांस्कृतिक व भावनात्मक क्रान्ति की पृष्ठभूमि रख सके। यहाँ पूज्यवर १९३६-३७ तक ही रहे, कुछ दिन आगरा रहकर १९४०-४१ में मथुरा चले गये, जहाँ दो-तीन मकान बदलने के बाद वर्तमान मकान किराये पर लिया जिसे आज अखण्ड-ज्योति संस्थान कहते हैं।

अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा में स्थित है। परमपूज्य गुरुदेव सीमित साधनों में अपने अखण्ड दीपक के साथ यहीं रहने लगे एवं यहीं से क्रमशः आत्मीयता विस्तार की जन-जन तक अपने क्रान्तिकारी चिंतन के विस्तार की प्रक्रिया 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका, जो आगरा से ही आरम्भ कर दी गयी थी, की 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ व अन्यान्य लेखों की पंक्तियों के माध्यम से सम्पन्न होने लगी। व्यक्तिगत पत्रों द्वारा उनके अंतःस्थल को स्पर्श कर एक महान स्थापना का बीजारोपण होने लगा। यहीं पर अगणित दुःखी, तनावग्रसित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तियों ने आकर उनके स्पर्श से नये प्राण पाये तथा उनके व परमवंदनीया माताजी के हाथों से भोजन-प्रसाद पाकर उनके अपने होते चले गये। हाथ से बने कागज पर छोटी ट्रेडिल मशीनों द्वारा यहीं पर अखण्ड ज्योति पत्रिका छापी जाती थी व छोटी-छोटी किताबों द्वारा लागत मूल्य पर उसे निकालने योग्य खर्च निकलता था। बगल की एक छोटी-सी कोठरी में जहाँ अखण्ड दीपक जलता था, आज पूजाघर विनिर्मित है। पूरी बिल्डिंग को खरीद कर उनके सुपुत्र ने एक नया आकार व मजबूत आधार दे दिया है किन्तु यह कोठरी अंदर से वैसी ही रखी गयी है जैसी पूज्यवर के समय में १९४२-४३ में रही होगी। तब से लेकर आगामी ३० वर्ष का साधनाकाल-लेखनकाल पूज्यवर का इसी घीयामण्डी के भवन में छोटी-छोटी दो कोठरियों में गहन तपश्चर्या के साथ बीता। तपोभूमि निर्माण की पृष्ठभूमि यहीं बनी, १९५८ में सहस्र कुण्डी यज्ञ की आधारशिला यहीं रखी गयी, यहीं सारी योजना बनी एवं विधिवत-गायत्री परिवार बनता चला गया। रोज आने वाले पत्रों को स्वयं परमवंदनीया माताजी पढ़ती जातीं एवं पूज्यवर इतनी ही देर में जवाब लिखते जाते, यही सूत्र संबंधों के सुदृढ़ बनने का आधार बना। हर परिजन को तीन दिन में जवाब मिल जाता, शंका-समाधान होता चला जाता एवं देखते-देखते एक विराट गायत्री परिवार बनता चला गया। गायत्री महाविज्ञान के तीनों खण्ड, युग निर्माण परक साहित्य, आर्ष-ग्रन्थों के भाष्य को अंतिम आकार देने का कार्य यहीं सम्पन्न हुआ। जनसम्मेलनों, छोटे-बड़े यज्ञों एवं १००८ कुण्डी पाँच विराट् यज्ञों में पूज्यवर यहीं से गये एवं विदाई सम्मेलन की रूपरेखा बनाकर स्थायी रूप से इस घर से १९७१ की २० जून को विदा लेकर चले गये। इस संस्थान के कण-कण में जहाँ आज १० लाख से अधिक संख्या में हिन्दी सहित सभी भाषाओं में अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रकाशन, विस्तार, डिस्पैच आदि का एक विराट तंत्र स्थापित है, परमपूज्य गुरुदेव की चेतना संव्याप्त अनुभव की जा सकती है। भले ही बहिरंग का कलेवर बदल गया हो, अंदर प्रवेश करते ही परमपूज्य गुरुदेव व परमवंदनीया माताजी की सतत विद्यमान प्राणचेतना के स्पन्दन वहाँ विद्यमान हैं, यह प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है।

गायत्री तपोभूमि, मथुरा को परमपूज्य गुरुदेव की चौबीस महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर की गयी स्थापना माना जा सकता है, जिसे विनिर्मित ही गायत्री परिवार रूपी संगठन के विस्तार के लिए किया गया था। इसकी स्थापना से पूर्व चौबीस सौ तीर्थों के जल व रज को संग्रहीत करके यहाँ उनका पूजन किया गया, एक छोटी किन्तु भव्य यज्ञशाला में अखण्ड अग्नि स्थापित की गयी तथा एक गायत्री महाशक्ति का मन्दिर विनिर्मित किया गया। चौबीस सौ करोड़ गायत्री मंत्रों का लेखन जो श्रद्धापूर्वक नैष्ठिक साधकों द्वारा किया गया था, यहाँ पर संरक्षित कर रखा गया है। पू. गुरुदेव की साधनास्थली व प्रातःकाल की लेखनी की साधना की कोठरी यदि अखण्ड ज्योति संस्थान में थी तो उनकी जन-जन से मिलने, साधनाओं द्वारा मार्गदर्शन देने की कर्म-भूमि गायत्री तपोभूमि थी। यहीं पर १०८ कुण्डी गायत्री महायज्ञ में १९५३ में पहली बार पूज्यवर ने साधकों को मंत्र दीक्षा दी। यहीं पर १९५६ में नरमेध यज्ञ तथा १९५८ में विराट सहस्रकुण्डी यज्ञायोजन सम्पन्न हुए। श्रेष्ठ नररत्नों का चयन कर गायत्री परिवार को विनिर्मित करने का कार्य यहीं व्यक्तिगत मार्गदर्शन द्वारा सम्पन्न हुआ। हिमालय प्रवास से लौटकर पूज्य आचार्यश्री ने युग निर्माण योजना के शत-सूत्री कार्यक्रम एवं सत्संकल्प की तथा युग निर्माण विद्यालय के एक स्वावलम्बन प्रधान शिक्षा देने वाले तंत्र के आरम्भ होने की घोषणा की। यह विधिवत् १९६४ से आरम्भ किया गया एवं अभी भी सफलतापूर्वक चल रहा है। जिस कक्ष में परमपूज्य गुरुदेव सभी से मिला करते थे, अभी भी यहाँ देखा जा सकता है। भव्य निर्माण परमपूज्य गुरुदेव की १९७१ की विदाई के बाद यहाँ हो गया है किन्तु, कण-कण में उनकी प्राणचेतना का दर्शन किया जा सकता है। विराट प्रज्ञानगर, युग निर्माण विद्यालय, साहित्य की छपाई हेतु बड़ी-बड़ी ऑफसेट मशीनें तथा युग निर्माण साहित्य जो पूज्यवर ने जीवन भर लिखा, उसका वितरण-विस्तार तंत्र यहाँ पर देखा जा सकता है।

शान्तिकुंज, हरिद्वार ऋषि परम्परा के बीजारोपण केन्द्र के रूप में १९७१ में स्थापित किया गया था, जब परमपूज्य गुरुदेव मथुरा स्थायी रूप से छोड़कर परमवंदनीया माताजी को अखण्ड ज्योति दीपक की रखवाली हेतु यहाँ छोड़कर हिमालय में चले गये। गुरुसत्ता के निर्देश पर वे पुनः एक वर्ष बाद लौटे व तब शांतिकुंज को उनने एक बड़ा विराट रूप देने, सभी ऋषिगणों की मूलभूत स्थापनाओं को यहाँ साकार बनाने का निश्चय किया। इससे पूर्व परमवंदनीया माताजी ने २४ कुमारी कन्याओं के साथ अखण्ड दीपक के समक्ष २४० करोड़

गायत्री मंत्र का अखण्ड अनुष्ठान आरंभ कर दिया था। पूज्यवर ने प्राण प्रत्यावर्तन सत्र, जीवन साधना सत्र, वानप्रस्थ सत्र आदि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता यहीं गढ़े। यह सत्र शृंखला कल्प साधना, संजीवनी साधना सत्रों के रूप में तब से ही ९ दिवसीय सत्रों व एक माह के युग शिल्पी प्रशिक्षण सत्रों के रूप में चल रही है, अभी भी अनवरत उसमें आने वालों का ताँता लगा रहता है। पहले से ही सब अपनी बुकिंग इसमें करा लेते हैं।

शांतिकुंज को गायत्री तीर्थ का रूप देकर सप्तऋषियों की मूर्तियों की स्थापना १९७८-७९ में की गयी, एक देवात्मा हिमालय विनिर्मित किया गया एवं यहाँ सभी संस्कारों को सम्पन्न करते रहने का क्रम बन गया जो सतत् चल रहा है। नित्य यहाँ दीक्षा, पुंसवन, नामकरण, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह, श्राद्ध-तर्पण आदि संस्कार सम्पन्न होते हैं। इस बीच परमवंदनीया माताजी ने जागरण सत्र शृंखलाएँ सम्पन्न करना आरम्भ रखा। देव कन्याओं को प्रशिक्षित कर पूरे भारत में जीप टोलियों में भेजा गया। इनके माध्यम से तीन वर्ष तक भारत के कोने-कोने में तुमुलनाद होता रहा।

शांतिकुंज का गायत्री नगर जो आज एक विराट स्थापना के रूप में, एक एकेडमी के रूप में नजर आता है व जिसमें एक बार में एक साथ दस हजार व्यक्ति एक साथ ठहर सकते हैं, १९८१-८२ में बनना आरम्भ हुआ । विलक्षण, दुर्लभ जड़ी-बूटियों के पौधे यहाँ लगाये गये तथा प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा रूपी तीर्थस्थली का पूज्यवर ने अपने सामने निर्माण कराया। यहीं उनके निर्देशानुसार उनके शरीर छोड़ने पर दोनों सत्ताओं को अग्नि समर्पित की जानी थी। स्वावलम्बन विद्यालय से लेकर एक विशाल चौके का निर्माण एवं गायत्री विद्यापीठ से लेकर भारत के सभी सरकारी विभागों के प्रशिक्षण के तंत्र की स्थापना यहाँ पर की गयी है एवं यह एक जीता-जागता तीर्थ अब बन गया है, जहाँ पर उज्ज्वल भविष्य की पूर्व झलक देखी जा सकती है। कम्प्यूटरों से सज्जित विशाल कार्यालय से लेकर पत्राचार विद्यालय जहाँ नित्य हजारों पत्रों के द्वारा पूरे तंत्र का मार्गदर्शन किया जाता है, यहाँ की विशेषता है।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँचवीं स्थापना है, जहाँ पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का अभिनव शोध कार्य चल रहा है। इसे १९७१ की गायत्री जयंती पर आरम्भ किया गया था। वर्तमान शांतिकुंज- गायत्री तीर्थ से आधा किलोमीटर दूरी पर गंगातट पर स्थित यह संस्थान अपनी आकर्षक बनावट के कारण सहज ही सबके मनों को मोहकर आमंत्रित करता रहता है। इसमें तीन मंजिलों में प्रथम तल पर एक विज्ञान के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञशाला विनिर्मित है तथा चौबीस कक्षों में गायत्री महाशक्ति की चौबीस मूर्तियाँ बीजमंत्रों व उनकी फलश्रुतियों सहित स्थापित हैं। द्वितीय तल पर एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला है, जहाँ ऐसे उपकरण स्थापित हैं जो यह जाँच-पड़ताल करते हैं कि साधना से पूर्व व पश्चात्, यज्ञादि मंत्रोच्चारण के पूर्व व पश्चात् क्या-क्या परिवर्तन शरीर-मन की गतिविधियों व रक्त आदि संघटकों में देखने में आये। इनके आधार पर साधकों को साधना संबंधी परामर्श दिया जाता है। यहाँ पर वनौषधियों का विश्लेषण भी किया जाता है तथा यज्ञ ऊर्जा-मंत्र शक्ति का क्या प्रभाव साधक की मस्तिष्कीय तरंगों, जैव विद्युत आदि पर पड़ा, यह देखा जाता है। विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी यहाँ किये जाते हैं। तृतीय तल पर एक विशाल ग्रंथागार स्थापित है, जहाँ विश्वभर के शोध प्रबंध वैज्ञानिक अध्यात्मवाद पर एकत्रित किये गये हैं। यहाँ प्रायः ४५००० से अधिक ग्रंथ हैं, जिनमें कई पुरातन पाण्डुलिपियाँ हैं। यह अपने आप में एक अनूठा संकलन है जो और कहीं एक साथ देखने में नहीं मिलता।

परमपूज्य गुरुदेव की उपरोक्त पाँच स्थापनाएँ किसी को भी यह परिचय दे सकती हैं कि किस विलक्षण दृष्टास्तर की वह महासत्ता थी जो हम सबके बीच अपना लीली संदोह रचकर चली गयी। प्रत्यक्ष तो यह केन्द्रीय पाँच स्थापनाएँ नजर आती हैं किन्तु ४८०० से अधिक अपने भवनों वाले प्रज्ञा संस्थान ४०००० से अधिक प्रज्ञामण्डल व स्वाध्याय मण्डल तथा अगणित गायत्री परिवार की शाखाएँ यदि इनमें मिलाई जाएँ तो इनका मूल्य राशि में आँका नहीं जा सकता। यही वह सब है जो उस महापुरुष को एक अवतारी स्तर की सत्ता के रूप में प्रतिष्ठापित करता है व जिसके कर्तृत्व पर श्रद्धावनत होने का मन करता है। ❑❑❑

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाङ्मय

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनने अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाङ्मय के खण्डों में है । जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

१. युगद्रष्टा का जीवन-दर्शन
समग्र वाङ्मय का परिचय
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है; कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२
(सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्त्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?
३८. प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
४१. जीवेम शरदः शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
४९. शिक्षा एवं विद्या
५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५३. धर्मतत्त्व का दर्शन व मर्म
५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
५५. दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ
५६. ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
५७. मनस्विता प्रखरता और तेजस्विता
५८. आत्मोत्कर्ष का आधार- ज्ञान
५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
६१. गृहस्थ : एक तपोवन
६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
६३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
६६. युग निर्माण योजना-दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
६७. प्रेरणाप्रद दृष्टान्त
६८. पूज्यवर की अमृतवाणी (भाग एक)
६९. विचारसार एवं सूक्तियाँ (प्रथम खण्ड)
७०. विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

वाङ्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड निम्न विषयों पर होंगे--

७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय
७३. चिन्तन का विधेयात्मक-निषेधात्मक स्वरूप
७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. संकल्प बल का अनूठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारों का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवन: एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के संयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखे स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. हृदयस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-शोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यकों की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मंजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७. मिशन की लोक-व्यवहार संहिता
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनों से अपनी बातें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org